दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय ।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय ॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर ।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा । जय गणेश, जय शुभ-आगारा ॥
जयति शिवाशिव जानकिराम । गौरीशंकर सीताराम ॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम । व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम ॥
रघुपति राघव राजाराम । पतितपावन सीताराम ॥

(संस्करण १,६०,०००)

सूर्य-स्तुति

दीन-दयालु दिवाकर देवा । कर मुनि, मनुज, सुरासुर सेवा ॥
हिम-तम-करि-केहरि करमाली । दहन दोष-दुख-दुरित-रुजाली ॥
कोक-कोकनद-लोक-प्रकासी । तेज-प्रताप-रूप-रस-रासी ॥
सारथि पंगु, दिव्य रथ-गामी । हरि-संकर-विधि-मूरति स्वामी ॥
बेद-पुरान प्रगट जस जागै । तुलसी राम-भगति बर माँगै ॥

(—गोस्वामी तुलसीदास, विनयपत्रिका २)

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० १४.००
विदेशमें रु० २९.२०
(२ पौण्ड)

जय सूरज जय भुवन विभाकर । जय पूषा जय प्रखर प्रभाकर ॥
जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । मत-चित-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

इस अङ्कका मूल्य
भारतमें रु० १४.००
विदेशमें रु० २५.२
(२ पौण्ड)

आदि सम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक, मुद्रक एवं प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

[भारत-सरकारद्वारा उपलब्ध कराये गये रियायती मूल्यके कागजपर मुद्रित]

कल्याण
J. H. Prasad
वर्ष
सूर्य-अङ्क
संख्या
१

र्यके व्रत करो, तुम्हारे सब कार्य सिद्ध हो जायँगे। श्रीसूर्योपासनासे कौन-सा ऐसा कार्य है कि जो सिद्ध न हो जाता हो।

उस ब्राह्मणने हमारी बातका विश्वास कर सूर्योपासना करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। वह अंग्रेजी पढ़ा था और शनमें रहता था तथा उसके सिरपर चोटी नहीं थी वह चाय भी पीता था। हमने सबसे पहले उसके ल कटवाकर उसके सिरपर चोटी रखवायी और से चाय न पीनेकी प्रतिज्ञा करायी। फिर उसे श्रीसूर्य-वान्के मन्त्र और स्तोत्र बताकर सूर्योपासना करानी म्भ करा दी।

उसने हमारे बताये अनुसार बड़ी लगन : बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ भगवान् श्रीसूर्यकी सना, उनके मन्त्रका जप और स्तोत्रका पाठ आदि ा प्रारम्भ कर दिया। उसके विधिपूर्वक श्रीसूर्योपासना का प्रत्यक्ष फल और अद्भुत चमत्कार यह देखनेमें आया कि अभी सूर्योपासना करते पंद्रह दिन भी पूरे नहीं हुए थे कि उसके घरसे एक तार आया कि तुम्हारी अमुक जगहसे नौकरी लगनेकी सूचना आयी है, इसलिये तुम तुरंत वहाँपर पहुँच जाओ और कार्य सँभाल लो। वह यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया। उसकी भगवान् सूर्यमें और भी श्रद्धा-भक्ति हो गयी। वह वहाँ गया और ऊँचे पदपर नियुक्त हो गया। वह आगे जाकर मालामाल हो गया। इस प्रकार उसके सब रोग-शोक, दुःख-दारिद्र्य समाप्त हो गये। यह सब भगवान् श्रीसूर्यदेवके भजन-पूजन, जप-अनुष्ठान आदि करनेसे और भगवान् श्रीसूर्यके प्रसन्न होनेसे ही हुआ, जो स्वयं हमारी प्रत्यक्ष आँखोंदेखी सत्य घटना है।

भगवान् श्रीसूर्यकी कृपासे सब कुछ प्राप्त हो सकता है। आवश्यकता है कि हम श्रद्धा-भक्तिके साथ विश्वासपूर्वक भगवान् श्रीसूर्यकी उपासना करें।

प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी

सूर्यका महत्त्व

"हैकलने अपनी विश्वपहेली नामक पुस्तकमें लिखा है कि सूर्य प्रकाश और उष्णताके दाता देवता हैं, जिनका प्रभाव चैतन्य पदार्थोंपर प्रत्यक्ष तथा अज्ञात-रूपसे पड़ता है। आजकलके न-वेत्ता सूर्योपासनाको और सब प्रकारके अस्तित्ववादोंसे उत्तम समझते हैं। यह उस प्रकारका त्ववाद है, जो वर्तमान समयके एक ईश्वरवादमें भी सरलतापूर्वक परिणत हो सकता है; क्योंकि नेक ग्रह-उपग्रहका पदार्थ-विज्ञान और पृथ्वीकी उत्पत्ति तथा निर्माणके सिद्धान्त हमको यह बतलाते : पृथ्वी सूर्यका एक भाग है जो उससे पृथक् हो गया है। अन्तमें कभी-न-कभी पृथ्वी, सूर्यमें जा ी······वास्तवमें हमारा सम्पूर्ण शारीरिक तथा मानसिक जीवन, अन्ततः और सब प्रकारके वान् पदार्थोंके जीवनकी भाँति, सूर्यके प्रकाश तथा उष्णतापर निर्भर है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हजारों वर्ष पहले सूर्योपासक लोग अन्य प्रकारके बहुतेरे रवादियोंसे मानसिक तथा आध्यात्मिक बातोंमें अधिक बढ़े-चढ़े थे। लेखक जब सन् १८८१ ई०में में था, तब इसने बड़ी श्रद्धापूर्वक पारसी लोगोंको (भी) समुद्रके किनारे खड़े होकर अपना अपने पर झुककर उदय तथा अस्त होते हुए सूर्यकी पूजा करते देखा था।"

प्रेषक—पं० [illegible]

सूर्य-पूजाकी व्यापकता

(लेखक—डॉ० श्रीसुरेशव्रतजी राय, एम्० ए०, डी० फिल्०, एल्-एल्० बी०)

प्रकाश, ताप और ऊर्जाके स्रोत भगवान् भुवनभास्करके सम्मुख मानव आदिकालसे ही श्रद्धावनत रहा है। यदि वे वैज्ञानिकोंके लिये ऊर्जा तथा उष्णताके स्रोत हैं तो भक्तोंके लिये जीवनदाता, खगोल-शास्त्रियोंके लिये सौर-मण्डलके केन्द्र-बिन्दु और कवियोंको सात चपल अश्वों तथा सहस्र किरणोंवाले रश्मिरथीकी कल्पनामें मुग्ध करनेवाले दिव्य प्राणी हैं। (अपने देशमें) प्रातःकाल एवं संधिवेलामें किसी सरिता, सरोवरमें कमरतक जलके बीच अथवा भूमिपर ही खड़े होकर सूर्यको अर्घ्य अर्पित करने एवं सूर्य-नमस्कार करनेकी परम्परा आदिकालसे ही चली आ रही है। सभी वर्ण, जाति, धर्म और देशोंमें किसी-न-किसी रूपमें सूर्य-पूजा प्रचलित रही है तथा आज भी है। फारसमें अग्नि एवं सूर्योपासना-परम्परा अत्यन्त प्राचीन रही है। मैक्सिको-वासियोंकी मान्यतानुसार विश्वकी सृजनशक्तिका मूल सूर्य ही है। यूनानमें प्रचलित अपोलो (Apolo) तथा डेयाना (Diana) उपाख्यान सूर्योपासनाकी ओर संकेत करते हैं। अपने देशमें सौरोपासनाका अलग सम्प्रदाय ही रहा है। शैव-सूर्योपासनाका भी अलग सम्प्रदाय है। शैव सूर्योपासनाको अपनी उपासना-पद्धतिका अभिन्न अङ्ग मानते हैं। कालान्तरमें शैव-धर्मकी प्रधानताके कारण सौरोपासना गौण हो गयी। त्रेतायुगमें सूर्यवंशी-परम्परा भुवनभास्कर-जैसी देदीप्यमान रही। दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम सूर्यवंशके उल्लेखनीय नरेश थे। महारथी कर्ण सूर्य-पुत्र थे।

कोणार्क-जैसे सूर्य-मन्दिरोंमें एवं अन्यत्र सूर्य-प्रतिमाओंके रूपमें सूर्य-पूजाकी परम्परा अत्यन्त प्राचीनकालसे मिलती है। कहीं प्रतीक, कहीं मानव-रूपमें सूर्यका अङ्कन मिलता है। चक्रको प्रायः सूर्यके प्रतीकात्मकरूपमें व्यक्त किया गया है। सुदर्शन-जैसे चक्रसे कहीं-कहीं तेज किरणें प्रस्फुटित होती दिखायी गयी हैं। वैदिककालमें सूर्यको नारायण भी कहा जाता था। अनेक प्राचीनकालीन (Punch marked) आहतचिह्न-युक्त सिक्कोंपर चक्र सूर्यके प्रतीकरूपमें अङ्कित मिलता है। इसी श्रेणीके कुछ सिक्कों तथा ऐरणसे प्राप्त तीसरी शताब्दी ईसापूर्वके सिक्कोंपर सूर्यको कमलके प्रती[क] रूपमें अङ्कित किया गया है। सम्भवतः इस का[रण] सूर्यकी परवर्तीकालीन मानव-प्रतिमाओंके हाथमें कम[ल] पुष्प मिलता है। गर्गकुण्ड चोलपुरमें स्थित मन्दिर[के] निकट कमलके आकारकी विशाल प्रस्तर-प्रतिमा सूर्यक[ी] प्रतीकात्मक अभिव्यक्तिको पुष्ट करती है। १०वीं शताब्दीकी इस प्रतिमाके चारों ओर सूर्यसे सम्बद्ध ऊषा, प्रत्यूषा-जैसी देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ अङ्कित हैं। उद्दाहिक मित्र तथा भानुमित्रके सिक्कोंपर, तृतीय शताब्दी ई० पू०की कर्दमक जनजातिके सिक्कोंमें सूर्यका सोलर डिस्क अर्थात् वेदिका-जैसी पीठिकापर स्थित सूर्यका अङ्कन मिलता है। भीटा बसाढ़, राजघाटकी खुदाईमें प्राप्त सिक्कोंपर सूर्यके वृत्तको अग्निकुण्डके समीप पीठिकाके ऊपर अङ्कित दिखल[ाया] गया है।

मानवरूपमें सूर्यकी प्रतिमा पश्चिमी भारतके भाँ[जा] नामक स्थानमें प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त सूर्यक[ी] मानवमूर्तियाँ खण्डगिरिकी गुफा (उड़ीसा) तथा बोध गयामें भी प्राप्त हुई हैं। खण्डगिरिकी जैनी-गुफा तथा बौद्धस्तूपकी वेदिकापर प्राप्त प्रतिमाओंसे प्रतीत होता है कि सूर्योपासना-पद्धति न केवल ब्राह्मणोंमें प्रत्युत बौद्ध एवं जैन-सम्प्रदायोंमें भी प्रचलित थी। बोधगयामें प्राप्त प्रथम शताब्दी ई० पू०की सूर्य-प्रतिमामें सूर्यको एक

...का अङ्कन प्रस्तुत किया गया है, जिसे खींचनेवाले ... घोड़े चार युगोंके प्रतीक हैं। इसमें एक ही पहिया ... जिसे कालका प्रतीक माना गया है। इसके दोनों ओर ... विदेशी आकृतियाँ, सम्भवतः ऊषा एवं प्रत्यूषा ... प्रत्यञ्चापर चढ़ाये प्रदर्शित की गयी हैं। इन सूर्य-... प्रातः एवं सायंकाल दो पक्ष माना गया है। ... नीचे सम्भवतः अन्धकारके प्रतीकरूपमें दैत्याकार ... की प्रतिमा प्रस्तुत की गयी है, जिसे कुचलता, नष्ट ... हुआ रथ आगे बढ़ रहा है। चार घोड़ोंवाले ... आसीन सूर्य शक तथा यूनानी परम्परामें भी मिलता है। कुछ ऐसा ही चित्रण पटनामें प्राप्त मुहरोंपर भी ... है। पश्चिमी भारत (भौंना)में प्राप्त बोध-... की सूर्य-प्रतिमासे मिलती-जुलती मूर्ति भी समकालीन है। कानपुरके समीप लालभगतसे प्राप्त प्रथम अथवा ... शताब्दीकी सूर्य-प्रतिमामें अनेक परिवर्तन मिलते हैं। रथासीन सूर्यको खड़ेकी अपेक्षा बैठी मुद्रामें प्रस्तुत किया गया है। दायीं तथा बायीं ओर खड़ी स्त्रियाँ ... पर चढ़ाये धनुषकी अपेक्षा एक सूर्यभगवान्‌पर ... ताने है और दूसरी चँवर डुला रही है। तीन ... नीचे खड़ी दिखलायी गयी हैं। अर्थात् सूर्यकी पाँच ... प्रस्तुत की गयी हैं। घोड़े एक दैत्यके मस्तकसे ... हुए प्रस्तुत किये गये हैं। भुवनेश्वरके समीप उड़ीसामें ...-गुफाके खण्डगिरि-समूहमें अनन्त गुफासे प्रथम ... शताब्दीकी एक प्रतिमा मिली है। इन प्रतिमाओंमें ... सूर्यका रूप यूनानी देवता अतलान्तोंसे बहुत ... मिलता है। इनके अतिरिक्त एलोरा-गुफाकी ... मूर्ति, परापुरामें पाँचवीं शताब्दीमें स्थापित सूर्य-... मन्दिर, छठी शताब्दीमें मिहिरकुलके पंद्रहवें राजाद्वारा ... सूर्य-मन्दिर, ८वीं शताब्दीमें ललितादित्यके ... 'मार्तण्ड-प्रासाद', पालवंशीय शासनकालकी सूर्य-मूर्तियाँ, ...वीं शताब्दीमें अनेक सूर्य-मन्दिरोंकी स्थापनासे ...-पूजनके व्यापक प्रचलनका परिचय मिलता है।

कतिपय परवर्ती सूर्य-प्रतिमाओंपर विदेशी प्रभाव परिलक्षित होता है; जैसे भारीभरकम पहिने निरजिस-जैसे पैण्ट, बूट अथवा जूते धारण किये सूर्य-प्रतिमा दिखायी गयी है। कलकत्ता संग्रहालयमें एक ऐसी ही प्रतिमा सुरक्षित है। इन मूर्तियोंमें अपनी अलग-अलग विशेषताएँ मिलती हैं। मथुरामें प्राप्त कुषाणकालीन सूर्य-प्रतिमामें चार अश्वोंके रथपर आसीन सूर्यके एक हाथमें कमल है और दूसरे हाथमें तलवार लिये लम्बा कोट और आच्छन्नपद भास्करके दोनों स्कन्धोंसे गरुडकी भाँति एक-एक पंख लगे हैं। प्रथम तथा द्वितीय शताब्दीमें स्वदेशी तथा विदेशी तत्त्वोंका समन्वय अद्भुत है। मथुरासे ही प्राप्त कुछ अन्य सूर्य-प्रतिमामें सूर्यकी वेशभूषा शकों-जैसी है। शरीर आच्छन्न है और स्कन्धोंसे पंख नहीं लगे हैं, बायें हाथमें कमलकलिका और दायेंमें खड्ग है। यहाँ सूर्यरथमें चारके स्थानपर दो घोड़े दिखलाये गये हैं।

राजशाही बंगालके नियामतपुर, कुमारपुर, मध्यप्रदेश-के नागौदमें भूमरासे प्राप्त गुप्तकालीन सूर्य-प्रतिमाओंपर कुषाणकालकी भाँति विदेशी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। ये मूर्तियाँ रथपर सवार न होकर अलग खड़ी मुद्रामें हैं, साथमें क्रमशः दण्ड और कमल, लेखनी तथा दावात लिये, विदेशी-परिधानमें दण्डी एवं पिंगलकी प्रतिमाएँ अनुचररूपमें हैं। दण्डी तथा पिङ्गल लम्बे कोट (चोलक) एवं बूट (उपानह) पहिने हैं। मथुरासे प्राप्त गुप्तकालीन एक अन्य सूर्य-प्रतिमाके शरीरका मध्यभाग पुष्पमालासे अलङ्कृत है, जिसे सूर्य अपने दोनों हाथोंसे पकड़े हैं। गुप्तकालके पश्चात् सूर्यके साथ ऊषा, प्रत्यूषा, दण्डी, पिंगल, सारथी, अरुण सम्बद्ध हो गये, पैरोंसे बूट उतर गये और उन्हें छिपा दिया गया। गुप्तकालीन संगमरमरकी एक सूर्य-प्रतिमामें अरुणको सारथीरूपमें अङ्कित किया गया है। सूर्यके दोनों हाथोंमें कमल है। राजशाही संग्रहालयमें

[illegible] एवं कोणार्कसे प्राप्त कुषाणकालीन मूर्तियों [illegible] [illegible] अश्व, [illegible] प्रचुर [illegible] है। पूर्व [illegible] कोणार्क [illegible] पहिने हैं, जो [illegible] हैं, [illegible] दिखाये गये हैं तथा किरीट-मुकुट एवं अलङ्करण-युक्त सूर्यप्रतिमा अत्यन्त भव्य है। दोनों हाथोंमें [illegible] सूर्यके [illegible] है। चौबीस परगना (बंगाल) के काशीपुर नामक स्थानमें प्राप्त सूर्यप्रतिमा विशुद्ध भारतीय वेश-भूषामें है, परंतु इसमें [illegible] हैं, पहिया एक ही है और उसके आगे दो अश्व अङ्कित किये गये हैं, अरुण सारथिके रूपमें विराजमान हैं।

मध्ययुगमें सूर्यपूजाका गुजरात, राजस्थान, उत्तर-प्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसामें व्यापक प्रचलन था। सम्भवतः इस कारण गुजरातमें मुढेरा-मन्दिर, मध्यप्रदेशमें मधुराहोका चित्रगुप्त-मन्दिर तथा उड़ीसामें कोणार्क-मन्दिरोंका निर्माण हुआ। मध्ययुगीन अधिकांश सूर्य-प्रतिमाएँ खड़ी मुद्रामें मिलती हैं। एकाकी अथवा दो आठ्ठनियोंवाली साधारण सूर्य-प्रतिमाएँ बिहार और खिचिंगमें प्राप्त हुई हैं। उड़ीसाके खिचिंग नामक स्थानमें प्राप्त १२वीं शताब्दीकी प्रतिमामें अलङ्करण, किरीटयुक्त, उदीच्यवेशधारी सूर्य पद्मासनपर खड़े दिखलाये गये हैं। दोनों हाथोंमें कंधोंकी ऊँचाईतक पूर्णतः खिले कमल हैं। पीठिकामें सात घोड़ोंवाला एक पहियेवाला रथ अङ्कित है। मुस्कुराते सूर्यके साथ ऊषा, प्रत्युषा, दण्डी, पिंगल तथा सारथि अरुण भी दिखलाये गये हैं। खिचिंगमें ही प्राप्त अन्य प्रतिमामें कोई परिचारिका नहीं है। दक्षिणी भारतके उत्तरी अर्काट [illegible]के परशुरामेश्वर-मन्दिरकी सूर्य-प्रतिमामें [illegible] ताब्दीकी

[illegible] अश्व, [illegible] किये गये हैं।

[illegible] अङ्कन मिलता है। [illegible] सूर्यके [illegible] अङ्कित मिलता है। [illegible] परिचारिकाओंके अतिरिक्त सूर्यके साथ [illegible] दो [illegible] भी दिखायी पड़ती है। इनमें सूर्यके [illegible] निर्धारित की गयी है किन्तु अथवा उत्तर [illegible] सूर्य-प्रतिमामें [illegible] मूर्तियोंकी संख्या बढ़ती गयी। प्रकृति-अन्तकका [illegible] दाता होनेके कारण सूर्यके साथ प्रकृति-अन्तके [illegible] देवी-देवताओंकी प्रतिष्ठा होने लगी, जैसे कीर्तिमुख, बारह राशियाँ, आठ ग्रह (सूर्यको छोड़कर), छः ऋतुएँ, ग्यारह आदित्य, अष्टमातिकाएँ, गणेश, कार्तिकेय आदि। जूनागढ़ संग्रहालयमें सुरक्षित ऐसी एक सूर्यप्रतिमामें सूर्यके साथ अपनी पत्नियोंसहित दस आदित्य तथा शुक्र, शनि, राहु, केतु अङ्कित किये गये हैं। बंगालके राजौर नामक स्थानसे प्राप्त सूर्यप्रतिमामें स्थानीय प्रभामण्डलयुक्त सूर्यके साथ दण्डी, पिंगल, दोनों पत्नियोंके अतिरिक्त बारह आदित्यों, गन्धर्वों तथा कीर्तिमुखका अङ्कन हुआ है। सोनरंगसे प्राप्त सूर्यप्रतिमाके साथ दण्डी एवं पिङ्गल परस्पर प्रतिकूल दिशाओंकी ओर मुख किये, शर-संधान-मुद्रामें दो आकृतियों, अर्द्धवृत्ताकाररूपमें बारह आदित्यों, नीचे अष्टमातिकाओं, ऊपर सूर्यकी अर्चना-मुद्रामें षट् ऋतुओं, बाँयी ओर नव ग्रहो और एकदम ऊपर गणेश और कार्तिकेयका अङ्कन हुआ है।

क्रमशः सौरोपासनाका महत्त्व बढ़ते जानेके कारण सूर्योपासनाके साथ अन्य उपासना-पद्धतियों तथा

सम्प्रदायोंके समन्वयका प्रयास मिलता है। यह प्रवृत्ति मूर्तियोंमें विशेष परिलक्षित हुई है। ऐसी प्रतिमाओंमें एक भागमें एक तथा दूसरे भागमें अन्य देवी-देवताओं उनके विशेषका अङ्कन होता है। जैसे अर्धनारीश्वरकी मूर्ति अथवा विशिष्ट देवी-देवताकी अनेक भुजाएँ प्रदर्शित कर प्रत्येक भुजामें अलग-अलग देवी-देवताओंके प्रतीकस्वरूप अस्त्र-शस्त्र देकर एक ही प्रतिमामें अनेकके समन्वयका प्रयास मिलता है, जैसे सुदर्शनचक्र, त्रिशूल, कमल, क्रमशः विष्णु, शिव एवं सूर्यके प्रतीक माने जाते हैं। इस शैलीकी प्रेरणा सम्भवतः दुर्गा-सप्तशती अथवा भागवतपुराणमें महिषासुरमर्दिनीके शरीर-निर्माणकी कथासे मिली होगी। ऐसी मूर्तियोंमें त्रैलोक्येश्वर, सूर्यशिव, हरिहर, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य उल्लेखनीय हैं। बुन्देलखण्डके मराई नामक स्थानमें एक सूर्यप्रतिमाकी छः भुजाएँ दिखलायी गयी हैं, जिनमें कमल, त्रिशूल धारण किये हैं तथा अन्य हाथ अभय और वरदकी मुद्रामें हैं। पैरोंका आच्छन्न होना स्पष्टतः ब्रह्मा, विष्णु, महेशके उपासना-सम्प्रदायोंमें समन्वयका द्योतक है। राजशाही संग्रहालयमें सुरक्षित १२वीं शताब्दीकी मार्तण्डभैरवप्रतिमाके तीन मुख हैं। रौद्र, शान्त और वीरभाव प्रस्तुत करनेवाले दस हाथ हैं, जिनमें कमल, त्रिशूल, शक्ति, डमरू, खर्व, खड्ग आदि धारण किये हैं। खजुराहोके इलादेव-मन्दिरमें शिव, सूर्य तथा ब्रह्माकी एवं चिदम्बरम्-मन्दिरमें विष्णु, शिव तथा सूर्यकी प्रतिमाएँ मिलती हैं। खजुराहोकी संयुक्त मूर्तिकी आठ भुजाएँ हैं, दो भुजाओंमें पूर्ण विकसित कमल हैं। दो भुजाएँ टूटी हुई हैं। शेषमें त्रिशूल, अक्षमाल और कमण्डलु हैं।

आदिकालसे ही मानवजाति भारत ही क्या विश्वके कोने-कोनेमें जीवनदाता सूर्यके प्रति श्रद्धावनत रही है, चाहे कोणार्क-मन्दिर हो, चाहे अन्य कोई मन्दिर, सर्वत्र अपने आराध्यकी विभिन्न रूपोंमें कल्पना की गयी है, जबतक सृष्टिमें जीवन है, सूर्यकी अर्चना होती रहेगी।

गयाके तीर्थ

सूर्यकुण्ड—विष्णुपदके मन्दिरसे करीब १७५ गज उत्तर, ९५ गज लम्बी और ६० गज चौड़ी पत्थरसे घिरा हुआ सूर्यकुण्ड नामक एक सरोवर है। उसके चारों ओर नीचेतक सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। उसका उत्तरी भाग उदीची, मध्यका कनखल और दक्षिणका दक्षिण-मानस-तीर्थ कहा जाता है। तीनों तीर्थोंपर तीन वेदियोंमें अलग-अलग पिण्डदान होते हैं। सूर्यकुण्डके पश्चिम एक मन्दिरमें सूर्यनारायणकी चतुर्भुज-मूर्ति खड़ी है, जिसको दक्षिणार्क कहते हैं। × × × × ×

गायत्रीदेवी—विष्णुपदके मन्दिरसे लगभग आधा मील उत्तर, फल्गु नदीके किनारे गायत्रीघाट है। नीचेसे ऊपर घाटमें ६८ सीढ़ियाँ लगी हुई हैं। ग्यारह सीढ़ियाँ चढ़नेपर गायत्रीदेवीका मन्दिर बना है। यह मन्दिर और घाट सन् १८०० ई० में दौलतराम माधवजी सेंधियाके पोते सेठ खुदाहाल-चंदकी खर्चसे गयामें बनवाया था। गायत्री मन्दिरसे उत्तर लक्ष्मीनारायणका एक मन्दिर है। इसीके पास ब्रह्मनीघाटपर फलगेश्वर (फल्गीश्वर) शिवका मन्दिर है। दक्षिणकी ओर एक मन्दिरमें नारायणकी चतुर्भुज मूर्ति है जिसे लोग 'गयादित्य'के नामसे पुकारते हैं।

'भारतके तीर्थ'से साभार

पुराणोंमें सूर्यकी प्रतिमाका जो विधान वर्णित है उसमें रथकी भी चर्चा है। उदीच्य-वेशमें रथारूढ सूर्यकी प्रतिमाका विधान मत्स्यपुराण (२६० । १०४)में है।

उदीच्यवेश शकोंके द्वारा समादृत सूर्यका परिधान होनेसे इस नामसे पुकारा जाता है। ऐतिहासिक तथ्य है कि शकोंके उपास्यदेव सूर्यभगवान् थे—इसका लिये पुराणोंने शाकद्वीपमें उपास्य देवताके प्रसङ्गमें इशारा दिया है। उत्तरदेशके निवासियोंके द्वारा गृहीत नेके कारण ही यह वेश 'उदीच्य' कहलाता है। वेशका परिचायक पद्य मत्स्यका उक्त सन्दर्भ । सूर्यकी यह प्रतिमा अधिकतर खड़ी दिखलायी गी है। यह प्रतिमा मात्रामें कम मिलती है। के ऊपर चोगा (चोल) रहता है जो पूरे शरीरको रहता है। पैरोंमें बूट दिखलाये जाते हैं। कहीं-बूट न दिखलाकर तेजःपुञ्जके कारण नीचेके पैर लाये ही नहीं जाते। शरीरके ऊपर जनेऊ दिखलाया है जो कभी खड्गका भ्रम उत्पन्न करता है। यह शक राजाओंका विशिष्ट राजसी वेश था जिसका निदर्शन मथुरा-संग्रहालयमें रखी कनिष्ककी मूर्ति है। गुप्तपूर्वकालीन सूर्य-प्रतिमाएँ थोड़ी हैं। मथुरा-ही प्रमुख रूपसे सूर्यकी प्रतिमाएँ बनती थीं। यहाँ प्रायः स्थानक प्रदर्शित हुए हैं। गुप्तकालीन प्रतिमाओंमें ईरानी प्रभाव कम या बिल्कुल ही नहीं है। निदायतपुर, कुमारपुर (राजशाही बंगाल) और भूमराकी गुप्तकालीन सूर्य-प्रतिमाएँ शैली, भावविन्यास और आकृतिमें भारतीय हैं। भूमराकी प्रतिमामें सूर्य नहीं प्रदर्शित हैं। किंतु यह वेश तथा अन्य विशेषताओंमें कुषाणकालीन मथुराकी मूर्तिपरम्पराको प्रदर्शित करती है। दंडी और पिंगल भी दिखाये गये हैं जो ईरानी वेशमें हैं। सूर्यका मुख्य आयुध कमल (दोनों हाथोंमें) ही विशेषतया प्रदर्शित है। कहीं-कहीं सूर्य दोनों हाथोंसे अपने गलेमें पड़नी मालाको ही पकड़े हुए हैं।

मध्यकालीन सूर्यकी उपलब्ध प्रतिमाएँ दो प्रकार-की हैं—एक तो स्थानक सूर्यकी प्रतिमाएँ और दूसरी पद्मस्थ प्रतिमाएँ। खिचिंगसे मिली सूर्यकी एक प्रतिमा उषा और प्रत्यूषाके अतिरिक्त अन्य अनेक सूर्य-पत्नियों-से युक्त है; यथा राज्ञी, निक्षुभा, छाया, सुवर्चसा और महाश्वेता। बंगाल, बिहारसे मिली अनेक सूर्य-प्रतिमाएँ किरीट और प्रभावलीसे भी युक्त हैं।

पश्चिम भारत और दक्षिण भारतसे मिली सूर्य-प्रतिमाओंमें 'उदीच्यवेशीय' प्रभाव नहीं परिलक्षित होता। सूर्यके पैरोंमें न तो पदत्राण होता है और न सप्त अश्व या सारथी अरुण ही प्रदर्शित हुए हैं। कोट भी नहीं धारण करते और न उनके साथ उनके प्रतिहार ही दिखाये जाते हैं।

नेपालमें सूर्य-तीर्थ

नेपाल—पाशुपत-क्षेत्रके गुह्येश्वरी मन्दिरके समीप वाग्मती नदीके पूर्वी तटपर सूर्यघाट नामक थान है। वहाँ भगवान् सूर्यका मन्दिर है। प्राचीनकालीन भव्य मन्दिर तो अब नष्ट हो गया है, परंतु स्थानपर एक छोटा-सा दूसरा नवीन सूर्य मन्दिर बना है, जहाँ प्रतिसप्तमी तिथिको मेला लगता उका माहात्म्य यह है कि सूर्यघाटपर स्नानपूर्वक भगवान् सूर्यको अर्घ्य देकर पूजन करनेवालेके ग और चर्मरोग नष्ट हो जाते हैं।

सूर्यविनायक नामक एक और मूर्ति नेपालके भक्तपुरके निकट एक मन्दिरमें अवस्थित है। मूर्ति है। सिर किरणावलियोंसे आवृत है। हाथ शङ्ख, चक्र, गदा और अभय-मुद्रा-युक्त हैं। किन्हीं अपने कुष्ठ-रोग-निवृत्ति-हेतु इस मन्दिरकी स्थापना की थी। राजा नीरोग हो गये, अतः इसकी है।

प्रेषक—पं० श्रीसोमनाथजी तिमिरे व्यास

वैदिक सूर्यका महत्त्व और मन्दिर

(लेखक—श्रीशालिग्राम विशोकजी शर्मा, एम० बी० एल्०)

सूर्य प्रत्यक्ष देव हैं । पञ्चतत्त्वोंपर उनकी प्रभुसत्ता है । अन्न, ओषधि, आरोग्य, ऋतु-परिवर्तन सभी कुछ सूर्याश्रित हैं । पल, विपल, घड़ी, प्रहर, दिवस, रात्रि, सप्ताह, पक्ष, मास, वर्ष आदि समय-गणना भी सूर्यसे समुद्भूत हैं । 'प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ'-ज्योतिषशास्त्र प्रत्यक्ष है जिसके सूर्य और चन्द्र साक्षी हैं । दोनोंके उदयास्तकी सम्पूर्ण गति-विधि शुभाशुभ फलग्रहणकी दिशा, प्रमाण, समय आदिका विस्तृत विवेचन तथा प्रत्यक्ष उदाहरण देनेमें भारतीय ज्योतिषशास्त्र विश्वमें अपनी तुलना नहीं रखता । शास्त्रोंमें ग्रहणके समय भोजनादि वर्जित है । इसकी वैज्ञानिकताकी परीक्षा अमेरिकी खगोलवेत्ताओंने अनेक वर्ष पूर्व की थी, जिसका सचित्र वर्णन 'स्काई' नामक मासिक पत्रमें प्रकाशित हुआ था । एक व्यक्तिको ग्रहणके कुछ पूर्व भोजन दिया गया, बादमें एक्सरे-सदृश आविष्कृत पारदर्शक काँचद्वारा देखा गया कि ग्रहण लगते ही पाचन-क्रिया बंद हो गयी ! ग्रहणके मोक्षके बाद ही उदरकी जठराग्नि पुनः प्रज्वलित हुई । यह सब वर्णन बड़े-बड़े शीर्षकोंके साथ सचित्र छपा था ।

सूर्यग्रहणका सर्वप्रथम शोध अत्रि ऋषिने 'तुरीय यन्त्र'की सहायतासे किया था । आजके साधारण पञ्चाङ्ग-कर्ता भी ग्रहणका समय और फलादेश ऋषि-प्रणीत प्रणालियोंके अनुसार सहजमें कह देते हैं ।

पाश्चात्त्य वैज्ञानिक कोपरनिक्सने सूर्यको ब्रह्माण्डका मध्य बिन्दु माना है । यजुर्वेदके 'चक्षोः सूर्योऽजायत'-के अनुसार सूर्य भगवान्‌के नेत्र हैं, जो सबको समान दृष्टिसे देखते हैं ।

ऋग्वेदमें सूर्यका देवताओंमें महत्त्वपूर्ण स्थान है । हमारे देशमें वैदिक कालसे ही सूर्यकी उपासना विशेषरूपसे प्रचलित थी । प्रसिद्ध गायत्री-मन्त्र सूर्यपरक है । ऋग्वेद (७ । १२ । २)में, कौषीतकि ब्राह्मण-उपनिषद्-(२ । ७)में, आश्वलायन गृह्यसूत्रमें और तैत्तिरीय आरण्यकमें सूर्योपासनाके सूक्त, विधियाँ आदि दी हुई हैं । वेदमें 'विष्णु' सूर्यका पर्यायवाची शब्द है । छान्दोग्योपनिषद्-(१ । ५ । १-२)में सूर्यको प्रणव कहकर, उनकी ध्यान-साधनासे पुत्र-प्राप्तिका लाभ बताया है । कौषीतकि ऋषिने अपने पुत्रको एक समय बताया था कि 'मैंने इसी आदित्यका ध्यान इससे तू मेरा एक पुत्र हुआ । तू भी यदि सूर्य का उसी प्रकार ध्यान करेगा तो तुम्हें भी पुत्र जो सूर्यका ध्यान करते हुए प्रणवकी साधना कर उसे पुत्रकी प्राप्ति होती है; क्योंकि सूर्य ही प्रण सूर्य गमन करते हुए ओङ्कारका ही जप करते हैं ।

ब्रह्मवैवर्तपुराण सूर्यको परमात्माका प्रतिरूप हुए अन्य देवोंको सूर्यके अधीन मानता है । अपना इष्टदेव और सर्वोपरि देवता माननेवाले 'सौर' कहलाते हैं । विशुद्ध सौरकी संख्या आज भ नगण्य है । वे लोग गलेमें स्फटिकमाला और लाल रक्तचन्दनका तिलक तथा लाल फूलोंकी माला करते हैं । ये अष्टाक्षर मन्त्र* जपते हैं और रविवार संक्रान्तिको नमक नहीं खाते । सूर्यका दर्शन किये वे जल ग्रहण करना भी पाप समझते हैं । अतएव कालमें उन्हें बहुत कष्ट होता है । सम्भवतः इसी क उनकी संख्या नगण्य हो गयी है । सौर-मतावल सूर्य-मन्त्रादिके जपको ही मोक्षका साधन मानते हैं ।

* 'ॐ घृणिः सूर्य आदित्योम्'—यही अथर्वाङ्गिरसका अष्टाक्षर मन्त्र है । इसका महत्त्व सूर्योपनिषद् (पृ० ४) आ चुका है, वहाँ देखें ।

आज अनेक स्त्री-पुरुष शारीरिक व्याधियों एवं चर्म-रोगोंसे त्राण पानेके लिये सूर्य-व्रत तथा सूर्योपासना करते हैं। इससे अपूर्व लाभ होता है।

भारतमें पहले सूर्यकी उपासना मन्त्रोंद्वारा होती थी; किंतु जब मूर्ति-पूजाका चलन आरम्भ हुआ, तब सूर्यकी प्रतिमा भी यत्र-तत्र स्थापित हुई। उत्कल-प्रदेशमें सूर्योपासनाका विशेषरूपसे प्रचार था। कोणार्कमें एक विश्व-विख्यात सूर्य-मन्दिर है, जिसको 'कोणादित्य' कहते हैं। ब्रह्मपुराणके अट्ठाईसवें अध्यायमें इस तीर्थ तथा एतत्सम्बन्धी सूर्य-पूजाका वर्णन है। कोणार्कका मन्दिर भग्नावस्थामें होनेपर भी दर्शनीय है। अनेक विदेशी उसकी कारीगरी देखनेके उद्देश्यसे आते रहते हैं। इसी कारण भारत-सरकारके पर्यटक-विभागने यहाँ होटल बनवाया है, जिसमें वास-स्थानकी भी सुविधा है। कश्मीरमें, मार्तण्ड-मन्दिरके सूर्यकी मूर्तिका भग्नावशेष मिलता है। मार्तण्डका मन्दिर अमरनाथके मार्गपर है। पर्यटकोंके वर्णनके अनुसार मुलतान-(पाकिस्तान)-में बहुत विशाल सूर्य-मन्दिर था, जिसका आज नामो-निशान भी नहीं है।

विधर्मियोंद्वारा मन्दिरोंके विध्वंस कर देनेपर भी अनेक सूर्य-मन्दिर भारतके विभिन्न क्षेत्रोंमें हैं। अल्मोड़ा (उ० प्र०) का सूर्य-मन्दिर अपनी विशेषता रखता है। इस सूर्य-मन्दिरमें स्थापित सूर्यकी मूर्ति अद्भुत है। यहाँके सूर्य स्वस्थ नहीं हैं; किंतु पीड़ित हैं। पैरोंको देखनेसे ज्ञात होता है कि वे बूट पहने हुए हैं। सम्भवतः यह भारतीय मूर्तिकलाकी मूर्ति नहीं है। विशेषतः अल्मोड़ाके मन्दिरके अतिरिक्त इसका विशाल मन्दिर, गयाका दक्षिणार्क मन्दिर है, प्रसिद्ध धर्मारण्य क्षेत्रमें सिद्धपुर मदेरा तीर्थ है; का सूर्य-मन्दिर विशाल है। अयोध्या, सहनिया (जामगढ़), जयपुरके गलताजी, जोधपुरसे ३९ दूर ओसियाका सूर्यदेव-मन्दिर और देव (बिहार)का मन्दिर दर्शनीय है। कटारमल (अल्मोड़ा पहाड़की चोटीपर)के सूर्य-मन्दिरमें भगवान् सूर्यकी मूर्ति कमलके आसनपर है।

राजस्थान शिल्पकला और स्थापत्य-कलाके लिये प्रसिद्ध है। इस क्षेत्रमें रणकपुरका सूर्य-मन्दिर विख्यात है जो अपनी सादी कलाकी सुरुचिपूर्णताके लिये विख्यात है। खजुराहो (मध्य-प्रदेश)में ८५ मन्दिर हैं, जो कलाकी दृष्टिसे प्रसिद्ध हैं। इनमें सूर्य-मन्दिर अपने ढंगका अनूठा है। वह भी दर्शनीय है। खम्भात खाड़ीके पास नगामा नगरकामें एक सूर्य भगवान्का दर्शनीय मन्दिर है। इस स्थानपर ब्रह्माके तीन प्रसिद्ध मन्दिरोंमेंसे भी एक स्थापित है। दक्षिण भारतके कुम्भकोणममें शिव-मन्दिरके पास सूर्य-मन्दिर है।

सूर्यपूजा बहुत प्राचीन है। इसका एक प्रमाण मिश्रमें मिला एक बहुत प्राचीन मन्दिर है। फराउन बादशाह रसेमस द्वितीयने ३२०० वर्ष पूर्व स्थापित मन्दिरको एक पहाड़ीमें कटवाकर बनवाया था। मन्दिर ११० फुट ऊँचा है। मन्दिरके पास रसेमस द्वितीयकी ६५ फुट ऊँची मूर्ति है। मन्दिरमें सूर्यदेवताकी मूर्ति है।

इन तथ्योंसे ज्ञात होता है कि भारतमें सौरमतका प्रचार कभी खूब था, किंतु आज स्वतन्त्र सूर्योपासकोंका अभाव-सा है। फिर भी सूर्य-पूजनकी आज भारतमें काफी प्रतिष्ठा है। पञ्चदेवों और नवग्रहोंमें सूर्यका प्रमुख स्थान है। सभी स्मार्त उनकी पूजा करते हैं। कार्तिक शुक्ल षष्ठी और सप्तमीको लोग अनेक हिंदू स्त्रियाँ सूर्य-षष्ठी-व्रत और सूर्यकी पूजा करते हैं। प्रतीत होता है कि विष्णुकी पूजा परमात्माके रूपमें प्रचलित हो जानेपर स्वतन्त्ररूपसे सूर्यकी उपासना मन्द पड़ गयी।

भारतके अतिरिक्त जापानमें अब भी उनके सूर्यका मन्दिर है। अन्य देशोंमें भी सूर्योपासना तथा सूर्य-मन्दिरोंका विवरण प्राप्त होता है। अतः स्पष्ट है कि वैदिक सूर्यका महत्त्व सर्वत्र मान्य है।

भारतमें सूर्य-पूजा और सूर्य-मन्दिर

(लेखक—श्रीउमियाशंकरजी व्यास)

प्राचीन समयमें अग्नि, वरुण, इन्द्र और सूर्य-जैसे देवताओंकी प्रधानता थी, जिनके स्तोत्र वेदोंमें भरे पड़े हैं । विष्णु आदि देवोंका स्थान अपेक्षाकृत गौण था—यद्यपि विष्णु और सूर्यके स्वरूप एक ही माने गये हैं । बहुत समयके बाद आर्योंकी धर्मरुचिमें कुछ परिवर्तन होनेसे सूर्यका अन्य देवताओंके साथ विष्णुमें आविर्भावकी मान्यताका प्रचलन हुआ । ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी त्रिगुणात्मक—उद्भव, पालक और संहारकके स्वरूपकी पूजा व्यापक होनेसे सूर्य आदि देवोंकी पूजा गौण बन गयी । फिर भी त्रिकाल-संध्या सूर्योपासनाकी अङ्गस्वरूप बनी रही और आज भी है ।

गुप्तकालमें और उसके बाद बारहवीं शताब्दीतक भारतके विभिन्न भागोंमें विशेषतः पश्चिम-भारतमें सूर्यकी पूजा प्रचलित थी; किंतु विष्णु और शिवमें सारे वैदिक देवोंका अन्तर्भाव होनेके कारण अब केवल संध्योपासनामें रह गयी । ईसवी सन्‌की चौथी या पाँचवीं शताब्दीमें भारतमें हूण, शक आदि विदेशी जातियाँ प्रविष्ट हुईं । उस समयकी विदेशी प्रजाएँ भारतकी प्रजाके साथ मिलजुल गयीं । उन्होंने भारतके चार वर्णोंमेंसे अपने अनुकूल वर्ण, शैव और वैष्णव तथा बौद्धमेंसे कोई एक मनचाहा धर्म स्वीकार कर लिया । दोनों जातियाँ भारतीय जनतामें घुल-मिल गयीं । अनेक रीति-रिवाजोंका विनिमय हुआ । विदेशियोंके कुछ तत्त्वोंको स्थानीय जनताने ग्रहण किया । चौथी और पाँचवीं शताब्दीमें भारतमें सूर्यपूजा बहुत प्रचलित हुई । वैदिक कालके पूर्वजोंमें सूर्यपूजा प्रचलित थी, अतः विदेशियोंकी सूर्य-पूजाको ग्रहण करनेमें दूसरे धर्मका अनुभव नहीं हुआ; फिर भी सूर्यपूजाका विदेशीपन छिपा नहीं रह सका । सातवीं शताब्दीमें ईरानसे भागकर आयी हुई पारसी जाति अग्नि, सूर्य और वरुणको माननेवाली है । दूधमें शक्करकी भाँति इस देशमें मिल गयी ।

प्राचीन वैदिक कालमें छः ऋतुओंमें छः आदित्यदेव माने जाते थे, जो सूर्य कहे जाते हैं । कहीं-कहीं सात देवोंके भी नाम मिलते हैं । पर बादमें बारह महीनोंके बारह आदित्य (सूर्य) हुए । जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—(१) सुधाता, (२) मित्र, (३) अर्यमा, (४) रुद्र, (५) वरुण, (६) सूर्य, (७) भर्ग, (या भग) (८) विवस्वान् (विश्वरूप), (९) पूषा, (१०) सविता, (११) त्वष्टा और (१२) विष्णु । सूर्यदेवके विषयमें अनेक वैदिक और पौराणिक कथाएँ हैं।

शिल्पग्रन्थोंमें सूर्यके नाम और स्वरूप दिये गये हैं । नामके प्रकरणसूत्रमें संतान, अपराजितपृच्छा और जय-प्रपितिका उल्लेख है, "देवतामूर्तिप्रकारानम्" आदिमें सूर्यके बारह स्वरूप बताये गये हैं । उनमेंसे दस स्वरूपोंको हाथवाला बताया गया है । नवाँ पूषा और दसवाँ विष्णुस्वरूप हैं । ये दो-दो हाथवाले बताये गये हैं।

प्रत्येक स्वरूपके ऊपरवाले दो हाथोंमें कमल और नीचेके हाथोंमें अलग-अलग दो-दो आयुध कहे गये हैं । किसीमें सोमरसपात्र, शूल, चक्र, गदा, माला, वज्रपाश, कमण्डलु, सुदर्शनचक्र, स्रुवा (होमका पात्र) है । इस तरह अलग-अलग दो-दो आयुध नीचेके दो-दो हाथोंमें देनेको कहा गया है । इन आयुधोंसे कहा जा सकता है कि सूर्यका विष्णुमें आविर्भाव हुआ ।

विश्वकर्माप्रणीत 'दीपार्णव' नामक शिल्पग्रन्थमें बारहके स्थानमें तेरह सूर्यके नाम और स्वरूप दिये गये हैं । वे सभी दो-दो हाथोंके कहे गये हैं । उनके

दो-दो हाथोंके आयुधोंमें शङ्ख, कमल, वज्रदण्ड, पद्मदण्ड, शतदल (हरी सब्जियाँ), फलदण्ड और चक्र देनेको कहा गया है। उनके तेरह नाम इस प्रकार हैं—(१) आदित्यदेव, (२) रवि, (३) गौतम, (४) भानुमान्, (५) शान्ति, (६) दिवाकर, (७) धूम्रकेतु, (८) सम्भव, (९) भास्कर, (१०) सूर्यदेव, (११) सन्तुष्ट, (१२) सुवर्णकेतु और (१३) मार्तण्ड। जैसे ये तेरह नाम हैं, वैसे ही उनके स्वरूप भी कहे गये हैं।

इस प्रकारकी मूर्तियाँ सूर्यमन्दिरोंमें पायी जाती हैं। ये मूर्तियाँ बैठी हुई या खड़ी—दोनों तरहकी देखनेमें आती हैं। सूर्यका सात मुँहवाले एक घोड़ेको या सात घोड़ोंके रथको वाहन कहा गया है।

छठी शताब्दीके विद्वान् वराहमिहिरने बृहत्संहिता नामक अतिविद्वत्तापूर्ण ग्रन्थकी रचना की है। उस (६०–१९) में वे लिखते हैं—मग ब्राह्मण सूर्यके पुजारी हैं। सूर्यमूर्तिका वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—सूर्यकी मूर्तिमें नाक, कान, जाँघ, पिंडली, गाल और छाती आदि ऊँचे होने चाहिये। उसका पहनावा उत्तर-प्रदेशके लोगोंके-जैसा होना चाहिये। हाथोंमें कमल, छातीपर माला, कानोंमें कुण्डल, कमर खुली होनी चाहिये। मुखकी आकृति सफेद कमलके गर्भ-जैसी सुन्दर और हँसता हुआ शान्त चेहरा, मस्तकपर रत्नजटित मुकुट होना चाहिये। इस प्रकारकी मूर्ति निर्माताको सुख देती है।

इसीसे मिलती-जुलती सूर्यमूर्तिका वर्णन शुक्र-नीतिशास्त्रमें दिया गया है। प्राचीनकालकी मिली हुई सूर्यमूर्तियाँ पैरोंमें होलबूट पहनी हुई-जैसी दिखायी देती हैं। इस कारण उनके पैर या पैरकी अङ्गुलियाँ दिखायी नहीं देतीं। होलबूटकी लकीरों-जैसी कटी हुई डिजाइन रहती है। पैरोंकी अङ्गुलियाँ दिखाती हुई कुछ मूर्तियाँ प्रभास-वेरावलमें मेरे देखनेमें आयी हैं; लेकिन वे पिछले समयकी हो सकती हैं। इस तरहके जूते पहनी हुई मूर्तियाँ उनका विदेशीपन दिखा देती हैं। यहाँ अन्य किसी देवके पैरोंमें जूते नहीं रहते।

सूर्यप्रासादमें प्रमुख स्थानपर सूर्यकी मूर्ति परिकरवाली स्थापित की जाती है। इसी तरह अन्य देवोंके लिये भी कहा गया है। मुख्य देवके पर्याय-स्वरूपोंको मूल मूर्तिके चारों ओर खुदे फ्रेममें होनेपर परिकर कहा जाता है। विष्णु-मूर्तिके चारों ओर दशावतारोंकी छोटी-छोटी खुदी हुई प्राचीन मूर्तियाँ देखनेमें आती हैं। उसी ओर सूर्य-मूर्तिके चारों ओर नवग्रहोंके स्वरूप या सूर्यके अन्य स्वरूप गढ़े जाते हैं। कुछ मूर्तिके परिकरमें नीचेकी ओर खुदे या बैठे हुए मूर्ति गढ़ानेवाले यजमान और यजमानपत्नीकी मूर्तियाँ भी बनायी हुई रहती हैं। वर्तमान कालमें प्रधान पूजनीय मूर्तियोंसे परिकरकी प्रथा हटा दी गयी है। उत्तर-भारतमें अलग-अलग विभागोंमें चौथी शताब्दीसे बारहवीं शताब्दीतक सूर्य-मन्दिर बनते रहे—यह बात लिखित प्रमाणोंसे या अवशेषोंके आधारसे कही जा सकती है।

(१) ई० सन् ४७३में दशपुर (मालवाका दशोर) में रेशम बुननेवाले सङ्घने एक सूर्य-मन्दिर बनवाया था। दशोर मालवामें एक शिलालेख है, जिसमें उक्त मन्दिरका जीर्णोद्धार करनेवाला शिल्पकार गुजरातसे दशपुर गया था—ऐसा लिखित है।

(२) राजतरङ्गिणीमें उल्लेख है कि कश्मीरके ललितादित्य मुक्तापीडने ई० सन्की आठवीं शताब्दीमें प्रख्यात मार्तण्ड-(सूर्य)का मन्दिर बनवाया था। उसका भग्नावशेष अभीतक स्पष्ट है।

(३) ह्वेन सॉंगने अपने प्रवास-वर्णनमें सातवीं शताब्दीमें, मुल्तानमें सोनेकी मूर्तिवाला प्रख्यात सूर्य-मन्दिर देखनेका उल्लेख किया है। ग्यारहवीं शताब्दीमें

चमड़ा ओढ़े हुए लकड़ीकी मूर्तिवाला मन्दिर गीझनीके विद्वान् अल्बेरूनीने देखा था। अल्बेरूनीने अपने 'भारत-भ्रमण' नामक प्रवास-वर्णनमें लिखा है कि—'उस मन्दिरके पुजारी 'मग' ब्राह्मण हैं।' मुल्तानके सूर्य-मन्दिरमें सोनेकी सूर्य-मूर्ति विधर्मियोंसे भयभीत होकर पुजारियों-द्वारा काष्ठमें परिवर्तित करायी गयी होगी।

(४) ह्वेनसाँगने कन्नौजमें एक सूर्य-मन्दिर देखनेकी चर्चा की है।

(५-६-७) एलापुर (इलोरा) भाजा और खण्डगिरिकी गुफाओंमें भव्य सूर्य-मूर्तियाँ गढ़ी गयी हैं। चौथी और पाँचवीं शताब्दीसे बारहवीं शताब्दीतक भारतमें सूर्यपूजाका अधिक प्रचार था।

(८) प्राचीन कालमें गुजरातपर शासन करनेवाले पूर्व राजस्थानके वर्तमान भिनमाल स्थानमें एक अति प्राचीन कालीन सूर्य-मन्दिरका अवशेष अस्तित्वमें है।

मन्दिरकी स्थिति सम्भवतः नवीं शतीके पूर्वकी सकती है; लेकिन जीर्णोद्धारसे उसका असली स्वरूप बदल गया है। फिर भी कहीं-कहीं मूलस्वरूप दिखाई देता है। वह उसकी प्राचीनताकी साक्षी देता है।

(१२) उसी ओर ग्यारहवीं शताब्दीमें बना हुआ उत्तर गुजरातका जगविख्यात मोढेराका सूर्य-मन्दिर मोढ बनिये और मोढ वैष्णवोंके इष्टदेवका स्थान माना जाता है। यह मन्दिर साधारण प्रकारका भव्ययुक्त विशाल मन्दिर है। गर्भगृहके चारों ओर अंदर प्रदक्षिणा-मार्ग है। उसके आगे गूढमण्डप है। उसके आगे एक खुला नृत्यमण्डप है। उसके आगे प्रतोलीके दो स्तम्भ वगैर तोरणके खड़े हैं। तोरण नीचे गिरा हुआ है। आगे सूर्यकुण्ड शालोंके विभियुक्त है। उसमें अनेक देव-देवियोंकी मूर्तियाँ आलोंमें रखी हैं। जहाँ सूर्य-मन्दिर होता है वहाँ सूर्यकुण्ड होता ही है।

...भियुक्त सिंहासन है। मन्दिरकी अनेक सुन्दर मूर्तियाँ श्याम पाषाणकी परिकरवाली छः फुटसे भी अधिक ऊँची हैं। ये किसी मन्दिरमें प्रधानपदपर स्थापित करने योग्य हैं। मन्दिरको रथका स्वरूप दिया गया है। उसके पहियोंका व्यास पौने दस फुटका है। मन्दिरका पीठ के सोलह फुटका है।

भारतके पूर्वमें कोणार्क और पश्चिममें मोढेराके मन्दिर प्रसिद्ध माने जाते हैं। उसी तरह उत्तरमें कश्मीरका मार्तण्ड—सूर्य-मन्दिर उस समय जगद्विख्यात रहा होगा। ...यसे विधर्मियोंके हाथों वह प्रायः नष्ट हो गया ... वहाँके स्थापत्य-विधर्मियोंने अभ्यासकी दृष्टिसे उसे देखनेलायक नहीं रहने दिया है। कश्मीरप्रदेशके मन्दिरोंकी रचना उत्तरभारतके अन्य मन्दिरोंसे अलग है।

(१४) राजस्थान, जोधपुर और मेवाड़की सरहदपर जैनोंके राणकपुरके पास जैन-मन्दिरोंका समूह है। वहाँ उसके दक्षिणमें अष्टभद्रयुक्त सुन्दर कलात्मक सूर्यमन्दिर अखण्डित है। बहुत समय पूर्वसे देखभालके अभावमें और अपूज्य रहनेसे यह मन्दिर जर्जरित हो गया है। शिखर अष्टभद्री और मण्डप भी अखण्डित है। उसमें सूर्यकी अनेक मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। कक्षासनके स्थानपर खड़े हुए घोड़े खुदे हुए हैं। अखण्डित मन्दिरके जीर्णोद्धारकी आवश्यकता है। अष्टांश-प्रासादका विधान शिल्पमें है; लेकिन व्यवहारमें यह क्वचित् ही देखनेको मिलता है।

(१५) प्रभासक्षेत्र(सोमनाथ)में छोटे-बड़े बहुत सूर्यमन्दिर रहे होंगे, जैसा उनके भग्नावशेषों और द्वारपर मिले बिखरे हुए अन्तरङ्गों-अवशेषोंसे जाना जा सकता है। वर्तमान प्रभासमें दो बड़े सूर्यमन्दिर जीर्ण हालतमें खड़े हैं। त्रिवेणीपर सूर्यमन्दिरके शिखरका जीर्णोद्धार किसी अज्ञान कारीगरके हाथमें होनेके कारण उसके ऊपरका भाग विकृत हो गया है। कुशल शिल्पियोंके द्वारा जीर्णोद्धार करानेसे ही असली आकृति-जैसा देखा है। त्रिवेणी-सङ्गमपरका सूर्यमन्दिर पूर्वाभिमुख है। उसका गर्भगृह बिना मूर्तिके खाली है। मन्दिर भ्रमयुक्त सांधार प्रकारके प्रासादका है। उसकी पीठकी ग्रासपट्टीके स्थानपर अश्व बनाया गया है। उसकी जाँघमें देवरूप अल्पसंख्यामें हैं; लेकिन मन्दिर बहुत बड़ा है।

(१६) प्रभासके पूर्व ईशानमें शीतला नामसे पहचाने जानेवाले स्थानमें अरण्य-जैसे भागमें हिरण्य नदीके किनारे रम्य स्थानपर भ्रमयुक्त सांधार प्रासादकी शैली पर बना हुआ सूर्यमन्दिर है। उसका शिखर और मण्डपके ऊपरका भाग नष्टप्राय हो गया है। यह मन्दिर सुन्दर कलात्मक है। लगता है कि यह मन्दिर दक्षिणाभिमुख हो। गर्भगृहमें मूर्ति नहीं है। विशेषतः सूर्य-मन्दिर पूर्वाभिमुख होते हैं। उसकी पीठिकामें (पट्टीमें) ऊपरके भागमें ग्रासपट्टीकी जगह अश्व बने हुए हैं।

प्रभासक्षेत्रमें पुराणोंके प्रमाणोंसे कहा जा सकता है कि यहाँ सूर्यके बारह बड़े मन्दिर थे। उनमेंसे सिर्फ दो बड़े प्रासाद खण्डित दशामें खड़े हैं। ये दोनों मन्दिर बारहवीं शताब्दीके आगेके-जैसे नहीं लगते।

देवताओंके स्थपति विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञाका पाणिग्रहण सूर्यके साथ हुआ था; किंतु वह सूर्यका तेज न सह सकनेसे प्रभासमें आने गायके रूपमें चली आयी। सूर्य संज्ञाको खोजते हुए प्रभास आये; पर इसके पूर्व संज्ञा घोड़ीके रूपमें विचरने लगी। सूर्यको यह मालूम होनेपर वह अश्व-रूप लेकर उसके साथ रहे। घोड़ीके स्वरूपकी संज्ञासे अश्विनीकुमारोंका जन्म हुआ। सूर्य अपना तेज ... सहा न जानेके कारण अपनी ... बारह कलाएँ प्रभासोंमें ... थी। उनके ही ये बारह सूर्यमन्दिर प्रतिनिधिस्वरूप हैं।

सूर्यकी पत्नी ... उत्पन्न ... । इसे पुत्र देनेवाली देवी ... ...

उसकी पूजा करते हैं। स्त्रीके (प्रथम गर्भधारणा) सीमन्तके समय रन्नादेवीके प्राकृत स्वरूप गंदल माताके नामसे उसका छोटा मण्डप बनाकर उसमें छिले हुए नारियलमें उसकी मुखाकृतिकी कल्पना करके उसकी पूजा करते हैं। हिंदू-कुटुम्बोंमें तो सीमन्तके समय आठ दिनतक घरमें प्रतिदिन रातको उत्सव मनाया जाता है। स्त्रियाँ रावल माताके गीत और गरबा गाती हैं। यहाँ सूर्य एवं संज्ञा घोड़ा-घोड़ी-रूपके प्रतीकमें ही स्थित हैं। प्रतिदिन दर्शनार्थियोंको बतासे, खारीक या पाँच-पाँच सुपारियाँ बाँटी जाती हैं। सात दिनोंमें उत्सव पूरा होनेके बाद आखिरी दिन गंदल माताका और सूर्यदेवका छोटा मण्डप (प्रतिमायुक्त) सीमन्तिनी स्त्री और उसका तरुण पति सिरपर रखकर गाते-बजाते गाँवमें घुमाते हैं। पहले तरुण पति केवल सगुनके लिये सिरपर मण्डप लेकर एक चौकतक चलता है, बादमें स्त्रियाँ वह मण्डप आनन्दसे अपने सिरपर लेकर गंदल माताके गीत उमंगसे गाती हुई घूमती हैं। जहाँ चौक आता है, वहाँ उत्साहमें आकर मण्डपके साथ गरबा गाती हुई घूमती हैं। वह दृश्य अनोखा लगता है। लोगोंकी उत्कृष्ट धर्मभावना दिखती है। यह प्रथा अन्य स्थानोंपर भी मैंने देखी है। सोमपुराओंमें विशिष्ट खानदानोंमें सीमन्तके समय एक या तीन दिन राँदल माताकी स्थापना की जाती है। गोदमें खेलनेवाला 'दे रन्ना दे' जैसा गाया जाता है।

संज्ञा-रन्नादेवीकी सुन्दर मूर्तियाँ सूर्यके-जैसी खड़ी ऊपरके दो हाथोंमें कमलदण्डवाली प्रभासपाटणमें स्थापित हैं, वे दर्शन करने योग्य हैं।

उत्तर भारतमें जगह-जगहपर सूर्य-मन्दिर अचर्चित स्थानोंपर भी होंगे, जिनकी प्रामाणिकता अपने पास नहीं है। किंतु ऐतिहासिक प्रमाण और वर्तमानमें खड़े हुए जीर्ण मन्दिर ही प्रमाण हैं।

दक्षिण भारतके द्रविडदेशमें सम्भवतः सूर्यपूजा उतनी प्रचलित नहीं होगी। उसके मुख्य मन्दिर होनेकी कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। वहाँ लिंगायत, सुमङ्गल विष्णु, शैव, देवी आदि अन्य देव-देवियोंके भव्य मन्दि पांड्य, चोल-जैसे बड़े राज्योंने अपने अक्षय राज्यभण्डा खाली करके बनवाये हैं। वे मन्दिर एक छोटे शहर जितने विशाल विस्तारमें फैले हुए और भव्य होते हैं। द्रविड प्रदेशोंमें मुस्लिमोंका पद-सञ्चार अल्प हुआ है, इसलिये वहाँके भव्य मन्दिर अभी भी अखण्डित रह सके हैं।

सूर्यनारायण-मन्दिर, मल्तगा

मल्तगा (बेलगाँव, कर्नाटक) में प्रायः ४०० वर्ष पुरानी सूर्यनारायणकी भव्य मूर्ति है जो २ फुट ऊँची है। मन्दिरमें प्रतिदिन सूर्य-सूक्तका नियमित पाठ होता है। हनुमज्जयन्तीके दिन सूर्योदयके समय हनुमान्‌जीकी पालकी सूर्यनारायणके मन्दिरके सामने आती है। सूर्य-मूर्तिके दाहिने बाजूमें 'जय' और बायेंमें 'विजय' की प्रतिमाएँ हैं। मूर्तिके नीचे (पीठपर) मध्यमें सूर्यदेवजीका मुख और दोनों बाजुओंको मिलाकर सात अश्वोंके मुख हैं।

प्रेषक—श्रीआदिनाथजी मुलकर्णी

भारतीय पुरातत्त्वमें सूर्य

(लेखक—प्रोफेसर श्रीकृष्णदत्तजी वाजपेयी)

सूर्यकी मान्यता प्राचीन विश्वके प्रायः सभी सभ्य देशोंमें रही है। वे आदिम जन भी किसी-न-किसी रूपमें सूर्यके प्रति आस्था या आदरका भाव रखते थे।

सूर्य न केवल प्रकाशदाता एवं जीवन-रक्षक हैं, अपितु वे प्रकृतिके नियामक तत्त्वोंके सर्जक भी हैं। वे शक्ति, आभा तथा आरोग्यप्रदायक लक्षणोंके प्रत्यक्ष रूप हैं। मानव तथा अन्य प्राणियोंके साथ सम्पूर्ण वनस्पति-जगत्‌के वे पोषक एवं संवर्धक हैं। सूर्यके इन्हीं निर्विवाद गुणोंके कारण उनकी मान्यता संसारके अत्यन्त प्राचीन देशों—मिश्र, मेसोपोटामिया, भारत, चीन, ईरान आदिमें मिलती है। इन देशोंके साहित्यिक तथा पुरातत्त्वीय प्रमाण इसकी पुष्टि करते हैं। सूर्यकी मान्यता एवं पूजाके विविध प्रकार आजतक प्राचीन देशोंके उपलब्ध साहित्य, मन्दिरों, मूर्तियों तथा लोक-कलाके अनेक रूपोंमें देखे जा सकते हैं।

भारतीय प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेदमें सूर्यके महत्त्वके असंख्यक उल्लेख हैं। इसी प्रकार अन्य वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत, पुराण-ग्रन्थ तथा परवर्ती संस्कृत-प्राकृत आदिके साहित्यमें सूर्यके प्रति सम्मानकी गहरी भावना द्रष्टव्य है। सूर्यकी विविध संज्ञाएँ—सविता, आदित्य, विवस्वान्, भानु, प्रभाकर आदि प्रसिद्ध हैं। सूर्योदयके पहलेसे लेकर सूर्यास्तके बादतक भानुके जो विविध रूप होते हैं, उनके रोचक वर्णन कवियों, नाटककारों, कथाकारों आदिने किये। अनेक वर्णनोंमें उत्कृष्ट काव्य-छटा मिलती है।

भारतमें सूर्यके प्रति विशेष सम्मानका भाव इस बातसे देखा जा सकता है कि उन्हें तत्त्व-ज्ञानका स्रोत माना गया। इस कल्याणकारी ज्ञानको विवस्वान्‌ (सूर्य) ने मनुको दिया और मनुने उसे अपनी समस्त संततिमें इक्ष्वाकुद्वारा वितरित किया। भारतके प्रमुखतम राजवंश (सूर्यवंश) का उद्भव भी सूर्यसे माना गया। उनके वंशमें ही मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम प्रकट हुए, जिन्होंने आर्य-संस्कृतिकी रक्षाके साथ उसके व्यापक प्रचारका श्रेयस्कर कार्य सम्पन्न किया।

सूर्यके प्रभावशाली स्वरूप तथा उनके प्रति प्रतिष्ठाका निदर्शन भारतीय पुरातत्त्वमें प्रचुर मात्रामें उपलब्ध है। प्राचीन अभिलेखों, मुद्राओं, मन्दिरों, मूर्तियों आदिके देखनेसे यह बात प्रमाणित होती है। भारतीय सूर्योपासना इतनी प्रबल हुई कि उसका प्रचार इस देशके बाहर अफगानिस्तान, नेपाल, बर्मा, श्याम, कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा आदि देशोंमें हुआ। इन देशोंमें सुरक्षित मूर्ति-अवशेष आज भी इसका उद्घोष करते हैं। सूर्यके नामपर सूर्यवर्मा आदि अनेक नाम विदेशोंमें प्रचलित हुए।

ईरानके साथ भारतका सम्बन्ध बहुत पुराना है। इन दोनों देशोंने सूर्यपूजाको भी व्यापक रूपमें अपनाया। ईरानके सूर्य-पूजक पुजारियोंका आगमन ईसवी पूर्व प्रथम शतीसे विशेष रूपमें हुआ। हमारे यहाँ उन्हें अच्छा सम्मान मिला। उनके प्रयाससे उत्तर-पश्चिम भारतके अनेक स्थानोंपर सूर्यमन्दिरों और प्रतिमाओंका निर्माण हुआ। ईरानमें सूर्यकी प्रतिमाएँ प्रभावशाली शासकके रूपमें बनायी जाती थीं। उनमें शिरस्त्राण, कवच, अधोवस्त्र (सुथना) के साथ उपानह (जूते) भी पहनाये जाते थे। ईरान तथा मध्य एशियामें अधिक सर्दीके कारण यह वेश-भूषा आवश्यक थी। पेशावर, तक्षशिला, मथुरा आदिमें सूर्यकी ऐसी अनेक पाषाण-मूर्तियाँ मिली हैं, जिनमें सूर्यदेवको खड़े या बैठे हुए तथा उक्त वेश-भूषामें दिखाया गया है। उत्तरी क्षेत्रों (ईरान तथा मध्य एशिया) में

यह वेश बहुत प्रचलित था। इसीसे भारतमें उसे 'उदीच्यवेश'की संज्ञा दी गयी। इस प्रकारकी प्रतिमाओंमें सूर्यको दो या चार घोड़ोंके रथपर आसीन दिखाया गया है। बादमें (मूर्तियोंमें) घोड़ोंकी संख्या सात हो गयी, जो सूर्य-किरणोंके सात मुख्य रंगोंके द्योतक हैं।

गंधार क्षेत्र तथा मथुरासे प्राप्त सूर्यकी उदीच्यवेशवाली प्रतिमाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें सूर्यके एक हाथमें प्रायः कटार तथा दूसरे हाथमें सनाल कमल मिलता है। इन मूर्तियोंका निर्माण-काल ईसवी प्रथमसे चौथी शतीतक है।

गुप्तकाल-(ई० चौथीसे छठी शतीतक)में सूर्यका महत्त्व बहुत बढ़ा। वे प्रमुख पञ्चदेवोंमेंसे एक हुए। अन्य चार देवता और थे—विष्णु, शिव, देवी तथा गणेश। 'पञ्चदेवोपासना'ने भारतीय धर्म और कलाको नयी दिशाएँ प्रदान कीं। अब इन पाँचों मन्दिरों और उनकी प्रतिमाओंका देशके अनेक भागोंमें बड़े रूपमें निर्माण होने लगा।

उत्तर गुप्त-युगसे उदीच्यवेशके अतिरिक्त सूर्यकी ऐसी बहुसंख्यक प्रतिमाएँ बनने लगीं जो अन्य भारतीय देवोंके ढंगकी हैं। उनमें सूर्यको भारतीय वेश-भूषामें दिखाया जाता था। उन्हें धोती तथा उत्तरीय पहने और दोनों हाथोंमें सनाल कमल धारण किये हुए प्रदर्शित किया जाने लगा। उनके रथमें अब प्रायः सात अश्व मिलते हैं तथा उनका सारथि अरुण भी दिखाया जाने लगा। धनुष-बाण धारण की हुई, अन्धकारका [illegible] करती हुई, सूर्यके एक ओर ऊषा और दूसरी ओर प्रत्यूषा दिखायी जाती हैं। कुछ प्रतिमाओंपर सूर्यकी पत्नियों और उनके मुख्य दो गणों—दण्ड (दण्डी) तथा पिङ्गलको भी प्रदर्शित किया है। सूर्यको [illegible] अनेक प्रतिमाओंमें सूर्यको [illegible] तेजस्वीरूपमें [illegible] दिखाया गया है। वे प्रतिमाएँ अनेक अलङ्करणों, परिकरों आदिसे सम्पन्न हैं।

उत्तर तथा दक्षिण भारतके विभिन्न प्राचीन स्थलोंपर सूर्यके मन्दिर थे। प्रारम्भिक मन्दिरोंमें [illegible] (मुल्तान), मथुरा, इन्द्रपुर (इंदौर), [illegible] (मंदसौर, मध्यप्रदेश) के सूर्य-प्रासाद उल्लेखनीय हैं। मध्यकालीन मन्दिरोंमें मदखेरा (जि० टीकमगढ़, म० प्र०), औसिया (जोधपुर) तथा कोणार्क (उड़ीसा) के मन्दिर विशेष प्रसिद्ध हैं। इनमें कोणार्क-मन्दिर सबसे विशाल है। सूर्य-मन्दिरोंमें उनकी पूज्य प्रतिमा गर्भगृहमें प्रतिष्ठापित की जाती थी और उसे विष्णु, शिव आदिके मन्दिरों-जैसा अलङ्कृत किया जाता था, मन्दिरोंमें दीप-ज्वलन, पूजा-अर्चाकी सम्यक् व्यवस्था होती थी।

मध्ययुगसे पहले सूर्यकी मूर्तियाँ प्रायः स[illegible] रूपमें ही मिली हैं। बादमें स्वतन्त्र प्रतिमाओंके [illegible] उन्हें नवग्रहवाले शिलापट्टोंपर भी अङ्कित किया गया। नवग्रहोंमें प्रथम सूर्य हैं, अतः उनका अङ्कन सबसे पहले बैठेरूपमें पहले मिलता है, बादमें अन्य ग्रहोंका आकारके अतिरिक्त भारतीय कलामें उनके प्रति[illegible] रूपमें भी मिलता है। सूर्यको विष्णु तथा शिवके साथ प्रदर्शित करनेकी भावना भी विकसित हुई। विष्णु, शिव तथा सूर्यकी एक साथ संश्लिष्ट प्रतिमाएँ बनायी जाने लगीं। इनकी संज्ञा 'हरिहर-हिरण्यगर्भ' हुई। ऐसी प्रतिमाओंमें तीनों देवोंके लक्षणोंको प्रदर्शित किया गया। कुछ ऐसी 'सर्वतोभद्र' प्रतिमाएँ भी बनायी गयीं, जिनमें विष्णु, शिव, सूर्य तथा देवीको चारों ओर एक-एक और अङ्कित किया गया। ऐसे चौकोर [illegible] प्रत्येक ओर एक देवताके दर्शन होते हैं। जैन धर्ममें ऐसे बहुत बड़ी संख्यामें बनाये गये हैं। इनपर प्रायः उनके चार मुख्य तीर्थंकरों—आदिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर—को एक-एक और अङ्कित किया गया है।

मध्ययुगमें सूर्य-प्रतिमा-निर्माण तथा उनकी पूजापर तान्त्रिक प्रभाव भी पड़ा । यह बात अनेक मूर्तियोंके देखनेसे स्पष्ट हो जाती है ।

अनेक प्राचीन शिलालेखों और ताम्रपत्रोंमें सूर्यके यन तथा उनकी मूर्तियों या मन्दिरोंके निर्माणके महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिले हैं । सातवाहन-वंशी शासक सातकर्णि प्रथमकी पत्नी नागनिकाके नानाघाटमें प्राप्त शिलालेखके प्रारम्भमें अन्य प्रमुख देवोंके साथ सूर्य देवताको भी नमस्कार किया गया है । गुप्तवंशी सम्राट् कुमारगुप्त प्रथमके समयका एक शिलालेख मदसौर (प्राचीन दशपुर) में मिला है । इस लेखसे ज्ञात हुआ है कि लाट (प्राचीन गुजरात) से आकर दशपुर (पश्चिमी मालवा) में बसनेवाले जुलाहोंकी क श्रेणीद्वारा दशपुरमें सूर्य-मन्दिरका निर्माण कराया गया था । इस क्षेत्रका यह मन्दिर बहुत प्रसिद्ध था ।

इन्दौर (जि० बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश) से एक ताम्रपत्र गुप्त सम्राट् स्कन्दगुप्तके समयका मिला है । इसमें लिखा है कि इस स्थानपर क्षत्रिय अचलवर्मा तथा भृकुंठसिंहद्वारा भगवान् भास्करका मन्दिर बनवाया गया था और वहाँके तेलियोंकी श्रेणीद्वारा मन्दिरमें न्तर दीप प्रज्वलित रखनेके लिये दान दिया गया । कार्य ब्राह्मणदेवविष्णुको सौंपा गया ।

अनेक प्राचीन सिक्कों तथा मुहरोंसे भी सूर्यपूजा और सूर्यके महत्त्वपर प्रकाश पड़ पञ्चालके राजाओंमेंसे दोके नाम क्रमशः सूर्यमि भानुमित्र थे । इन दोनोंने जो सिक्के चलाये उन और ब्राह्मीमें उन्होंने अपना नाम लिखवाया और दूसरी सूर्यकी प्रतिमा प्रदर्शित की । कई सिक्कोंपर सू आकृतिमें उनके हाथ-पैर भी दिखानेका प्रयास कि गया है । सूर्यका प्रभामण्डल किरणयुक्त दिखाया ग है । इन शासकोंका समय ईसवीपूर्व प्रथमसे ई द्वितीय शतीके बीचका है । कुषाणवंशीय शासकोंने 'मीरो'-(मिहिर-) वाले अपने सिक्के चलाये, जिनपर सूर्यकी आकृति भी मिलती है । उज्जयिनीमें ईसवीपूर्व प्रथम शतीमें शासन करनेवाले एक राजा सवितृकी मुद्रा मिली है । भारतके बहुसंख्यक आहत तथा जनपदीय सिक्कोंपर सूर्यका अङ्कन प्राप्त हुआ है ।

मध्यप्रदेशकी नर्मदा तथा बेतवाकी घाटियोंमें हालमें कुछ रोचक शिलागृह ढूँढे गये हैं, जिनमेंसे अधिकांश चित्रित हैं । चित्रोंमें स्वस्तिक, वेदिकावृक्ष, चन्द्रमेरु-जैसे चिह्नोंके साथ सूर्य-चिह्नका भी आलेखन है, जो विशेष उल्लेखनीय है ।

भारतीय पुरातत्त्वमें उपलब्ध प्रमाण इस देशमें सूर्यके व्यापक महत्त्व एवं प्रभावके परिचायक हैं ।

भारतमें सूर्य-मूर्तियाँ

(लेखक—श्रीहर्षदराय प्राणशंकरजी बधेको)

कई प्राचीन शिल्पविद् और स्थापत्यविद् सूर्यमूर्तियों- तीन भागोंमें विभक्त करते हैं—(१) राजस्थानके की सूर्य-मूर्तियाँ, जो जूनागढ़, टेंक और राजकोटमें यी पड़ती हैं । (२) चौलुक्य प्रकारकी मूर्तियाँ, राके सूर्यमन्दिरमें पायी जाती हैं और (३) मिश्रित सूर्य-मूर्तियाँ, जो प्रभास, कन्धार और थानमें ती हैं ।

कई मूर्तियोंमें सूर्यनारायणके दो और कई मूर्तियोंमें र हाथमें कमल होते हैं । सूर्यनारायण सात अश्वोंके रथमें घूमते दिखायी पड़ते हैं—'सततुरङ्गवाहनः ।' कई-कई जगहोंपर अश्वोंके ऊपर साँपकी लगाम पायी जाती है—'भुजगयमिताः सततुरगाः ।' रथका वाहक अरुण पादहीन होता है—'चरणरहितः सारथिरपि ।' रथका एक ही पहिया दीखता है—'रथस्यैकं चक्रम् ।' दो पुरुष-अनुचर—शूल पकड़ता हुआ दण्ड और लेखन-साधनके साथ कुन्दी तथा दो पत्नियाँ—प्रभा और छाया होती हैं । मूर्तियाँ कवचयुक्त और पादत्राणयुक्त होती हैं । कई मूर्तियोंमें सूर्य-भगवान्

आते हैं और साथ अश्वोंके पैरों घूमते दिखायी पड़ते हैं। कई मूर्तियाँ ईरानियोंकी पोशाकमें सुसज्ज हैं। अस्त्र-शस्त्रयुक्त इन मूर्तियोंके पैरोंमें दोनोंकी अँगुलियाँ ढक जायँ वैसे पादत्राण पहनाये गये हैं। नंगे पैरवाली मूर्तियाँ भी कदाचित् दृष्टिगोचर होती हैं।

कई मूर्तियोंमें सूर्यकी दो पत्नियाँ—प्रभा और छाया-(कई पुराणोंके अनुसार ऊषा और प्रत्यूषा)के साथ दो अन्य पत्नियाँ राज्ञी और निक्षुभा भी दिखायी देती हैं। 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण, मत्स्यपुराण और स्कन्दपुराणमें राज्ञी और निक्षुभा सूर्यकी पत्नियाँ हैं। श्रीवासुदेवशरण अग्रवालकी दृष्टिसे इस देशकी पुरानी परम्पराके अनुसार ऊषा और प्रत्यूषा सूर्यकी पत्नियाँ हैं। इस मान्यताके साथ राज्ञी और निक्षुभाकी परम्परा बाहरसे आकर मिल गयी। ईरानी मिथ्र (मिहिर) धर्मके अनुसार मिथ्रके दो पार्श्वचर थे—एक रस्न और दूसरा नरोक। ये रस्न और नरोक ही रूपान्तरित होकर भारतीय सूर्यपूजामें राज्ञी और निक्षुभा कहलाये।

गुजरातराज्यके वीरमगाँव तालुकेके अशारगाँवसे चौबीस आरस प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। उनमें प्रथम प्रतिमाकी कला विशिष्ट है। यह प्रतिमा चतुर्भुज है। दो भुजाएँ योगमुद्रायुक्त हैं और दो भुजाओंमें कमल हैं। अन्य मूर्तियाँ विष्णुकी हैं। इसी कारणसे कई लोगोंकी दृष्टिमें प्रथम मूर्ति विष्णुमूर्ति ही है। लेकिन विष्णुके हाथमें चक्र होता है और उभय हस्तमें कमलयुक्त मूर्ति सूर्यकी ही होती है।

सूर्यके साथ अन्य ग्रहोंकी मूर्तियाँ भी होती हैं। सोमनाथ मन्दिरके सूर्य-मन्दिरकी शिल्प-पंक्तियोंपर नव आकृतियाँ हैं। उनमें प्रथम सात सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनिकी हैं। सिरपर कुण्डको वहन करती हुई प्रतिमा, जिसके ऊपरका हिस्सा आदमी-जैसा है, राहु और केतुकी ही हो सकती है। सोमनाथके मन्दिरकी तरह थानके मन्दिरमें भी ऐसी ही आकृतियाँ हैं। राजकोटके अजायबघरमें जो सूर्यमूर्ति है, उसके ऊपर कर्णुदानयुक्त मुकुट पहनाया गया है। साथ पिंगल, दण्ड, राज्ञी, सावर्णा, छाया और सुवर्चला हैं। जूनागढ़के अजायबघरमें पत्थरके बीचमें सूर्यकी दो प्रकारकी मूर्तियाँ हैं। एक उत्कटिकासन अवस्थामें सात अश्वोंवाली मूर्ति है। बाहर ऊषा और प्रत्यूषा हैं। अन्य एक स्थानमें सूर्यकी खड़ी हुई मूर्ति है। महाराष्ट्रके भाजाकी गुफाओंमें सूर्यनारायण रथ चलाते हुए दिखाये गये हैं। रथके पहिये आसुरी तत्त्वरूप अन्धकारके राक्षसको कुचलते हुए दिखाये गये हैं।

सोलंकी राजा भीमदेव पहलाने छठी शताब्दीमें मोढेरा (गुजरात) में सूर्य-मन्दिर बनवाया था। यह मन्दिर आज नष्टप्राय दशामें है। इस मन्दिरमें ईरानकी शिल्पकलाका प्रभाव दिखायी पड़ता है। उसकी दीवारोंपर जूते और कमरपट्टेवाले सूर्य-नारायणकी मूर्ति है। मथुराके संग्रहालयमें भिन्न-भिन्न मुद्राओंवाली, लाल पत्थरोंसे बनी हुई कई सूर्य-मूर्तियाँ हैं। ईसाकी दूसरी शताब्दीमें ये मूर्तियाँ बनायी गयी थीं।

मोढेरा और कोणार्क (उड़ीसा) के सूर्य-मन्दिर भारत-प्रसिद्ध हैं। उनमें कोणार्कका मन्दिर गंगवंशके राजा नरसिंहदेवने कलिंग-स्थापत्य-शैलीमें बनवाया है। कोणार्क-मन्दिर सात वेगयुक्त अश्वोंके द्वारा खींचे जाते हुए सूर्य-रथके रूपमें बनाया गया है। कश्मीरके मटन तीर्थमें मार्तण्ड-मन्दिरमें मनोहर सूर्य-मूर्तियाँ हैं। इस मन्दिरका उल्लेख कल्हणकी राजतरंगिणीमें आता है। सिकन्दरने इस मन्दिरका नाश किया था। मुल्तानके, जो अभी पाकिस्तानमें है, सूर्य-मन्दिरमें भी मनोहर सूर्य-मूर्तियाँ हैं। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसाँगने ई० सन् ६४१ के यात्रा-वर्णनमें इस मन्दिरका उल्लेख किया है। पहले महमूद गजनवी और बादमें औरंगजेबने मुल्तानके मन्दिर-को नष्ट किया था। आन्ध्रप्रदेशके अरसाविल्ली नामके स्थानमें भी नयनरम्य सूर्य-मूर्तियाँ हैं। सूर्यनारायणके साथ प्रभा और छाया भी हैं।

विसावडा और गोपमें अब सूर्य-मूर्तियाँ नहीं हैं, लेकिन पहले थीं। सूत्रापड़ा, त्रिवेणी, थान, पास्थर

और किन्दरखेड़में प्राचीन सूर्य-मन्दिर अवश्य हैं, परंतु इन मन्दिरोंमें उपलब्ध मूर्तियाँ अर्वाचीन हैं। कुम्भकोणम्-के नागेश्वर-मन्दिरमें भी सूर्य-मूर्तियाँ हैं। दक्षिण भारतके सूर्यनारकोइल और महाबलीपुरमें भी सूर्य-मूर्तियाँ पायी जाती हैं।

वेदके समयसे सूर्यपूजाका महत्त्व लोगो[illegible] सूर्यके साक्षात् देव होनेपर भी उनके मन्दिर जगह-जगहपर दिखायी देते हैं। इससे सौर-[illegible] सूर्य-पूजकोंकी भारतव्यापिनी अवस्थितिका [illegible] किया जा सकता है।

भारतके अत्यन्त प्रसिद्ध तीन प्राचीन सूर्य-मन्दिर

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

भारतमें सूर्यपूजा, मन्दिर-निर्माण, प्रतिमाराधन आदि वैदिक पुराणोंसे अत्यन्त प्राचीन कालसे ही सिद्ध है। नारदादि ऋषि एवं सूर्यवंशी क्षत्रिय सूर्याराधक थे। द्वापरमें भगवान् कृष्ण एवं साम्ब विशेष सूर्याराधक हुए। नमें साम्बका विस्तृत चरित्र साम्बविजय, साम्ब-उप-राण तथा वराह, भविष्य, ब्रह्म एवं स्कन्दादि महा-णोंमें प्राप्त होता है। उन्होंने कुष्ठरोगसे मुक्तिके लिये स्थानमें सूर्य-मन्दिरका निर्माण कराया एवं सूर्यकी धनाद्वारा उनकी कृपा प्राप्तकर रोगमुक्त हुए। सूर्यदेवने उन्हें अपनी प्रतिमा-लाभ एवं स्थापनाकी भी बात बतलायी। शीघ्र ही उन्हें चन्द्रभागा*नदीमें एक बहती हुई विश्वकर्मानिर्मित प्रतिमा भी मिली, जिसे उन्होंने मित्र-नमें स्थापित किया। भगवान् सूर्यने साम्बको फिर प्रातः-काल सुतीर (मुण्डीर), मध्याह्नमें कालप्रिय (कालपी) तथा अपराह्णकालमें मूलस्थानमें अपने दर्शनकी बात बतलायी—

सांनिध्यं मम पूर्वाह्णे सुतीरे द्रक्ष्यते जनः।
कालप्रिये च मध्याह्ने पराह्णे चात्र नित्यशः॥

तदनुसार साम्बने उदयाचलके पास सुतीरपर, यमुनातटपर कालपीमें तथा मूलस्थान (मुल्तान†)में सूर्यप्रतिमाएँ स्थापित कीं। सुतीरकी जगह स्कन्दपुराणमें मुण्डीर पाठ प्राप्त होता है तथा साम्बपुराणमें इसे रविक्षेत्र या सूर्यकानन कहा गया है। ब्रह्मपुराणमें इसे कोणादित्य या उत्कलका कोणार्क कहा गया है, जो वस्तुतः पुरीसे ३० मील दूरीपर स्थित आजका कोणार्क नगर ही है। हाजरा (Studies in the Uppuraras I, Page 106)के अनुसार वर्तमान सूर्यमन्दिरको नरसिंह-देवने प्रथम शती विक्रमीमें निर्माण कराया था।

वराहपुराणके अनुसार साम्बने [illegible] श्रीकृष्णसे आज्ञा प्राप्तकर मुक्तिके [illegible] देनेवाली आकर देवर्षि नारदकी बतायी विधिके अनुसार [illegible] मध्याह्न और सायंकालमें उन सूर्योंकी पूजा एवं दिव्य स्तोत्रद्वारा उपासना आरम्भ की। भगवान् सूर्यने भी [illegible] [illegible] एक सुन्दर [illegible] [illegible] साम्बके सामने आकर कहा—[illegible]! [illegible] [illegible]

---

* चन्द्रभागा नदियाँ भारतमें कई हैं। इनमें पंजाबकी चन्द्रभागा (चनाब) तथा [illegible] [illegible] प्रसिद्ध हैं। यह चन्द्रभागा सूर्यकानन या मित्रवनके पासकी कोणार्कके [illegible] चन्द्रभागा ही है।

† मुल्तानकी स्वर्णमयी सूर्यप्रतिमाकी हुएनत्संगने बहुत प्रशंसा की है। (S. Beal's Hoentsiang IV. Page 740) मुहम्मद कासिमके भारत-आक्रमणके समय उसे [illegible] हजार [illegible] [illegible] [illegible] था। [illegible] [illegible]के नष्ट होनेसे बचानेके लिये ही अरबोंके साथ युद्ध नहीं किया।

हो। तुम मुझसे कोई वर माँग लो और मेरे कल्याणकारी व्रत एवं उपासनापद्धतिका प्रचार करो। मुनिवर नारदने तुम्हें जो 'साम्बपञ्चाशिका'स्तुति बतलायी है, उसमें वैदिक अक्षरों एवं पदोंसे सम्बद्ध पचास श्लोक हैं। वीर! नारदजीद्वारा निर्दिष्ट इन श्लोकोंद्वारा तुमने जो मेरी स्तुति की है, इससे मैं तुमपर पूर्ण संतुष्ट हो गया हूँ।' ऐसा कहकर भगवान् सूर्यने साम्बके सम्पूर्ण शरीरका स्पर्श किया। उनके छूते ही साम्बके सारे अङ्ग सहसा रोगमुक्त होकर दीप्त हो उठे और दूसरे सूर्यके समान ही विद्योतित होने लगे। उसी समय याज्ञवल्क्यमुनि माध्यंदिन यज्ञ करना चाहते थे। भगवान् सूर्य साम्बको लेकर उनके यज्ञमें पधारे और वहाँ उन्होंने साम्बको 'माध्यंदिन-संहिता'का अध्ययन कराया। तबसे साम्बका भी एक नाम 'माध्यंदिन' पड़ गया। 'वैकुण्ठक्षेत्र'के पश्चिम भागमें यह स्वाध्याय सम्पन्न हुआ था। अतएव इस स्थानको 'माध्यंदिनीय' तीर्थ कहते हैं। वहाँ स्नान एवं दर्शन करनेसे मानव समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। साम्बके प्रश्न करनेपर सूर्यने जो प्रवचन किया, वही प्रसङ्ग 'भविष्यपुराण'के नामसे प्रख्यात पुराण बन गया। यहाँ साम्बने 'कृष्णगङ्गा'के दक्षिण तटपर मध्याह्नके सूर्यकी प्रतिमा प्रतिष्ठापित की। जो मनुष्य प्रातः, मध्याह्न और अस्त होते समय इन सूर्यदेवका यहाँ दर्शन करता है, वह परम पवित्र होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।

इसके अतिरिक्त सूर्यकी एक दूसरी उत्तम प्रातःकालीन विख्यात प्रतिमा भगवान् 'कालप्रिय' नामसे प्रतिष्ठित हुई। तदनन्तर पश्चिम भागमें 'मूलस्थान'में अस्ताचलके पास 'मूलस्थान' नामक प्रतिमाकी प्रतिष्ठा हुई। इस प्रकार साम्बने सूर्यकी तीन प्रतिमाएँ स्थापित कर उनकी प्रातः, मध्याह्न एवं संध्या—इन तीनों कालोंमें उपासनाकी भी व्यवस्था की*। साम्बने 'भविष्यपुराण'में निर्दिष्ट विधिके अनुसार भी अपने नामसे प्रसिद्ध एक मूर्तिकी यहाँ स्थापना करायी। मथुराका वह श्रेष्ठ स्थान 'साम्बपुर'के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

कालपीके सूर्यका विवरण भवभूतिके सभी नाटकोंमें तो है ही, राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीयके यात्राविवरणके साथ गोविन्ददेव तृतीयके कैम्बे प्लेटमें भी इस प्रकार प्राप्त होता है—

यन्माद्यद्द्विपदन्तघातविषमं कालप्रियप्राङ्गणं
तीर्णा यत्तुरगैरगाधयमुना सिन्धुप्रतिस्पर्द्धिनी।
येनेदं हि महोदयारिनगरं निर्मूलमुन्मूलितं
नाम्नाद्यापि जनैः कुशस्थलमिति ख्यातिं परां नीयते॥

मोढेराका सूर्य-मन्दिर भी प्राचीन है, पर इतिहासके विद्वान् उसे १० वीं शती विक्रमीमें निर्मित मानते हैं।†

* 'वराहपुराण'का यह साम्बोपाख्यान या 'सूर्योपासनाध्याय' बड़े महत्त्वका है। इसमें सूर्यभगवान्के अत्यन्त दिव्य स्तोत्र 'साम्ब-पञ्चाशिका'—स्तुति तथा कोणार्क, कालपी एवं मुल्तानके प्राचीन भव्य सूर्यमन्दिरोंका भी संकेत है, जिनकी प्रतिनिधिभूत अर्चाएँ मथुरामें प्रतिष्ठित थीं। इस विषयमें अल्बरूनीके 'Indica p. 298'का 'Multan was originally called Kasyapapura, then Hamsapur, then Bagpur, then Sambpur and then Mulasthan' यह कथन बड़े महत्त्वका है, जिसमें मुल्ताननगरके पूर्वनाम 'काश्यपपुर' या सूर्यपुर, फिर हंसपुर, बागपुर, साम्बपुर तथा मूलस्थान आदि निर्दिष्ट हैं। इसीके खण्ड १ पृ० ११६ पर अल्बरूनीने इसके मन्दिर तथा प्रतिमाध्वंसकी कथा—'Jalam I Ben Shaiban, the userper, broke the idol into pieces and killed its priests' आदि शब्दोंमें विस्तृत वर्णन किया है।

† लेखक प्रस्तुत विवरणके लिये सर्वश्री मिराशी, हाजरा एवं दे आदिके ग्रन्थोंका आभारी है।

नारायण ! नमोऽस्तु ते

(लेखक—आचार्य पं० श्रीराजबलिजी त्रिपाठी, एम्० ए०, शास्त्राचार्य, साहित्यशास्त्री, साहित्यरत्न)

सूर्यदेव ! आप अव्याकृत परब्रह्मके प्रत्यक्ष प्रतीक ; आपको नमस्कार है । आप सारे संसारके स्रष्टा, पालक और संहारक-स्वरूपवाले साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु ं शिवस्वरूप हैं; आपको बार-बार प्रणाम है । आप र्ग लोकोंके चेतक, प्रेरक और कर्त्तव्य कर्मोंमें प्रवर्त्तक हैं; अतः आपको सर्वतः शतशः **नमो नमः है** ।

हे देव ! आप ही स्थावर-जङ्गमात्मक जगत्के शास्ता एवं कर्मविश्वके प्रत्यक्ष 'साक्षी' परमात्मा हैं । आपको जो तत्त्वतः जानता है, वस्तुतत्त्वरूपमें समझता है, वही जन्म-मृत्युके चक्करसे छूटकर अमृतत्वको प्राप्त करता है, स अमृतत्वकी प्राप्तिका दूसरा मार्ग नहीं है—'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।'

हमारे उपास्य ! आपकी नित्य उपासना करनेवाला े और व्याधिकी, जरा और मृत्युकी विभीषिकासे सन्त्रस्त नहीं होता; वह आपके प्रसादसे स्वास्थ्य एवं सौन्दर्यसे मण्डित होकर सुख-सम्पत्तिका यावज्जीवन उपभोग करता है; और, मृत्युके बाद ज्योतिर्मय दिव्य धाम प्राप्त करता है । इसलिये हम दैनन्दिनकी उपासना-वन्दनामें आपके वरेण्य तेजका ध्यान करते हैं । हे सवितः ! आपका वह अनन्त श्रेष्ठ वरणीय 'भर्ग' हमारी आधि-भौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक बुद्धियोंको सन्-मार्गके लिये सत्की ओर प्रेरित करे—'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।'

प्रकाशके भी प्रकाशक ज्योतिर्मय भगवन् ! आपको जो नहीं जानता, आपकी जो नित्य उपासना नहीं करता, आपकी कर्मण्यता-सुन्दरतासे अनुप्राणित होकर जो व्यवसाय एवं कर्मठताका पाठ नहीं पढ़ता, वह कर्मकी प्रगतिदिशामें नहीं बढ़ता, अतएव सुखी तथा स्वस्थ नहीं रहता । फलतः वह परम पदके ऊपर बढ़ सकता है !

तेजोराशे ! विश्वजनीन कल्याणके लिये—[illegible] मङ्गलके विधानके लिये—व्यवस्था-सम्व्यवस्थामें कु[illegible] अकर्मण्यता, अध्यवसायहीनता अवाञ्छनीय अभिशाप [illegible] और इन सबका मूल है—मानस-तमस । **तिमिरारे !** आ[illegible] हमें इस निविडतम तमसे—घोर अन्धकारसे—प्रकाशकी ओर ले चलें—'तमसो मा ज्योतिर्गमय !'

ज्ञानमूर्ते ! आप वेद-स्वरूप हैं । वेद-ज्ञान आपके विकीर्यमाण प्रकाशपुञ्ज हैं । वेद-प्रकाशक, विज्ञान-वर्चस्विन् ! वैदिक सम्प्रदायोंके अधराले [illegible] किरणराग-रञ्जित-रश्मिरथपर समधिष्ठित होकर आप 'लोकालोक' प्रदेशके प्रतिः प्रकाश प्रदान करते हुए सम्पूर्ण भुवनोंको भास्वर बनाते हैं, दिनको धूसर करते हैं और सन्ध्याकी अनुराग-रश्मियोंमें आरक्त हो न जाने कहाँ—अन्यान्य दूर-दूरतर-दूरतम देशोंमें आलोक वितरित करने तथा हमारे लिये 'मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षामहे' (हम सभी प्राणियों—भूतमात्रको 'मित्र' (सुहृद्-वर्ग) की दृष्टिसे देखें)का आदर्श उपस्थित करते चले जाते हैं । जो श्रुतिमें प्रकट करती है—'देवो याति भुवनानि पश्यन् ।' और, हम [illegible] ने, निशा-निशीथिनीमें छिप जाते हैं, हमारे [illegible] हो जाता है । हम निःस्पन्द [illegible] हो जाते हैं; कि[illegible]—

विश्व-बन्धो ! फिर, जब प्राचीमें प्रभाके [illegible] आप [illegible] करते हुए उदित होते हैं, तब हमारा [illegible] फिर अनुप्राणित होकर जागरूक हो उठता है । [illegible] करते हैं, [illegible] । [illegible] फिर से, [illegible] 'पुनर्नवम्' हो जाता है । [illegible] है—'[illegible]

विगलति तिमिरो भुवनं कथमभिरामम्' । संसृतिकी तमसा-गुह उस प्रथम बेलामें, आदित्य ! आपका प्रथम उदय कैसा रहा होगा ! अहा ! ऐसी मनोरम वेलामें माध्वी माता श्रुतिने कितना मीठा दुलारकर उद्बोधन दिया था—'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत' (उठो, जागो, बड़ोंके पास जाकर कर्तव्य-कर्म समझो !)

सहस्ररश्मे ! आपकी किरणोंकी करामात ऊर्जा-विज्ञानी ही नहीं, सामान्य-जन भी जानते हैं । अमृत-शक्तिमयी आपकी रश्मियाँ आधि-व्याधियोंको विदूरितकर स्वास्थ्य-सौन्दर्यसे विद्रूपका भी स्वरूप सँवार देती हैं; अतः आर्तभक्त भावभीनी प्रार्थनाकी पुरस्कृति कर कृत-कृत्य हो जाते हैं—

नमः सूर्याय शान्ताय सर्वरोगविनाशिने ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देव जगत्पते ॥

काल-विधायक कालात्मन् ! क्षण, पल, विकला, कला आदि समय-स्वरूप आप अपने गतिचतुष्टयसे परिच्छिन्न विश्व-व्यवस्थाके नियामक एवं संसृतिके माप-दण्ड हैं । आपकी चामत्कारिक गतियोंकी अवगति काल-विभाजक रूपोंमें प्रतिरूपित होती है । आप कालके विधायक तथा 'अहोरात्रव्यवस्थानकारणं भगवान् रविः' (वि०पु०२।८।१२) के अनुसार नियामक तो हैं ही, इस विश्वके ईश्वर भी हैं । आपको भूयो भूयः सतत नमस्कार है—'कालात्मने नमो जगदीश्वराय ।'

ब्रह्माण्डनायक महामहिम मार्तण्ड देव ! आप अनन्त असीम इस विश्वके मूल हैं, केन्द्र हैं और ज्योतिश्चक्रके सञ्चालक हैं । तभी तो ब्रह्माण्डमण्डलके सम्पूर्ण ग्रहोपग्रह, नक्षत्र-तारे प्रभृति आपकी निरन्तर परिक्रमा करते हुए आपकी ही दिव्यतम ज्योति—ऊर्जा और आकृष्टिकी उपजीव्यता प्राप्त कर उपजीवित हैं । ग्रहाधीश दिनेश ! हम आपके इस भौतिक स्वरूपकी भी वन्दना करते और कल्याण-विस्तारकी आशंसा करते हैं—

'स्वाकृष्टिराकर्षया परितः स्वमेव
प्रदक्षिणयन् भ्रामयतीह खेटान् ।
जीवांश्च तत्रापि सृजत्यजस्रं
श्रेयः सदासौ तनुताद् दिनेशः ॥'

भगवन् ! आपके आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीन रूप हैं, पर स्वरूपमें आप सर्वथा एक हैं—नारायण । ऐसे आपके लिये नमस्कार है—'नारायण नमोऽस्तु ते।'

सूर्य-प्रशस्ति

(रचयिता—कविवर श्रीशङ्करसिंहजी वेदालंकार, एम० ए०, हिंदी-संस्कृत)

(१)

हे ज्योतिर्मय अंशुमान निरलस नभगामी ।
हे प्रकाशके पुञ्ज तमोध्वंसक उद्गामी ॥
हे रसपायी प्रखर वियत्के दीपित दीपक ।
संसृतिके जागरण उदयके अत्युद्दीपक ॥

(२)

तुम अनुमतके योग्य विश्वव्रतपा व्रतचारी ।
तुम आलोक-निधान लोकपालक अविकारी ॥
तुम हो सविता देव तुम्हें गाती गायत्री ।
तव वरेण्य वर भर्ग भूर्भुवः स्वः सावित्री ॥

(३)

तुम हो यद्यपि एक किंतु नभ-शत घटवासी ।
व्यापक पूर्णप्रकाश संतजन हृदय विकासी ॥
तुम श्रुति-निगदित देव पूज्य पावन तमहारी ।
नील गगनके राजहंस सानन्द विहारी ॥

(४)

हे दिनमणि रवि मार्तण्ड भास्वान् प्रतापी ।
तेजपुञ्ज अरुणिमा तुम्हारी दिशि-दिशि व्यापी ॥
तुम्हीं हमारे ध्येय गेय कल्याणप्रसारी ।
चलें तुम्हारे पंथ प्रमुद सारे नर-नारी ॥

क्षमा-प्रार्थना और नम्र निवेदन

'कल्याण' भगवान्का है, भगवद्-भक्तोंका है, श्रद्धेय
-महात्माओं, पूज्यपाद आचार्यों, आदरणीय विद्वानों
मनीषी लेखकों तथा कृपालु पाठक-पाठिकाओं एवं
हक-अनुग्राहकोंका है। ज्ञान-वैराग्य-भक्ति-सदाचारो-
यक यह मासिकपत्र आपका अपना पत्र है। इसके
पनवें वर्षका प्रथम अङ्क (विशेषाङ्क—सूर्याङ्क)
के हाथोंमें है। जैसा कुछ, जो कुछ बन पड़ा,
न् सूर्यनारायणको सभक्ति समर्पित है। इस विशेषाङ्कमें
छ अच्छाइयाँ हैं वे अकारण कारुणिक प्रभुके कृपा-
-प्रसूत हैं और जो त्रुटियाँ हैं, वे हमारी अल्पज्ञता,
ता और अक्षमता-जनित हैं; एतदर्थ हम
क्षमा-प्रार्थी हैं। अपनी ओरसे भरपूर चेष्टा यह
ी है कि श्रीसूर्यनारायणपर वेद, वेदाङ्ग, दर्शन,
प्राचीन प्राच्य ग्रन्थोंके मूल-मथितार्थ, साधना-
की विधियाँ, साधकोंकी सिद्धि-कथाएँ, ज्योतिष्क
न, तीर्थ, मन्दिर-मूर्तियोंका ऐतिह्य और
तथ्योंका विवरण, अर्चा, स्तोत्र और
ावत् चारुतर उपलब्ध पठनीय, मननीय एवं
सामग्रियाँ क्रमबद्ध उपनिबद्ध की जायँ; किंतु
अपरिहार्य परिस्थितियोंके कारण 'सूर्याङ्क'-
हम वाञ्छित रूपमें नहीं सँवार सके हैं।
पयिक महत्त्वकी दृष्टिसे हम अन्तर्हृदयसे
स्त हैं कि कर्मकाण्डमें पूज्य पञ्चदेवों—
गणेश, नारायण, सूर्य-रूपोंमें—अन्यतम
प्रत्यक्ष देव श्रीसूर्यनारायण-सम्बन्धी यह
म्पादित सामग्री उपासकों, भक्तों, अन्वेषकों तथा
ाहक-अनुग्राहकोंको उपयोगी एवं उपादेय जँचेगी और
सूर्याङ्क' सबको पसंद आयेगा। परंतु इस प्रयत्न-सिद्धिका
पूर्ण श्रेय उन पूज्य...
ान्-मनीषी ले...
ी हैं

सदासे अजस्र अपार कृपा रही है और जिन्होंने अ
शुभाशीराशि, निबन्ध, रचनाएँ एवं सुझाव और साध
सामग्रियाँ भेजकर हमारा गुरुतर कार्य सुकर बनाया है
इसके अतिरिक्त हम उनके भी चिरऋणी हैं, जिनके
प्राचीन-अर्वाचीन ग्रन्थ-सामग्रियोंका उपयोग किया
गया है। अतः स्वभावतः हम कृतज्ञताके हार्दिक
भावोद्रेकमें उन सबके प्रति नत-मस्तक हैं एवं कृतज्ञता
ज्ञापित करते हैं।

सूर्य-सम्बन्धी बचा हुआ जो रुचिकर चारु-विपुल पाठ्य
संभार हमारे पास अब भी पड़ा हुआ है, उसका उपयोग
भी यथावसर, यथा-स्थान करनेकी चेष्टा करनेका विचार
है—आगे भगवदिच्छा! इस संदर्भमें हम अपने कृपालु
जिन लेखकों और कवियोंकी कृतियों एवं रचनाओं तथा
विषय-सम्बद्ध अन्य सामग्रियोंको स्थानाभावसे विशेषाङ्कमें
अथवा विलम्ब आदि कारणोंसे समुपयुक्त स्थानपर
न दे सकनेके लिये विवश हो गये हैं, उनके समक्ष
भी हम विनीत क्षमा-प्रार्थी हैं।

सूर्याङ्कके संयोजन, सञ्चयन, सम्पादन, प्रूफशोधन
तथा सजाने-सँवारनेमें जिन महानुभावों, विद्वानों, कार्य-
कर्ताओं, सम्पादन, प्रकाशन और मुद्रण-विभागके कर्म
चारियोंने एवं अन्य अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग व्यक्तियोंने चाहे
जिस किसी प्रकारकी भी सहायता दी है तथा सहयोग
किया है, उन सबके प्रति भी हम हृदयसे कृतज्ञ हैं।

चाहते हुए और यथासाध्य यथाशक्ति चेष्टा करते
हुए भी हम विशेषाङ्क जनवरीमें प्रकाशित और
प्रस्तुत नहीं कर पाये हैं, जिससे ग्राहक-पाठकोंको
प्रतीक्षा एवं प्रतीक्षा करनी पड़ी है; तदर्थ भी हम पुनः
क्षमा-याचना करते हैं। (पर संतोषका विषय है कि
विशेषाङ्कके साथ ही फरवरीका अङ्क भी प्रस्तुत

विषयकी गरिमा और विशेषाङ्ककी उपादेयताके विचारसे गत वर्षकी अपेक्षा दस हजार अधिक (कुल एक लाख, साठ हजार) प्रतियाँ छापने तथा द्वितीय, तृतीय अङ्कोंको परिशिष्टाङ्क (क) परिशिष्टाङ्क (ख) के रूपमें प्रकाशित करनेका विचार किया गया है, जो आशा है, सभीको समुचित जँचेगा।

'कल्याण' ने अपने विगत चार विशेषाङ्कों—शक्ति-अङ्क, शिवाङ्क, श्रीविष्णु-अङ्क और गणेश-अङ्कके द्वारा पञ्चदेवोंमें चार देवोंकी श्रवण-मनन-निदिध्यासनके प्रयासके रूपमें अर्चना कर कृतकार्यता प्राप्त कर ली थी, पर सबके लिये उपास्य प्रत्यक्षदेव [illegible] उपर्युक्त रूपमें अर्चनाकी उत्कट लालसा सतत अनुरोध-पत्रों और प्रेरणाओंसे बढ़ती जानेपर भी [illegible] हो पायी थी; परंतु, इन्हीं श्रीसूर्यनारायणकी [illegible] कल्याणमयी कृपासे इस वर्ष यह सुयोग हुआ और यह (कल्याण) आपकी सेवामें 'सूर्याङ्क' देनेमें कृतकार्य हो सका। हमारा विश्वास है कि प्रस्तुत विशेषाङ्कके अध्ययन, मनन और निदिध्यासन-(साधना-उपासनाके अभ्यास-) से विश्वका मङ्गलमय कल्याण अवश्य होगा। शम्।

विनीत प्रार्थी—मोतीलाल जालान
सम्पादक
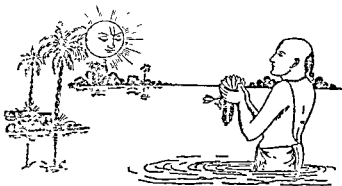
श्रीसूर्यार्पणमस्तु!

श्रीसूर्यनारायणकी महिमा

विशिष्टा देवता सम्यग्विशिष्टेनैव देहिना । आराधिता विशिष्टं च ददाति फलमीप्सितम् ॥
प्रत्यक्षेणोपलभ्यन्ते न सर्वा देवताः क्वचित् । अनुमानागमैर्गम्याः सन्ति चान्याः सहस्रशः ॥
प्रत्यक्षं देवता सूर्यो जगच्चक्षुर्दिवाकरः । तस्मादभ्यधिका काचिद् देवता नास्ति शाश्वती ॥
यस्मादिदं जगज्जातं लयं यास्यति यत्र च । कृतादिलक्षणः कालः स्मृतः साक्षाद्दिवाकरः ॥
ग्रहनक्षत्रयोगाश्च राशयः करणानि च । आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ वायवोऽनलाः ॥
शक्रः प्रजापतिः सर्वे भूर्भुवः स्वस्तथैव च । लोकाः सर्वे नगा नागाः सरितः सागरास्तथा ॥
भूतग्रामस्य सर्वस्य स्वयं हेतुर्दिवाकरः । अस्येच्छया जगत्सर्वमुत्पन्नं सचराचरम् ॥
स्थितं प्रवर्तते चैव स्वार्थे चानुप्रवर्तते । तस्मादतः परं नास्ति न भूतं न भविष्यति ॥
यो वै वेदेषु सर्वेषु परमात्मेति गीयते । इतिहासपुराणेषु अन्तरात्मेति गीयते ॥
ाह्यात्मेति सुषुप्तस्थः स्वप्नस्थो जाग्रतः स्थितः । यत्नवाह इति ख्यातः प्रेरकः सर्वदेहिनाम् ॥
ानेन रहितं किंचिद्भूतमस्ति चराचरम् । तथास्य मण्डलं कृत्वा यो ह्येनमुपतिष्ठते ॥
तः सायं च मध्याह्ने स याति परमां गतिम् । नास्ति वेदात् परं शास्त्रं नास्ति गङ्गासमा सरित् ॥
नास्ति भानुसमो देवो नास्ति मातृसमा गतिः ॥

(भविष्यपुराण, ब्राह्मपर्व, अध्याय ४८)

परम तेजोमय मूर्तिवाले होनेके कारण भगवान् सूर्य एक विशिष्ट देवता माने जाते हैं । 'देवो भूत्वा
ेत्' इस नियमसे आराधना करनेवाले साधकको वे उसके अभिलषित फल प्रदान करनेमें सदा
रहते हैं । यद्यपि देवताओंकी संख्या हजारोंमें है, किंतु उनमेंसे कोई भी देवता नहीं प्रत्यक्ष
...रव पड़ते, अनुमान अथवा आगम-प्रमाणसे ही उनका अस्तित्व माना जाता है । केवल
भगवान् सूर्य ही ऐसे देवता हैं, जिनका सभीको प्रत्यक्ष दर्शन होता है । ये संसारके नेत्र हैं । दिवाकर
ी संज्ञा है । इनसे बढ़कर कोई भी अविनाशी एवं नित्य देवता नहीं है । यह सारा संसार इन्हींसे उत्पन्न
है और इन्हींमें लीन भी हो जायगा । सत्ययुग एवं त्रेता आदि कालको स्वयं भगवान् सूर्यको ही रूप
जाता है । ग्रह, नक्षत्र, योग, राशि, करण, आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, अश्विनीकुमार, पवन, अग्नि,
प्रजापति, भूर्भुवर् स्वर् आदि सभी लोक, पर्वत, नागगण, नदियाँ, समुद्र तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके अस्तित्वमें
वान् सूर्य ही कारण हैं । चर-अचर अखिल विश्व इन्हींकी इच्छासे उत्पन्न होकर प्रतिष्ठा पाता तथा
स्वार्थमें समय व्यतीत करता है । इनसे अधिक शक्तिशाली कोई भी दूसरे देवता न हैं, न थे
आगे होंगे ही । इन्हींको सम्पूर्ण वेदोंमें परमात्मा कहा गया है । इतिहासों और पुराणोंमें इन्हें
....ा कहा गया है एवं वेदोंमें मन्त्र नामसे इन्हींका यशोगान किया गया है । सुषुप्तावस्था, स्वप्नावस्था
और जाग्रत्-अवस्था—ये तीनों अवस्थाएँ समयानुसार मनुष्योंके सामने आती रहती हैं, किंतु इन सभी
अवस्थाओंमें प्राणियोंके भीतर ये विराजमान रहते हैं । ये सभी प्राणियोंके प्रेरक हैं और यत्नवाह (प्रयत्नधारक)
कहे गये हैं । इनके अभावमें चर-अचर कोई भी प्राणी जीवित रहनेमें असमर्थ है । जो प्रातर प्रातः,
मध्याह्न तथा सायंकालमें इनके मण्डलकी रचना कर इनकी आराधना करता है, उनको परमगति प्राप्त होती
है । वेदसे श्रेष्ठ कोई शास्त्र नहीं है । गङ्गासे श्रेष्ठ कोई नदी नहीं है । माताले बढ़कर कोई शरण देनेवाला
नहीं है और भगवान् सूर्यसे बढ़कर कोई देवता नहीं है ।

---

(३) सन्ध्या-समय भी अर्घ्य देकर प्रणाम करना चाहिये।

(४) प्रतिदिन सूर्यके २१ नाम, १०८ नाम या १२ नामसे युक्त स्तोत्रका पाठ करे। सूर्यसहस्रनाम-का पाठ भी महान् लाभकारक है।

(५) आदित्य-हृदयका पाठ प्रतिदिन करे।

(६) नेत्ररोगसे बचने एवं अंधापनसे रक्षाके लिये नेत्रोपनिषद्का पाठ प्रतिदिन करके भगवान् सूर्य-को प्रणाम करे।

(७) रविवारको तेल, नमक और अदरखका सेवन नहीं करे और न किसीको करावे।

(८) रविवारको एक-भुक्त करे। हविष्यान्न खाकर रहे। ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करे।

उपासक स्मरण रखें कि भगवान् श्रीरामने आदित्य-हृदयका पाठ करके ही रावणपर विजय पायी थी। धर्मराज युधिष्ठिरने सूर्यके एक सौ आठ नामोंका जप करके ही अक्षयपात्र प्राप्त किया था। समर्थ श्रीरामदासजी भगवान् सूर्यको प्रतिदिन एक सौ आठ बार साष्टाङ्ग प्रणाम करते थे। संत श्रीतुलसीदासजीने सूर्यका स्तवन किया था। इसलिये सूर्योपासना सबके लिये लाभप्रद है।

पुराणोंमें सूर्योपासना

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित पूज्यपाद संत श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

एकमात्र हैं ध्येय भुवन-भास्कर भगवन्ता।
ध्यान त्रिकाल महान करें ऋषि मुनि सब सन्ता॥
कमलासन आसीन मकर कुंडल श्रुति धारे।
कनक करनि केयूर मुकुट मणिमय शिर धारे॥
वर्ण सुवर्ण समान वपु, सब कर्मनिके साक्ष्य हैं।
सूर्यनारायण देववर, जगमें नित प्रत्यक्ष हैं॥

सूर्यनारायण प्रत्यक्ष देव हैं। हम सब सनातन वैदिक धर्मावलम्बी सर्वदा-सदा सूर्यनारायणकी ही उपासना करते हैं; क्योंकि वे हमारे सभी शुभाशुभ कर्मोंके साक्षी हैं। इसीलिये हम सब कर्मोंके अन्तमें सूर्य भगवान्को अर्घ्य देकर कहते हैं—'हे भगवान् विवस्वान्! आप विष्णुके तेजसे युक्त हैं ... पवित्र हैं, सम्पूर्ण जगत्के सविता हैं ... नारायणकी उपासना करते हैं। हम द्विजातियोंको बाल्यकालसे ही गायत्रीकी दीक्षा दी जाती है। गायत्री-मन्त्र सूर्यनारायणकी उपासना ही है। गायत्रीसे बढ़कर दूसरा कोई मन्त्र नहीं। गायत्री वेदोंकी माता है। चारों वेदोंमें गायत्रीमन्त्र है। गायत्रीकी उपासना करनेवालोंको अन्य किसी मन्त्रकी उपासनाकी अनिवार्यता नहीं है। गायत्री सर्वदेवमय एवं सर्ववेदमय है। इसीलिये देवीभागवतमें कहा है—केवल गायत्री-उपासना ही नित्य है। इसी बातको समस्त वेदोंने कहा है। गायत्री-उपासनाके विना ब्राह्मणका अधःपात होता है। द्विजाति केवल गायत्रीमें ही निष्णात हो तो वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

... है—द्विज अन्य मन्त्रोंमें श्रम करे चाहे न ... द्विज गायत्रीको छोड़कर अन्य मन्त्रोंमें श्रम नरकका भागी होता है। इसीलिये सत्य-... द्विज गायत्रीपरायण होते थे।†

... ॥ (आदित्यहृदय)

... सर्वथा ॥

सूर्यनारायणमें गायत्री-मन्त्रद्वारा अपने इष्टकी उपासना कर सकते हैं ।

समस्त पुराणोंमें गायत्री-महिमा तथा सूर्योपासनाको सनातन बताया गया है । उनमें सूर्योपासनापर बहुत बल दिया गया है । वाराहपुराणकी कथा है—श्रीकृष्णभगवान्‌का पुत्र साम्ब अत्यन्त ही सुन्दर था । उसके सौन्दर्यके कारण भगवान्‌की सोलह हजार एक सौ रानियोंके मनमें कुछ विकृति पैदा हो गयी । भगवान्‌ने नारदजीके द्वारा इस बातको जानकर और उसकी परीक्षा करके साम्बको कोढ़ी होनेका शाप दे दिया । तब नारदजीने उसे सूर्योपासनाका ही उपदेश दिया *। साम्बने मथुरामें जाकर सूर्यनारायणकी उपासना की । इससे उसका कुष्ठरोग चला गया । फिर तो वह सुवर्णके समान कान्तिवाला हो गया, और मथुरामें उसने सूर्य-नारायणकी मूर्ति स्थापित की । मार्कण्डेयपुराणमें मार्तण्ड-सूर्यकी उत्पत्तिका तथा उनकी संज्ञा और छाया दोनों पत्नियों-का और छः संतानोंका विस्तारसे वर्णन आया है । अन्तमें कहा गया है कि जो सूर्यसम्बन्धी देवोंके जन्मको तथा सूर्यमाहात्म्यको सुनता है या पढ़ता है, वह आपत्तिसे छूट जाता है और महान् यश प्राप्त करता है । इसके सुननेसे दिन-रात्रिमें किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। विष्णुपुराणमें प्रजापालके पूछनेपर महातपा महर्षिने बताया है कि जो सनातननारायण-ज्ञानशक्ति अर्थात् ब्रह्मने जब एकसे दो होनेकी इच्छा की, तभी वह शक्ति तेजरूपमें सूर्य बनकर जगत्‌में प्रकट हुई । वे नारायण ही तेजरूपमें सूर्य बनकर प्रकाशित हो रहे हैं । इतना बताकर फिर सूर्यके मण्डलका और उनके रथ एवं रथके परिमाण आदिका विस्तारसे वर्णन किया है । उनके रथके साथ कौन-कौनसे देवता, ऋषि, अप्सरा, गंधर्व आदि किस-किस मासमें चलते हैं, उपासनाके लिये इसका वर्णन किया है । ऐसा ही वर्णन श्रीमद्भागवतमें भी आया है । इन द्वादशा-दित्योंकी पृथक्-पृथक् मासमें उपासना करनेकी पद्धति बतायी गयी है । श्रीमद्भागवतमें इस उपासनाका माहात्म्य बताते हुए कहा गया है—'ये सब सूर्यभगवान्‌की विभूतियाँ हैं । जो लोग इनका प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल स्मरण करते हैं, उनके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं ।'† फिर अन्तमें सूर्यको साक्षात् नारायणका स्वरूप बताते हुए कहा गया है कि 'अनादि, अनन्त, अजन्मा,

* ....'कुर्यादन्यन्न वा कुर्यात् इति प्राह मनुः स्वयम् ।

भगवान् श्रीहरि ही कल्प-कल्पमें अपने स्वरूपका विभाग करके लोकोंका पालन-पोषण करते हैं।' * कूर्मपुराणमें भगवान् सूर्यनारायणकी अमृतमयी रश्मियोंका विस्तारसे वर्णन किया गया है और कौनसे ग्रह किस अमृतमयी रश्मिसे तृप्त होते हैं, इसका वर्णन करते हुए अन्तमें कहा गया है—'चन्द्रमाका कभी नाश नहीं होता। सूर्यको निमित्त बनाकर उनकी रश्मियोंके द्वारा देवगण अमृत-पान करते हैं। उन्हींके कारण चन्द्रमामें क्षय और वृद्धि दिखायी देती है।' † इसी पुराणके १०१ अध्यायमें सूर्य-चन्द्रके परिभ्रमणकी गतियोंका वर्णन है।

निष्कर्ष यह कि—वेदों, शास्त्रों और विशेषकर पुराणोंमें सूर्यकी सर्वज्ञता, सर्वविपता, सृष्टि-कर्तृता, कालचक्र-प्रणेता आदिके रूपोंमें वर्णन करते हुए इनकी उपासनाका विधान किया गया है, अतः प्रत्येक आस्तिक जनके लिये ये उपास्य और नित्य ध्येय हैं।

भगवान् सूर्यकी सर्वव्यापकता

(लेखक—अनन्तश्री वीतराग स्वामी नारायणाश्रमजी महाराज)

सूर्यकी उत्पत्ति

सूर्यकी उत्पत्ति—संसारकी उत्पत्तिके पहले सर्वत्र एकमात्र अन्धकार ही भरा हुआ था—**'तमः आसीत्'**—श्रुतिके अनुसार सम्पूर्ण दिशाएँ अवर्णात्मक तमसे व्याप्त थीं। सर्वशक्तिमान् परमात्मा हिरण्यगर्भका परम उत्कर्ष तेज उस दिगन्तव्यापिनी अन्धकारमयी निशामें आत्मप्रकाशके रूपमें उदित हुआ—**'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'**—और उस अध्यात्म-प्रकाशके आविर्भावसे सम्पूर्ण दिशाओंका अन्धकार समाप्त हो गया।

व्याकरण-शास्त्रकी दृष्टिमें सूर्य शब्द 'सु' धातुसे बना है। इसका अर्थ है **'गतौ यस्मात् परो नास्ति'** अर्थात् जिसके प्रकाशके समान अन्यतम प्रकाश इस भूतलपर नहीं है, उसे सूर्य कहते हैं।

शश्वच्च जायते यस्माच्छश्वत्संतिष्ठते यतः।
तस्मात् सर्वैः स्मृतः सूर्यो निगमज्ञैर्मनीषिभिः॥

(—साम्बपु० ९। १९)

जहाँसे अचेतनात्मक नश्वर संसारको चेतनाकी उपलब्धि होती है और जिसकी संचित चेतना प्राप्त होनेपर सम्पूर्ण प्राणी जीवनधारणकी संज्ञा उपलब्ध करते हैं, उस अखण्ड मण्डलाकार घन-प्रकाशको ही विद्वान् सूर्य कहते हैं। यह तेज हजारों रश्मियोंसे संयुक्त हिरण्यगर्भके नामसे विख्यात था। कुछ युगोंके बीत जानेपर वह दिव्य तेज ब्रह्माण्डके गोलेमेंसे आविर्भूत हुआ था; जैसा कि साम्बपुराणमें वर्णन मिलता है—

तत्रोत्पन्नः सहस्रांशुर्द्वादशात्मा दिवाकरः।
नवयोजनसाहस्रो विस्तारस्तस्य वै स्मृतः॥

(—साम्बपु० ७। ३४)

पुराणकी कथाके अनुसार भगवान् कश्यपका जन्म मरीचि नामके प्रजापतिसे हुआ था। भगवान् कश्यप ब्रह्माके समान ही तेजस्वी प्रजापति थे। उनकी पत्नी देवमाता अदितिके उदरसे ब्रह्माण्डका व्यापक गोला उत्पन्न हुआ। वह गोला अन्धकाररूप तमसे आच्छादित था। भगवान् हिरण्यगर्भका वह अध्यात्म तेज इसी

* एवं ह्यनादिनिधनो भगवान् हरिरीश्वरः। कल्पे कल्पे स्वमात्मानं व्यूह्य लोकानवत्यजः॥

(—श्रीमद्भा० १२। ११। ५०)

† न सोमस्य विनाशः स्यात् सुधा देवैस्तु पीयते। एवं सूर्यनिमित्तोऽस्य क्षयो वृद्धिश्च सत्तमाः॥

(—कूर्मपुराण अ० ४०)

ब्रह्माण्ड-गोलके मध्यमें आविर्भूत होकर सम्पूर्ण संसारके तम-(अन्धकार)का अन्त कर डाला—

यथा पुष्पं कदम्बस्य समन्तात् केसरैर्वृतम् ।
तथैव तेजसो गोलं समन्तात् रश्मिभिर्वृतम् ॥
(साम्बपु० ७ । १०)

जिस प्रकार कदम्बका फूल अतिसुन्दर केसर-किञ्जल्कसे आवृत रहता है, उसी प्रकार भगवान् सहस्ररश्मि सूर्य भी अखण्ड मण्डलाकार तेजःपुञ्ज-रश्मिसे सभी दिशाओंमें व्याप्त हो गये हैं। उस गोल आकारमें व्याप्त तेजःपुञ्जके मध्य वेदमें वर्णित सहस्र-शीर्षा भगवान् हिरण्यगर्भ उपस्थित थे। जिस प्रकार विशाल कुम्भमें अग्नि व्याप्त होकर अग्नि-कुम्भके सदृश हो जाता है, उसी प्रकार सहस्र रश्मिवाले सूर्यका दिव्य रश्मिमण्डल अग्निकुम्भके आकारमें होकर पृथ्वी एवं आकाशमण्डलको संतप्त करने लगा।

स एव तेजसो राशिर्दीप्तिमान् सार्वलौकिकः ।
पादयेनोर्ध्वमधश्चैव प्रतपत्येष सर्वतः ॥
(—साम्बपु० ७ । ५१)

परम दिव्य तेजसमूह ही भगवान् सूर्यका स्वरूप है, जिसकी (दीप्तिमान्) प्रभाशक्तिसे चौदहों लोक दीप्तिमान हो रहे हैं। सूर्यके समग्र तेजोमण्डल दो भागोंमें विभक्त हैं। उनका कार्य पाताललोकसे ब्रह्मलोक-पर्यन्तके चतुर्दश लोकोंमें निवास करनेवाले प्राणियोंके भीतर ज्ञान एवं क्रिया-शक्तिका उद्दीपन करना है। सूर्य-मण्डलका पहला तेज ऊर्ध्वकी ओर ब्रह्मलोकपर्यन्त उद्दीपन करता है। उस तेजकी शक्ति 'संज्ञा' है। दूसरा तेज अधोगामी—पृथ्वीसे पाताल-पर्यन्त उद्दीपन करता है। उस तेजकी शक्तिका नाम 'छाया' है। पुराणकी कथाके अनुसार संज्ञा तथा छाया—ये दोनों सूर्यकी पत्नियाँ मानी गयी हैं।

भगवान् सूर्यकी ये दोनों पत्नियाँ शक्तिके स्थानपर निरन्तर कार्यरत रहती हैं। पुराण-कथाके अनुसार ब्रह्म...

भगवान् सूर्यके ...
प्राणियोंके हि...
मुनि एवं महर्षि...
होकर ब्रह्माको प्र...
महर्षियों मुनियों...
तेजका विभाजन करने...
यन्त्रद्वारा भगवान् सूर्य...
उपयुक्त करने योग्य बन...
छाया नामकी वे दो प...
करने लगीं।

सूर्यका ऊर्ध्वगामी पुञ्ज-ते...
सम्पूर्ण संसारके प्राणियोंमें ज्ञान-...
हुआ। अतः संज्ञासे सम्बद्ध होक...
और चलने लगे। दूसरा अधोगामी ...
हुआ। फिर तो छायासे अनुप्राणित...
प्राणी क्रिया-कर्मकी ओर प्रवृत्त होने...
संवित्-चेतना—ज्ञानद्वारा श्रेय तथा ह...
क्रियादक्ष होकर प्रेयकी ओर समस्त...
प्रवृत्त हुए।

देवता, मुनि और महर्षियोंने श्रेय तथा...
भगवान् सूर्यके तेजसे ही उपलब्ध किया...
श्रेयोगामिनी शक्ति है। वह मुनि एवं महर्षियों...
संवित्-चेतनाका उदय कराती है। श्रेयोगामी...
संज्ञाका भगवान् सूर्यके पुञ्जीकृत तेजसे...
संयोग होनेपर विद्या नामकी शक्ति उत्पन्न हुई। यह ...
शक्तिके नामसे विख्यात हुई। देवता, मुनि एवं महर्षि...
श्रेयोगामी विद्या शक्तिकी उपासना श्रद्धा-भक्तिसे करते...
'विद्ययामृतमश्नुते'—इस श्रुतिके ...

केन मार्गेणामृतत्वमश्नुत इत्युच्यते तद्यत्तत्सत्यमसौ स आदित्यो य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः (शाङ्करभाष्य)।

उत्तरमें—सत्य ही आदित्य है। उस आदित्यमें विद्यमान हिरण्मय पुरुष ही अमृत है। मुनि, महर्षि और देवताओंने उसी हिरण्मय तेजकी उपासनामयी विद्याके द्वारा अमृत-पान किया। अविद्या प्रेय-मार्गका प्रकाशन करनेवाली शक्ति है। भगवान् सूर्यका अधोव्याप्त तेज छायासे संयुक्त होनेपर यानी छाया और तेजके परस्पर मिलनसे अविद्या नामकी कन्या उत्पन्न हुई। छाया अविद्याकी जननी है। अविद्यासे मनुष्योंको कर्मका मार्ग ही सत्य दिखलायी पड़ता है।

वेद-शास्त्रके जाननेवाले विद्वान् भी प्रेय—ऐहिक विषय-सुख या आमुष्मिक स्वर्गमें प्राप्त भोग-ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये अविद्याकी उपासना करते हैं। अविद्या कर्मका स्वरूप है। कामनासे युक्त होकर कर्म करनेपर अदर्शनात्मक तमोव्यापिनी बुद्धि उदित होती है। इससे मनुष्य परस्परमें न पहचानकर अभिमानके वशीभूत हुए कर्म करते हैं।

सूर्यरश्मि-ग्रह-मण्डल

यथा प्रभाकरो दीपो गृहमध्ये व्यवस्थितः।
पार्श्वेनोर्ध्वमधश्चैव तमो नाशयते समम्॥
तद्वत्सहस्रकिरणो ग्रहराजो जगत्पतिः।
त्रीणि रश्मिशतान्यस्य भूर्लोकं द्योतयन्ति च॥
(—साम्बपु० ७। ५७-५८)

भगवान् सूर्य सम्पूर्ण ग्रहोंके राजा हैं। जिस प्रकार घरके मध्यमें उज्ज्वल दीपक ऊपर-नीचे-सम्पूर्ण घरको प्रकाशित करता है, उसी प्रकार अखिल जगत्के अधिपति सूर्य हजारों रश्मियोंसे ब्रह्माण्डके ऊपर-नीचेके भागोंको प्रकाशित करते हैं।

सूर्यका तेज अग्निकुम्भके समान आकाशके मध्य चमकता है। उस अखण्डमण्डलाकार तेजसे उत्पन्न किरणें ही रश्मि हैं। सूर्य-तेजका प्रकाश तथा अग्निका ऊष्मा परस्पर मिल जानेपर सूर्यकी रश्मि बनती है। सूर्यकी हजारों रश्मियोंमें तीन सौ रश्मियाँ पृथ्वीपर, चार सौ चान्द्रमस पितर-लोकपर तथा तीन सौ देवलोकपर प्रकाश फैलाती हैं। रश्मिके साथ सूर्य-तेजका प्रकाश तथा अग्नि-तेजका ऊष्मा—दोनोंके परस्पर मिश्रणसे ही दिन बनता है। केवल अग्निके ऊष्माके साथ सूर्यका तेज मिलनेपर रात्रि होती है। यथा—

प्रकाश्यं च तथौष्ण्यं च सूर्याग्न्योर्ये च तेजसी।
परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम्॥
(—साम्बपु० अ० ७)

सूर्य दिन-रातमें समान प्रकाश करते हैं। उनकी रश्मियाँ रात्रिमें अन्धकार तथा दिनमें प्रकाश उत्पन्न करती हैं। सूर्यका नित्य प्रकाशमान तेज दिनमें, प्रकाश उष्मामें तथा रात्रिमें केवल अग्नि उष्णमें विद्यमान रहता है। सूर्यकी रश्मियाँ व्यापक हैं। परस्पर मिलकर गरमी, वर्षा-सरदीका वातावरण उत्पन्न करती हैं।

नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठायोनिरेव च।
चन्द्राद्याश्च ग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसम्भवाः॥
(—साम्बपु० ७। ६०)

अखण्डमण्डलाकारमें व्याप्त भगवान् सूर्यका तेज एक है। जिस प्रकार उनकी रश्मियोंसे दिन-रात्रि, गरमी-वर्षा, सरदी उत्पन्न होकर नियमित व्यवहारमें प्रतिष्ठित है, उसी प्रकार चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि ग्रह तथा नक्षत्र-मण्डल सूर्य-रश्मिसे उत्पन्न होकर उसीमें प्रतिष्ठित—अधिष्ठित रहते हैं।

सूर्यकी हजारों रश्मियाँ हैं—जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है; उनमें सात रश्मियाँ मुख्य हैं। ये

सात रश्मियाँ ही ग्रह-नक्षत्र-मण्डलकी प्रतिष्ठा मानी गयी हैं। ये सात रश्मियाँ क्रमशः (१) सुषुम्णा, (२) सुरादना, (३) उदन्वसु-संयद्वसु, (४) विश्वकर्मा (५) उदावसु, (६) विश्वव्यचा, अर्वाग्वसु तथा (७) हरिकेश हैं। उक्त रश्मियोंका कार्य क्रमशः इस प्रकार है—

१-सुषुम्णा-यह रश्मि कृष्णपक्षमें क्षीण चन्द्रकलाओंपर नियन्त्रण करती है और शुक्लपक्षमें उन कलाओंका आविर्भाव करती है। चन्द्रमा सूर्यकी सुषुम्णा रश्मिसे पूर्णकला प्राप्त करके अमृतका प्रसारण करते हैं। संसारके सभी जड़-चेतन प्राणी चन्द्रमाकी पूर्णकलासे क्षरित अमृतको सूर्य-रश्मिसे उपलब्धकर जीवित रहते हैं।

२-सुरादना-चन्द्रमाकी उत्पत्ति सूर्यसे मानी गयी है। सूर्यकी रश्मिसे ही देवता अमृत-पान करते हैं। इसलिये वे चन्द्रमाके नामसे विख्यात हैं। चन्द्रमामें जो शीत किरणें हैं, वे सूर्यकी रश्मियाँ हैं। इसीसे चन्द्रमा अमृतकी रक्षा करते हैं।

३-उदन्वसु-इस सूर्य-रश्मिसे मङ्गल ग्रहका आविर्भाव हुआ है। मङ्गल प्राणिमात्रके शरीरमें रक्त संचालन करते हैं। इसी रश्मिसे प्राणिमात्रके शरीरमें रक्तका संचालन होता है। यह सूर्य-रश्मि सभी प्रकारके रक्त-दोषसे प्राणियोंको मुक्त कराकर आरोग्य, ऐश्वर्य तथा तेजका अभ्युदय कराती है।

४-विश्वकर्मा-यह रश्मि बुध नामक ग्रहका निर्माण करती है। बुध प्राणिमात्रके शुभचिन्तक ग्रह हैं। इस रश्मिके उपयोगसे मनुष्यकी मानसिक उद्विग्नता शान्त होती है—शान्ति मिलती है।

५-उदावसु-यह रश्मि बृहस्पति नामक ग्रहका निर्माण करती है। बृहस्पति प्राणिमात्रके अभ्युदय—निःश्रेयसप्रदायक हैं। गुरुके अनुकूल-प्रतिकूलमें मनुष्य-उत्थान-पतन होता है। इस सूर्य-रश्मिके सेवनसे मनुष्यके सभी प्रतिकूल वातावरण निरस्त होते और अनुकूल वातावरण उपस्थित होते हैं।

६-विश्वव्यचा-इस सूर्य-रश्मिसे शुक्र नामक ग्रह उत्पन्न हुए हैं। शुक्र वीर्यके अधिष्ठाता हैं। मनुष्यका जीवन शुक्रसे ही निर्मित होता है। शनिदेव मृत्युके अधिष्ठाता हैं। जीवन एवं मृत्यु दोनोंका नियन्त्रण उक्त सूर्यकी रश्मिसे है, जिसके कारण संसारके प्राणी जन्मके उपरान्त पूर्ण आयु व्यतीत—उपभोग करके मरते हैं।

७-हरिकेश-आकाशके सम्पूर्ण नक्षत्र इसी सूर्य-रश्मिसे उत्पन्न हुए हैं। नक्षत्र-कार्य प्राणिमात्रके तेज, बल और वीर्यका क्षरण-दक्षतासे रक्षण करना है। यह सूर्य रश्मि नक्षत्र, तेज, बल, वीर्यके प्रभावसे प्राणीके आचरित शुभ-अशुभ कर्मफलको मरणोपरान्त परलोकमें प्रदान करती है।

> क्षणा मुहूर्ता दिवसा निशाः पक्षास्तथैव च।
> मासाः संवत्सराश्चैव ऋतवोऽथ युगानि च॥
> तदादित्यादृते ह्येषां कालसंख्या न विद्यते।
> कालादृते न नियमो नाग्नेर्विहरणं क्रिया॥
> (साम्बपु०, अ० ८। ७-८)

भगवान् सूर्य काल-रूपमें—अविचल प्रतिष्ठामें स्थित हैं। क्षणसे भी सूक्ष्मातीत काल हैं। यह क्षणकी अवस्थासे अतीत होनेके कारण अत्यन्त सूक्ष्मस्वरूप माने गये हैं। कालसे अतीत अन्यतम अवस्था नहीं होती। यद्यपि उनकी अवस्था आध्यात्मिक दृष्टिसे सूक्ष्मातीत मानी गयी है तथापि लोकव्यवहारकी दृष्टिमें क्षण, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष—ये सब कालकी अवस्था माने गये हैं। मृत्यु और अमृत—ये दोनों कालरूप सूर्यके अवयव हैं, इनके द्वारा भगवान् सूर्य कालके रूपमें क्षणसे संवत्सर-पर्यन्तकी अवस्थाका उपयोग करते हैं। जब सारा संसार प्रलयमें कालसूर्यके मुखमें कवलित होने लगता है, तब

कालरूप सूर्य मृत्युके आकारमें दिखलायी पड़ते हैं। जिस अवस्थामें काल-सूर्यके तेजसे संहारका आविर्भाव होने लगता है, उस अवस्थामें भगवान् सूर्य-काल अमृतके रूपमें साक्षात् होते हैं।

वस्तुतः—

सूर्यात् प्रसूयते सर्वं तत्र चैव प्रलीयते।
भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा॥
(साम्बपु० ८।५)

प्रलय—मृत्युके समय समस्त संसारको रूपका अभाव रहता है। उत्पत्तिके समय सभी संसार अमृतसे व्याप्त भाव-स्वरूप दिखलायी पड़ता है। भाव तथा अभावकी अवस्था कालरूप भगवान् सूर्यसे उत्पन्न होती है। सूर्यके ऊपर गमन करनेवाली द्युलोकगामी संज्ञारश्मि अमृत है। आदित्यमण्डलमें विद्यमान अन्तर्यामी परमात्मा रश्मिमय-ज्योतिर्मय-हिरण्यपात्रसे आच्छन्न हैं।

रश्मीनां प्राणानां रसानां च स्वीकरणात् सूर्यः (शांकरभाष्य) सूर्यरश्मि ही सम्पूर्ण प्राणियोंकी प्राण-शक्ति है। वह दिव्य अमृत-रससे प्राणियोंको जीवन प्रदान करती है। गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, उष्णिक्—ये सात व्याहृतियाँ सूर्यके सप्तरश्मिसे उत्पन्न हुई हैं। व्याहृतियाँ रश्मियोंके अवयव हैं; जिनके द्वारा ज्ञान (चेतना-संवित्) संज्ञा उपलब्ध होती है। वैदिक कालके मुनि, महर्षि सूर्य रश्मि पान करके सूर्य-रश्मिके अवयव सप्त-व्याहृति तथा सम्पूर्ण वेदका साक्षात् अनुभव करते थे यानी सूर्यरश्मिके प्रभावसे व्याहृति एवं ऋग्यजु-साम-अथर्ववेद मुनि-महर्षियोंके हृदयमें आविर्भूत हो जाते थे। महर्षि याज्ञवल्क्यने इन्हीं सूर्य-रश्मियोंको पीकर ही व्याहृति एवं वेदको अन्तर्मानसमें आविर्भूत किया था। (क्रमशः)

सूर्योपासनासे श्रीकृष्ण-प्राप्ति

(लेखक—पूज्य श्रीरामदासजी शास्त्री महामण्डलेश्वर)

भगवान् भुवनभास्कर मानवमात्रके उपास्यदेव हैं। विश्वके सभी धर्मों, मतों, पंथों एवं जाति-उपजातियोंमें भगवान् श्रीआदित्यनारायणके श्रीचरणोंमें श्रद्धाके फूल चढ़ाये जाते हैं। भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं, नित्य दर्शन देते हैं एवं नित्य पूजा ग्रहण करते हैं। उनके अमोघ [illegible] यात्राको [illegible] विराजमान हैं। समस्त वैदिक क्रियाओंके मूल कारण होनेसे ऋषियोंने विविध प्रकारसे उनके गुणोंका गान किया है। सूर्यरूप श्रीहरिका ही माया उपाधिके कारण देश, काल, क्रिया, कर्ता, करण, कर्म, योगादि वेदमन्त्र, द्रव्य और व्रीहि आदि फलरूपमें नौ प्रकारका वर्णन किया गया है—

एक एव हि लोकानां सूर्य आत्माऽऽदिकृद्धरिः।
[illegible]॥
देशः क्रिया कर्ता करणं कार्यमागमः।
[illegible] प्रह्वन् नवधोक्तोऽजया हरिः॥
(श्रीमद्भा० १२।११।३०-३१)

[illegible] समुचित रूपसे चले—इसलिये वर्षके [illegible] साथ ये ही भ्रमण [illegible] इनकी स्तुति करते [illegible] गायन, नृत्य करती

है, [illegible] है, [illegible] करते रहते हैं । इस प्रकार [illegible] भगवान् सूर्य [illegible] हैं —

एवं ह्यनादिनिधनो भगवान् हरिरीश्वरः ।
कल्पे कल्पे स्वमात्मानं व्यूह्य लोकानवत्यजः ॥
(श्रीमद्भा० १२ । ११ । ५०)

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान् सूर्य उक्त लोकसंरक्षण, लोकोंके मार्गदर्शन, लोकपालोंके [illegible] एवं जगत्के प्राणियोंके लिये कल्पतरुस्वरूप हैं । अन्य नित्यनैमित्तिक कर्मोंकी भाँति सूर्य-उपासना भी हमारे जीवनका एक अङ्ग है, 'उदिते जुहोति अनुदितेजुहोति' आदि वाक्योंके द्वारा साधक अपने अन्तःकरणकी [illegible] दूर करता है । [illegible] बुद्धिको [illegible] लिया जाता है ।

तात्पर्य यह है कि जब जीव भगवान् सूर्यकी उपासनाके द्वारा [illegible] और [illegible] तब वह पुण्य-पापादिसे [illegible] परमपदको प्राप्त कर लेता है —

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं
कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय
निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥
(—मुण्डक ३ । १ । ३)

आदित्यो वै प्राणः

(लेखक—स्वामी श्रीओंकारानन्दजी आदिबदरी)

अपने दोनों पाँवोंको फैलाकर मृगराजने अँगड़ाई ली और भुवन-भास्करके स्वागतमें कुमकुम बिखेरती उषा देवीकी ओर ऊर्ध्व मुखकर 'आऽऽओऽऽम' का गम्भीर नाद किया । ओंकारके उत्तरोत्तर द्रुत क्रमबद्ध तृतीय निनादने चञ्चल भावनाओंको भयभीत करनेकी ही भाँति मृग एवं शशकसमूहोंको प्रकम्पित कर दिया और वे झाड़ियोंकी ओटमें दुबक गये । सूर्योदय हो रहा था—'यत्पुरोदयात्स हिंकारस्तदस्य पशवोऽन्वायत्तास्तस्मात्ते हिं कुर्वन्ति' (छान्दोग्योपनिषद् २ । ९ । २) ।

धेनुओंने 'हंऽऽ बांऽऽ' की ध्वनिकर भगवान् सूर्यका स्वागत किया और बछड़े पीठपर पूँछ रखकर पयःपान-हेतु बन्धनमुक्त होनेके लिये उतावले हो उठे । ग्राम-वधूने चक्कीकी लयपर सुर मिलाते हुए अपनी प्रभातीके अन्तिम पंक्ति समाप्त की—'उठो लालजी

अपने गीले कौपीनको एक ओर फैलाकर ब्रह्म-मुहूर्तमें ही गङ्गा-स्नानकर लौटे वैदिक महर्षिने मन्दिरके प्राङ्गणमें लगे घण्टेका निनाद किया और उनकी वाणी फूट पड़ी—

अपसेधन् रक्षसो यातुधाना-
नस्थाद् देवः प्रतिदोषं गृणानः ।
ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासो-
ऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ॥
(—ऋ० १ । ३५ । १०)

'हे स्वर्णायुत किरणोंवाले, प्राणशक्तिप्रदाता, उत्तम नेता, सुखदाता, निज शक्तिसे सम्पन्न देव ! यहाँ पधारें । प्रत्येक रात्रिमें स्तुति किये जानेपर राक्षसों तथा यातना देनेवालोंको दूर करते हुए सूर्यदेव, यहाँ शुभागमन करें ।'

वेदमन्त्रकी इन ऋचाओंके उद्घोषके साथ ही सारथि अरुणने अपने स्वामी आदित्यके [illegible]

दा दिया। दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं। इसे देख उपासकने सिर झुकाया—

आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर।
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते॥

'विश्वके कण-कणके नियामक प्रत्यक्ष देव भगवान् दिवाकरका शुभागमन इतना आह्लादकारी है कि उसकी तुलना अवर्णनीय है। सतत गतिशील अद्भुत आभा-युक्त, हिरण्य-वल्गाओं-(किरणों-) से अलंकृत रथारूढ, चित्र-विचित्र किरणोंसे अन्धकारका नाश करनेवाले भगवान् आदित्य बढ़ रहे हैं'—

अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं
हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम्।
आस्थाद् रथं सविता चित्रभानुः
कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः॥
(—ऋ० १।३५।४)

अपनी उपासनामें निरन्तर ध्यानरत सुकेशा, सत्यकाम, गार्ग्य, कौसल्य, वैदर्भी तथा कबन्धीका अनुष्ठान वर्षों चलता रहा। सभीका शोधविषय परब्रह्मका अन्वेषण था। सभीने अपने-अपने मतानुसार परब्रह्मका विवेचन किया और अन्तमें अपने विषयके समापन-प्रतिपादनहेतु वे भगवान् पिप्पलादके समीप उपस्थित हुए। सभीके हाथोंमें समिधा देखकर ब्रह्मज्ञानी महर्षि समझ गये कि ये सभी विधिवत् ब्रह्मविद्या-प्राप्तिहेतु आये हैं। गुरु-शिष्यकी वैदिक परम्परानुरूप पिप्पलादने कहा—'तुम सभी तप, इन्द्रिय-संयम, ब्रह्मचर्य और श्रद्धासे युक्त हो; गुरु-निष्ठानुरूप एक वर्ष आश्रममें निवास करो' तत्पश्चात् मैं तुम्हारी शङ्काओंका समाधान करूँगा।'

गुरुकुलवासकी अवधिको कुशलतापूर्वक निर्वहन कर महर्षि कात्यके प्रपौत्र कबन्धीने मुनि पिप्पलादसे पूछा—'भगवन्! ये सम्पूर्ण प्रजाएँ किससे उत्पन्न होती हैं?'—

'भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति।' तब पिप्पलादने गम्भीर गिरामें कहा—

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः॥ अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते॥ यद्दक्षिणाम्······ सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजाना-मुदयत्येष सूर्यः॥
(—प्रश्नो० १।५—८)

'निश्चय ही, आदित्य ही प्राण और चन्द्रमा ही रयि हैं। सभी स्थूल और सूक्ष्म मूर्त और अमूर्त रयि ही हैं, अतः मूर्ति ही रयि है। जिस समय उदय होकर सूर्य पूर्व दिशामें प्रवेश करते हैं, उससे पूर्व दिशाके प्राणोंको सर्वत्र व्याप्त होनेके कारण अपनी किरणोंमें उन्हें प्रविष्ट कर लेते हैं। इसी प्रकार सभी दिशाओंको वे आत्मभूत कर लेते हैं। वे भोक्ता होनेके कारण वैश्वानर, विश्वरूप प्राण और अग्निरूप हो प्रकट होते हैं। ये सर्वरूप, ज्ञानसम्पन्न, समस्त प्राणोंके आश्रयदाता सूर्य ही सम्पूर्ण प्रजाके जनक हैं।'

महान् वैज्ञानिक लार्ड केल्विनने सूर्यकी आयु पचास करोड़ वर्ष आँककर जो भूल की थी या हेल्म होल्ट्जके सूर्य-सम्बन्धी अन्वेषण आजके वैज्ञानिक वैट्रिक सूर आदि अमान्य घोषित कर चुके हैं, उन सभीको हमारी उपनिषदें चुनौती देती प्रतीत होती हैं। वे न तो सूर्यके विकीरणका कारण गुरुत्वाकर्षणीय आकुञ्चन मानती हैं और न सूर्यको हाइड्रोजनसे हीलियममें परिवर्तित द्रव्यकी संज्ञा देती हैं, वरन् अपने निश्चयका डिमडिम घोष करती हैं कि 'आदित्यो ब्रह्म'। सूर्य-सम्बन्धी वैज्ञानिक छान्दोग्योपनिषद्के इकोसवें खण्डका सूक्ष्म अध्ययन करें तो उन्हें सूर्य-सम्बन्धी वैदिक मान्यताओंका ज्ञान हो जायगा। सूर्यके भाग्यके साथ जुड़ी पृथ्वीके रहस्य सूर्यको बिना समझे अधूरे रहेंगे। अस्तु,

[illegible] है और [illegible] हो, [illegible] है।

अग्निहोत्री पुरुष दीप्तिमान् अग्निशिखाओंमें आहुतियों-द्वारा अग्निहोत्रादि कर्मोंका जो आचरण करता है, उस यजमानकी आहुतियोंको देवताओंके स्वामी इन्द्रके पास ले जानेका मुख्य कार्य सूर्यकिरणोंद्वारा ही सम्पन्न होता है—

> एहोहीति तमाहुतयः सुवर्चसः
> सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति।
> (—मुण्डक० २।६)

रंग-बिरंगे सुन्दर सुगन्धित पुष्प, सुस्वादु फलोंसे भरे हुए 'अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम्'का प्रतिपादन करती-लहलहाती फसलें—इन सभीका आधार आदित्य ही तो हैं।

प्रभाकर उदीत होते हुए भी प्रजाओंके अन्न-उत्पत्तिके लिये उद्गान करते हैं। इतना ही नहीं, वे उदित होकर अन्धकार एवं तज्जन्य भयका भी नाश करते हैं।

> अथाधिदैवतं य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीतोद्यन्वा एष प्रजाभ्य उद्गायति उद्यंस्तमोभयमपहन्त्यपहन्ता ह वै भयस्य तमसो भवति य एवं वेद ॥
> (—छान्दो० १।३)

विभावसुकी विभिन्न दृष्टियोंसे उपासना—जैसे बृहत्सामोपासना, आध्यात्म तथा आधिदैविक उपासना, आत्मयज्ञोपासना, विराट्कोपोपासना आदिका विशद विवरण इसी उपनिषद्में विस्तारपूर्वक समझाया गया है। महर्षियोंने इसी प्रकारके व्रत-ग्रहणसे आत्माको दीक्षित किया और जीवनको यज्ञ बनाकर उस सत्यको उपलब्ध किया जो ब्रह्माण्डको धारण करनेवाला मध्यबिन्दु बना।

[illegible]

> [illegible]
> ([illegible])

वे आठ वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, [illegible] प्रजापति हैं। अर्जुनके [illegible] देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—मैं अदितिके पुत्रोंमें विष्णु और ज्योतियोंमें [illegible] हूँ। 'आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्' (गीता १०।२१) यदि भगवान् की उक्ति [illegible] तो सभी [illegible] हो जायँ। [illegible] भगवान्‌को ही देखते हैं—'आदित्यदिव्यधामुर्दं[illegible] हिरणी' (ऐतरेय० १२।४) [illegible] ऋषि सूर्यके [illegible] हैं—

> नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे
> जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ।
> त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे
> विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने ॥
> यस्योदयेनेह जगत् प्रबुध्यते
> प्रवर्तते चाखिलकर्मसिद्धये।
> ब्रह्मेन्द्रनारायणरुद्रवन्दितः
> स नः सदा यच्छतु मङ्गलं रविः ॥

मन्त्र-ब्राह्मणके उस उपदेशके स्वरमें स्वर मिलाकर आइये हम सब भी उस सङ्कल्पको दोहरायें।

> सूर्य व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि॥

हे व्रतपति सूर्य! आजसे मैं अनृत (असत्य) से सत्यकी ओर, अज्ञानसे प्रकाशकी ओर जानेका व्रत ले रहा हूँ। आपको उसकी सूचना दे रहा हूँ। मैं उसे निभा सकूँ। उस मार्गपर आगे बढ़ सकूँ।

परब्रह्म परमात्माके प्रतीक भगवान् सूर्य

(लेखक—स्वामी श्रीज्योतिर्मयानन्दजी महाराज मियामी-फ्लोरिडा, संयुक्त राज्य, अमरीका)

अति प्राचीन कालसे आजतक किसीने मानवके मस्तिष्कको इतना आकृष्ट एवं चमत्कृत नहीं किया है, जितना कि पूर्वमें उदित हो अनन्त आकाशमें विचरण करते हुए पश्चिममें अस्त होनेवाले परम तेजस्वी एवं अतुल्य भगवान् सूर्यने किया और इनकी किरणोंके बिना इस पृथ्वीपर प्राणिमात्रका जीवन सम्भव नहीं है। प्रायः सभी व्यक्ति इन परम तेजस्वी भगवान् सूर्यका स्वागत एवं पूजन करते हैं। समयकी कल्पना, दिन और रातका आवागमन, मास एवं ऋतुओंका विभाजन तथा चन्द्रमाके क्षय एवं वृद्धिद्वारा कृष्ण एवं शुक्ल-पक्षोंका होना आदि—सभी व्यावहारिक बातें मानव-जीवनको निरन्तर प्रभावित करती हैं। इन सबके कारण भगवान् सूर्य ही हैं। अनादिकालसे ही मनुष्य-जीवनकी अनन्त प्रेरणाओं एवं इच्छाओंको पूर्ण करनेके भावमय मन्त्र वेदमें अभिव्यक्त हैं—

'असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मामृतं गमय।'

प्रभो! आप मुझे असत्‌से सत्‌की ओर, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर तथा मृत्युसे अमृतत्वकी ओर ले चलें। अन्धकारमय जागतिक प्रपञ्चोंमें आत्मप्रकाशकी ओर चलना ही मानव-जीवनकी उचित यात्रा है। माया, मोह या अज्ञान—ये समस्त सत्य शक्तियोंके विरुद्ध एक निरन्तर संघर्ष हैं· ` `. घृणा, हिंसा, लोभ भरके समस्त मन्दिरों, चर्चों एवं पूजनीय स्थानोंमें दीपक जलाये जाते हैं। गीताने भी उस अनन्तका वर्णन—'ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते'—अन्धकारके परे एवं प्रकाशोंका भी प्रकाश आदिरूपसे किया है। निदान, परब्रह्म ज्योतियोंका भी ज्योति है। जो मायासे अत्यन्त परे कहा जाता है, वह परमात्मा बोधस्वरूप, जाननेयोग्य (ज्ञेय) एवं तात्त्विक ज्ञानसे प्राप्त करने योग्य है। पर वह तो सबके हृदयमें ही विराजमान है। उपनिषदोंके द्रष्टा ऋषि कहते हैं—'भूः भुवः तथा स्वः'—इन तीन लोकोंके अधिष्ठाता उस श्रेष्ठ कल्याणकारी सूर्यदेवताके 'भर्ग'का हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धिको सन्मार्गके प्रति प्रेरित करता है। सूर्योपनिषद्‌के अनुसार सूर्य सम्पूर्ण विश्वके आत्मा हैं। मृत्युसे रक्षा पानेके लिये उन्हें प्रणाम किया जाता है। सूर्योपनिषद्‌के अनुसार सूर्यसे ही समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति एवं रक्षा होती है तथा सूर्यमें ही उन सबका अवसान होता है। मैं वही हूँ, जो सूर्य है—

'नमो मित्राय भानवे मृत्योर्मा पाहि।
भ्राजिष्णवे विश्वहेतवे नमः॥
सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च॥
(—सूर्योपनिषद् २।४)

देवयान एवं पितृयान (धूम्रमार्ग तथा अर्चिमार्ग)—

उपनिषदोंने श्रेय और प्रेयके दो मार्ग बतलाये हैं। ·ो देवयान या अर्चिमार्ग तथा दूसरेको पितृयान धूम्रमार्ग कहा है। श्रेयोमार्गके पथिक अर्चिमार्गका ·· करते हुए मुक्ति प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत ·· करते हैं, वे निरन्तर जन्म एवं ·· रहते हैं। पहलेवालेने मार्गका अनुसरण

करनेवाले शाश्वत सूर्यकी ओर जाते हैं। प्रेयोमार्गवाले इन्द्रियोंके मिथ्या सुखमें मोहित हुए रहते हैं। इनके अतिरिक्त एक तीसरा अन्य मार्ग भी उन लोगोंके लिये है, जो पापपूर्ण कार्योंमें सदा लिप्त हैं। उनके लिये जो मार्ग है, वह अन्धकार एवं नारकीय यातनाओंसे सम्पन्न है। अज्ञानमार्गका अनुसरण करनेवाले पापी नरकको प्राप्त करते हैं। जो गुणवान् हैं, किंतु अहंभावसे पूर्ण होनेके कारण माया-मोहको दूर करनेमें असमर्थ हैं, वे अपने इन कर्मोंके द्वारा स्वर्गको प्राप्त होते हैं। वहाँके स्वर्गीय आनन्दोंका अनुभव करके पुनः इस मृत्युलोकमें लौट आते हैं। ये दोनों दक्षिणायन या धूम्रमार्गका अनुसरण करनेवाले हैं। जो बार-बार सांसारिक जन्म-मरणकी आवृत्ति करता है, किंतु अहंभावसे उत्पन्न माया-मोहको नष्टकर जिसने परमात्मासे एकत्व स्थापित कर लिया है, वह पाप-पुण्यसे मुक्त होकर कर्म एवं उनके फलोंसे ऊपर उठकर आत्म-प्रकाशको प्राप्त कर लेता है। इन्हें ही अर्चिमार्गका अनुयायी कहा गया है। पिप्पलाद मुनि कहते हैं—

अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया
विद्ययात्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते।
एतद्वै प्राणानामायतनमेतदमृतमभय-
मेतत्परायणमेतस्मान्न पुनरावर्तन्ते
(—प्रश्नोपनिषद् १।१०)

जिन्होंने आध्यात्मिक दृष्टिसे विश्वासपूर्वक ब्रह्मचर्य तथा तपस्यासे अपने जीवनको सूर्यरूपी ईश्वरकी खोजमें लगा दिया है, वे उत्तरी मार्गसे जाते और सूर्यलोकको प्राप्त करते हैं। ये दिव्य सूर्य प्राणोंके मूलस्रोत हैं। वह अमृतमय, निर्भय तथा सर्वोत्कृष्ट स्थान है, जहाँसे किसीको पुनरागमनरूप संसृतिचक्रमें लौटना नहीं पड़ता। अतः मानवजीवनकी चरमसिद्धिके लिये इन सूर्यदेवकी साधना प्रत्येक मनुष्यका परम कर्तव्य है।

(अनुवादक—शशिशेखर त्रिपाठी, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

वेदोंमें श्रीसूर्यदेवकी उपासना

(लेखक—श्रीदीनानाथजी शर्मा शास्त्री, सारस्वत, विद्यावागीश, विद्यानिधि)

वेदोंमें श्रीसूर्यकी उपासनाकी विवृत्ति भरी हुई है। 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (यजु० माध्यं० ७। ४२) सूर्य चलनशील पदार्थों तथा स्थिर वस्तुओंकी आत्मा हैं। यह सम्पूर्ण जगत् सूर्यके आश्रयसे ही स्थित है। सूर्यके अभावमें यह जगत् नहीं रह सकता। सूर्य ऊष्माके पुञ्ज हैं। जगत्में ऊष्म न होनेपर जल नहीं रह सकता। केवल बर्फ ही रहेगी। सूर्यसे ही अग्नि तथा विद्युत् प्राप्त होती है। बल्कि जड भी सूर्यकी कृपासे ही प्राप्त होता है। वार्तिकके विवरणमें कहा गया है—'सर्वं चेतनावत्' वस्तुतः सभी पदार्थ चेतनावान् हैं।

'दुष्कृताय चरकाचार्यम्'में एक आधुनिक विद्वान्ने लिखा है—वस्तुतः अभिमानी देवताकी कल्पना भी अर्वाचीन विद्वानोंद्वारा सृष्ट है। प्राचीन आचार्य 'अचेतनेषु चेतनावत्' अर्थात्—अचेतनमें चेतनवत् व्यवहार औपचारिक (गौण) मानते थे। इसी नियमसे ही 'शृणोत ग्रावाणः' (कृ० य० तै० सं० १। ३। १३। १) आदि वैदिक वाक्योंका ...

'चेतनावत्' पाठ है, 'चेतनवत्' नहीं और यहाँ 'मतुप्' प्रत्यय है, 'वति' नहीं। (अर्थात् सभी पदार्थ चेतनावाले हैं, न कि चेतनके समान।)

उक्त वार्तिकके विवरणमें महाभाष्यमें कहा है—'अथवा सर्वं चेतनावत्।' एवं हि आह—'कंसकः सर्पति, शिरीषोऽयं स्वपिति, सुवर्चला आदित्यमनु पर्येति।' अयस्कान्तमयः संक्रामति। ऋषिश्च (वेदम्) पठति—'शृणोत ग्रावाणः'। (कृ० य० तै० सं० १।३।१३।१)

उपर्युक्त वाक्योंको देकर सिद्ध किया गया है कि सभी दीख रही जड़ वस्तुएँ वेदानुसार चेतन हैं। श्रीकैयट तथा नागेशभट्टने भी यही सिद्ध किया है। वार्तमानिक विज्ञान भी यही सिद्ध करता है। इन अपूर्व बातोंको देखकर वैज्ञानिकोंकी यह धारणा हो गयी है कि समस्त चराचरमें सारभूत वस्तु कोई भी नहीं और संसारमें कोई पदार्थ भी जड़ नहीं है। इसी कारण वैज्ञानिक लोग सूर्यमें भी प्रसन्नता-अप्रसन्नताके परमाणु मानने लगे हैं।

इसका विवरण इस प्रकार है—कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी —लंदनमें सूर्यके विषयमें एक लेक्चर हुआ था। उस व्याख्याताने कहा—उत्तरी अमेरिकाके ग्रेनलैंड प्रदेशमें एक दफीने (माणिक्य)का खोदना शुरू हुआ था। वहाँ दफीना तो मिला नहीं, एक देवमन्दिर अवश्य मिला। उसमें सूर्यकी एक मूर्ति है, उसके सामने एक हिंदू व्यक्ति प्रणाम कर रहा है। सामने ही अग्निसे धुआँ उठ रहा है, जिससे मालूम होता है कि अग्निमें कुछ सुगन्धित द्रव्य डाला गया है। इधर-उधर फूल पड़े हैं। यह सब दृश्य पत्थरोंसे बनाया गया है।

इस विचित्र सूर्य-मन्दिरसे मालूम हुआ कि किसी युगमें हिंदुओंका राज्य अमेरिकातक फैला था। इसके अतिरिक्त यह भी मालूम हुआ कि हिंदुओंका विश्वास था कि सूर्य प्रसन्न तथा अप्रसन्न भी हो सकते हैं। यदि ऐसा न होता, तो एक हिंदू सूर्यको इस प्रकार नमस्कारादि पूजा क्यों करता? इस विषयको लेकर वैज्ञानिक संसारमें क्रान्ति उत्पन्न हो गयी।

मिस्टर जार्ज नामक किसी विज्ञानके प्रोफेसरने सूर्यके विषयमें यह परीक्षा की कि सूर्यमें कृपाशक्ति है या नहीं? हिंदुओंकी सूर्यपूजाका पता भारतीय प्राचीन इतिहाससे पहले ही था। मिस्टर जार्जने सोचा कि हिंदुओंकी सूर्योपासना क्या मूर्खतापूर्ण थी या वास्तविक? इसकी एक दिन रोचक परीक्षा हुई। मईका महीना था। पूरे दोपहरके समय केवल पजामा पहनकर मि० जार्ज नंगे शरीर धूपमें ठहरे। पाँच मिनट सूर्यके सामने ठहरकर वे कमरेमें गये। थर्मामीटरसे उन्होंने अपना तापमान देखा। तीन डिग्रीतक बुखार चढ़ा था। दूसरे दिन उस महाशयने श्रद्धासे फूल-फलोंका उपहार तैयार किया। अग्निमें धूप जलाया। अब वे पूरे दोपहरमें नंगे शरीर धूपमें गये। उन्होंने सूर्यके सामने श्रद्धासे फूल-फल चढ़ाये। हाथ जोड़कर प्रणाम किया। जब वे अपने कमरेमें गये तो उन्होंने देखा कि आज वे ग्यारह मिनटतक सूर्यके सामने रहे। थर्मामीटरसे मालूम हुआ कि आज उनका तापमान नार्मल (सामान्य) रहा। उसका पारा ठंडककी ओर रहा।

इससे उन्होंने यह परिणाम निकाला कि सूर्य केवल अग्निका गोला और जड़ है, वैज्ञानिकोंका यह सिद्धान्त गलत है। उसमें प्रसन्नता और अप्रसन्नताका तत्त्व भी विद्यमान है। यह विवरण बरालोकपुर (इटावा)की 'अनुभूत योगमाला' पत्रिकामें छपा था। वेदमें सूर्यके लिये कहा है—'इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः' (ऋ० १।१६४।२१)—इससे सूर्यको बुद्धियुक्त बताया गया है और 'धियो यो नः प्रचोदयात्' (यजु० माध्यं० ३।३५)—इस मन्त्रके द्वारा उसी सूर्यसे धार्मिक लोग बुद्धिकी प्रार्थना किया करते हैं।

वैदिक वाङ्मयमें सूर्य और उनका महत्त्व

(लेखक—आचार्य पं० श्रीविष्णुदेवजी उपाध्याय, नव्यव्याकरणाचार्य)

विश्वमें जीवन और गतिके महान् प्रेरक, हमारी इस ीको अपने गर्भसे उत्पन्न करनेवाले और गतिमान्के में सम्पूर्ण संसारके सभी गतिमानोंमें प्रमुख सूर्य[1] ाचर विश्वके संचालक; घटी, पल, अहोरात्र, मास ऋतु आदि समयके प्रवर्त्तक प्रत्यक्ष देवता हैं। उनका र सौर-मण्डल-वाचक शब्दके (व्युत्पत्ति-मूलक ारस्यके) अनुरूप है। यही कारण है कि सूर्यकी रचनामें सौर-शरीरका भान बराबर बना रहता है[2]।

ऋग्वेदमें सूर्यदेवको चौदह सूक्त समर्पित हैं। इन सूक्तोंमें प्रायः सूर्य शब्दसे भौतिक सौर-मण्डलका बोध होता है; यथा—ऋषि हमें बतलाते हैं कि आकाशमें सूर्यका ज्वलन्त प्रकाश मानो अमूर्त अग्निदेवका मुख है[3]। मृतककी चक्षु (आँखें) उसमें चली जाती हैं[4]। सूर्य विराट् ब्रह्मकी आँखोंसे उत्पन्न हैं। वे सूर्यदेव दूरद्रष्टा[5], सर्वद्रष्टा[6] और अशेष जगतीके सर्वेक्षक हैं[7]।

---

१. 'सरति गच्छति वा सुवति प्रेरयति वा तत्तद् व्यापारेषु कृत्स्नं जगदिति सूर्यः। यद्वा सुष्ठु ईर्यते प्रकाशप्रवर्षणादि- ापारेषु प्रेर्यते इति सूर्यः'।—(ऋग्वेद ९। ११४। ३ पर सायण)

और भी देखें—'सूते श्रियमिति सूर्यः' (विष्णुसहस्रनाम १०७ पर आचार्य शंकर); 'स्वरति—आचरति र्मं स्वीर्यते अर्च्यते भक्तैरिति सूर्यः' (निघण्टु ३। १), तुलनीय—'सूर्यकी निष्पत्ति वैदिक 'स्वर' से हुई, जो ग्रीक elios से सम्बद्ध है'। (मैकडॉनल, 'वैदिक देवशास्त्र', पृष्ठ ६६) तथा—

सूर्यः सरति भूतेषु सुवीरयति तानि वा। सु ईर्यत्वाय यो क्षेपः सर्वकर्माणि सन्दधत्॥

(बृहद्देवता ७। १२८। १)

२. तुलनीय—अपामीवां बाधते वेति सूर्यम्॥ (ऋ० १। ३५। ९)

ौर भी देखें—उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत्॥ (ऋ० १। १२४। १)

३. अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य॥ (ऋ० १०। ७। ३)

४. सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा॥ (ऋ० १०। १६। ३) और भी देखें—(१) चक्षोः सूर्यो अजायत। (ऋ० १०। ९०। १३)

(२) चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः। चक्षुर्धाता दधातु नः॥ (ऋ० १०। १५८। ३)

(३) चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः॥ (ऋ० १०। १५८। ४)

इसीलिये अथर्ववेदमें सूर्यको चक्षुओंका पति बताया गया है और उनसे अपनी रक्षाकी कामना की गयी है—

सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु॥ (अथर्व० ५। २४। ९)

अथर्ववेदमें यह उल्लेख भी है कि वे प्राणियोंके एक नेत्र हैं, जो आकाश, पृथिवी और जलको परोवर (अत्यन्त श्रेष्ठता—निपुणता)से देखते हैं।

सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽतिपश्यति। सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुराचरोह दिवं महीम्॥

(अथर्व० १३। १। ४५)

तुलनीय—'त्वं भानो जगतश्चक्षुः'—(महाभारत ३। १६६)

५. शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु॥ (ऋ० ७। ३५। ८)

और भी देखें—दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत॥ (ऋ० १०। ३७। १)

६. सूराय विश्वचक्षसे॥ (ऋ० १। ५०। २)

७. तं सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः स्पर्शं विश्वस्य जगतो वहन्ति॥ (ऋ० ४। १३। ३)

और अर्यमा लिया गया है[२१] । वरुणने ऐसा क्यों किया ! सम्भवतः इसलिये कि सूर्य मापका साधन है[२२] और इस रीतिसे वरुण अपना काम करते हैं[२३] । अपनी सुवर्णमय नौकाओंसहित पूषा उनका सन्देशवाहक है । पूषाकी नौकाएँ अन्तरिक्षरूपी समुद्रमें संतरण करती हैं[२४] । अग्नि और यज्ञके समान उनको प्रकट करनेवाली भी उषा है[२५] । वे उषाओंके उत्सङ्गमेंसे चमकते हैं[२६] । इसीलिये उन्हें एक स्थानपर उपमाके रूपमें उषाके द्वारा लाया गया श्वेत और चमकीला घोड़ा बताया गया है[२७] । उनके पिता (क्रीडाक्षेत्र) द्यौ हैं[२८] । देवताओंने[२९] उन्हें, जबकि वे समुद्रमें विलीन थे, वहाँसे उभारा[३०] और अग्निके ही एक रूपमें[३१] उन्हें द्यौमें टाँगा[३२] । उनकी उत्पत्ति विश्वपुरुषके नेत्रसे हुई है[३३] । वही विश्वपुरुषके नेत्र भी हैं[३४] । वह एक उड़नेवाले[३५] पक्षी हैं[३६], पक्षियोंमें भी बाज[३७] । वह आकाशके रत्न हैं[३८] । उनकी उपमा एक चित्र वर्णके पत्थरसे दी गयी है, जो आकाशके मध्यमें विराजमान है[३९] । उन ज्योतिष्मान् आयुधको मित्र और वरुण बादल और वर्षासे

---

२१. (ऋ० ७ । ६० । ४ और भी देखें–७ । ८७ । १)

२२. (ऋ० २ । १५ । ३, ऋ० ३ । ३८ । ३)

२३. मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥ (ऋ० ५ । ८५ । ५)

२४. यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति । ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य ॥ (ऋ० ६ । ५८ । ३)

२५. (ऋ० ७ । ८० । २ और भी देखें—ऋ० ७ । ७८ । ३)

२६. विभ्राजमान उषसामुपस्थाद्रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः ॥ (ऋ० ७ । ६३ । ३)

२७. (ऋ० ७ । ७७ । ३; तुल्नीय ऋ० ७ । ७६ । १)

२८. दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत ॥ (ऋ० १० । ३७ । १) द्युलोकसे रक्षा करनेके लिये सूर्यसे की गयी प्रार्थनासे तुल्नीय सूर्यो नो दिवस्पातु ॥ (ऋ० १० । १५८ । १) और भी देखें—सूर्यो द्युस्थानः ॥ (निरुक्त ७ । ५)

२९. इन देवताओंमें इन्द्र, विष्णु, सोम, वरुण, मित्र, अग्नि आदिका नाम उल्लेखनीय है ।

३०. यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत । अत्रा समुद्र आ गूल्हमा सूर्यमजभर्तन ॥ (ऋ० १० । ७२ । ७)

३१. अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देवता अग्नि उसके उपासक पुरोहितोंकी दृष्टिमें द्युलोकमें सूर्यके भीतर प्रवर्तमान अग्निके रूपमें आविर्भूत हुए हैं ।

३२. यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम् ॥ (ऋ० १० । ८८ । ११)

३३. चक्षोः सूर्यो अजायत ॥ (ऋ० १० । ९० । १३)

३४. मुक्तिकोपनिषद्के उस स्थलसे तुल्नीय, जिसमें उन्हें और चन्द्रमाको एक साथ, विराट्रूप परमात्माका नेत्र बताया गया है । 'चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ ।' और भी देखें स्मृतिवचन—चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे ।

३५. उदपप्तदसौ सूर्यः ॥ (ऋ० १ । १९१ । ९)

३६. पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया ॥ (ऋ० १० । १७७ । १) और भी देखें—पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति ॥ (ऋ० १० । १७७ । २ ।) उस मन्त्रसे तुल्नीय, जिसमें उन्हें अरुणको सुपर्ण बताया गया है । उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः ॥ (ऋ० ५ । ४७ । ३)

३७. (ऋ० ७ । ६३ । ५, ऋ० ५ । ४५ । ९)

३८. दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति ॥ (ऋ० ७ । ६३ । ४) और भी देखें—रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् ॥ (ऋ० ६ । ५१ । १)

३९. मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा ॥ (ऋ० ५ । ४७ । ३) और भी देखें—अथ यदमुं संवत्सरं चोऽश्मा पृश्निरसदत्पूर्वं वै समस्मैतत्स्वर्गो ॥ ([illegible] ६ । १ । २ । ३)

आवृत करते हैं[४०] और जब मित्र तथा वरुण उन्हें अपने बादल और वर्षाके आवरणसे मुक्त करते हैं, तो वे मित्र और वरुणके द्वारा आकाशमें छोड़े गये ज्योतिष्मान् रथ प्रतीत होते हैं[४१]।

सूर्य अनिश्चित चराचर (प्रकाशके प्राणियों) के लिये चमकते हैं[४२]। उनका यह चमकना मनुष्यों और देवताओंके लिये एक समान है[४३]। अन्धकारको चर्मके समान लपेटते हुए[४४] वे उसका विध्वंस करते हैं[४५]। इस प्रकार उन्हें अन्धकारके प्राणियों और यातुधानोंको पराजित करते देर नहीं लगती[४६]। वे दिनोंको नापते[४७] और आयुके दिनोंको बढ़ाते हैं[४८]। वे बीमारी और प्रत्येक प्रकारके दुःस्वप्नका विनाश करते हैं[४९]। जीवनका अर्थ ही सूर्योदयका व करना है[५०]। सभी प्राणी उनपर अवलम्बित हैं[५१]। अ महत्ताके कारण वे देवोंके दिव्य पुरोहित (नायक) हैं आकाश उन्हींके द्वारा ठहरा हुआ है[५३]। उन्हें विश्वकर्म कहा गया है[५४]। सभी प्राणियोंको और उनके भले कर्मोंको निहारनेमें समर्थ होनेके कारण[५५] वे मि वरुण और अग्निकी आँख हैं;[५६] अर्थात् मित्र, व और अग्नि उनसे ही सब प्राणियोंके भले-बुरे कर्मों जानकारी प्राप्त करते हैं। इसीलिये ऋग्वेदमें यत्र उनके उदयके समय उनसे प्रार्थना की गयी है वे मित्र, वरुण एवं अन्य देवताओंके समक्ष मनु

४०. (ऋ० ५।६३।४)

४१. सूर्यमाधत्थो दिवि चित्र्यं रथम्॥ (ऋ० ५।६३।७)

४२. उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम्॥ (ऋ० ७।६३।१)

४३. प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान्॥ (ऋ० १।५०।५)

४४. चर्मेव यः समविव्यक् तमांसि॥ (ऋ० ७।६३।१) तुलनीय—दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्वन्तः॥ (ऋ० ४।१३।४)

४५. येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमः॥ (ऋ० १०।३७।४)

४६. उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा। अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः॥ (ऋ० १।१९१।८) और भी देखें—(१) (ऋ० १।१९१।९) (२) (ऋ० ७।१०४।२)

४७. (ऋ० १।५०।७)

४८. (ऋ० ८।४८।७)

४९. (ऋ० १०।३७।४)

५०. ज्योक्पश्यात्सूर्यमुच्चरन्तम्॥ (ऋ० ४।२५।४) और भी देखें—पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्॥ (ऋ० ६।५२।५)

५१. सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा॥ (ऋ० १।१६४।१४)

५२. महा देवानामसुर्यः पुरोहितः॥ (ऋ० ८।१०१।१२)

५३. सूर्येणोत्तभिता द्यौः॥ (ऋ० १०।८५।१)

५४. येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता॥ (ऋ० १०।१७०।४)

५५. [illegible] सूर्य॥ (ऋ० १।५०।७) और भी देखें—(१) ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान्॥ (ऋ० ६।५१।२) (२) उभे उदेति सूर्यो अभिज्मन्। विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्॥ (ऋ० ७।६०।२)

(१) उद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान्। अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत॥ (ऋ० ७।६१।१)

५६. [illegible] वरुणस्याग्नेः॥ (ऋ० १।११५।१) और भी देखें—(१।५२।१; ७।६१।१; ७।६३।१) ओल्डेनबर्ग ने भी [illegible] सूर्य [illegible] वरुण [illegible]

को निष्पाप घोषित करें[५७]। एक स्थलपर घटाओंके मध्य घिर गये सूर्यके आलंकारिक वर्णनका सार है कि इन्द्रने उनका हनन किया[५८] और उनके चक्रको चुरा लिया[५९]। (इन्द्र वर्षा-बादलके देवता हैं।)

सूर्य रात्रिके समय निम्नतलसे यात्रा करते हैं[६०]। उनका रात्रिके एक ओर उदय और दूसरी ओर अस्त होता है[६१]। वे इन्द्रके अधीन हैं[६२]। अग्निमें दी हुई आहुति वे ही प्राप्त करते हैं। उससे वृष्टि, वृष्टिसे अन्न और अन्नसे प्रजाकी उत्पत्ति होती है[६३]। उनको कभी-कभी एक असुर (राहु) छायारूपसे ग्रस लेता है[६४]। अजस्र होनेके कारण सदा प्रकाशित उनका उत्तम पद ही पितरोंका आवास है[६५]। अश्वोंका दान करनेवाले उनके साथ निवास करते हैं[६६]। उनका रक्षक

५७. यदद्य सूर्य ब्रवोऽनागा उद्यन् मित्राय वरुणाय सत्यम्॥ (ऋ० ७।६०।१) और (ऋ० ७।६२।२)

५८. संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत्॥ (१०।४३।५)

५९. मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा॥ (ऋ० १।१७५।४) और भी देखें—यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते। मुषाय इन्द्र सूर्यम्॥ (ऋ० ४।३०।४)

६०. अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः॥ (ऋ० ६।९।१) और (ऋ० ७।८०।१)

सूर्यके रात्रिपथके विषयमें ऐतरेयब्राह्मणका मत यह है कि रात्रिके समय सूर्यकी चमक ऊपरकी ओर होती है और फिर वह इस प्रकार गोल घूम जाता है कि दिनमें उसकी चमक नीचेकी ओर हो जाती है। 'रात्रीमेवावस्तात्कुरुतेऽहः परस्तात्' (३।४४।४)। ऋग्वेदकी एक उक्तिके अनुसार सूर्यका प्रकाश कभी 'रुशत्' अर्थात् चमकनेवाला और कभी 'कृष्ण' होता है। (ऋ० १।११५।५)

एक दूसरे मन्त्रमें वर्णित है कि पूर्वकी ओर सूर्यके साथ चलनेवाला 'रजस्' उस प्रकाशसे भिन्न है, जिसके साथ वह उदय होता है। देखें—(ऋ० १०।३७।३)

६१. (ऋ० ५।८१।४)

६२. यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः॥ (ऋ० १।१०१।३)

६३. अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥
(मनुस्मृति ३।७६)

६४. सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाऽविध्यदासुरः॥ ऋग्वेद, और भी देखें—राहुसे कहा गया है—

पर्वकाले तु सम्प्राप्ते चन्द्रार्कौ छादयिष्यसि। भूमिच्छायागतश्चन्द्रं चन्द्रगोऽर्कं कदाचन॥
(*ब्रह्मपुराण*)

'तुम पूर्णिमा आदि पर्वोंके दिनोंमें चन्द्रमा और सूर्यको आच्छादित करोगे। कभी पृथिवीकी छायारूपसे चन्द्रपर और कभी चन्द्रकी छायारूपसे सूर्यपर तुम्हारा आक्रमण होगा।'

पृथिवीकी छाया चन्द्रमापर पड़नेसे चन्द्रग्रहण और चन्द्रमाकी छाया सूर्यपर पड़नेसे सूर्यग्रहण होनेके वैज्ञानिक रहस्योद्घाटनसे तुलनीय।

६५. यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः। लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधि॥ (ऋ० ९।११३।९)

६६. उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदाः सह ते सूर्येण। हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते वासोदाः सोम प्रतिरन्त आयुः॥ (ऋ० १०।१०७।२)

सूर्यका सांनिध्य प्राप्त करनेवाले एक ऋषिके सम्बन्धमें वर्णित है कि वे ज्ञानद्वारा *स्वर्णिम* हंस बनकर *स्वर्गमें गये* और वहाँ उन्होंने सूर्यका सांनिध्य प्राप्त किया। अह्नीना हाऽऽश्वथ्यः। सावित्रं विदाञ्चकार। स ह हंसो हिरण्मयो भूत्वा स्वर्गंलोकमियाय। आदित्यस्य सायुज्यम्॥ (तै० ब्रा० ३।१०।९।११) और भी देखें—किं तद् यज्ञे यजमानः कुरुते येन जीवन्त्सुवर्गं लोकमेतीति जीवग्रहो वा एष यददाभ्योऽनभिषुतस्य गृह्णाति। जीवन्तमेवैनं सुवर्गं लोकं गमयति॥
(तै० सं० ६।६।९।२-३)

ोटि ब्रह्माण्डोंसे सुशोभित हैं[७१]। प्रत्येक सूर्य सविता[७२] परमात्मा[७३]। तात्पर्य यह है कि सूर्य भौतिक सौर-मण्डल-
। सविता[७६] अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके सूर्योंमें एक के स्थूल देवता हैं, जबकि सविता उनमें अन्तर्निहित
मान विराजमान प्रेरक दिव्यशक्तिरूप परब्रह्म दिव्यशक्तिका ध्यानावस्थित महर्षियोंके अन्तःकरणमें

---

f 186,000 miles per second. The sun is the supreme existence in the whole solar system. All of the sun we are fitted to receive comes to us as the sunshine, illuminating, vivifying, pleasant, bringing into existence all that is *living on this plane*."—*ब्रह्माण्ड इतना बड़ा है कि प्रति सेकंड १८६००० मील चलनेवाली* एक रश्मिको ब्रह्माण्डकी प्रदक्षिणा करनेमें करोड़ों वर्ष लग जायगा। लिटरेरी डाइजेस्टकी इस सम्मतिसे तुलनीय—

"Our own universe—we mean this limited Einsteinian universe—is a thousand million times larger than the region now telescopically accessible to us."—दूरबीनसे जहाँतकका पता लगता है, उससे कई करोड़ मीलतक ब्रह्माण्डका विस्तार है। इस ब्रह्माण्डमें सबसे उत्तम वस्तु सूर्य हैं। उनकी किरणोंमें जो प्राणशक्ति है, उसके बलसे ही विश्वके सब जड़-चेतन पदार्थ उत्पन्न हुए हैं।

७४. आइन्स्टीन (Einstein) के अनुसार ब्रह्माण्डकी सीमा तो है; किंतु इसकी सीमाका पता लगाना असम्भव है। इसके चारों ओर और भी ब्रह्माण्ड होंगे। "...*the universe is finite but unbounded*; 'space being affected with a curvature which makes it return upon itself' Outside, there may be other universes—admits Einstein."

७५. यास्क 'सविता'की परिभाषा करते हुए कहते हैं—'सविता सर्वस्य प्रसविता' (निरुक्त १० । ३१)—'सविता' अर्थात् सबका प्रेरक। आचार्य शंकरके अनुसार, 'सर्वस्य जगतः प्रसविता सविता' (विष्णुसहस्रनाम १०७ पर आचार्य शंकर)। विष्णुपुराणके शब्दोंमें, '*प्रजानां प्रसवनात्सवितेति निगद्यते*' (१ । ३० । १५)। *शतपथब्राह्मणमें कहा गया* है। 'सविता देवानां प्रसविता' (सविता देवोंके भी उपजीव्य हैं) (१ । १ । २ । १७)।

उपर्युक्त परिभाषाओं तथा अन्य मिलती-जुलती अनेक परिभाषाओंके सम्बन्धमें ए० ए० मैकडॉनलके इस व्याख्यात्मक वचनसे प्रकृत विषय तुलनीय कि "सू धातुका, जिससे 'सविता' शब्द बना है, इस शब्दके साथ लगातार प्रयोग हुआ है और वह भी एक ऐसे ढंगसे जो कि ऋग्वेदकी अपनी विशेषता है। उन्हीं कार्योंकी अभिव्यक्ति दूसरे किसी भी देवताके सम्बन्धमें किसी और ही धातुसे की गयी है। *साथ ही 'सविता'के सम्बन्धमें न केवल सू धातुका,* अपितु इससे निष्पन्न अनेक शब्दोंका भी प्रयोग हुआ है, जैसे कि प्रसवितृ और प्रसव। बार-बार आनेवाले इन एक धातुज प्रयोगोंसे स्पष्ट हो जाता है कि इस धातुका अर्थ 'प्रेरित करना', 'उद्बुद्ध करना' और 'प्रचोदित करना' रहा है।"

पुष्टिके लिये इस विशिष्ट प्रयोगके कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने अन्तमें कहा है कि 'स्पष्ट है कि 'सू' धातुका *यह प्रयोग प्रायः सविताके लिये ही हुआ है*। ('वैदिक देवशास्त्र', पृष्ठ ७४–५)

७६. अनेक मन्त्रोंमें सूर्य और *सविता* अविविक्त ढंगसे एक ही देवता बनकर आते हैं। यथा—

ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेज्ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन्। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिश्चेकितानः ॥

(ऋ० ४ । १४ । २)

"सविता देवने अपनी ज्योतिको ऊँचा उभारा है और इस प्रकार उन्होंने समस्त लोकको प्रकाशित किया है; सूर्य चमकते हुए द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्षको अपनी किरणोंसे आपूरित कर रहे हैं"।

सूक्तके प्रथम—(ऋ० ७ । ६३ । १),
([illegible] । २)
चतुर्थ [illegible] । ४)

श्रीसूर्य-तत्त्व-चिन्तन

(लेखक—डा० श्रीत्रिभुवनदास दामोदरदासजी सेठ)

ऋग्वेद कहता है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।
(१ । ११५ । १)

'सूर्य सबकी आत्मा हैं'—प्राणस्वरूप होनेसे वे
की आत्मा हैं । उषाके बाद ही सूर्यका उदय होता
। सूर्यके प्रत्यक्ष देव होनेसे उनकी पूजाके लिये
ी भी प्रकारकी मूर्तिकी आवश्यकता नहीं रहती ।

ऋग्वेद आगे कहता है—

सूर्यस्य संदृशो ययोथाः (२ । ३३ । १)

हम सूर्यके प्रकाशसे कभी दूर न रहें । सूर्य स्थावर-
ङ्गम सभीकी आत्मा हैं । वेदोंने सूर्यका महत्त्व प्रतिपादित
या है । यदि सूर्य न हों तो पलभरके लिये भी
ावर-जङ्गम जगत् अपना अस्तित्व न टिका सके ।
र्य सबका प्राण है ।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
(ऋ० १० । ११० । ३)

'परमेश्वरने सूर्य और चन्द्रमाको यथापूर्व—पूर्व
ल्पवत्-निर्माण किया है ।' यहाँ सूर्य प्राण हैं और चन्द्रमा
यि है । स्त्री शक्तिको रयि कहते हैं । प्राण स्वयंप्रकाशी
: और रयि परप्रकाशी है । चन्द्रमाका प्रकाश सूर्यसे
लेया हुआ प्रकाश है । ब्रह्मका प्रथम आविष्कार आदित्य
ा सूर्य ही है, जिससे पूरा सौर मण्डल बना है ।
श्नोपनिषद् (१ । ५) कहता है—

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमाः ।

'निःसंदेह सूर्य ही प्राण हैं और चन्द्रमा ही रयि है ।'

'यत् सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान्
... ।' (प्र० उ० १ । ६)

... किरणोंसे ही सम्पूर्ण जगत्में प्राणसंचार
 है । जहाँ प्राण पहुँचता है, वहाँ ही जीवन
होता है । अतः घरोंकी रचना ऐसी बनायी जाती है
कि उनमें अधिक-से-अधिक सूर्यकी रश्मियाँ आयें और
घरको शुद्ध करें । रोगोत्पादक कीटाणुओंका विनाश इन्हीं
सूर्य-रश्मियोंसे होता है । सूर्यका जो यह उदय होता है,
वह सम्पूर्ण प्राणमय है । उदय होते ही वे अपनी
प्राणपूर्ण किरणोंसे सभी दिशा-उपदिशाओंको व्याप्त कर
देते हैं और सर्वत्र अपनी अद्भुत प्राणशक्तिसे सबको
नवजीवन प्रदान करते हैं ।

सूर्य यज्ञके उत्पन्नकर्ता एवं उसके मुख हैं । उत्तम
संकल्प करनेवाले देव सूर्यको प्राप्त होते हैं । सूर्यदेवद्वारा
सर्व शुभ कर्मोंके स्रोतरूप यज्ञ बना है । उस यज्ञसे
जो सामर्थ्य प्राप्त होती है, वह सब मुझे प्राप्त होवे ।
(अथर्व० १३ । १ । १३-१४)

ये सूर्य अहोरात्रका निर्माण करते हैं । पृथ्वीके
जिस अर्ध भूभागमें प्रत्यक्ष होते हैं, वहाँ दिन और अन्य
अर्ध भूभागमें रात्रि होती है । इस अन्तरिक्षमें विराजमान
तेजस्वी सूर्यकी हम स्तुति करते हैं । वे हमारे मार्ग-
दर्शक बनें । (अथर्व० १३ । २ । ४३)

जिनकी प्रेरणासे वायु और जलके प्रवाह चलते हैं,
जो सबका ध्वंस करते हैं, जिनसे सब जीवित रहते हैं,
जो प्राणसे पृथ्वीको तृप्त और अपानसे समुद्रको परिपूर्ण
करते हैं, जिनमें अग्नि आदि सर्वदेव एक पङ्क्तिमें आश्रित
हैं (अथर्व० १३ । ३ । २–५), वे सूर्यदेव गायत्रीके
अमृतमय केन्द्रमें स्थित हैं ।

ये सूर्य वैश्वानर विश्वरूप प्राणाग्नि हैं । (प्र० उ०
१ । ७) वे ही सबका चैतन्य हैं । वे ही सबकी
प्रेरक शक्ति हैं । वे ही सबकी ज्योति हैं । वे प्रजाओंके
प्राण सूर्य, विश्वको रूप देनेवाले, रश्मियोंवाले प्रकाशमान
हैं । उनसे ही ज्ञान और धनकी उत्पत्ति हुई है । अग्र

सूर्य न होते तो अन्न कहाँसे उत्पन्न होता और सूर्य/अग्नि न होती तो अन्न भी न होते। अतः वे अन्न और धनके उत्पादक हैं।

सूर्यके नक्षत्रचक्रका भी वर्णन किया जाता है। सूर्य आकाशमें जिस मार्गसे गमन करते हैं, उस आकाशभागको 'परिधि' कहते हैं। उस मार्गको सत्ताईस भागोंमें विभक्त करके उनके 'नक्षत्र' नाम दिये गये हैं। इस विशाल आकाशस्थानको 'सौर-जगत्' कहते हैं। इस भ्रमणमार्गमें सूर्यके साथ, उनके आस-पासके नक्षत्र घूमते हैं। उनमें पृथ्वीका भी समावेश हो जाता है। इन सत्ताईस नक्षत्रोंके अधिष्ठाता देवके रूपमें एक सूर्य ही हैं; परंतु बारह महीने और बारह राशियोंकी गणना करनेसे उन सूर्यके बारह नाम हैं। वर्षमें सूर्यकी दो गतियाँ होती हैं, जिनको उत्तरायण और दक्षिणायन कहते हैं। सूर्य जब उत्तरायणमें गमन करते हैं, तब दिन दीर्घ बन जाते हैं और सूर्यके तेजमें वृद्धि होती है। दक्षिणायनमें गमन करनेपर रात्रि दीर्घ हो जाती है और तेज-बलकी कमी हो जाती है।

सत्यरूपी सूर्यके उदय होनेसे पहले 'उषा'का प्रादुर्भाव होता है। 'उषा'के प्रादुर्भावके साथ सम्पूर्ण यज्ञोंकी क्रियाएँ भी आती हैं। इसका विस्तृत वर्णन ऋग्वेदके छठे मण्डलमें किया गया है। सूर्यगीता कहती है—

ब्रह्माण्डानि च पिण्डानि समष्टिव्यष्टिभेदतः।
परस्परविमिश्राणि सन्त्यनन्तानि संख्यया॥
(१।२१)

ब्रह्माण्ड और पिण्ड, समष्टि और व्यष्टि-भेदसे परस्पर मिले हुए हैं और उनकी संख्या अनन्त है।

यदा कुण्डलिनी शक्तिराविर्भवति साधके।
तदा स पञ्चकोशे मत्तेजोऽनुभवति ध्रुवम्॥
(१।४८)

[illegible] जब [illegible] हैं, तब वह [illegible] हो [illegible] में [illegible] अनुभव करता है।

[illegible]
[illegible]
(१।[illegible])

[illegible] उत्पन्न [illegible] भिन्न देहोंको उत्पन्न [illegible] है।

यथा गवेषु सर्वेषु गवां तिष्ठति [illegible]
तथापि [illegible] सर्वगानि [illegible]
तथैव मामिह [illegible] सर्वत्र।
नित्यनैमित्तिकैः पीठैराविर्भवति भूतले॥
(१।८।८)

जिस प्रकार गौके समस्त शरीरमें गोरस रहता है परंतु स्तनसे ही वह निर्गत होता है, उसी प्रकार मैं सर्वत्र विद्यमान होते हुए भी पृथ्वीपर नित्य और नैमित्तिक पीठोंद्वारा आविर्भूत होती है।

मरणे दाहहीनदेहेऽत्रास्तत्त्वं समाश्रिता।
अथवा धूम्रतत्त्वं स सूक्ष्मं कृष्णगतिश्रितः॥
(सौ० गी० ८।७६)

जिस पुरुषकी मृत्यु होनेपर भी उसका मृत शरीर दहनहीन रहे अथवा अघोर स्थलमें या अरण्यमें मरनेसे दहनकार्यके अभावमें दहन-क्रियाका अभाव हो, तो उस तत्त्वको देवता उसे सूर्यरूप तेजतत्त्वमें ग्रहण करता है।

एकस्मिन्नयने सूर्यो तपति यः काले स दाहकमो
येनातन्यतयत्प्रकाशसमये नैवा पदं दुर्लभम्।
सा व्योमायनयस्य यस्य विदिता लोके गतिः शाश्वती
श्री सूर्यः सुरसेवितोऽपि हि महादेवः स नस्त्रायताम्॥

जिनकी देवोंने सेवा की है, ऐसे वे भगवान् सूर्य-नारायण हैं। जो एक अयन (उत्तरायण)में बहुत तपते हैं, जिन्होंने प्रतिदिन समयानुसार नियमित गति की है, जिनके प्रकाशसे कोई भी स्थान रिक्त नहीं रहता है और जिनकी अखण्ड गति इस पृथ्वीलोकमें किसीके द्वारा भी जाननेमें नहीं आती है, ऐसे आकाशमें गति करनेवाले सूर्यदेव हमारा सदा रक्षण करें।

वेदोंमें सूर्य-विज्ञान

(लेखक—स्व० म०म० पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी)

सूर्यका विज्ञान वेद-मन्त्रोंमें बहुत आया है। वेद को ही सब चराचर जगत्का उत्पादक कहता है—'नं जनाः सूर्येण प्रसूताः' और इसको ही 'णः प्रजानाम्' कहा जाता है। वेदोंमें सूर्यको इन्द्र न्द्रसे भी कहा गया है। उस इन्द्र नामसे ही सूर्यकी तिका ऋग्वेदीय मन्त्र यहाँ उद्धृत करते हैं—

न्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रेरयं सगरस्य बुध्नात्।

यहाँ इन्द्र शब्द सूर्यका बोधक है। इन्द्र शब्द न्तरिक्षके देवता विद्युत्के लिये भी प्रयुक्त है और लोकके देवता सूर्यके लिये भी। इन्द्र शब्दका दोनों प्रकारका अर्थ सायण-भाष्यमें भी प्राप्त होता है। द्र चौदह भेदोंसे श्रुतिमें वर्णित हैं। इन भेदोंका ग्रह महाविज्ञानके इस पद्यमें किया गया है—

इन्द्रा हि वाक्प्राणधियो बलं गति-
विद्युत्प्रकाशोदयरत्नपराक्रमाः ।
शुक्लादिवर्णा रविचन्द्रपुरुषा-
श्चुत्साह आत्मेति मताश्चतुर्दश ॥

ये हैं—१-वाक्, २-प्राण, ३-मन, ४-बल, ५-गति, ६-विद्युत्, ७-प्रकाश, ८-ऐश्वर्य, ९-पराक्रम, १०-रूप, ११-सूर्य, १२-चन्द्रमा, १३-उत्साह और १४-आत्मा। इन्द्रका विज्ञान श्रुतिमें सबसे म्भीर है। अस्तु! दो विशेष इन्द्रके आते हैं—एक घवान् और दूसरा मरुत्वान्। इन्द्र अन्तरिक्षस्थ वायु या विद्युद्रूप है और मघवान् इन्द्र सूर्यरूप है। यहाँ भी यह सूक्ष्म विचार है कि सूर्य-मण्डलको द्युलोक कहा जाता है और उसमें प्रतिष्ठित प्राणात्मक देवताको इन्द्र कहा जाता है। श्रुतिमें अन्यत्र स्पष्ट कहा है—'यथाग्निगर्भा पृथिवी तथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी'—जैसे पृथ्वीके गर्भमें अग्नि है, वैसे द्युलोक (सूर्यमण्डल) के गर्भमें इन्द्र है। तात्पर्य यह कि पूर्वोक्त मन्त्रमें इन्द्र पदका अर्थ सूर्य है। तब मन्त्रका स्पष्टार्थ यह हुआ—'यह महान् स्तुतिरूप वाणी इन्द्रके लिये प्रयुक्त है।' इन्द्र अन्तरिक्षके मध्यमें जलको प्रेरित करता है और अपनी शक्तियोंसे पृथ्वीलोक और द्युलोक—दोनोंको रोके हुए है, जैसे कि अक्ष रथके चक्रोंको रोके रहता है। विचारिये कि इससे अधिक आकर्षणका स्पष्टीकरण क्या हो सकता है! फिर भी, यहाँ केवल इन्द्र शब्द आनेसे यदि यह संदेह रहे कि यहाँ इन्द्र सूर्यका नाम है या वायुका? तो इसी सूक्तका—इससे दो मन्त्र पूर्वका मन्त्र देखिये, जिसमें सूर्य शब्द स्पष्ट है—

स सूर्यः पर्युरू वरांस्येन्द्रो ववृत्याद्रथ्येव चक्रा।
अतिष्ठन्तमपस्यं न सर्गं कृष्णा तमांसि त्विष्या जघान ॥
(ऋ० १०।८९।२)

यहाँ श्रीमाधवाचार्य 'वरांसि' का अर्थ तेज बतलाते हैं। उनके मतानुसार मन्त्रका अर्थ है कि 'यह सूर्यरूप इन्द्र बहुत-से तेजोंको इस प्रकार घुमाता है, जिस प्रकार सारथि रथके चक्रोंको घुमाता है और यह अपने प्रकाशसे कृष्णवर्णके अन्धकारका इस प्रकार आघात करता है, जैसे तेज चलनेवाले घोड़ेपर चाबुकका आघात किया जाता है।' किंतु, स्वामी [illegible] महाराज यहाँ 'वरांसि' का अर्थ [illegible] मण्डल करते हैं, जो कि यहाँ उचित है और तब मन्त्रका अर्थ स्पष्ट करनेसे यह हो जाता है कि 'सूर्यरूप इन्द्र [illegible] मण्डलोंको चक्रकी भाँति घुमाता है।' इसमें आकर्षणका विचार अधिक स्पष्ट हो जाता है और [illegible] पुराण और [illegible] अर्थ पूर्ण होना [illegible] होता है। फिर भी संदेह हो तो सूर्य [illegible] और

सवका आकर्षक है, इस विज्ञानको दूसरे मन्त्रोंमें भी स्पष्ट देखिये—

वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनाम्। विश्वस्य नाभि चरतो ध्रुवस्य। (ऋ० १० । ५ । ३)
दिवो धर्त्ता भुवनस्य प्रजापतिः। (४ । ५३ । २)
यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः। (१ । १६४ । २)

—इत्यादि बहुत-से मन्त्रोंमें भगवान् सूर्यका नाभिस्थानपर, अर्थात् मध्यमें रहना और सब लोकोंको धारण करना स्पष्ट रूपसे कहा गया है। और भी देखिये—

तिस्रो मातृस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेक
ऊर्ध्वस्तस्थौ नेममवग्लापयन्ति।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे
विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम्॥
(ऋ० १ । १६४ । १०)

मातृ शब्द पृथ्वी और पितृ शब्द द्युका वाचक है, जो वेदमें बहुधा प्रयुक्त होता है। इस मन्त्रका अर्थ यह है कि एक ही सूर्य तीन पृथ्वी और तीन द्युलोकोंको धारण करते हुए ऊपर स्थित हैं। इनको कोई भी ग्लानिको प्राप्त नहीं करा सकते, अर्थात् दबा नहीं सकते। उस द्युलोकके पृष्ठपर सभी देवता संसारके जानने योग्य सर्वत्र व्याप्त न होनेवाली वाक्‌को परस्पर बोलते हैं।

तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीँरुत द्यून् त्रीणि व्रता विदथे
अन्तरेषाम्।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरुण
मित्र चारु॥
(ऋ० २ । २७ । ८)

इसका अर्थ यह है—'आदित्य तीन भूमि और तीन द्युलोकोंको धारण करते हैं। इन आदित्योंके अन्तर्ज्ञानमें या यज्ञमें तीन प्रकारके व्रत, अर्थात् कर्म हैं। हे अर्यमा, वरुण, मित्र नामक आदित्यो! ऋतसे तुम्हारा सुन्दर अतिविशिष्ट महत्त्व है।'

इस प्रकार कई एक मन्त्रोंमें तीन भूमि एवं द्युलोकोंका धारण सूर्यके द्वारा बताया गया है। सत्यव्रत सामश्रमी महाशयका विचार है कि ये ग्रह यहाँ सूर्यके आकर्षणमें स्थित बताये गये हैं। पृथ्वी और सूर्यके मध्यमें रहनेवाले चन्द्रमा, बुध, शुक्र—ये तीन भूमियोंके नामसे कहे गये हैं और ऊपरके मंगल, बृहस्पति और शनि—ये द्युके नामसे कहे गये हैं। यों इन सब ग्रहोंका धारणाकर्षण सूर्य द्वारा सिद्ध हो जाता है।'

श्रीगुरुजी तीन भूमि और तीन द्युलोककी व्याख्या उपयुक्त नहीं मानते; क्योंकि यों कि करनेपर ग्रह-नक्षत्र आदि भूमि बहुत हैं। तीन-ती परिच्छेद ठीक नहीं बैठता। यहाँ तीन भूमि तीन द्युलोकका अभिप्राय दूसरा है। छान्दोग्योपनि बताये हुए तेज, अप्, अन्नके त्रिवृत्करणके अ प्रत्येक मण्डलमें तेज, अप्, अन्न तीनोंकी ि है और प्रत्येक मण्डलमें पृथ्वी, चन्द्रमा सूर्य—यह त्रिलोकी नियत रहती है। इस त्रिलो भी प्रत्येकमें तेज, अप्, अन्न तीनोंका भाग । इनमेंसे अन्नका भाग पृथ्वी, अप्‌का भाग अन्तरिक्ष तेजका भाग द्यु कहलाता है। तब तीनों मण्डल मिलाकर तीन भूमि और तीन द्यु हो जाते हैं। तीनों भूत और रवि हैं और इनका धारण करनेव प्राण-रूप आदित्य-देवता हैं, जो 'तथा द्यौरिवं गर्भिणी'में बताया गया है।

अथवा दूसरा अभिप्राय यह है कि छान्दोग्ये निषद्‌में कहागे जो तेज, अप् और अन्नका स

...तलायी गयी है। उनमें प्रत्येक फिर तीन-तीन प्रकारका ...ा है। तेजके भी तीन भेद हैं—तेज, अप्, अन्न। ...के भी तीन भेद हैं—तेज, अप्, अन्न और अन्नके ... तीन भेद हैं—तेज, अप्, अन्न। इनमें प्रथम ...की अन्न-अवस्था और द्वितीय वर्गकी तेज-अवस्था ...रूप होती है, अर्थात् तेज-वर्गका अन्न और अप्- ...का तेज एक ही है। यों ही अप्के वर्गका अन्न ...र अन्नके वर्गका तेज एक ही है। तब नौमेंसे दो ... जानेपर सात रह जाते हैं। ये ही सात व्याहृति ... सात लोक प्रसिद्ध हैं—भूः भुवः स्वः, महः ...नः, तपः, सत्यम्। वहाँ भूः पृथ्वी है। भुवः ...ल है या जल-प्रधान अन्तरिक्ष है। स्वः तेज या ...जः प्रधान द्युलोक है। महः वायु या केवल वायु-...धान लोक है। जनः आकाश या वायुमण्डल-बहिर्भूत ...द्ध आकाशलोक है। तपः क्रिया या सकल क्रियाके ...ल कारणभूत प्राण-प्रजापतिका लोक है। सत्यम् ...त्की पहली व्याकृत-अवस्था मन या मनोमय परमेष्ठी-...त लोक है। अब इनमें भूः, भुवः, स्वः—ये तीनों ...पृथ्वी कहलाते हैं। स्वः, महः, जनः—ये तीनों अन्तरिक्ष कहलाते हैं और जनः, तपः, सत्यम्—ये तीनों द्यु हैं, जिनका धारण पूर्वोक्त मन्त्रोंमें सूर्यद्वारा बताया गया है। अब चाहे संसारमें सैकड़ों-हजारों मण्डल या गोल बन जायँ, अनन्त पृथ्वी-गोल हों, किंतु तत्त्व-विचारसे सात व्याहृतियोंसे बाहर कोई नहीं हो सकता। अतएव यह व्यापक अर्थ है। श्रीमाधवा-चार्यने भी 'तिस्रो भूमीः' से व्याहृतियाँ ही ली हैं। अस्तु, चाहे कोई भी अर्थ स्वीकार कीजिये; किंतु सूर्यका धारणाकर्षण-विज्ञान इन मन्त्रोंमें अवश्य ही मानना पड़ेगा। नौ भूमियों या सैकड़ों-हजारों भूमियोंका इन्द्र या सूर्यके अधिकारमें बद्ध रहना भी मन्त्रोंमें बताया गया है, और सूर्यका चक्रकी भाँति सबको घुमाना और स्वयं भी अपनी धुरीपर घूमना पूर्वोक्त मन्त्रोंमें और 'विवर्तते अहनी चक्रियेव' इत्यादि बहुत-से मन्त्रोंमें स्फुट रूपसे कहा गया है।

भूमिके भ्रमणका भी संकेत मन्त्रोंमें कई जगह प्राप्त होता है। केवल इतना ही नहीं, भूमि अपनी धुरीपर क्यों घूमती है? इसका कारण एक मन्त्रमें विलक्षण ढंगसे प्रकट किया गया है—

> यज्ञ इन्द्रमवर्द्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत्।
> चक्राण ओपशं दिवि॥
>
> (ऋ० मं० ८। १४५)

मन्त्रका सीधा अर्थ यह है कि 'यज्ञ इन्द्रको बढ़ाता है, इन्द्र द्युलोकमें ओपश—अर्थात् शृंग बनाता हुआ पृथ्वीको विवर्तित करता है अर्थात् घुमाता है।' किरण जिस समय किसी मूर्त पदार्थपर आघात करके लौटती है, तब उसका गमन-मार्ग आगमन-मार्गसे कुछ अन्तरपर होता है। उसे ही वैज्ञानिक भाषामें शृङ्ग या ओपश कहते हैं। तब किरणोंके आघातसे पृथ्वीका घूमना इस मन्त्रसे प्राप्त होता है। (अवश्य ही यह उन्मत्त-प्रलाप नहीं है, किंतु इसके स्पष्टीकरणके लिये गहरी परीक्षाकी आवश्यकता है। सम्भव है कि किसी समय परीक्षासे यह विज्ञान स्फुट हो जाय और कोई बड़ी गम्भीर बात इसमेंसे प्रकट हो पड़े।)

और भी सूर्यका और सूर्यके रथ और अश्वोंका वर्णन देखिये—

> सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्र-
> मेको अश्वो वहति सप्तनामा।
> त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं
> यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः॥
>
> (ऋ० १। १६४। २)

'सूर्यके एक पहियेके रथमें सात घोड़े जुड़े हुए हैं। वस्तुतः (घोड़े सात नहीं) एक ही सात

नामका या सात जगद् गमन करनेवाला घोड़ा इस रथको चलाता है। इस रथचक्रकी तीन नाभियाँ हैं। यह चक्र (पहिया) शिथिल नहीं, अत्यन्त दृढ़ है और कभी जीर्ण नहीं होता। इसीके आधारपर सारे लोक स्थिर हैं।' यह हुआ सीधा शब्दार्थ। अब इसके विज्ञानपर दृष्टि डाली जाय।

निरुक्तकार यास्क कहते हैं कि देवताओंके रथ, अश्व, आयुध आदि उन देवताओंसे अत्यन्त भिन्न नहीं होते; किंतु परम ऐश्वर्यशाली होनेके कारण उनका स्वरूप ही रथ, अश्व, आयुध आदि रूपोंसे वर्णित हुआ है अर्थात् आवश्यकता होनेपर वे अपने स्वरूपसे ही रथ, अश्व आदि प्रकट कर लेते हैं। मनुष्योंकी भाँति काष्ठ आदिके रथ आदि बनानेकी उन्हें आवश्यकता नहीं होती। अतएव श्रुति रथ, अश्व, आयुध आदि रूपसे देवताओं-की ही स्तुति करती है। अस्तु, इसके अनुसार यहाँ रथ शब्दका तात्पर्य सूर्यके ही वर्णनमें है। रथ शब्दकी सिद्धि करते हुए निरुक्तकारने कहा है कि यह स्थिरका विपरीत है, अर्थात् 'स्थिर' शब्द ही वर्ण-विपर्यय होकर 'रथ' शब्दके रूपमें आ गया है। अतः सूर्यकी स्थिरताका भी प्रमाण कई विद्वान् इससे निकालते हैं।

रथ और रथीमें भेदकी ही यदि अपेक्षा हो, तो सौर-जगन्मण्डल—सूर्यकिरण-व्याप्त ब्रह्माण्ड सूर्यका रथ मानना चाहिये। पुराणमें सूर्यकी गतिके प्रदेश क्रान्तिवृत्तको सूर्यरथ बताया गया है—

> साशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरन्तरं द्वयोः।
> आरोहणावरोहाभ्यां भानोरब्देन या गतिः॥
> स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा। इत्यादि
> (वि० पु० २। १०। १-२)

संवत्सर इस रथका चक्र (पहिया) माना गया है। वस्तुतः संवत्सररूप काल ही इस सब जगत्को फिरा रहा है। कालके ही चक्रमें जगत् घूम रहा है। परिणाम हो[illegible] दूसरी अवस्थामें चला जाना ही जगत्का गमन है। इसका [illegible] ही है। सुतरां, सौर जगत्का परिवर्तन संवत्सरूप [illegible] हुआ। इस संवत्सररूप चक्रका मन्त्रके [illegible] हुआ है। तीन इसकी नाभियाँ हैं, एक संवत्सरमें [illegible] जगत्की स्थिति बिल्कुल स्पष्ट जाती है। वे [illegible] ऋतुएँ (शीत, उष्ण, वर्षा) यहाँ [illegible] बतलायी गयी हैं। पाँच-छः ऋतुओंका जो [illegible] है, उसके अनुसार अन्यत्र पाँच या छः अरे [illegible] जाते हैं—

> त्रिनाभिमति पञ्चारे षण्नेमिन्यक्षयात्मके।
> संवत्सरमये कृत्स्नं कालचक्रं प्रतिष्ठितम्॥
> (वि० पु० २। ८। ४)

अथवा तीन—भूत, वर्तमान, भविष्यत्—भेदसे भिन्न काल इस चक्रकी नाभियाँ हैं। जो ब्रह्माण्ड-चक्र पक्षसे भी सौर जगत् (ब्रह्माण्ड)का ही ग्रहण करते हैं, उनके मतसे भूमि, अन्तरिक्ष और दिव्‌नामके तीनों लोकोंकी तीन नाभि हैं।

और इस चक्रका विशेषण दिया गया है—'अनर्वम्।' इसकी व्याख्या करते हुए निरुक्तकार कहते हैं कि 'अप्रत्युतमन्यस्मिन्' अर्थात् यह सूर्य-मण्डल किसी आधारपर नहीं है। यह 'अजर' है, अर्थात् [illegible] नहीं होता और इसीके आधारपर सम्पूर्ण लोक [illegible] हैं। इस व्याख्याके अनुसार सूर्यमण्डलके आकर्षणमें सब लोग बँधे हुए हैं एवं सूर्य अपने ही आधारपर [illegible] वे किसी दूसरेके आकर्षणपर बद्ध नहीं हैं। [illegible] आधुनिक विज्ञानसे स्फुट हो जाता है। संवत्सररूप कालको चक्र माननेके पक्षमें भी इन तीनों विशेषणोंकी संगति स्पष्ट है। कालके ही आधारपर सब हैं, काल किसीके आधारपर नहीं और काल कभी जीर्ण भी नहीं होता।

भेद माननेवाले वायुको सूर्यका अश्व कहते हैं अर्थात्— वायुमण्डलके आधारसे सूर्य कालो[illegible]

वस्तुतः एक है; किंतु स्थान-भेदसे उसकी प्रवह आदि सात संज्ञाएँ हो गयी हैं। अतएव कहा के 'एक ही सात नामका या सात स्थानोंमें नमन ला अश्व वहन करता है।' किंतु निरुक्तकारके सार अशन, अर्थात् सब स्थानोंमें व्याप्त होनेके सूर्य ही अश्व है। किंतु सूर्यमण्डल बहुत दूर है। उसे हमारे समीप सूर्यकी पहुँचाती हैं। सूर्य अश्व है, तो किरणें वल्गा म) हैं। जहाँ किरणें ले जाती हैं, वहीं सूर्यको जाना पड़ता है। (लगाम या रास और किरण तीनोंका नाम संस्कृतमें 'रश्मि' है—यह भी ध्यान ो बात है।) इससे सूर्यको वहन करनेवाली किरणें पर्यक हुई। कई भावोंसे मन्त्रोंका विचार होता है—सूर्य अश्व तो रश्मि वल्गा, वही सूर्य रोही, तो किरण अश्व आदि। वह किरण स्तुतः एक अर्थात् एक जातिकी है, किंतु किरणें भी कही जा सकती हैं। सात कहनेके भी अनेक ग हैं। किरणोंके सात रूप होनेके कारण भी उन्हें कह सकते हैं। अथवा संसारमें वसन्त, ग्रीष्म, शरद्, हेमन्त और शिशिर—ये छः ऋतुएँ होती हैं सातवीं एक साधारण ऋतु। इन सातोंका कारण की किरणें ही हैं। सूर्यकी किरणोंके ही तारतम्यसे सब र्तन होते हैं। इसलिये सात प्रकारका परिवर्तन नेवाली सूर्य-किरणोंकी अवस्थाएँ भी सात हुईं। था भूमि, चन्द्रमा, बुध, शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति और ि—इन सातों ग्रहों और लोकोंमें या भूः भुवः स्वः दि सातों भुवनोंमें प्रकाश पहुँचानेवाले और इन सभी कोंसे रस आदि लेनेवाली सूर्य-किरणें ही हैं। ः सात स्थानोंके सम्बन्धसे इन्हें सात कहा ना है, यह बात 'सप्तनाम' पदसे और भी ट होती है। सूर्यकी किरणें सात स्थानोंमें नम ते हैं। प्रकारान्तरसे यह 'सप्तनाम' पद सूर्यका विशेषण है, अर्थात् सात रश्मियाँ सूर्यसे रस प्राप्त करती रहती हैं। सातों लोकोंसे इसका आहरण सूर्य-रश्मिद्वारा होता है अथवा सातों ऋषि सूर्यकी स्तुति करते हैं। यहाँ भी ऋषिसे तारा-रूप ग्रह भी लिये जा सकते हैं और वसिष्ठ आदि ऋषि भी। इस प्रकार, मन्त्रार्थका अधिकतर विस्तार हो जाता है।

अब पाठक देखेंगे कि पुराणों और वृद्ध पुरुषोंके मुखसे जिन बातोंको सुनकर आजकलके विज्ञमानी सज्जनोंका हास्य नहीं रुकता, वे ही बातें साक्षात् वेदमें भी आ गयी हैं। उनका तात्पर्य भी ऐसा निकल पड़ा कि बात-की-बातमें बहुत-सी विद्याका ज्ञान हो जाय। क्या अब भी ये हँसी उड़ानेकी ही बातें हैं? क्या पुराणोंमें भी इनका यही स्पष्ट अभिप्राय उद्घाटित नहीं है? खेद इसी बातका है कि हम इधर विचार नहीं करते।

अब इन तीनों देवताओंका परस्पर कैसा सम्बन्ध है? इसका प्रतिपादक एक मन्त्र भी यहाँ उद्धृत किया जाता है—

> अस्य वामस्य पलितस्य होतु-
> स्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
> तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्या-
> त्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम्॥
> (ऋ० १।१६४।१)

दीर्घतमा ऋषिके द्वारा प्रकाशित इस मन्त्रका निरुक्तकारने केवल अधिदैवत (देवता-सम्बन्धी) अर्थ किया है और भाष्यकार श्रीसायणाचार्यने अधिदैवत और अध्यात्म—दो अर्थ किये हैं। पहला अधिदैवत अर्थ इस प्रकार है—

(वामस्य) सबकी सेवा करने योग्य या सबको प्रकाश देनेवाले, (पलितस्य) सम्पूर्ण लोकके पालक, (होतुः) स्तुतिके द्वारा यज्ञादिमें आह्वान करने योग्य, (तस्य अस्य) पूर्वनिर्दिष्ट इस प्रत्यक्ष देव सूर्यका,

(मध्यमः भ्राता) बीचका भाई अन्तरिक्षस्थ वायु अथवा विद्युत्-रूप अग्नि (अश्नः अस्ति) सर्व-व्यापक है। (अस्य तृतीयः भ्राता) इन्हीं सूर्यदेवका तीसरा भाई (घृतपृष्ठः) घृतको अपने पृष्ठपर धारण करनेवाला—घृतसे प्रदीप्त होनेवाला अग्नि है। (अत्र) इन तीनोंमें (सप्तपुत्रम्) सर्वत्र फैलनेवाले सात किरण-रूप पुत्रोंके साथ सूर्यदेवको ही मैं (विश्पतिम्) सबका स्वामी और सबका पालन करनेवाला (अपश्यम्) जानता हूँ। इस अर्थसे सिद्ध हुआ कि अग्नि, वायु और सूर्य—ये तीनों लोकोंके तीन मुख्य देवता हैं। इन तीनोंमें परस्पर सम्बन्ध है और सूर्य सबमें मुख्य हैं। इस मन्त्रमें विशेषणोंके द्वारा कई एक विशेष विज्ञान प्रकट होते हैं; उन्हींका वर्णन नीचे किया जाता है।

वामस्य—निरुक्तकार 'वन्' धातुसे इस शब्दकी सिद्धि मानते हैं। धातुका अर्थ है—संभक्ति, अर्थात् सम्यक् भाजन या सविभाग—बाँटना। इससे सिद्ध हुआ कि सूर्य सबको अपना प्रकाश और वृष्टि-जल आदि बाँटते रहते हैं। इतर सभी सूर्यके अधीन रहते हैं। यज्ञ-में भी सूर्यकी ही प्रधान स्तुति की जाती है।

पलितस्य—निरुक्तकार इसका पालक अर्थ करते हैं; अर्थात् सूर्य सबका पालन करनेवाले हैं। किंतु पलित शब्द श्वेत केशका भी वाचक है और श्वेत केशके सम्बन्धसे कहीं जगह वृद्धका भी वाचक हो जाता है। अतः इसका यह भी तात्पर्य है कि सूर्य सबसे वृद्ध (प्राचीन) हैं।

दान करते हैं, पृथ्वीमेंसे रसका आहरण (भोजन) ... हैं और सबको प्रसन्न रखते हैं। सब ग्रह-... नाभि-रूप केन्द्र-स्थानमें स्थित रहकर मानो उन्हें ... कर रहे हैं। सब ग्रह-उपग्रहोंका आह्वान-रूप कर्म करते रहते हैं और तापके द्वारा वायुमें गति उत्पन्न ... उसके द्वारा शब्द भी कराते हैं। चतुर्थ ... सूर्यके दो विशेषण हैं।

विश्पतिम्—प्रजाओंको उत्पन्न करनेवाले और पालन करनेवाले। 'नूनं जनाः सूर्येण प्रसूताः' श्रुतियोंमें स्पष्ट रूपसे सूर्यको सबका उत्पादक कहा है।

सप्तपुत्रम्—यहाँ पुत्र शब्दका रश्मियोंसे प्रयोजन है। यह सभीका अभिमत है। अतः तात्पर्य हुआ कि रश्मियाँ (सप्त) बड़े वेगसे फैलती हैं। और उनमें सात भाग हुआ करते हैं; सूर्य अ... के सप्तम पुत्र हैं—इस ऐतिहासिक पक्षका अ... यहाँ ध्यान देने योग्य है।

भ्राता—इसका निरुक्तकार अर्थ करते हैं भरण करनेयोग्य अथवा भरण करनेवाला। इससे तात्पर्य सिद्ध होता है कि अपनी रश्मियोंके द्वारा आ... रसको सूर्यदेव वायुमें समर्पित करते हैं, वायुको ग... आदि भी अपनी किरणोंद्वारा देते हैं अथवा वायु सूर्य... अन्तरिक्षस्थ रसको हरण कर लेता है, मानो तीनों लोकोंके स्वामी सूर्यदेव ही थे, उनसे अन्तरिक्ष स्थान वायुने छीन लिया।

मध्यमः—इससे विद्युत्-(बिजलीकी आग) का ...

ध्याता—इसका अभिप्राय भी पूर्ववत् है। सूर्य रने प्रकाशद्वारा इसका भरण करते हैं; अर्थात् ग्निमें तेज सूर्यसे ही आया है और यह भी अपने लिये र्यके राज्यमेंसे पृथ्वी-रूप स्थान छीन लेता है।

घृतपृष्ठः—घृतसे अग्निकी वृद्धि होती है; अथवा त शब्द द्रव्यका वाचक होनेसे सोमका उपलक्षक । अग्नि सदा सोमके पृष्ठपर आरूढ़ रहती है। ना सोमके अग्नि नहीं रह सकती और विना अग्निके ोम नहीं मिलता—'अग्नीषोमात्मकं जगत्।'

इस प्रकार देवताओंके विशेषणोंसे छोटे-छोटे शब्दोंमें वेज्ञानकी बहुत-सी बातें प्रकट होती हैं। देवता-वेज्ञान ही श्रुतिका मुख्य विज्ञान है। ऐसे मन्त्रोंके र्थ सम्यक् समझकर आधुनिक विज्ञानसे उनकी तुलना करनेपर हमारे विज्ञानसे उक्त आधुनिक विज्ञानका जेतने अंशमें भेद है, वह भी स्पष्ट हो सकता है। स प्रकारकी चेष्टासे हम भी अपने शास्त्रोंका तत्त्व समझ सकेंगे और आधुनिक विज्ञानको भी अधिक लाभ होगा; क्योंकि आधुनिक विज्ञानका अभी कोई सिद्धान्त स्थिर नहीं हुआ है। सम्भव है, उनको भी इन प्राचीन सिद्धान्तोंसे बहुत अंशोंमें सहायता मिले। अस्तु, अब संक्षेपमें उक्त मन्त्रका आध्यात्मिक अर्थ भी लिखा जाता है।

(वामस्य) समस्त जगत्का उद्गिरण करनेवाला अर्थात् अपने शरीरमें स्थित जगत्को बाहर प्रकाशित करनेवाला, (पलितस्य) सबका पालक, अथवा सबसे प्राचीन, (होतुः) सबको फिर अपनेमें ले लेनेवाला अर्थात् संहार करनेवाला—सृष्टि, स्थिति, लयके कारण परमात्माका (भ्राता) भाग हरण करनेवाला अर्थात् अंशरूप (अश्नः) व्यापनशील (मध्यमः अस्ति) सबके मध्यमें रहनेवाला सूत्रात्मा है। और (अस्य) इसी परमात्माका (तृतीयः भ्राता) तीसरा भ्राता (घृतपृष्ठः अस्ति) विराट् है। घृतपृष्ठ शब्द जलका भी वाचक है और जलसे उस जलका कार्य स्थूल शरीर लक्षित होता है। उस शरीरका स्पर्श करनेवाला स्थूल शरीराभिमानी विराट् सिद्ध हुआ। (अत्र) इन सबमें (विश्पतिम्) सब प्रजाओंके स्वामी, (सप्त-पुत्रम्) सातों लोक जिसके पुत्र हैं, ऐसे परमात्माको (अपश्यम्) जानता हूँ; अर्थात् उसका जानना परम श्रेयस्कर है। इसका तात्पर्य यही है कि सम्पूर्ण जगत्का स्वाधीन कारण एक परमात्मा है और सूत्रात्मा एवं विराट्, जो सूक्ष्म दशा और स्थूल दशाके अभिमानी, वेदान्त-दर्शनमें माने गये हैं—दोनों इसी परमात्माके अंश हैं।

अब आप लोगोंने विचार किया होगा कि वेदमें विज्ञान प्रकट करनेकी शैली कुछ अद्भुत है। ऊपरसे देखनेपर जो बात हमें साधारण-सी दिखायी देती है, वही विचार करनेपर बड़ी गहरी सिद्ध हो जाती है। इसका एक रोचक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है।

अश्वमेध यज्ञमें मध्यके दिन एक ब्रह्मोद्यका प्रकरण है। एक स्थानपर होता, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मा—इन सबका परस्पर प्रश्नोत्तर होता है। इस प्रश्नोत्तरके मन्त्र ऋग्वेदसंहिता और यजुर्वेदसंहिता—दोनोंमें आये हैं। उनमेंसे एक प्रश्नोत्तर देखिये—

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः
पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः।
(ऋ० १।१६४।३४; यजु० २३।६१)

यह यजमान और अध्वर्युका संवाद है। यजमान कहता है कि 'मैं तुमसे पृथ्वीका सबसे अन्तका भाग पूछता हूँ और भुवन अर्थात् उत्पन्न होनेवाले सब पदार्थोंकी नाभि जहाँ है, वह (स्थान) पूछता हूँ।' इसमें दो प्रश्न हुए—एक यह कि पृथ्वीकी जहाँ समाप्ति होती है, वह अन्तिम-भाग कौन-सा है और उत्पन्न होनेवाले

सब पदार्थोंकी नाभि कहाँ है ? अब उत्तर सुनिये। अध्वर्यु कहता है—

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्याः।
अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः॥
(पूर्वोक्त मन्त्र)

यज्ञकी वेदीको दिखाकर अध्वर्यु कहता है कि 'यह वेदी ही पृथ्वीका सबसे अन्तिम अवधि-भाग है और यह यज्ञ सब भुवनोंकी नाभि है।' स्थूल दृष्टिसे कुछ भी समझमें नहीं आता। बात क्या हुई ? भारतवर्षके हर एक प्रान्तके प्रत्येक स्थानमें यज्ञ होते थे। सभी जगह कहा जाता है कि यह वेदी पृथ्वीका अन्त है। भला सब जगह पृथ्वीका अन्त किस प्रकार आ गया ?

यह तो एक विनोद-जैसी बात मालूम होती है। दो गाँववाले एक जगह खड़े थे। एक अपनी समझदारीकी बड़ी डींग मार रहा था। दूसरेने उससे पूछा—'अच्छा, तू बड़ा समझदार है, तो बता सब जमीनका बीच कहाँ है ?' पहला था बड़ा चतुर। उसने झटसे अपनी लाठी एक जगह गाड़कर कह दिया—'यही कुल जमीनका बीच है।' दूसरा पूछने लगा—'कैसे ?' तो पहलेने जवाब दिया कि 'तू जाकर नाप आ। गलत हो तो मुझसे कहना।' अब वह न नाप सकता था, न पहलेकी बात झूठी हो सकती थी। यह एक उपहासका गल्प प्रसिद्ध है। तो क्या वेद भी ऐसी ही मजाककी बातें बताता है ? नहीं, विचार करनेपर आपको प्रतीत होगा कि इन अक्षरोंमें वेद भगवान्‌ने बहुत कुछ कह दिया है। पहले एक मोटी बात लीजिये। आदि और अन्त, समतल, [illegible] चौकोर प्रभृति रूप पदार्थोंके नियत गोल है, इसमें इसका आदि-अन्त मिल नहीं। यदि एक मनुष्य चलना आरम्भ करे, [illegible] प्राप्त होकर (चक्कर) [illegible] ऐसा कभी नहीं आयगा कि जहाँ जाते-जाते [illegible] जाय और आगे भूमि न रहे। इससे अध्वर्यु [illegible] बताता है कि भाई! भूमिका अन्त क्या पूछते हो? [illegible] तो गोल है। हर एक जगह उसके आदि-अन्तकी कल्पना की जा सकती है। इससे तुम दूर कहाँ [illegible] हो। समझ लो कि तुम्हारी यह वेदी ही पृथ्वीका अन्त है। जहाँ आदिकी कल्पना करोगे, वहींपर अन्त भी हो जायगा। इससे वेद भगवान्‌ने एक रोचक प्रश्नोत्तर रूपमें पृथ्वीका गोल होना हमें बता दिया।

अब याज्ञिक प्रक्रममें इन मन्त्रोंका दूसरा अर्थ देखिये। यज्ञके कुण्डों और वेदीका सन्निवेश ब्रह्माण्ड सन्निवेशके आधारपर कल्पित किया जाता है। सूर्यके सम्बन्धसे पृथ्वीपर जो प्राकृत यज्ञ हो रहा है, उसमें एक ओर सूर्यका गोला है, दूसरी ओर पृथ्वी है और मध्यमें अन्तरिक्ष है। अन्तरिक्षद्वारा ही सूर्य-किरणोंसे सब पदार्थ पृथ्वीपर आते हैं। इस सन्निवेशके अनुसार यज्ञमें भी ऐसा सन्निवेश बनाया जाता है कि पूर्वमें आहवनीय कुण्ड, पश्चिममें गार्हपत्य कुण्ड और दोनोंके बीचमें वेदी। तब यहाँ आहवनीय कुण्ड सूर्यके स्थानमें है। गार्हपत्य पृथिवीके स्थानमें और वेदी अन्तरिक्षके स्थानमें है। इस विभागको दृष्टिमें रखकर जब यह कहा जाता है कि यह वेदी ही पृथ्वीका अन्त है, तो उसका यह अभिप्राय स्पष्ट समझमें आ सकता है कि पृथ्वीका अन्त वहीं है, जहाँसे अन्तरिक्षका प्रारम्भ है। वेदी-रूप अन्तरिक्ष ही पृथ्वीका दूसरा अन्त है। इसके [illegible]

न्त्रकी व्याख्या करते हुए श्रीमाधवाचार्यने ब्राह्मणकी
ह श्रुति उद्धृत की है—

एतावती वै पृथिवी यावती वेदिरिति श्रुतेः।

अर्थात् जितनी वेदी है, उतनी ही पृथ्वी है। इसका तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण पृथ्वीरूप वेदीपर सूर्य-किरणोंके सम्बन्धसे आदान-प्रदानरूप यज्ञ बराबर हो रहा है। अग्नि पृथ्वीमें सर्वत्र अभिव्याप्त है और बिना आहुतिके वह कभी ठहरती नहीं है। वह अन्नाद है। उसे प्रतिक्षण अन्नकी आवश्यकता है। इससे वह स्वयं बाहरसे अन्न लेती रहती है और सूर्य अग्नि आदिको अन्न देते रहते भी हैं। जहाँ यह अन्न-अन्नादभाव *अथवा आदान-प्रदानकी क्रिया न हो, वहाँ पृथ्वी रह ही* नहीं सकती। उससे स्पष्ट ही सिद्ध है कि जहाँतक प्राकृत यज्ञकी वेदी है, वहाँतक पृथ्वी भी है। बस, इसी अभिप्रायको मन्त्रने भी स्पष्ट किया है कि वेदी ही पृथ्वीका अन्त है। अन्त पदको आदिका भी उपलक्षक समझना चाहिये। पृथ्वीका आदि-अन्त जो कुछ भी है, वह वेदीमय है। यह वेदी जहाँ नहीं, वहाँ पृथ्वी भी नहीं है।

आजकलका विज्ञान जिसको मुख्य आधार मान रहा है, उस विद्युत्का प्रसंग वेदमें किस प्रकार है? यह भी देखिये—

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनुरुध्यसे।
गर्भे सन् जायसे पुनः। (यजु० १२। ३६)

अर्थात् 'हे अग्निदेव! जलमें तुम्हारा स्थान है, तुम ओषधियोंमें भी व्याप्त रहते हो और गर्भमें रहते हुए भी फिर प्रकट होते हो।' ऐसे मन्त्रोंमें अग्नि सामान्य पद है और उससे पार्थिव अग्नि और वैद्युत अग्नि—दोनोंका ग्रहण होता है। किंतु इससे भी विद्युत्का जलमें रहना स्पष्ट न माना जा सके, तो खास विद्युत्के लिये ही यह मन्त्र देखिये—

यो अनिध्मो दीदयदप्स्वन्त-
र्यं विप्रास ईळते अध्वरेषु।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा
याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय॥
(ऋ० १०। ३०। ४)

'जो बिना ईंधनकी अग्नि जलके भीतर दीप्त हो रही है, यज्ञमें मेधावी लोग जिसकी स्तुति करते हैं, वह हमें 'अपां नपात्' मधुयुक्त रस देवें—जिस रससे इन्द्र वृद्धिको प्राप्त होता है और वह कार्य करता है।'

इस मन्त्रमें बिना ईंधनके जलके भीतर प्रदीप्त होनेवाली जो अग्नि बतलायी गयी है, वह विद्युत्के अतिरिक्त कौन-सी हो सकती है, यह आप ही विचार करें। *फिर भी कोई सज्जन यह कहकर टालनेका यत्न करें* कि जलमें बड़वानलके रहनेका पुराना ख्याल है, वही यहाँ कहा गया होगा तो उन्हें देखना होगा कि इसमें उस अग्निको 'अपां नपात्' देवता बताया गया है और 'अपां नपात्' निघण्टुमें अन्तरिक्षके देवताओंमें ही आता है। तब 'अन्तरिक्षकी अग्नि जलके भीतर प्रज्वलित' इतना कहनेपर भी यदि विद्युत् न समझी जा सके, तो फिर समझनेका प्रकार कठिनतासे मिल सकेगा।

अभि प्रवन्त समनेव योषाः
कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम्।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त
ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः॥
(ऋ० ४। ५८। ८)

इस मन्त्रमें भी भगवान् यास्कने विद्युत्का विज्ञान और जलसे उसका उद्भव स्पष्ट ही लिखा है। विस्तारकी आवश्यकता नहीं। यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि विद्युत् और उसकी उत्पत्ति आदिका परिचय वेदमें स्पष्ट है; प्रत्युत जहाँ आजकलका विज्ञान विद्युत्पर सब कुछ अवलम्बित करता हुआ भी अभीतक यह न जान सका कि विद्युत् वस्तु क्या है? यह 'मैटर' है या नहीं? इसका विवाद अभी निर्णयपर ही नहीं पहुँचा, वहाँ

वेदने इसे 'इन्द्र देवता'का रूप मानते हुए इसका प्राणविशेष 'शक्तिविशेष' (एनर्जी) (अनमैटेरियल) होना स्पष्ट उद्घोषित कर रखा है। (देवता प्राणविशेष है, यह पूर्व कहा जा चुका है) और, इसे सूर्यका भ्राता कहते हुए सूर्यसे ही इसका उद्भव भी मान रखा है। यों जिन सिद्धान्तोंका आविष्कार वैज्ञानिकोंके लिये अभी शेष ही है, वे भी वेदमें निश्चित रूपसे उपलब्ध हो जाते हैं।

रूपके सम्बन्धमें वर्तमान विज्ञानका मत है कि जिन वस्तुओंमें हम रूप देखते हैं, उनमें रूप नहीं; रूप सूर्यकी किरणोंमें है। वस्तुओंमें एक प्रकारकी भिन्न-भिन्न शक्ति है, जिसके कारण कोई वस्तु सूर्य-किरणके किसी रूपको उगल देती है और शेष रूपोंको खा जाती है। तात्पर्य यह कि रूपोंका आधार—रूपोंको बनानेवाली सूर्य-किरणें हैं। अब देखिये; वेद भी रूप-विज्ञानके सम्बन्धमें उपदेश करता है—

शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यद्
विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो
भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु॥
(ऋ० ६।५८।१)

इस मन्त्रमें भाष्यकार श्रीमाधवाचार्यने भी रूप और यजत-कृष्ण-रूप यही अर्थ किया है। देवताकी स्तुति है कि 'रूप तुम्हारे हैं, तुम दोनोंके द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकारकी सब मायाओंको हो या रक्षा करते हो।'

इससे यह भी प्रकट किया गया है कि रूप मुख्य दो ही हैं—शुक्र और कृष्ण। उन्हींके संमिश्रणसे स्थान रक्त-रूप और फिर परस्पर मेलसे नाना रूप जाते हैं। यों यहाँ 'पूषा' देवताको रूपका कारण गया है और—'इन्द्रो रूपाणि कनिक्रदचरत्' तैत्तिरीयसंहिता इत्यादिमें इन्द्रको सब रूपोंका कर्ता कहा गया है। तात्पर्य यह कि सूर्य-संज्ञक देवता ही रूपोंके उत्पादक हैं। यह हमें इन मन्त्रोंमें मिल जाता है। [वैदिक सूर्य-वि इन बातोंके परिप्रेक्ष्यमें आधुनिक विज्ञानके परिशीलन करना चाहिये और उभय विज्ञानोंके सम प्रयास करना चाहिये—सं०]

'उदयत्येष सूर्यः'

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः॥

सूर्यके सम्बन्धमें ज्ञानियोंका कहना है कि ये विश्वरूपको [illegible] [illegible] (प्रश्नो० १।८)

वैदिक सूर्यविज्ञानका रहस्य

(लेखक—स्व० म० म० आचार्य पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०)

(क) उपक्रम

बहुत दिन पहलेकी बात है, जिस दिन महापुरुष परमहंस श्रीविशुद्धानन्दजी महाराजका पता लगा था; तब उनके सम्बन्धमें बहुत-सी अलौकिक शक्तिकी बातें सुनी थीं। बातें इतनी असाधारण थीं कि उनपर सहसा कोई भी विश्वास नहीं कर सकता था। यद्यपि 'अचिन्त्यमहिमानः खलु योगिनः' (योगियोंकी महिमा अचिन्त्य होती है)—इस शास्त्र-वाक्यपर मैं विश्वास करता था और देश-विदेशके प्राचीन और नवीन युगोंमें विभिन्न सम्प्रदायोंके जिन विभूतिसम्पन्न योगी और सिद्ध महात्माओंकी कथाएँ ग्रन्थोंमें पढ़ता था, उनके जीवनमें घटित अनेक अलौकिक घटनाओंपर भी मेरा विश्वास था, तथापि आज भी हमलोगोंके बीचमें ऐसे कोई योगी महात्मा विद्यमान हैं, यह बात प्रत्यक्ष-दर्शीके मुखसे सुनकर भी ठीक-ठीक हृदयङ्गम नहीं कर पाता था। इसलिये एक दिन संदेह-नाश तथा औत्सुक्यकी निवृत्तिके लिये महापुरुषके दर्शनार्थ मैं गया।

उस समय संध्या समीपप्राय थी, सूर्यास्तमें कुछ ही काल अवशिष्ट था। मैंने जाकर देखा, बहुसंख्यक भक्तों और दर्शकोंसे घिरे हुए पृथक् आसनपर एक सौम्यमूर्ति महापुरुष व्याघ्र-चर्मपर विराजमान हैं। उनकी सुन्दर लम्बी दाढ़ी है, चमकते हुए विशाल नेत्र हैं, पकी हुई उम्र है, गलेमें सफेद जनेऊ है, शरीरपर काषाय वस्त्र हैं और चरणोंमें भक्तोंके चढ़ाये हुए पुष्प तथा पुष्पमालाओंके ढेर लगे हैं। पास ही एक स्वच्छ काश्मीरी उपलसे बना हुआ गोल यन्त्रविशेष पड़ा है। महात्मा उस समय योगविद्या और प्राचीन आर्यविज्ञानके गूढ़तम रहस्योंकी उपदेशके बहाने साधारणरूपमें कर रहे थे। कुछ समयतक उनका उपदेश सुननेपर जान पड़ा कि इनमें अनन्य साधारण विशेषता है; क्योंकि उनकी प्रत्येक बातपर इतना जोर था, मानो वे अपनी अनुभवसिद्ध बात कह रहे हैं—केवल शास्त्रवचनोंकी आवृत्तिमात्र नहीं। इतना ही नहीं, वे प्रसङ्गपर ऐसा भी कहते जाते थे कि शास्त्रकी सभी बातें सत्य हैं, आवश्यकता पड़नेपर किसी भी समय योग्य अधिकारीको मैं दिखला भी सकता हूँ। उस समय 'जात्यन्तरपरिणाम' का विषय चल रहा था। वे समझा रहे थे कि जगत्‌में सर्वत्र ही सत्तामात्ररूपसे सूक्ष्मभावसे सभी पदार्थ विद्यमान रहते हैं। परंतु जिसकी मात्रा अधिक प्रस्फुटित होती है, वही अभिव्यक्त और इन्द्रियगोचर होता है। जिसका ऐसा नहीं होता, वह अभिव्यक्त नहीं होता—नहीं हो सकता। अतएव इनकी व्यञ्जनाका कौशल जान लेनेपर किसी भी स्थानसे किसी भी वस्तुका आविर्भाव किया जा सकता है। अभ्यासयोग और साधनाका यही रहस्य है। हम व्यवहार-जगत्‌में जिस पदार्थको जिस रूपमें पहचानते हैं, वह उसकी आपेक्षिक सत्ता है, वह केवल हम जिस रूपमें पहचानते हैं, वही है—यह बात किसीको नहीं समझनी चाहिये। लोहेका टुकड़ा केवल लोहा ही है सो बात नहीं है, उसमें सारी प्रकृति अव्यक्त-रूपमें निहित है; परंतु लौहभावकी प्रधानतासे अन्यान्य समस्त भाव उसमें विलीन होकर अदृश्य हो रहे हैं। किसी भी विलीन भावको (जैसे सोना) प्रबुद्ध करके उसकी मात्रा बढ़ा दी जाय तो पूर्वभाव स्वभावतः ही अव्यक्त हो जायगा और उस सुवर्णादिके प्रबुद्धभावके प्रकट हो जानेसे वह वस्तु फिर उसी नाम और रूपमें परिचित होगी। सर्वत्र ऐसा ही समझना चाहिये। वस्तुतः लोहा सोना नहीं हुआ, वह अव्यक्त हो गया

और सुवर्णभाव अव्यक्तताको हटाकर प्रकाशित हो गया। आपातदृष्टिसे यही समझमें आयेगा कि लोहा ही सोना हो गया है—परंतु वास्तवमें ऐसा नहीं है।* कहना नहीं होगा कि यही योगशास्त्रका 'जात्यन्तरपरिणाम' है। पतञ्जलिजी कहते हैं कि प्रकृतिके आपूरणसे 'जात्यन्तरपरिणाम' होता है—एकजातीय वस्तु अन्य-जातीय वस्तुमें परिणत होती है ('जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात्')। यह कैसे होता है, सो भी योग-शास्त्रमें बतलाया गया है।†

कुछ देरतक स्मितमुस्कानसे मेरे मुखकी ओर देखकर उन्होंने मुझसे कहा—'तुम्हें यह करके दिखाता हूँ।' इतना कहकर उन्होंने आसनपरसे एक गुलाबका फूल हाथमें लेकर मुझसे पूछा—'बोलो, इसको किस फूलमें बदल दिया जाय?' वहाँ जवाकुसुम नहीं था, इसीसे उसको जवाकुसुम बना देनेके लिये उनसे कहा। उन्होंने मेरी बात स्वीकार कर ली और बायें हाथमें गुलाबका फूल लेकर दाहिने हाथसे उस स्फटिकयन्त्रके द्वारा उसपर विकीर्ण सूर्यरश्मिको संहत करने लगे। ...

* योगियोंने 'मूलपृथक्त्व' कहकर अव्यक्तभावसे बीज-निष्ठरूपमें भी पृथक्ताकी सत्ता स्वीकार की है। ऐसा न करनेसे सृष्टिवैचित्र्यका कोई मूल नहीं रह जाता। व्यासदेवने कहा है, 'जात्यनुच्छेदेन सर्वं सर्वात्मकम्।' इससे यह जाना जाता है कि जातिका उच्छेद प्रलयमें भी नहीं होता, प्रलय और अव्यक्तावस्थामें भी जातिभेद रहता है—परंतु वह अधिष्ठानके लोपके कारण अव्यक्त रहता है। सृष्टिके साथ-ही-साथ उसकी स्फूर्ति होती है। प्रलयकी चरमावस्थामें समस्त प्रकृतिपर ही आवरण पड़ जाता है, इसलिये उसमें विकारोन्मुख परिणाम नहीं रहता। साधारणतः जिसको सृष्टि कहा जाता है, वह आंशिक सृष्टि और आंशिक प्रलय होता है—आवरण जहाँ नहीं है, वहाँ निरन्तर विकार पैदा होता रहता है, जहाँ है, वहाँ कोई भी विकार नहीं होता। जहाँ कोई आवरण नहीं होता, वहाँ प्रकृति सर्वतोभावसे मुक्त होकर अखिल परिणामकी ओर उन्मुख हो जाती है। युगपत् अनन्त आकारोंका स्फुरण होता है, इसलिये किसी विशिष्ट आकारका भान नहीं होता, उसको निराकार स्फूर्ति कहते हैं, वही ब्रह्म है।

† पतञ्जलिका सिद्धान्त है—'निमित्तमप्रयोजकम्'—निमित्तकारण उपादानस्वरूपा प्रकृतिको प्रेरणा नहीं दे सकता। वह प्रकृतिनिष्ठ आवरणको दूर करता है। आवरण दूर होनेपर आच्छन्न प्रकृति उन्मुक्त होकर अपने आप ही अपने विकारोंके रूपमें परिणत होने लगती है। लोहेमें सुवर्ण-प्रकृति है, वह आवरणसे ढकी है—और लौह प्रकृति आवरणसे मुक्त है, इसीसे लौहपरिणाम चल रहा है; किंतु यदि सुवर्ण प्रकृतिका यह आवरण किसी उपायसे (योग या आर्षविज्ञानसे) हटा दिया जाय तो लौह-प्रकृति ढक जायगी और सुवर्ण-प्रकृति परिणामकी धारामें विकार उत्पन्न करेगी। यह स्वाभाविक है, यह कौशल ही प्रकृति विधा है। परंतु इसके द्वारा असत्को सत् नहीं किया जा सकता। केवल अव्यक्तको व्यक्त किया जा सकता है। वस्तुतः सत्कार्यवादमें सृष्टिमात्र ही अभिव्यक्त है। जो कभी नहीं था, वह कभी होता भी नहीं, (नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः)। इसीसे ऋषि कहते हैं कि निमित्त प्रकृतिको प्रेरित नहीं कर सकता—प्रवृत्ति नहीं दे सकता। प्रकृतिमें विकारोन्मुखताकी ओर स्वाभाविक प्रेरणा विद्यमान है। प्रतिबन्धक रहनेके कारण वह कार्य कर नहीं पाती। पूर्वोक्त कौशल या निमित्त (धर्माधर्म और इसी प्रकार निमित्त) इस प्रतिबन्धकको केवल हटा भर देता है।

क्रान्तदर्शी कविने कहा है—

शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः। स्पर्शानुकूला अपि सूर्यकान्तास्ते ह्यन्यतेजोऽभिभवाद् दहन्ति॥

इससे जाना जाता है, जो शीतल (शमप्रधान) है उसमें भी 'दाहात्मक तेज' या ताप है, परंतु वह गूढ है। अर्थात् सभी जगह सभी वस्तुएँ हैं, परंतु जो गूढ है (छिपी है) वह देखनेमें नहीं आती। उसकी क्रिया भी नहीं [illegible] है, उसीकी क्रिया होती है, वही दृश्य है। 'गूढ' धर्मकी क्रिया न हो सकनेका कारण 'व्यक्त' धर्मकी [illegible] यदि व्यक्त धर्म बाह्य तेज (अन्य तेज) के द्वारा अभिभूत कर दिया जाय तो विद्यमान धर्म जो अनभिभूत होनेके कारण प्रकट हो जाता है और क्रिया करने लगता है।

देखा, उसमें क्रमशः एक स्थूल परिवर्तन हो रहा है। पहले एक लाल आभा प्रस्फुटित हुई—धीरे-धीरे तमाम गुलाबका फूल विलीन होकर अव्यक्त हो गया और उसकी जगह एक ताजा हल्का खिला हुआ झुमका जवा प्रकट हो गया। कौतूहलवश इस जपापुष्पको मैं अपने घर ले आया था।* स्वामीजीने कहा—'इसी प्रकार समस्त जगत्‌में प्रकृतिका खेल हो रहा है, जो इस खेलके तत्त्वको कुछ समझते हैं, वे ही ज्ञानी हैं। अज्ञानी इस खेलसे मोहित होकर आत्मविस्मृत हो जाता है। योगके बिना इस ज्ञान या विज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती। इसी प्रकार विज्ञानके बिना वास्तविक योगपदपर आरोहण नहीं किया जा सकता।'

मैंने पूछा—'तब तो योगीके लिये सभी कुछ सम्भव है?' उन्होंने कहा—'निश्चय ही है, जो यथार्थ योगी हैं, उनकी सामर्थ्यकी कोई इयत्ता नहीं है, क्या हो सकता है और क्या नहीं, कोई निर्दिष्ट सीमारेखा नहीं है। परमेश्वर ही तो आदर्श योगी हैं, उनके सिवा महाशक्तिका पूरा पता और किसीको प्राप्त नहीं है, न प्राप्त हो ही सकता है। जो निर्मल होकर परमेश्वरकी शक्तिके साथ जितना युक्त हो सकते हैं, उनमें उतनी ही ऐसी शक्तिकी स्फूर्ति होती है। यह युक्त होना एक दिनमें नहीं होता, क्रमशः होता है। इसीलिये शुद्धिके तारतम्यके अनुसार शक्तिका स्फुरण भी न्यूनाधिक होता है। शुद्धि या पवित्रता जब सम्यक्‌प्रकारसे सिद्ध हो जाती है, तब ईश्वर-सायुज्यकी प्राप्ति होती है। उस समय योगीकी शक्तिकी कोई सीमा नहीं रहती। उसके लिये असम्भव भी सम्भव हो जाता है। अघटनघटना-पटीयसी माया उसकी इच्छाके उत्पन्न होते ही उसे पूर्ण कर दिया करती है।'

मैंने पूछा—'इस फूलका परिवर्तन आपने योगबलसे किया या और किसी उपायसे?' स्वामीजी बोले—'उपायमात्र ही तो योग है। दो वस्तुओंको एकत्र करनेको ही तो योग कहा जाता है। अवश्य ही यथार्थ योग इससे पृथक् है। अभी मैंने यह पुष्प सूर्यविज्ञानद्वारा बनाया है। योगबल या शुद्ध इच्छाशक्तिसे भी सृष्टि आदि सब कार्य हो सकते हैं, परंतु इच्छा-शक्तिका प्रयोग न करके विज्ञानकौशलसे भी सृष्ट्यादि कार्य किये जा सकते हैं।' मैंने पूछा—'सूर्यविज्ञान क्या है?' उन्होंने कहा, 'सूर्य ही जगत्‌का प्रसविता है। जो पुरुष सूर्यकी रश्मि अथवा वर्णमालाको भलीभाँति पहचान गया है और वर्णोंको शोधित करके परस्पर मिश्रित करना सीख गया है, वह सहज ही सभी पदार्थोंका संघटन या विघटन कर सकता है। वह

* घर लानेका कारण यह था कि आँखोंद्वारा देखनेपर भी उस समय मैं यह धारणा नहीं कर पाता था कि ऐसा क्योंकर हो सकता है। मुझे अस्पष्टरूपसे ऐसा भान होता था कि इसमें कहीं मेरा दृष्टिभ्रम तो नहीं है, मैं कहीं सम्मोहनी विद्या (मेस्मेरिज्म)के वशीभूत होकर ही जवा-फूलकी कोई सत्ता न होनेपर भी जवाफूल तो नहीं देख रहा हूँ। लोग Optical illusion, hallucination, hypnotism आदि शब्दोंके द्वारा इसी प्रकार ऐसी सृष्टिक्रियाको समझानेकी चेष्टा किया करते हैं। वे लोग भ्रान्त हैं, क्योंकि सम्मोहनविद्याके प्रभावसे अथवा तज्जातीय अन्य कारणोंसे जिस सृष्टिका प्रकाश होता है, वह प्रातिभासिक होती है, स्थायी नहीं होती। वह लौकिक व्यवहारमें भी नहीं आ सकती। परंतु व्यावहारिक सृष्टि इससे अलग है। स्वप्न और जाग्रत्-अवस्थामें जैसे भेद हैं, वैसे ही प्रातिभासिक और व्यावहारिक सत्तामें भी पृथक्ता है। वेदान्तियोंकी जीवसृष्टि और ईश्वरसृष्टिका भेद भी इस प्रसङ्गमें आलोचनीय है। वस्तुतः मैंने अज्ञानवश ही संदेह किया था। वह जपापुष्प जागतिक जपापुष्पोंकी तरह ही व्यावहारिक सत्तासम्पन्न पदार्थ था, द्रष्टाके दृष्टिभ्रमसे उत्पन्न आभासमात्र नहीं था। इस फूलको मैंने बहुत दिनोंतक अपने पास पेटीमें बड़े यत्नसे रखा और लोगोंको दिखाया था, बहुत दिन बीत जानेपर वह सूख गया।

देखता है कि सभी पदार्थोंका मूल बीज इस रश्मिगणके विभिन्न प्रकारके संयोगसे ही उत्पन्न होता है। वर्णभेदसे और विभिन्न वर्णोंके संयोगसे भेद, विभिन्न पद उत्पन्न होते हैं, वैसे ही रश्मिभेद और विभिन्न रश्मियोंके मिश्रण-भेदसे जगत्के नाना पदार्थ उत्पन्न होते हैं। अवश्य ही यह स्थूल दृष्टिमें बीज-सृष्टिका एक रहस्य है। सूक्ष्म दृष्टिमें अव्यक्त गर्भमें बीज ही रहता है। बीज न होता तो इस प्रकार संस्थान-भेदजनक रश्मिविशेषके संयोग-वियोग-विशेषसे और इच्छाशक्ति या सत्यसङ्कल्पके प्रभावसे भी सृष्टि होनेकी सम्भावना नहीं रहती। इसीलिये योग और विज्ञानके एक होनेपर भी एक प्रकारसे दोनोंका किञ्चित् पृथक्‌रूपमें व्यवहार होता है। रश्मियोंको शुद्धरूपसे पहचानकर उनकी योजना करना ही सूर्यविज्ञानका प्रतिपाद्य विषय है। जो ऐसा कर सकते हैं, वे सभी स्थूल और सूक्ष्म कार्य करनेमें समर्थ होते हैं। सुख-दुःख, पाप-पुण्य, काम-क्रोध, लोभ, प्रीति, भक्ति आदि सभी चैतसिक वृत्तियाँ और संस्कार भी रश्मियोंके संयोगसे ही उत्पन्न होते हैं। स्थूल वस्तुके लिये तो कुछ कहना ही नहीं है। अतएव जो इस योजन और वियोजनकी प्रणालीको जानते हैं, वे सभी कुछ कर सकते हैं—निर्माण भी कर सकते हैं और संहार भी, परिवर्तनकी तो कोई बात ही नहीं। यही सूर्यविज्ञान है।'

मैंने पूछा—'आपको यह कहाँसे मिला ! मैंने तो कहीं भी इस विज्ञानका नाम नहीं सुना।' उन्होंने हँसकर कहा, 'तुम लोग बच्चे हो, तुम लोगोंका ज्ञान ही कितना है ! यह विज्ञान भारतकी ही वस्तु है—उच्च कोटिके ऋषिगण इसको जानते थे और उपयुक्त क्षेत्रमें इसका प्रयोग किया करते थे। अब भी इस विज्ञानके पारदर्शी आचार्य अवश्य ही वर्तमान हैं। वे हिमालय और तिब्बतमें गुप्तरूपसे रहते हैं। मैंने स्वयं तिब्बतके बगान्तभागमें ज्ञानगंज नामक बड़े भारी योगाश्रममें रहकर

एक योगी और विश
कठोर साधना करके इस
अनेक गुप्त विधाओंको
जटिल और दुर्गम विषय है
अधिक हैं। इसीलिये आ
विषय नहीं सिखाते।'

मैंने पूछा, 'क्या इस प्रका
उन्होंने कहा, 'हैं नहीं तो क्या !
वायुविज्ञान, क्षणविज्ञान, शब्द
इत्यादि बहुत विद्याएँ हैं। केव
क्या समझोगे ! तुमलोगोंने शास्
नाममात्र सुने हैं, वे तथा उनके
मालूम कितनी और हैं !'

इस प्रकार बातें होते-होते संध्
ही घड़ी रुकी थी। महापुरुषने देख
है, वे तुरंत नित्यक्रियाके लिये उठ
क्रियागृहमें प्रविष्ट हो गये। हम सब
स्थानोंको लौट आये।

इसके बाद मैं प्रायः प्रतिदिन ही उन
और उनका सङ्ग करता। इस प्रकार क्रमशः
बढ़ गयी। क्रमशः नाना प्रकारकी अलौकि
प्रत्यक्ष देखने लगा। कितनी देखी, उनकी संख्या
कठिन है। दूरसे, नजदीकसे, स्थूलरूपसे, सू
भौतिक जगत्‌में, दिव्य जगत्‌में—यहाँतक कि
जगत्‌में भी—मैं उनकी असंख्य प्रकारकी
शक्तिके खेलको देख-देखकर स्तम्भित होने लगा।
मैंने जिनमें स्वयं जो कुछ देखा और अनुभव
है, उसीको लिखा जाय तो एक महाभारत बन सक
है। परंतु यहाँ उन सब बातोंको लिखनेकी आव
नहीं है और सारी बातें लिखा

स्वामीजी महोदयके उपदिष्ट और प्रदर्शित
‍-) विज्ञानके सम्बन्धमें दो-चार बातें लिखूँगा ।

(ख) सूर्यविज्ञानका रहस्य

यद्यपि कालधर्मके कारण हम सौरविज्ञान या सावित्री-
को भूल गये हैं, तथापि यह सत्य है कि प्राचीन
में यही विद्या ब्राह्मण-धर्मकी और वैदिक साधना-
भित्तिस्वरूप थी । सूर्यमण्डलतक ही संसार है,
ण्डलका भेद करनेपर ही मुक्ति मिल सकती है—
बात ऋषिगण जानते थे । वस्तुतः सूर्यमण्डलतक
वेद या शब्दब्रह्म है—उसके बाद सत्य या परब्रह्म
. शब्दब्रह्ममें निष्णात ही परब्रह्मको पा सकता है—
ब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ।
—यह बात जो लोग कहा करते, वे जानते थे
शब्दब्रह्मका अतिक्रमण किये बिना या सूर्यमण्डलको
। बिना सत्यमें नहीं पहुँचा जाता । श्रीमद्भागवतमें
ा है—

> य एष संसारतरुः पुराणः
> कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसूते ॥
> द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः
> पञ्चस्कन्धः पञ्चरसप्रसूतिः ।
> दशैकशाखो द्विसुपर्णनीड-
> स्त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्कं प्रविष्टः ॥
> (११ । १२ । २१-२२)

‘यह कर्मात्मक संसारवृक्ष है—जिसके दो बीज,
मूल, तीन नाल, पाँच स्कन्ध, पाँच रस, ग्यारह
शाखाएँ हैं; जिनमें दो पक्षियोंका निवासस्थान है,
उसके तीन वल्कल और दो फल हैं ।* यह संसार-वृक्ष
सूर्यमण्डलपर्यन्त व्याप्त है । श्रीधरस्वामी और विश्वनाथ
दोनोंने कहा है—अर्कप्रविष्टः सूर्यमण्डलपर्यन्तं व्याप्तः ।
तन्निर्भिद्य गतस्य संसाराभावात् ।

प्रकृतिका रहस्य जाननेके लिये यह सूर्य ही
साधन है । श्रुतिमें आया है कि सूर्यमें रहनेवाला
पुरुष मैं हूँ—

> हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
> योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽहम् ॥
> (मैत्री-उपनिषद् ६ । ३५)

सूर्यसे ही चराचर जगत् उत्पन्न होता है, यह
श्रुतिने स्पष्टरूपमें निर्देश किया है । इसी मैत्री-उपनिषद्में
लिखा है कि प्रसवधर्मके कारण ही सूर्यका ‘सविता’ नाम
सार्थक हुआ है (सवनात् सविता) ।† बृहद्योगियाज्ञवल्क्यमें
स्पष्ट तौरपर लिखा है—

> सविता सर्वभावानां सर्वभावांश्च सूयते ॥
> सवनात् प्रेरणाच्चैव सविता तेन चोच्यते ।
> (९ । ५५-५६)

सूर्योपनिषद्में सूर्यके जगत्की उत्पत्ति उसके पालन
और नाशका हेतु होनेका वर्णन आया है—

> सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु ।
> सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च ॥

आचार्य शौनकने बृहद्देवतामें उच्चस्वरसे कहा है
कि एकमात्र सूर्यसे ही भूत, भविष्य और वर्तमानके
समस्त स्थावर और जङ्गम पदार्थ उत्पन्न होते हैं और
उसीमें लीन हो जाते हैं ।

यही प्रजापति तथा सत् और असत्के योनिस्वरूप
हैं—यह अक्षर, अव्यय, शाश्वत ब्रह्म हैं । ये तीन

---

* बीज=पुण्य-पाप । मूल=वासना (शत=असंख्य)। नाल=गुण । स्कन्ध=भूत । रस=शब्दादि विषय । शाखा=
न्द्रिय । फल=सुख-दुःख । सुपर्ण या पक्षी=जीवात्मा और परमात्मा । नीड=वासस्थान । वल्कल=धातु अर्थात् वात,
त्त और श्लेष्मा ।

† षूङ् प्राणिप्रसवे इत्यस्य धातोरेतद्रूपम् । सुनोति सूयते वा उत्पादयति चराचरं जगत् स सविता ।
षू प्रसवैश्वर्ययोः—सर्वभूतानां प्रसवः उत्पत्तिस्थानं सर्वैश्वर्यं च ।

मार्गोंमें विभक्त होकर तीन लोकोंमें वर्तमान हैं—अथवा देखा इनकी रश्मियाँ स्थित हैं—

भवद् भूतं भविष्यच्च जङ्गमं स्थावरं च यत्।
अस्यैके सूर्यमेवैकं प्रभवं प्रलयं विदुः॥
असतश्च सतश्चैव योनिरेषा प्रजापतिः।
तदक्षरं चाव्ययं च यच्चैतद् ब्रह्म शाश्वतम्॥
कृत्वैव हि त्रिधात्मानमेषु लोकेषु तिष्ठति।
देवान् यथायथं सर्वान् निवेश्य स्वेषु रश्मिषु॥

सूर्यसिद्धान्तनामक ज्योतिष-ग्रन्थमें लिखा है कि ये सब जगत्के आदि हैं, इस कारण ये आदित्य हैं। जगत्को प्रसव करते हैं, इस कारण सूर्य और सविता हैं—ये तमोमण्डलके उस पार परम ज्योतिःस्वरूप हैं—

आदित्यो ह्यादिभूतत्वात् प्रसूत्या सूर्य उच्यते।
परं ज्योतिस्तमःपारे सूर्योऽयं सवितेति च॥

यह जो परम ज्योतिकी बात कही गयी, यह शब्द-ब्रह्ममय मन्त्रज्योति है—यही अखण्ड अविभक्त प्रणवात्मक वेदस्वरूप है—इसीसे विभक्त होकर ऋक्, यजुः और सामरूप वेदत्रयका आविर्भाव होता है। सूर्यपुराणमें इसीलिये स्पष्ट कहा गया है कि—

नत्वा सूर्यं परं धाम ऋग्यजुःसामरूपिणम्।

अर्थात् परंधाम सूर्य ऋक्-यजु-साम रूप हैं; उन्हें नमस्कार है।

विद्यामाधवकारने भी इसीलिये सूर्यको 'त्रयीमय' और 'अमेयांशुनिधि'के नामसे निर्देश किया है और कहा है कि ये तीनों जगत्के 'प्रबोधहेतु' हैं। उन्होंने कहा है कि सूर्यके बिना 'सर्वदर्शित्व' सम्भव नहीं; इसीसे मानो शंकरने उन्हें नेत्ररूपसे धारण किया है। सूर्यसे ही सब भूतोंके चैतन्यका उन्मेष और निमेष होता है, यह श्रुतिमें भी लिखा है—

योऽसौ तपन्नुदेति स सर्वेषां भूतानां प्राणानाद-
असौ योऽस्तमेति स सर्वेषां भूतानां प्राणा-

१. याज्ञवल्क्यकृत सूर्यस्तोत्र (अंश २, अध्याय ५)में सूर्यको [illegible] रूप, [illegible], अग्निरूप, [illegible] और [illegible] वर्णन किया गया है, [illegible] थोड़ी। अग्नि और [illegible] सूर्य [illegible] पर [illegible] होता है।

उद्यन्तं वादित्यमग्निरनुसमारोहति [illegible] सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः।

श्रुतिमें आता है कि सूर्य पूर्वाह्णमें ऋग्वेद, [illegible] यजुःसे और अपराह्णमें सामवेदसे युक्त होते हैं—

ऋग्भिः पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते
यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्नः।
सामवेदेनास्तमये महीयते
वेदैरशून्यस्त्रिभिरेति सूर्यः॥

सूर्यसिद्धान्तकार कहते हैं कि ऋक् ही [illegible] मण्डल और यजुः तथा साम उनकी मूर्ति हैं—कालात्मक, कालकृत, त्रयीमय भगवान् हैं।

ऋचोऽस्य मण्डलं सामान्यस्य मूर्तिर्यजूंषि [illegible]
त्रयीमयोऽयं भगवान् कालात्मा कालकृद् विभुः

वस्तुतः प्रणव या ॐकार या उद्गीथ ही सूर्य हैं। ये नादब्रह्म हैं, ये निरन्तर रव करते हैं, इस [illegible] 'रवि' नामसे विख्यात हैं। छान्दोग्य-उपनिषद् ([illegible] ४। १–५) में है कि त्रयीविद्या या छन्दोरूप [illegible] वेदोंने इस उद्गीथको आवृत कर रक्खा है। [illegible] बाहर मृत्युराज्य है। देवताओंने मृत्यु-भयसे डर सबसे पहले वेदकी शरण ग्रहण की और छन्[illegible] द्वारा अपनेको आच्छादित किया—अपना गोपन या र[illegible] (गुप्=रक्षा) की; तथापि मृत्युने उन लोगोंको दे[illegible] लिया था—जिस तरह जलके अंदर मछली दिखा[illegible] पड़ती है, उसी तरह। जलके दृष्टान्तसे मालूम होता [illegible] कि वेदत्रय जलवत् स्वच्छ आवरण है। मधुविद्यामें [illegible] वेदको 'आपः' या जल कहा गया है। एक हिसाब

ही पुराणवर्णित कारणवारि है *। देवताओंने उस समय शब्दसे निकलकर नादका आश्रय ग्रहण किया। इसीसे शब्द-अन्तमें नादका आश्रय लिया जाता है। यही अमर अभय पद है। उसके बाद (छा० १।५।१—५ में ही) स्पष्ट कहा गया है कि उद्गीथ या प्रणव ही सूर्य हैं— ये सर्वदा नाद करते हैं। इस प्रणव-सूर्यकी दो अवस्थाएँ हैं। एक अवस्थामें इनकी रश्मिमाला चारों ओर विकीर्ण हुई है†। दूसरी अवस्थामें समस्त रश्मियाँ संहृत होकर मध्यबिन्दुमें विलीन हुई हैं। यह द्वितीय अवस्था ही प्रणवकी कैवल्य या शुद्धावस्था है। ऋषि कौषीतकि प्राचीन कालमें इसके उपासक थे। प्रथम अवस्था प्रणव-सूर्यकी सृष्ट्युन्मुख अवस्था है। उन्होंने अपने पुत्रसे प्रथम उपासनाकी बात कही। उद्गीथ या प्रणव ही अधिदेवरूपमें सूर्य हैं, यह कहकर अध्यात्मदृष्टिसे यही प्राण है, यह समझाया गया है।

प्रश्नोपनिषद् (५। १—७) में लिखा है कि ॐकारका अभिध्यान प्रयाणकालतक करनेसे अभिध्यानके भेदके कारण भिन्न-भिन्न लोक अधिकृत (लोकजय) होते हैं। यह ॐकार ही 'पर' और 'अपर' ब्रह्म है। एक मात्राके अभिध्यानके फलस्वरूप जीव उसके द्वारा संवेदित होकर शीघ्र ही जगतीको यानी पृथिवीको प्राप्त होता है। उस समय ऋक् उसको मनुष्यलोकमें पहुँचा देते हैं। वहाँ वह तपस्या, ब्रह्मचर्य और श्रद्धाद्वारा सम्पन्न होकर महिमाका अनुभव करता है। द्विमात्राके अभिध्यानके फलसे मनःसम्पत्ति उत्पन्न होती है—उस समय यजुः उसको अन्तरिक्षमें ले जाते हैं। वह सोमलोकमें जाता है और विभूति-का अनुभव कर पुनरावर्तन करता है। त्रिमात्राके —अर्थात् ॐअक्षरके—द्वारा परम पुरुषके अभिध्यानके प्रभावसे तेजः या सूर्यमें सम्पत्ति उत्पन्न होती है— उस समय साधक सूर्यके साथ तादात्म्य प्राप्त करता है। जिस तरह साँपकी बाह्य त्वचा या केंचुल खिसक पड़ती है—सूर्यमण्डलस्थ आत्मा भी उसी तरह समस्त पापों या मलसे निर्मुक्त हो जाता है।‡ वहाँसे साम उसे ब्रह्मलोकमें ले जाते हैं। साधक सूर्यसे—'जीवघन'से

---

* वेदसे ही सृष्टि होती है, यह इस प्रसङ्गमें स्मरण रखना चाहिये। वेद ही शब्द-ब्रह्म हैं।

† ये रश्मियाँ ठीक रास्तोंके समान हैं। जिस तरह रास्ता एक गाँवसे दूसरे गाँवतक फैला रहता है, उसी तरह सब रश्मियाँ भी इह लोकसे परलोक पर्यन्त फैली हुई हैं। इनकी एक सीमापर सूर्यमण्डल है और दूसरी सीमापर नाड़ीचक्र। सुषुप्तिकालमें जीव इस नाड़ीके भीतर प्रवेश करता है—उस समय स्वप्न नहीं रहता, शान्ति उत्पन्न होती है। यह तेजःस्थान है। देहत्यागके बाद जीव इन सब रश्मियोंका अवलम्बन लेकर, ॐकारभावनाकी सहायतासे ऊपर उठता है। सङ्कल्पमात्रसे ही मनमें वेग होता है और उसी वेगसे सूर्यपर्यन्त उत्थान होता है। सूर्य ब्रह्माण्डके द्वारस्वरूप हैं—ज्ञानी इस द्वारको भेदकर सत्यमें और अमर धाममें पहुँच सकते हैं, अज्ञानी नहीं पहुँच सकते। हृदयसे चारों ओर असंख्य नाड़ियाँ या पथ फैले हुए हैं,—केवल एक सूक्ष्म पथ ऊपर मूर्द्धाकी ओर गया हुआ है। इसी सूक्ष्म पथसे चल सकनेपर सूर्यद्वार अतिक्रम किया जाता है। अन्यान्य पथोंसे चलनेपर भुवनकोशमें ही आबद्ध रहना पड़ता है। यद्यपि भुवनकोशका केन्द्र सूर्य होनेके कारण समस्त भुवन एक प्रकारसे सौरलोकके ही अन्तर्गत हैं, तथापि केन्द्रमें प्रविष्ट न हो सकनेके कारण सौरमण्डलके बाहर जाना असम्भव हो जाता है।

‡ श्रीवैष्णव भी इसे स्वीकार करते हैं। सूर्यमण्डलमें प्रवेश किये बिना जीवका लिङ्ग शरीर नहीं नष्ट होता। लिङ्ग-शरीरके मुक्त हुए बिना जीवकी मुक्ति कहाँ! जीव रविमण्डलमें आनेपर ही पवित्र होता है और उसके सब क्लेश दग्ध हो जाते हैं। ऐसा महाभारतमें भी कहा है। पिथागोरसके मतसे भी शुद्धिमण्डल सूर्यमें स्थित है—सूर्य जगत्‌के मध्यमें अवस्थित है। जीवमात्र ही यहाँ आनेपर अपने आत्मभावको प्राप्त करते और पवित्र होते हैं। अरस्तुका भी कहना है कि पिथागोरसके मतसे शुद्धिमण्डल या Sphere of fire सूर्यस्थ है।

—परात्पर पुरमें सोये हुए पुरुषका दर्शन करता है। तीनों मात्राएँ पृथक्-पृथक् विनश्वर और मृत्युमती हैं; परंतु एकीभूत होनेपर ये ही अजर और अमर भावको प्राप्त करानेवाली हैं।

इससे माल्म होता है कि वेदत्रय पृथक् रूपमें लोकत्रयको प्राप्त करानेवाले हैं—ऋक् भूलोकको, यजुः अन्तरिक्षलोकको और साम स्वर्गलोकको प्राप्त करानेवाला है। ये तीनों लोक पुनरावर्तनशील हैं। ये ही प्रणवकी तीन मात्राएँ हैं। वेदत्रयको घनीभूत करनेपर ही ॐकाररूप ऐक्यका स्फुरण होता है। उसके द्वारा पुरुषोत्तमका अभिध्यान होता है। वेदत्रय जब सूर्य हैं एवं प्रणव जब वेदका ही घनीभूत प्रकाश है, तब सूर्य प्रणवका ही बाह्य विकास है, इसमें कोई संदेह नहीं।

हमारे ऋषियोंका कहना है कि शुद्ध आत्मतेज अंशतः सूर्यमण्डल भेदकर जगत्में उतर आता है। शुद्ध भूमिसे जगत्में अवतीर्ण होनेके लिये और जगत्से शुद्ध धाममें जानेके लिये सूर्य ही द्वारस्वरूप हैं। पिथागोरसने कहा है कि सूर्य एक तेजोधारकमात्र है—इसीमेंसे होकर आत्मज्योतिः जगत्में उतरती है। प्लेटोका कहना है कि ज्योतिः Kabalis और अन्यान्य तत्त्वदर्शियोंके मतसे परम पदार्थका प्रथम विकास है।* अपनी रश्मिसे ईश्वरने जो तेज प्रज्वलित किया है, वही सूर्य है। सूर्य प्रकाश या तापकी प्रभा नहीं है, बल्कि Focus है, यह एक Lens मात्र है, जिसके प्रभावसे आदिम ज्योतिका रश्मिसमूह स्थूल Material बन जाता है, हमारे सौरजगत्में एकत्र होता है और नाना प्रकारकी शक्ति उत्पन्न करता है।

सूर्यरश्मियाँ अनन्त हैं—जातिमें और संख्यामें अनन्त हैं। परंतु मूल प्रभा एक ही है—वह शुक्लवर्ण है। यही मूल शुक्लवर्ण लाल, नील इत्यादिके साथ मिलनेके कारण और भी विभिन्न उपवर्णोंमें प्रकाशित होता है। शुक्लसे सर्वप्रथम लाल, नील प्रभृति प्रथम स्तरका आविर्भाव होता है। शुक्लसे और जो वर्णातीत तत्त्व है, उसके साथ शुक्लका संघर्ष होनेसे इस प्रथम भूमिका विकास होता है। यह अन्तः संघर्षका फल है। यह वर्णातीत तत्त्व ही चिद्रूप शक्ति है। इस प्रथम स्तरसे परस्पर संयोग या बहिःसंघर्ष होनेके कारण द्वितीय स्तरका आविर्भाव होता है। आपेक्षिक दृष्टिसे पहली शुद्ध सृष्टि है और दूसरी मलिन सृष्टि है।

दूसरे प्रकारसे भी यही बात माल्म होती है। मूल एक और अखण्ड है। यह अविभक्त रहता हुआ भी पुरुष और प्रकृतिरूपमें द्विधा विभक्त होता है—यही आत्मविभाग या अन्तःसंघर्षसे उत्पन्न स्वाभाविक सृष्टि है। निम्नवर्ती सृष्टि पुरुष और प्रकृतिके परस्पर सम्बन्ध या बहिःसंघर्षसे आविर्भूत हुई है—यही मलिन मैथुनी सृष्टि है।

सूर्यविज्ञानका मूल सिद्धान्त समझनेके लिये इस अवर्ण, शुक्लवर्ण, मौलिक विचित्र वर्ण और यौगिक विचित्र उपवर्ण—सबको समझना आवश्यक है—विशेषतः अन्तके तीनोंको।

ऊपर जो शुक्लवर्णकी बात कही गयी है, वही विशुद्ध सत्त्व है—इस सादे प्रकाशके ऊपर जो अनन्त वैचित्र्यमय रंगका खेल निरन्तर हो रहा है, वही विश्वलीला है, वही संसार है। जैसा बाहर है वैसा ही भीतर भी एक ही व्यापार है। पहले पूर्वप्रदिष्ट क्रमसे इस सादे प्रकाशके स्फुरणको प्राप्त करके, उसके ऊपर यौगिक विविध उपवर्णोंके विश्लेषणसे प्राप्त मौलिक विचित्र वर्णोंको एक-एक करके अलग-अलग पहचानना होता है।

है। मूल वर्णको जाननेके लिये सादेकी सहायता अत्यावश्यक है; क्योंकि जिस प्रकाशमें रंग पहचानना है, वह प्रकाश यदि स्वयं रंगीन हो तो उसके द्वारा ठीक-ठीक वर्णका परिचय पाना सम्भव नहीं।

रंगीन चश्मेके द्वारा जो कुछ दिखायी देता है, वह दृश्यका रूप नहीं होता, यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं। योगशास्त्रमें जिस तरह चित्तशुद्धि हुए बिना तत्त्वदर्शन नहीं होता, उसी तरह सूर्यविज्ञानमें भी वर्णशुद्धि हुए बिना वर्णभेदका तत्त्व हृदयङ्गम नहीं हो सकता। हम जगत्में जो कुछ देखते हैं, सब मिश्रण है—उसका विश्लेषण करनेपर संघटक शुद्ध वर्णका साक्षात्कार होता है। उन सब वर्णोंको अलग-अलग सादे वर्णके ऊपर डालकर पहचानना होता है। सृष्टिके अंदर शुक्लवर्ण कहीं भी नहीं है। जो है वह आपेक्षिक है। पहले विशुद्ध शुक्लवर्णको कौशलसे प्रस्फुटित कर लेना होगा। यह प्रस्फुटित करना और कुछ नहीं है; पहले ही कहा है कि समस्त जगत् सादेके ऊपर खेल रहा है; रंगोंके इस खेलको स्थानविशेषमें अवरुद्ध कर देनेसे ही वहाँपर तुरंत शुक्ल तेजका विकास हो जाता है। इस शुक्लको कुछ कालतक स्तम्भित करके उसमे पूर्वोक्त विचित्र वर्णोंका स्वरूप पहचान लेना होता है। इस प्रकार वर्णपरिचय हो जानेपर सब वर्णोंके संयोजन और वियोजनको अपने अधीन करना होता है। कुछ वर्णोंके निर्दिष्ट क्रमसे मिलनेपर निर्दिष्ट वस्तुकी सृष्टि होती है; क्रमभङ्ग करनेसे नहीं होती। किस वस्तुमें कौन-कौन वर्ण किस क्रमसे रहते हैं, यह सीखना होता है। उन सब वर्णोंको ठीक उसी क्रमसे सजानेपर ठीक उस वस्तुकी उत्पत्ति होगी—अन्यथा नहीं। जगत्के यावत् पदार्थ ही जब मूलतः वर्णसङ्घर्षजन्य हैं, तब जो पुरुष वर्णपरिचय तथा वर्णसंयोजन और वियोजनकी प्रणाली जानते हैं, उनके लिये उन पदार्थोंकी सृष्टि और संहार करना सम्भव न होनेका कोई कारण नहीं।

साधारणतः लोग जिसे वर्ण कहते हैं, वह सूर्य-विज्ञानविद्की दृष्टिमें ठीक वर्ण नहीं—वर्णकी छायामात्र है। शुद्ध तत्त्वका आश्रय लिये बिना वास्तविक वर्णका पता पानेका कोई उपाय नहीं। काकतालीय न्यायसे भी पाना कठिन है—क्योंकि एक ही वर्णसे सृष्टि नहीं होती, एकाधिक वर्णके सयोगसे होती है। इसीसे एकाधिक शुद्ध वर्णोंके संयोगकी आशा काकतालीय न्यायसे भी नहीं की जा सकती। भारतवर्षमें प्राचीन कालमें वैदिक लोगोंकी तरह तान्त्रिक लोग भी इस विज्ञानका तत्त्व अच्छी तरह जानते थे। इसे जानकर ही तो वे 'मन्त्रज्ञ', 'मन्त्रेश्वर' और 'मन्त्रमहेश्वर'के पदपर आरोहण करनेमें समर्थ होते थे। क्योंकि षडध्वशुद्धिका रहस्य जो जानते हैं, वे समझ सकते हैं कि वर्ण और कला नित्यसंयुक्त हैं। वर्णसे मन्त्र एवं मन्त्रसे पदका विकास जिस तरह वाचक भूमिपर होता है, उसी तरह वाच्य भूमिपर कलासे तत्त्व और तत्त्वसे भुवन तथा कार्यपदार्थकी उत्पत्ति होती है। वाक् और अर्थके नित्यसंयुक्त होनेके कारण जिन्होंने वर्णको अधिकृत किया है, उन्होंने कलाको भी अधिकृत कर लिया है। अतएव स्थूल, सूक्ष्म और कारण जगत्में उनकी गति अबाधित होती है।*

* देवाधीनं जगत् सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः। ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदेवता॥

समस्त जगत् देवताओंद्वारा संचालित है। जो कुछ यहाँ होता है, उसके मूलमें देवशक्ति है। देवता मन्त्रका ही अभिव्यक्त रूप है। वाचक मन्त्र ही साधकके प्रयत्नविशेषसे अभिव्यक्त होकर देवतारूपमें आविर्भूत होता है। जिस तरह बिना बीजके वृक्ष नहीं, उसी तरह मन्त्रके बिना देवता नहीं। जो वर्णतत्त्ववित् पुरुष वर्णसंयोजनके द्वारा मन्त्रका गठन कर सकते हैं, सुतरां जो मन्त्रेश्वर हैं, वे देवताके भी नियामक हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। समग्र जगत् इस प्रकार मन्त्रज्ञ, मन्त्रेश्वर ब्राह्मणके अधीन हो जायगा, इसमें संशय करनेका कोई कारण नहीं।

ऊपर शुक्र वर्ण या शुद्ध सत्त्वकी जो बात कही गयी है, वही आगमशास्त्रका बिन्दु-तत्त्व है। यह चन्द्रबिन्दु है। यही कुण्डलिनी और चिदाकाश है—यही शब्दमातृका है। इसके विक्षोभसे ही नाद और वर्ण उत्पन्न होते हैं। अकारादि वर्णमाला इस शुद्ध सत्त्वरूप चन्द्रबिन्दुसे ही शुक्र वर्णसे क्षरित होती है।* जो इन सब वर्णोंके उद्भव और विस्तार-क्रम नहीं जानते, जो सब वर्णोंके अन्योन्य सम्बन्धको नहीं समझते, जो सम्बन्ध स्थापित करने और तोड़नेमें समर्थ नहीं हैं, वे किस प्रकारसे मन्त्रोद्धार कर सकते हैं !

सूर्य-विज्ञानके मतसे, सृष्टिका आरम्भ किस प्रकार होता है, यह हमने बतला दिया। वैज्ञानिक सृष्टि कूट सृष्टि नहीं है, यह स्मरण रखना चाहिये। इसके बाद सृष्टिका विस्तार किस प्रकार होता है, यह बतलाता है।

परंतु जिसको और भी स्पष्टरूपमें समझनेकी चेष्टा करें। दृष्टान्तरूपसे ले लें कि हमें कर्पूरकी सृष्टि करनी है। मान लीजिये कि योगविद्याके अनुसार क, प, त, र—इन चार रश्मियोंका इस प्रकार क्रमबद्ध संयोग होनेसे कर्पूर उत्पन्न होता है। अब उद्बुद्ध [illegible] ऊपर क्रमशः क, प, त और र—इन चार रश्मियोंके [illegible] कर्पूरकी गन्ध [illegible]। परंतु एक ही [illegible] नहीं [illegible] [illegible] कोई [illegible] नहीं। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] आकारित और वर्णमें रञ्जित हो जायगा। इन [illegible] ही वास्तविक आकर्षण-शक्तिका मूल है। इसीसे 'क' को आकर्षित करके रखता है और स्वयं भी उसी भावमें भावित हो जाता है। इसके बाद 'प' [illegible] वह भी उसमें मिलकर उसके अन्तर्गत आ जाता। इसी प्रकार 'त' और 'र'के विषयमें भी समझना चाहिये। 'र' अन्तिम वर्ण है—इसीसे इसके [illegible] कर्पूर अभिव्यक्त हो जाता है। अव्यक्त कर्पूर-सत्ताकी अभिव्यक्तिका यही आदि क्षण है। यदि क, प, त और र—इन रश्मियोंके उस संघातको अक्षुण्ण [illegible] जाय तो वह अभिव्यक्ति अक्षुण्ण रहेगी, अव्यक्त [illegible] नहीं आवेगी। परंतु दीर्घ कालतक उसे रखना [illegible] है। इसके लिये विशिष्ट चेष्टा चाहिये; [illegible] जगत् गमनशील है। यहाँपर एक गम्भीर रहस्यकी बात है। अव्यक्त कर्पूर ज्यों ही व्यक्त हुआ त्यों ही उसको पुष्ट करनेके लिये—धारण करनेके लिये यन्त्र चाहिये। इसीका दूसरा नाम योनि है। यह व्यक्त सत्ता लिङ्गमात्र है। योनिरूपा शक्ति प्रकृति [illegible] अन्तर्निहित शक्ति है। उसका आविर्भाव भी [illegible] सापेक्ष है। यद्यपि सारे वर्णोंके साथ यह शक्ति भी [illegible] है तथापि [illegible] भी अनिवार्य है। अन्तिम वर्णके [illegible] जिस समय कर्पूर [illegible] लिङ्गरूपमें [illegible] होती है, उस समय यह शक्ति ही अभिव्यक्त होकर उसको धारण करती है और उसको स्थूल कर्पूरत्वको प्राप्त कराती है। [illegible]

* [illegible]

स कार्यको देखकर उसपर अधिकार करनेकी चेष्टा करता है । संयोगकी तीव्रताके अनुसार सृष्टिविस्तारका तारतम्य होता है । कर्पूरका सत्तारूपसे आविर्भाव (विलक्षण, अभिनव) सृष्टि है, उसका परिमाण या मात्राकी वृद्धि (पूर्वसृष्ट पदार्थकी मात्राविषयक) सृष्टि है । मात्रावृद्धि अपेक्षाकृत सहज कार्य है । जो एक बूँद कर्पूर निर्माण कर सकते हैं, वे सहज ही उसे क्षणभरमें लाख मनमें परिणत कर सकते हैं; क्योंकि प्रकृतिका भाण्डार अनन्त और अपार है—उसके साथ संयोजन करके दोहन कर सकनेपर चाहे जिस वस्तुको चाहे जिस परिमाणमें आकर्षित किया जा सकता है* । परंतु वस्तुकी विशिष्ट सत्ताका आविर्भाव कठिन कार्य है । वही स्थूल जगत्की बीज-सृष्टि है ।

परंतु यह बीजसृष्टि भी प्रकृत बीजकी सृष्टि नहीं है, मूल बीजकी सृष्टि नहीं है । ऊपर जो अव्यक्त कर्पूर-सत्ताकी बात कही गयी है, वही मूल बीज है । और जो विकृतरूपसे बीजकी बात कही गयी, वही गौण या स्थूल बीज है । स्थूल बीज विभिन्न रश्मियोंके क्रमानुकूल संयोगविशेषसे अभिव्यक्त होता है । परंतु मूल बीज अतीन्द्रिय अव्यक्त, प्रकृतिका आत्मभूत और नित्य है । इस प्रकारके अनन्त बीज हैं । प्रत्येक बीजमें एक आवरण है—उससे वह विकारोन्मुख नहीं हो सकता, मूल बीज स्थूल बीजके रूपमें परिणत नहीं हो सकता । सूर्यविज्ञान रश्मिविन्यासके द्वारा उस मूल बीजको व्यक्त करके सृष्टिका आरम्भ दिखा देता है ।

परंतु उस बीजको व्यक्त करनेके और भी कौशल हैं । वायुविज्ञान, शब्दविज्ञान इत्यादि विज्ञान-बलसे चेष्टापूर्वक रश्मिविन्यास किये बिना भी अन्य उपायोंसे यह अभिव्यक्तिका कार्य संघटित किया जाता है । पूज्यपाद परमहंसदेवने, उन सब विज्ञानोंके द्वारा भी सृष्टि-प्रभृति प्रक्रिया किस प्रकार साधित हो सकती है, यह योग्य अधिकारियोंको प्रत्यक्ष दिखा दिया है । इन पंक्तियोंके लेखकने भी सौभाग्यवश उसे कई बार देखा है; परंतु उन सब गुह्य विषयोंकी अधिक आलोचना करना अनुचित समझकर यहींपर हम छोड़ रहे हैं । जो ऋषि-मुनियोंके हृदयकी वस्तु है, उसे सर्वसाधारणके सामने रखना अच्छा नहीं । (संकेत मात्र पर्याप्त है ।)

सृष्टिकी आलोचना करते हुए साधारणतः तीन प्रकारकी सृष्टिकी बात कही जाती है । उनमें पहली परा सृष्टि, दूसरी ऐश्वरिक सृष्टि और तीसरी ब्राह्मी सृष्टि या वैज्ञानिक सृष्टि है । सूर्यविज्ञानके बलसे जिस सृष्टि-की बात कही गयी है, उसे तीसरे प्रकारकी सृष्टि समझनी चाहिये ।

---

* शून्यको किसी भी बड़ी-से-बड़ी संख्याके द्वारा गुणा करनेपर भी एक बिन्दुमात्र सत्ताका उद्भव नहीं होता । परंतु अति क्षुद्र सत्ताको भी संख्याद्वारा गुणा करनेपर मात्रा-वृद्धि होती है । किसीके भी हृदयमें सरसों बराबर भी पवित्रता होनेपर कृपाबलसे महापुरुषगण उसका उद्धार कर सकते हैं; क्योंकि कुछ रहनेपर उसे बढ़ाया जा सकता है । परंतु जहाँपर कुछ नहीं है—अर्थात् अभिव्यक्तरूपमें नहीं है—वहाँ बाहरकी सहायता बेकार है । उस समय साधकको अपनी चेष्टा-के द्वारा उसे भीतरसे जाग्रत् करना पड़ता है । यही पौरुषका क्षेत्र है । फिर बिन्दुमात्र भी उद्बुद्ध होते ही बाह्य शक्ति कृपारूपसे उसको बढ़ा देती है । इस पौरुषके बिना केवल कृपाद्वारा कोई फल नहीं होता । श्रीकृष्णने द्रौपदीके पात्रसे बिन्दुबराबर अन्न लेकर उसके द्वारा हजारों ऋषियोंको तृप्त कर दिया था । देश और विदेशमें महापुरुषोंके चरित्रोंमें ऐसे अनेक दृष्टान्त मिल जायँगे ।

हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय।
(ऋक्० १।५०।११)

सूर्यः शृणोतु मेरजम्। (अथर्व० ६।८३।१)
भजीजनम् सविता सुम्नमुक्थ्यम्।
(ऋक्० ४।५३।२)

इस प्रकार मानसिक शान्ति प्रदान करके वे सब प्रकारके सुख प्राप्त कराते हैं और कर्मोंको पूर्ण करनेकी सामर्थ्य देते हैं—

नानि देवः सविताभिरक्षते।
(ऋक्० ४।५३।४)

सबकी आत्मा सूर्य

र्यमें उत्पादन और प्रेरणा-शक्तिका उत्स है। य होते ही प्राणियोंको अपने दैनिक कार्योंमें प्रवृत्त ो स्वतः प्रेरणा होती है। इसलिये सूर्यको चल अचल अथवा चेतन और जड़—दोनों प्रकारकी ी आत्मा कहा गया है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः॥
(ऋक्० १।११५।१)

दोनोंमें इसीके द्वारा रोचना दिखायी देती है। ं द्युलोकको ये ही प्रकाशित करते हैं—

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती।
व्यख्यन्महिषो दिवम्। (ऋक्० १०।१८९।२)

वे ही सबके सामने मार्गदर्शक बनकर खड़े हुए और उनके अच्छे-बुरे कर्मों तथा पुण्य-पापको ते हुए—

नकिरिन्द्रो निकर्तवे न शक्रः परिशक्तवे।
विश्वं शृणोति पश्यति। (ऋक्० ८।७८।५)

—मित्रवत् पुण्यकर्मका फल देते हैं। वरुण पुलिस-नागकी तरह उन प्राणियोंके दुष्ट कर्मोंका लेखा-जोखा कर, न्यायकारी (अर्यमा) भगवान्‌के सामने उपस्थित ते हैं। अतः जो सबके वशी तथा नियन्त्रणकर्ता हैं, वे अपने गेयरूपी अहसा (पाससे) रक्षा करते हैं।

यो मित्राय वरुणायाविधज्जनोऽनर्वाणं तं परि पातो अंहसो दाश्वांसं मर्तमंहसः। तमर्यमाभिरक्षति ऋजूयन्तमनुव्रतम्। उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम्॥ (ऋक्० १।१३६।५)

सूर्य स्वयम्भू हैं, इस सौर जगत्‌में श्रेष्ठ हैं, सारे जगत्‌को प्रकाशित कर रहे हैं। सबको वर्चस् और ज्योति देते हैं। जो भी सूर्यके नियमोंका अनुसरण करेगा, वह उनके समान वर्चस्वी बनेगा। यहाँ सूर्य और भगवान्‌में तादात्म्य दर्शाया है।

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि। सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते। (यजु० २।२६)
विश्वमाभासि रोचनम्। (ऋक्० १।५०।४)

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं
विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत्।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु
पप्रथे सह ओजो अच्युतम्॥
(ऋक्० १०।१७०।३)

परमात्मा ही हमें जाने या अनजाने किये हुए पापोंसे मुक्त करनेकी सामर्थ्य रखते हैं। उनकी कृपा होनेपर ही पुरुष देवयानके पथपर चलता हुआ कल्याण प्राप्त करता है—

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनांसि चकृमा वयम्।
सूर्यो मातस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वंहसः॥
(यजु० २०।१६)

अध्वनामध्वपते प्रमातिर स्वस्ति
मेऽस्मिन्पथिदेवयाने भूयात्॥
(यजु० २।३३)

यदाविर्यदपीच्यं देवासो अस्ति दुष्कृतम्।
आरे…अस्मद्धातन। (ऋक्० ८।४७।१३)

यहाँ परमात्माको सर्वोत्पादक तथा सर्वप्रेरक होनेसे सूर्य-नामसे सम्बोधित किया गया है। सौर जगत्‌में सूर्यकी भी यही स्थिति है।

सूर्य-(भगवद्-) दर्शन

सर्वव्यापक विष्णु (सूर्य भगवान्) का परम पद द्युलोकमें सूर्यसदृश विस्तृत है । मुनिलोग सूर्यके समान ही उन्हें सदा देखते हैं—

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् । (ऋक्० १ । २२ । २०)

यहाँ भी सर्वव्यापक ब्रह्म तथा सूर्यमें समानता दर्शायी गयी है ।

सूर्य जड़, चेतन, विद्वान्, मूर्ख तथा पुण्यात्मा और पापी—सबको समानरूपसे प्रकाश एवं प्रेरणा देते हैं—

साधारणः सूर्यो मानुषाणाम् । (ऋक्० ७ । ६३ । १)
प्रत्यङ्देवानां विशः प्रत्यङ् उदेषि मानुषान् ।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे । (ऋक्० १ । ५० । ५)

वे सब प्रकारके अन्न तथा वनस्पतियोंको पकाते हैं—

स ओषधीः पचति विश्वरूपाः ।
(ऋक्० १० । ८८ । १०)

जीवनी शक्ति प्रदान करते हैं—

लिये तीनों प्रकारकी रक्षा करनेयोग्यके सुख एवं ... प्रदान करें—

बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः
स्थातुरुभयस्य यो वशी ।
स नो देवः सविता शर्म
यच्छत्वस्मे क्षयाय त्रिवरूथमंहसः ।
(ऋक्० ४ । ५३ । ६)

वे सविता देव नाना प्रकारके अमृत-तत्त्व प्रदान करते हैं—

स धानो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि ।
(अथर्व० ६ । १ । ३)

हम उन सविता देवके पापों और दुःखोंको भस्म करनेवाले वरणीय तेजका ध्यान करते हैं और फिर उसे धारण करनेका प्रयत्न करते हैं । वह सर्वप्रेरक हमारे संकल्प, बुद्धि और कर्मोंको सन्मार्गपर प्रेरित करे—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् । (ऋक्० ३ । ६२ । १०)

जिससे हम उन देवोंके देव, परमज्योतिर्मय

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्यपुरुषः सोऽसावहम्, ओम् खं ब्रह्म॥
(यजु० ४० । १७)

भगवान्के बाद सौर-जगत्के सृष्ट पदार्थोंमें सूर्य ही सबसे महिमामय तत्त्व हैं। इसलिये भगवान्की झलक दिखानेके लिये वेदमें भगवान्को आदित्यवर्ण कहा है। जैसे सूर्य सर्वरोगमोचक हैं, वैसे ही भगवान् मृत्युसे मोक्ता हैं—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥
(यजु० ३१ । १८)

जैसे सूर्य जगत्के अन्धकारके आवरणको झटककर हटा देते हैं, वैसे ही भगवान् भक्तके अज्ञानावरणको झटक देते हैं—

आर्द्रां केचित्पद्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत। वारं न देवः सविता व्यूर्णुते॥
(ऋक्० ९ । ११० । ६)

इस प्रकार वेदोंमें आदित्यपुरुष और ब्रह्मपुरुषमें या भगवान् और सूर्यमें गुणों और कार्योंकी इतनी समानता दर्शायी है कि उनमें कभी-कभी अभेद प्रतीत होता है। हमारी सृष्टिमें सबसे महिमामय तत्त्व सूर्य ही हैं और इसलिये भगवान्को यदि किसी स्थूल दृश्यमान तत्त्वसे समझना हो तो केवल सूर्यद्वारा ही समझा जा सकता है। इसीलिये आदित्य-हृदयमें कहा गया है कि सूर्यमण्डलमें कमलासनपर आसीन 'नारायण'का सदा ध्यान करना चाहिये—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः।

प्रेरणा, दीप्ति और हितकारिताकी दृष्टिसे मनुष्यका आदर्श पुरुष या लक्ष्य सूर्य हैं। वह सूर्य-सदृश बनकर ही भगवान् परमेश्वर या ब्रह्मका दर्शन कर सकता है और उन्हें प्राप्त कर सकता है।

वेदोंमें भगवान् सूर्यकी महत्ता और स्तुतियाँ

(लेखक—श्रीरामस्वरूपजी शास्त्री 'रसिकेश')

पृथ्वीसे भी अत्यधिक उपकारक भगवान् सूर्य हैं। अतः हमारे पूर्वज ऋषि-महर्षियोंने श्रद्धा-विभोर होकर सूर्यदेवकी स्तुति-प्रार्थना और उपासनाके सैकड़ों सुन्दर मन्त्रोंकी उद्भावना की है। उनके प्रशंसनीय प्रयासका दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

१–सूर्य-स्तुति—

वैदिक ऋषियोंका ध्यान भगवान् सूर्यके निम्नलिखित गुणोंकी ओर विशेषरूपसे गया है—(क) अन्धकारका नाश, (ख) राक्षसोंका नाश, (ग) दुःखों और रोगोंका नाश, (घ) नेत्र-ज्योतिकी वृद्धि, (ङ) चराचरकी आत्मा, (च) आयुकी वृद्धि और (छ) लोकोंका धारण।

नीचे भुवन-भास्करके इन्हीं गुणोंके सम्बन्धमें वेद-मन्त्रोंद्वारा प्रकाश डाला जाता है।

(क) अन्धकारका नाश—

अभितप्ता सौर्य ऋषिकी प्रार्थना है—

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना। तेनास्मद् विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुष्वप्न्यं सुव॥
(ऋग्वेद १० । ३७ । ४)

हे सूर्य! आप जिस ज्योतिसे अन्धकारका नाश करते हैं तथा प्रकाशसे समस्त संसारमें स्फूर्ति उत्पन्न कर देते हैं, उसीसे हमारा समग्र अन्नोंका अभाव, यज्ञका अभाव, रोग तथा दुःस्वप्नोंके कुप्रभाव दूर कीजिये।

(ख) राक्षसोंका नाश—

महर्षि अगस्त्य ऐसे ही विचारोंको निम्नाङ्कित मन्त्रमें व्यक्त करते हैं—

उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा।
अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः॥
(ऋग्वेद १।१९१।८)

'सबको दीखनेवाले, न दीखनेवाले (राक्षसों) को नष्ट करनेवाले, सब रजनीचरों तथा राक्षसियोंको मारते हुए वे सूर्यदेव सामने उदित हो रहे हैं।'

(ग) रोगोंका नाश—

प्रस्तुत मन्त्रसे विदित होता है कि सूर्यका प्रकाश पीलिया रोग तथा हृदयके रोगोंमें विशेष लाभप्रद माना जाता था। प्रस्कण्व ऋषिकी सूर्य देवतासे प्रार्थना है—

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥
(ऋग्वेद १।५०।११)

'हे हितकारी तेजवाले सूर्य! आप आज उदित होते तथा ऊँचे आकाशमें जाते समय मेरे हृदयके रोग तथा पाण्डुरोग (पीलिया) को नष्ट कीजिये।' इस मन्त्रके 'उद्यन्' तथा 'आरोहन्' शब्दोंसे सूचित होता है कि दोपहरसे पूर्वके सूर्यका प्रकाश उक्त रोगोंका विशेषतः नाश करता है।

(घ) नेत्र-ज्योतिकी वृद्धि—

वेदोंमें विभिन्न देवताओंको पृथक्-पृथक् पदार्थोंका [illegible]

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः
(ऋ० १।११५।१)

ये सूर्य देवताओंके अद्भुत मुखमण्डल ही हैं कि उदित हुए हैं। ये मित्र, वरुण और अग्नि चक्षु हैं। सूर्य तथा नेत्रोंके घनिष्ठ सम्बन्धको अथर्व इन अमर शब्दोंमें व्यक्त किया है—

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्त-
रिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्
(अथर्व० ५।९

'सूर्य ही मेरे नेत्र हैं, वायु ही प्राण है, अ ही आत्मा है तथा पृथिवी ही शरीर है।'

इसी प्रकार दिवंगत व्यक्तिके चक्षुके सूर्यमें होनेकी कामना की गयी है। (ऋ० १०।१६ सूर्यदेवता दूसरोंको ही दृष्टि-दान नहीं करते, स्व रहते हुए भी प्रत्येक पदार्थपर पूरी दृष्टि डाल ऋजिश्वा ऋषिके विचार इस विषयमें इस प्रकार हैं

वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म स च विप्रः। ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि सूरो अर्य एवान्॥ (ऋ० ६।५१।२)

जो विद्वान् सूर्यदेवता तथा इन अन्य देवताओंके (पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्यौ) और इनकी संतानोंके हैं, वे मनुष्योंके सरल और कुटिल कर्मोंको सम्यक्

(च) आयु-वर्धक—

यों तो रोगोंसे बचाव तथा उनके उपचारसे भी आयु-वृद्धि होती है, फिर भी वेदोंमें ऐसे मन्त्र विद्यमान हैं, जिनमें सूर्य एवं दीर्घायुका प्रत्यक्ष सम्बन्ध दिखाया गया है। यथा—

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्। (यजु० ३६। २४)

देवताओंद्वारा स्थापित वे तेजस्वी सूर्य पूर्वदिशामें उदित हो रहे हैं। उनके अनुग्रहसे हम सौ वर्षोंतक (तथा उससे भी अधिक) देखें और जीवित रहें।

(छ) लोक-धारण—

वैदिक ऋषि इस बातको सम्यक् अनुभव करते हैं कि लोक-लोकान्तर भी सूर्य-देवताद्वारा धारण किये जाते हैं। निदर्शनके लिये एक ही मन्त्र पर्याप्त होगा—

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः। येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता॥ (ऋ० १०। १७०। ४)

'हे सूर्य! आप ज्योतिसे चमकते हुए द्यौ लोकके सुन्दर सुखप्रद स्थानपर जा पहुँचे हैं। आप सर्वकर्म-साधक तथा सब देवताओंके हितकारी हैं। आपने ही सब लोक-लोकान्तरोंको धारण किया है।'

२-सूर्य-देवसे प्रार्थनाएँ—

उपर्युक्त अनेक मन्त्रोंमें सूर्यदेवताका गुण-गान ही नहीं है, प्रसंगवश प्रार्थनाएँ भी आ गयी हैं। दो-एक अभ्यर्थनापूर्ण मन्त्र द्रष्टव्य हैं—

दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्याः
पुत्रं नाथकाम उप यामि भीतः।
स नः सूर्य प्रतिर दीर्घमायु-
र्मा रिषाम सुमतौ ते स्याम॥
(अथर्व० १३। २। ३७)

'मैं द्यौकी पीठपर उड़ते हुए अदितिके पुत्र, सुन्दर पक्षी (सूर्य) के पास कुछ माँगनेके लिये डरता हुआ जाता हूँ। हे सूर्यदेव! आप हमारी आयु खूब लंबी करें। हम कोई कष्ट न पावें। हमपर आपकी कृपा बनी रहे।'

अपने उपास्य प्रसन्न हो जायँ तो उनसे अन्य कार्य भी करा लिये जाते हैं। निम्नलिखित मन्त्रमें महर्षि वसिष्ठ भगवान् सूर्यसे कुछ इसी प्रकारका कार्य करानेकी भावना व्यक्त करते हैं—

स सूर्य प्रति पुरो न उद्गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः। प्र नो मित्राय वरुणाय वोचोऽनागसो अर्यम्णे अग्नये च॥ (ऋ० ७। ६२। २)

'हे सूर्य! आप इन स्तोत्रोंके द्वारा तीव्रगामी घोड़ोंके साथ हमारे सामने उदित हो गये हैं। आप हमारी निष्पापताकी बात मित्र, वरुण, अर्यमा तथा अग्नि-देवसे भी कह दीजिये।'

उपासना—

स्तुति, प्रार्थनाके पश्चात् उपासककी एक ऐसी अवस्था आ जाती है, जब वह अपने आपको उपास्यके पास ही नहीं, बल्कि, अपनेको उपास्यसे अभिन्न अनुभव करने लगता है। ऐसी ही दशाकी अभिव्यक्ति निम्न-लिखित वेद-मन्त्रमें की गयी है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्॥
(यजु० ४०। १७)

'उस अविनाशी आदित्यदेवताका शरीर सुनहले ज्योतिपिण्डसे आच्छादित है। उस आदित्यपिण्डके भीतर जो चेतन पुरुष विद्यमान है, वह मैं ही हूँ।' उपर्युक्त विवरणसे सिद्ध है कि जहाँ हमारे वैदिक पूर्वज भौतिक सूर्य-पिण्डसे विविध लाभ उठाते थे, वहाँ उसमें विद्यमान चेतन सूर्य-देवतासे स्व-कामना-पूर्तिके लिये प्रार्थनाएँ भी करते थे। तत्पश्चात् उनसे एकरूपताका अनुभव करते हुए असीम आत्मिक आनन्दके भागी बन जाते थे। सचमुच महाभाग सूर्य महान् देवता हैं।

ऋग्वेदमें सूर्य-सन्दर्भ

ऋग्वेदमें सूर्यसे सन्दर्भित कुल चौदह सूक्त हैं, जिनमेंसे ग्यारह पूर्णतः सूर्यकी उपवर्णना, स्तुति या महत्त्व-प्रतिपादक हैं। संक्षेपमें उदाहरण देखें—सूर्य 'आदित्य' हैं; क्योंकि वे अदितिके पुत्र बतलाये गये हैं। अदितिदेवीके पुत्र आदित्य (सूर्य) माने गये हैं। आदित्य छः हैं—मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष और अंश (म० २, सूक्त २७, मं० १)।पृ०९।११४।में सात तरहके सूर्य बताये गये हैं। १० । ७२। ८ में कहा गया है कि अदितिके आठ पुत्र थे—मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान् और आदित्य। इनमेंसे सातको लेकर अदितिदेवी चली गयीं और आठवें सूर्यको उन्होंने आकाशमें छोड़ दिया। [तैत्तिरीय ब्राह्मणमें आदित्यके स्थानपर इन्द्रका नाम है। शतपथ-ब्राह्मणमें १२ आदित्योंका उल्लेख है। महाभारत (आदिपर्व, १२१ अध्याय)में इन १२ आदित्योंके नाम हैं—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, सविता और विष्णु। अदितिका यौगिक अर्थ अखण्ड है। यास्कने अदितिको देवमाता माना है।]

कहा जाता है कि वस्तुतः सूर्य एक ही हैं। कर्म, काल और परिस्थितिके अनुसार उनके विविध नाम रखे गये हैं।

मण्डल १, सूक्त ३५ में ११ मन्त्र हैं और सब-के-सब सूर्यवर्णनसे पूर्ण हैं। एक ही सूक्तमें सूर्यका अन्तरिक्षमें भ्रमण, प्रातःसे सायंतक उदय-नियम, राशि-विचरण, सूर्यके कारण चन्द्रमाकी स्थिति, किरणोंसे रोगादिकी निवृत्ति, सूर्यके द्वारा भूलोक और द्युलोकका प्रकाशन आदि बातें भी विदित होती हैं। आठवें मन्त्रमें कहा गया है—'सूर्य आठों दिशाएँ (चार दिशाओं और चार उनके कोनों) को प्रका[शित] किये हुए हैं। उन्होंने प्राणियोंके तीन संसार और [सात] सिन्धु भी प्रकाशित किये हैं। सोनेकी आँखोंवाले स[विता] यजमानको द्रव्य देकर यहाँ आवें।'

मं० १, सू० ५०, मं० ८ में लिखा है—[सूर्य!] तुम्हें हरित नामके सात घोड़े (किरणें) रथ[में ले] जाते हैं। किरणें या ज्योति ही तुम्हारे केश [हैं।] मं० २, सू० ३६-२ में कहा गया है—सूर्यके [एक] चक्रवाले रथमें सात घोड़े जोते गये हैं। एक ही [अश्व] (किरण) सात नामोंसे रथ ढोता है। इससे वि[दित] होता है कि ऋषिको सूर्य-रश्मिके सात भेदों और उ[नके] एकत्वका भी ज्ञान था।

मं० १, सू० १२३, मं० ८ में कहा गया है-'उषा सूर्यसे ३० योजन आगे रहती है।' इ[सपर] आचार्य सायणने लिखा है—'सूर्य प्रतिदिन ५०[५९] योजन भ्रमण करते हैं। इस तरह सूर्य प्रत्येक दण्[ड] ७९ योजन घूमते हैं। उषा सूर्यसे ३० यो[जन] पूर्वगामिनी है, इसलिये सूर्योदयसे प्रायः आधा घ[ण्टा] पहले उषाका उदय मानना चाहिये।' पाश्चात्यों[के] मतसे सूर्य बीस हजार मील प्रतिदिन चलते [हैं,] परंतु सूर्यकी गति अपने कक्षमें ही होती है।*

इन दो मन्त्रोंमें सूर्य-सम्बन्धी अनेक विषय ज्ञात[व्य] हैं—'सत्यात्मक सूर्यका बारह अरों, खूँटों या राशियों[से] युक्त चक्र स्वर्गके चारों ओर बार-बार भ्रमण करता [है] और कभी पुराना नहीं होता। अग्नि इस चक्रमें पुत्र[-]स्वरूप होकर सात सौ बीस दिन (अर्थात् ३६० दिन औ[र]

* कृ० यजु० वे० तै० ब्रा०के द्वितीय मन्त्रके भाष्यमें आचार्य सायणने सूर्यको नमस्कार करते हुए उनकी गतिका भी [उल्ले]ख किया है— ... ... योजने। एकेन निमिषार्धेन क्रममाण [नमोऽस्तु ते॥]

३६० रात्रियाँ) निवास करते हैं। अगले मन्त्रमें दक्षिणायन (पूर्वार्द्ध) और उत्तरायण (अन्यार्ध)का भी कथन है (मं० १, सू० १६४,मं० ११-१२)। मं० १, सू० ११७, मं० ४-५ में भी दक्षिणायनका विषय है। मं० १, सू० १६, मं० ४८ में भी ३६० दिनोंकी बात है।

मं० १, सू० १५५, मं० ६ में कालके ये ९४ अंश बताये गये हैं—संवत्सर, दो अयन, पाँच ऋतु (हेमन्त और शिशिरको एक माननेपर), बारह मास, चौबीस पक्ष, तीस अहोरात्र, आठ पहर और बारह राशियाँ।

मं० ५, सू० ४०, मं० ५–९ में सूर्य-ग्रहणका पूर्ण विवरण है।

मं० ७, सू० ६६, मं० ११में सूर्य (मित्र वरुण और अर्यमा) के द्वारा वर्ष, मास, दिन और रात्रिका बनाया जाना लिखा है। पृ०१२८-८में १२ मासोंकी बात तो है ही, तेरहवें महीनेका भी उल्लेख है। यह तेरहवाँ महीना मलमास अथवा मलिम्लुच है। पृ०१३५०–३में भी मलमासका उल्लेख है।

पृथिवीके चारों ओर सूर्यकी गतिसे जो वर्ष-गणना की जाती है, उसमें बारह 'अमावास्याओं'की गणना करनेसे कई दिन कम हो जाते हैं। अतः सौर और चान्द्र वर्षोंमें सामञ्जस्य करनेके लिये चान्द्र वर्षके प्रति तीसरे वर्षमें एक अधिक मास, मलमास अथवा मलिम्लुच रखा जाता है। इस मन्त्रसे ज्ञात होता है कि वैदिक साहित्यमें दोनों (सौर और चान्द्र) वर्ष माने गये हैं और दोनोंका समन्वय भी किया गया है।

मं० १०, सू० १५६, मं० ४ में कहा गया है, कि 'अजर और ज्योतिर्दाता सूर्य सदा चलते रहते हैं।'

मं० १०, सू० १८९, के १–३ मन्त्रोंमें सूर्यकी गतिशीलता और तीस मुहूर्तोंका उल्लेख है। पृ०१९२६-३०में इन्द्रद्वारा सूर्यके आकाशमें स्थापनके साथ ही सारे संसारके नियमनकी बात लिखी है।

म० १०, सू० १४९, मं० १ में कहा गया है कि 'सूर्यने अपने यन्त्रोंसे पृथिवीको सुस्थिर रखा है। उन्होंने बिना अवलम्बनके द्युलोकको दृढ रूपसे बाँध रखा है।

इन उद्धरणोंसे विदित होता है कि भ्रमणशील सूर्यने अपनी आकर्षणशक्तिसे पृथ्वीप्रभृति ग्रहोपग्रहोंके साथ आकाश एवं स्वर्ग (द्यौ) और सारे सौर-मण्डलको बाँधकर नियमित कर रखा है। इससे स्पष्ट ही विदित होता है कि आर्योंको सूर्यकी आकर्षण-शक्ति और खगोलका निपुण ज्ञान था। अगले मन्त्रसे भी इस मतका समर्थन होता है। इस गतिशील चन्द्रमण्डलमें जो अन्तर्हित तेज है, वह आदित्य-किरण ही है।

मं० १, सू० ८४के १५ वें मन्त्रपर सायणने निरुक्तांश (२-६) उद्धृत किया है—'अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते। आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति।' अर्थात् 'सूर्यकी एक किरण चन्द्रमण्डलको प्रदीप्त करती है। सूर्यसे ही उसमें प्रकाश आता है।'

वैज्ञानिकोंके मतसे सूर्यकी किरणें अनेक रोगोंको विनष्ट करती हैं। ऋग्वेदके तीन मन्त्रों (मं० १ सू० ५०, मं० ८, ११, १३) से वैज्ञानिकोंके इस मतका समर्थन मिलता है—'सूर्य उदित होकर और उन्नत आकाशमें चढ़कर हमारा मानस (हृदयस्थ) रोग और पीतवर्णरोग एवं शरीररोग विनष्ट कर देते हैं। रोगसे मुक्त होनेकी इच्छावाले सूर्योपासकोंके लिये ये तीन मन्त्र मुख्य हैं। प्रत्येक सूर्योपासक अपनी आधि-व्याधिकी शान्तिके लिये इन मन्त्रोंको जपता है। सूर्य-नमस्कारके साथ भी इन मन्त्रोंका जप किया जाता है। सायणके मतसे इन्हीं मन्त्रोंका जप करनेसे प्रस्कण्व ऋषिका चर्म-रोग विनष्ट हुआ था।

'आदित्य ब्रह्म है'—इसकी व्याख्या छान्दोग्य-उपनिषद्में हुई है। पहले असत् ही था। वह सत्—'कार्याभिमुख' हुआ। अङ्कुरित होकर वह एक अण्डमें परिणत हो गया। उस अण्डके दो खण्ड हुए। रजत-खण्ड पृथ्वी है और स्वर्ण-खण्ड द्युलोक है। फिर इससे जो उत्पन्न हुए, वे आदित्य हैं। इनके उदय होते समय घोष उत्पन्न होते हैं। सम्पूर्ण प्राणी और भोग भी इन्हींसे उत्पन्न होते हैं। इन आदित्य ब्रह्मके उपासकको ये घोष सुन्दर सुख देते हैं।[3] अन्यत्र श्रुति कहती है कि जो उद्गीथ (गाने योग्य) है, वह प्रणव है और जो प्रणव है, वह उद्गीथ है। ये आकाशमें विचरनेवाले सूर्य ही उद्गीथ हैं और ये ही प्रणव भी हैं। आशय यह है कि सूर्यमें ही परमात्मा और उनके वाचक ॐकी भावना करनी चाहिये; क्योंकि ये ॐका उच्चारण करते हुए ही गमन करते हैं।[4]

ब्रह्माण्डके दो मूल भाग हैं—द्यौ और पृथिवी; जिनमें समस्त प्राण, देव, लोक और भूत हैं। ये दो मूल भाग ब्रह्मके दो रूप हैं; जिन्हें मूर्त-अमूर्त, मर्त्य-अमृत, स्थित-यत, सत्-त्यत् और पुरुष-प्रकृति भी कहा जाता है।[5] अमूर्तके अन्तर्गत वायु तथा अन्तरिक्षका ज्योतिर्मय 'रस' आता है, जिसका प्रतीक आदित्यमण्डलका 'पुरुष' है। मूर्तके अन्तर्गत वायु तथा अन्तरिक्षके अतिरिक्त और जो कुछ है, उसका रस आता है, जिसका प्रतीक स्वयं तपनेवाला आदित्य-मण्डल है।[6]

मूर्त्त-अमूर्त्त, वाक्-ब्रह्म अथवा माया और पुरुष—ब्रह्मके दो-दो रूप विश्वके दो मूल तत्त्व हैं। द्यावा-पृथिवी मूर्त्त रूपका संयुक्त नाम है। इन स्थूल रूपोंमें इनके अमूर्त्त (सूक्ष्म) रूप व्याप्त रहते हैं। इसका एक मूर्त्त (स्थूल) रूप सूर्यमण्डल है, जिसमें अमूर्त्तरूप 'ज्योतिर्मय' पुरुष रहता है। इन दोनोंकी संयुक्त संज्ञा मित्रावरुण है। आगेकी विचारणामें मित्र और वरुण—ये दोनों आदित्यके पर्याय हैं और इनके कुछ पृथक्-पृथक् कार्य भी बताये गये हैं। बारह आदित्योंकी विचारणा भी कदाचित् इसीसे क्रमशः बढ़ी है।

आदित्यमें ब्रह्म—बृहदारण्यक उपनिषद्में कहा है कि यह व्यक्त जगत् पहले आप् (जल) ही था। उस आप्‌ने सत्यकी रचना की। अतः सत्य ब्रह्म है और यह जो सत्य है, वही आदित्य है।[7] इस सूर्य-मण्डलमें जो यह पुरुष है, उसका सिर 'भूः' है। सिर एक है और यह अक्षर भी एक है। दक्षिण नेत्रमें जो यह पुरुष है, उसका 'भूः' सिर है। सिर एक है और यह अक्षर भी एक है। 'भुवः' यह भुजा है। भुजाएँ दो हैं और ये अक्षर भी दो हैं। 'स्वः' यह प्रतिष्ठा (चरण) है। प्रतिष्ठा दो हैं और ये अक्षर भी दो हैं। 'अहम्' यह उसका उपनिषद् (गूढ़नाम) है।[8]

---

३. आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशस्तस्योपव्याख्यानम्। असदेवेदमग्र आसीत्। तत् सदासीत्। तत् समभवत्। तदाण्डं निरवर्तत। तत् संवत्सरस्य मात्रामशयत। तन्निरभिद्यत। ते आण्डकपाले रजतं च सुवर्णं चाभवताम्। तद् यत् रजतं सेयं पृथिवी। यत् सुवर्णं सा द्यौः……। अथ यत् तदजायत सोऽसावादित्यस्तं जायमानं घोषा उलूलवोऽनूद-तिष्ठन्त्सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामाः……। स य एतमेवं विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेनं साधवो घोषा आ च गच्छेयुरुप च निम्रेडेरन्निम्रेडेरन्॥ (—छा० उ० ३।१९।१-४)

४. अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इत्यसौ वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणव ओमिति ह्येष स्वरन्नेति॥ (—छा० उ० १।५।१)

५. बृ० उ० २।३।१-२ ६. डॉ० फतहसिंह 'वैदिक दर्शन' पृष्ठ ७१

७. बृ० उ० ५।५।१-२ ८ बृ० उ० ५।५।३-४

इसी उपनिषद्में याज्ञवल्क्य राजा जनकसे कहते हैं कि यह पुरुष 'आदित्य-ज्योति' है । आदित्यके अस्त होनेपर चन्द्र; आदित्य और चन्द्र—इन दोनोंके अस्त होनेपर अग्नि; अग्निके भी अस्त होनेपर वाक्, और वाक्के शान्त होनेपर आत्मा ही ज्योति है ।[9] आशय यह है कि आदित्यादिक सभीका प्रकाशक परमात्मा हैं । उन्हींकी ज्योतिसे समस्त ज्योतिष्पिण्ड पुष्ट होते और कर्म करते हैं । ब्रह्माण्डमें ब्रह्मकी यह ज्योति आदित्यमण्डलके हिरण्मय पुरुषके रूपमें अवस्थित है और वह विभिन्न रूपोंमें राजती है अर्थात् नाना नाम-रूपात्मक जगत्के रूपमें अभिव्यक्त होती है ।[10]

गोपालोत्तरतापिनी उपनिषद् कहता है कि आदित्योंमें जो ज्योति है, वह गोपालकी शक्ति ही है[11] । नारायणोपनिषद् भी आदित्यमें परमेष्ठी ब्रह्मात्माका निवास बताता है ।[12] कौषीतकि-ब्राह्मणके अनुसार भी आदित्यका प्रकाश ब्रह्मकी ही दीप्ति है ।[13] श्रुतियों और गीतामें ब्रह्मको ही ज्योतिका मूल स्रोत और प्रकाशकोंको भी प्रकाश देनेवाला कहा गया है ।[14]

बृहदारण्यक श्रुतिका कथन है कि इस ... यह जो तेजःस्वरूप अमृतमय पुरुष है, यह जो ... चाक्षुष-तेज अमृतमय पुरुष है, वही यह ... अमृत है एवं ब्रह्म है[15] । पिण्ड और ब्रह्माण्डकी एकता होनेसे यह भी सिद्ध है कि दोनोंके पुरोंमें रहनेवाले पुरुषोंमें भी एकता है—मानव-पुरुषका प्राण-पुरुष वही है जो आदित्यमण्डलरूप पुरमें रहनेवाला पुरुष है ।[16] ... अन्तर्यामी हमारे शरीरमें है, वही देव 'सहस्रशीर्ष' 'सहस्राक्ष' और 'सहस्रपाद' होकर समस्त विश्वके भीतर और बाहर है ।[17] वही अमृतका स्वामी चराचरका वशी है, वही ब्रह्म भूत और भव्य सब कुछ है; वही ... देहकी नवद्वार-पुरीमें निवास करनेवाला देही है ।[18]

सूर्यदेव—सूर्यका तपना और प्रकाशित हो... सर्वव्यापी परमात्माकी अन्तर्निहित शक्तिके कारण है ... इसे इस प्रकार भी कहा गया है कि सूर्य आदि स... परमात्माके भयसे या उनकी इच्छा अथवा प्रेरणासे ... उनके संकेतपर अपने-अपने कार्यमें लगे हुए हैं ।[19]

---

९. बृ० उ० ४ । ३ । २—६ । १०. बृ० उ० ४ । ३ । १२ । ११. स होवाच तं हि वै नारायणो देव आद्या अष्टादश मूर्तयः सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु देवेषु सर्वेषु मनुष्येषु तिष्ठन्तीति ।'' 'आदित्येषु ज्योतिः (—गो० उ० ता० उ० २ । १

१२. य एष आदित्ये पुरुषः स परमेष्ठी ब्रह्मात्मा ॥ (—नारा० उप०)

१३. एतद् वै ब्रह्म दीप्यते यदादित्यो दृश्यते ॥ (—कौ० ब्रा० १२)

१४. येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः ॥ तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ (मु० उ० २ । २ । १०; श्वे० उ० ६ । १४; क० उ० २ । २ । १५); तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिः ॥ (—मु० उ० २ । २ । ९); ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः ॥ (—गीता १३ । १७)

तथा—यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् । यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ (—गीता १५ । १२)

१५. यश्चायमस्मिन्नादित्ये तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं चाक्षुषस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ (—बृ० उ० २ । ५ । ५)

१६. (क) स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः स य एवंवित् ॥ (—तै० उ० २ । ८ । ५)

(ख) —छे० उ० १ । १० १७ —बृ० उ० ३ । १२-४१

गायत्री मन्त्रमें सविताको देव कहा है । सूर्य प्रत्यक्ष ा हैं । सूर्यमंण्डल उनका तेज है—'देवस्य भर्गः' । देत्यके सविता आदिक बारह स्वरूप हैं । श्रुति कहती के आदित्य, रुद्र और वसु आदि तैंतीसों देवता नारायणसे न्न होते हैं, नारायणके द्वारा ही अपने-अपने कर्मोंमें त होते हैं और अन्तमें नारायणमें ही लीन हो जाते ।[20] परमात्माके तीन पद तीन गुहाओंमें निहित हैं । ही सबके बन्धु, जनक और सविता तथा सबके पिता हैं ।[21] (सविताके रथ और घोड़ोंका वर्णन वेद र पुराणोंमें विस्तारसे आया है ।[22])

नेत्रगत सूर्य—सूर्य भगवान्‌के नेत्र हैं[23] । जब राट् पुरुष प्रकट हुआ तो उसके नेत्रमें सूर्यने प्रवेश या ।[24] इसी प्रकार समस्त प्राणियोंके नेत्रोंमें मूलशक्ति र्यकी ही है[25] । हिरण्यगर्भरूप पुरुषके नेत्रोंसे आदित्य प्रकट हुए हैं[26] । बृहदारण्यकमें इसे इस प्रकार कहा है कि इस आदित्य-मण्डलमें जो पुरुष है और दक्षिण नेत्रमें जो पुरुष है—वे ये दोनों पुरुष एक-दूसरेमें प्रतिष्ठित हैं । आदित्य रश्मियोंके द्वारा चाक्षुष पुरुषमें प्रतिष्ठित है और चाक्षुष पुरुष प्राणोंके द्वारा उसमें प्रतिष्ठित है ।[27]

इस विषयका पूर्ण स्पष्टीकरण कृष्णयजुर्वेदीय 'चाक्षुष उपनिषद्'में हुआ है । उसमें बताया है कि चाक्षुष्मती विद्यासे अक्षि-रोगोंका निवारण होता है और हम अन्धतासे बचते हैं । इसी सन्दर्भमें सूर्यके स्वरूप और शक्तिका निर्वचन हुआ है । सूर्य नेत्रके तेज हैं और उसको ज्योति देते हैं। वे महान् हैं, अमृत हैं एव कल्याणकारी हैं । शुचि और अप्रतिमरूप हैं । वे रजोगुण (क्रियाशक्ति) और तमोगुण (अन्धकारको अपनेमें

(ख) भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः । भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥
(—कठ० २ । ३ । ३)

२०. (क) द्वादशादित्या रुद्रवसवः सर्वाणिच्छन्दांसि नारायणादेव समुत्पद्यन्ते नारायणात् प्रवर्तन्ते नारायणे प्रलीयन्ते च । एतद् ऋग्वेदशिरोऽधीते ॥ (—नारायणाथर्वशिर उप० १)

(ख) यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति । तं देवाः सर्वे अर्पितास्तदु नात्येति कश्चन ॥ एतद्वै तत् ॥
(—कठ० २ । १ । ९)

२१. त्रीणि पदा निहिता गुहासु यस्तद्वेद स पितुः पितासत् ।
स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ॥ (—नारायण उप० १ । ४)

२२. ऋक्० १ । ८ । २; वि० पु० २ । १० ।

२३. (क) अथ चक्षुरत्यवहत् तद् यदा मृत्युमत्यमुच्यत स आदित्योऽभवत् सोऽसावादित्यः परेण मृत्युमतिक्रान्तस्तपति ॥ (—बृ० उ० १ । ३ । १४)

(ख) अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ… ॥ (—मुण्डक० २ । १ । ४)

२४. आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशत् ॥ (—ऐ० उ० १ । २ । ४)

२५. सूर्यश्चक्षुः ॥ (—बृ० उ० १ । १ । १) तद् यद् इदं चक्षुः सोऽसावादित्यः । (—बृ० उ० ३ । १ । ४)
चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः । चक्षुर्धाता दधातु नः ॥ (—सूर्य उ०)

पर्वके द्वारा पुण्यकालका आख्यान करनेके कारण सूर्यको 'पर्वत' कहा है । सबको धारण करनेवाला होनेसे सूर्यको 'धाता' कहा जाता है ।

२६. …चक्षुष आदित्यः…॥ (—ऐ० उ० १ । १ । ४)

२७. तद् यत् तत् सत्यमसौ स आदित्यो य एष एतस्मिन् मण्डले पुरुषो यश्चायं दक्षिणेऽक्षन् पुरुषस्तावेतावन्योन्यस्मिन् प्रतिष्ठितौ रश्मिभिरेषोऽस्मिन् प्रतिष्ठितः प्राणैरयममुष्मिन् । स यदोत्क्रमिष्यन् भवति शुद्धमेवैतन्मण्डलं पश्यति नैनमेते रश्मयः प्रत्यायन्ति ॥ (—बृ० उ० ५ । ५ । २)

लीन करनेकी शक्ति) के आश्रयभूत हैं। अतः उनसे असत्से सत्, अन्धकारसे प्रकाश और मृत्युसे अमृतकी ओर ले जानेकी प्रार्थना है[28]।

बृहदारण्यकमें विश्व-व्यापी ब्रह्मके दो रूप बताये गये हैं; वे हैं मूर्त और अमूर्त। ब्रह्मका एक मूर्त रूप ब्रह्माण्डमें आदित्यमण्डल है और पिण्डमें चक्षु है। अमूर्त रूप वह ज्योतिर्मय रस है, जो ब्रह्माण्डमें आदित्य-मण्डलस्थ 'पुरुष'के रूपमें और पिण्डके अन्तर्गत चक्षुमें विराजमान है। इस प्रकार आदित्य और चक्षुका एकीकरण है, तादात्म्य है[29]।

ब्रह्माण्ड और पिण्डकी एकता है। अतः अन्न, आप् और तेजके जिस त्रिवृत्से ब्रह्माण्डमें अग्नि, सोम और सूर्यका उद्भव हुआ है, उसीसे पिण्डमें मन, वाक् और प्राणका निर्माण हुआ है[30]। तात्पर्य यह कि (वाक्, मन, प्राण और चक्षु आदि) पिण्डकी शक्तियाँ ब्रह्माण्डकी शक्तियोंका ही रूपान्तर हैं। ऐतरेय उपनिषद्में[31] इसे एक रूपकके द्वारा स्पष्ट किया गया है। उसमें एक अन्यापदेशात्मक कथा है कि देवताओंने अपने लिये आयतन माँगा, तब परमेश्वरने मनुष्यको उनका आयतन बनाया। देवता उसके अङ्गोंमें प्रवेश करके विभिन्न इन्द्रिय-शक्तियोंके रूपमें रहने लगे। आदित्य-देवताने अक्षि-अङ्गमें प्रवेश किया और वे चक्षु-शक्ति बनकर रहने लगे[32]।

इस प्रकार सूर्य सब लोकोंके चक्षु हैं[33]—'सूर्यः सर्वलोकस्य चक्षुः।'

रूप-विधायक सूर्य—रूप मुख्यतः दो हैं— और कृष्ण। आदित्यका वर्ण कृष्ण है और उनकी हिरण्मयी है जो शुक्लकी समवर्तिनी है। इस प्र सूर्य सब रूपोंके निर्माणमें सक्षम हैं[34]। आदित्यमण्ड इन्द्र-प्राण समस्त प्राणोंका निर्माण करता हुआ वि करता है[35]। इसीलिये श्रुति कहती है कि अ चक्षुमें प्रतिष्ठित हैं और चक्षु-रूपमें प्रतिष्ठित है। अ ही रूपोंको देखता है तो रूप किसमें प्रतिष्ठित है रूप हृदयमें प्रतिष्ठित है। हृदयसे ही रूपको जा है। अतः हृदयमें ही रूप प्रतिष्ठित है। आशय है कि दृश्यमान रूपोंको सूर्य बनाते हैं किंतु रूपोंका अनुभवकर्ता हृदय है[36]। हृदय भगवान् निवास है। उसी शक्तिसे रूपका बोध होता है। ता यह भी है कि आदित्यमण्डलस्थ ब्रह्म अनुभूति विषय है।

सृष्टि-कर्ता सूर्य—वेदों और उनके उपनिषदोंका कथन है कि सूर्यदेव चराचरके आ हैं—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।' ये सूर्य उत्पन्न होते हैं, प्रजाओंके प्राण हैं।[37] प्रश्नोपनिषद् प्रथम प्रश्नके उत्तरमें सूर्यकी प्राणरूपता स्पष्ट की गयी है। प्राण और प्रकाशशक्ति सूर्यमें तादात्म्य है।

२८—बृहदा० उप० २९—बृ० उ० २।३।१-५ ३०—छां० उ० अध्याय ६, खण्ड २ से ६
३१—ऐ० उ० १।१ ३२—ऐ० उ० १।२ ३३—क० उ० २।२।११
३४—रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ॥ क० उ० २।२।९
३५—रूपं रूपं मघवा बोभवीति ॥ इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते ।
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ॥ तै० ब्रा०
३६—इन्द्रो [illegible]

। सूर्य अग्निमय हैं और जगत् अग्नि तथा सोम-तत्त्वके योगसे बना है—'अग्नीषोमात्मकं जगत्'। आशय है कि सृष्टि व्यष्टि या मिथुन-प्रक्रियासे होती है। इसे स्पष्ट करते हुए श्रुति कहती है कि तेजोवृत्ति द्विविध है—सूर्यात्मक और अनलात्मक। इसी प्रकार रस-शक्ति भी द्विविध है—सोमात्मक और अनलात्मक। तेज विद्युदादिमय है और रस मधुरादिमय। तेज और रसके विभेदोंसे ही चराचरका प्रवर्तन हुआ है[३९]। अग्नि ऊर्ध्वग है और सोम निम्नग। ये क्रमशः शिव और शक्तिके रूप हैं। इन दोनोंसे सब व्याप्त हैं। तैत्तिरीयोपनिषद्की शीक्षावल्लीके तृतीय अनुवाकमें कहा है—'अग्नि पूर्वरूप है और आदित्य उत्तररूप।' हाँ, तो इनके द्वारा होनेवाला सृष्टि-विस्तार आगे बताया गया है। सप्तम अनुवाकमें आधि-भौतिक और आध्यात्मिक पदार्थोंकी रचना स्पष्ट की गयी है। मुण्डक-उपनिषद्में सृष्टिक्रम इस प्रकार बताया है—परमेश्वरसे अग्निका उद्भव हुआ, अग्निकी समिधा आदित्य हैं। इनसे सोम हुआ। सोमसे पर्जन्य, पर्जन्यसे नाना प्रकारकी ओषधियाँ और ओषधियोंसे शक्ति पाकर जीव—संतानें हुईं (—मु० उ० २।१।५) तथा नारायण-उपनिषद् (१।७९) आदि अन्य श्रुतियोंमें भी सूर्यतापसे पर्जन्य और उससे आगेकी उद्भूतियाँ बतायी गयी हैं।

प्रश्नोपनिषद्में आदित्य (अग्नि) को 'प्राण' और सोमको 'रयि' संज्ञाएँ बतायी गयी हैं। प्रजापतिने इन दोनोंको उत्पन्न करके इनसे सृष्टिका विस्तार किया। मूर्त्त (पृथिवी, जल और तेज) तथा अमूर्त्त (वायु एवं आकाश) ये सब रयि हैं (—प्र० उ० १।४) अतः मूर्त्तमात्र अर्थात् देखने और जाननेमें आनेवाली सभी वस्तुएँ रयि हैं। सूर्य जीवनी-शक्ति और चेतना-शक्तिके घनीभूत रूप हैं। चन्द्रमामें स्थूल तत्त्वों (मांस, मेद और अस्थि आदि) को पुष्ट करनेवाली भूत-तन्मात्राओंकी अधिकता है। समस्त प्राणियोंके शरीरमें रवि एवं शशीकी ये शक्तियाँ विद्यमान हैं।

सावित्री-उपनिषद्में प्रथम प्रश्न है—'सविता क्या है? और सावित्री क्या है?' इसके उत्तरमें कहा है—'अग्नि और पृथ्वी, वरुण और जल, वायु और आकाश, यज्ञ और छन्द, मेघ एवं विद्युत्, चन्द्र तथा नक्षत्र, मन एवं वाणी तथा पुरुष और स्त्री—ये सविता और सावित्रीके विविध जोड़े हैं। इन जोड़ोंसे विश्वकी उत्पत्ति हुई है।' इसीके क्रममें (सा० उ० १।९ में) यह भी कहा गया है कि आदित्य सविता हैं और द्युलोक सावित्री है। जहाँ आदित्य हैं, वहाँ द्युलोक है; जहाँ द्युलोक है, वहाँ आदित्य है। ये दोनों योनि (विश्वके उत्पादक) हैं। ये दोनों एक जोड़ा हैं।

बृहदारण्यक-उपनिषद् (१।२।१–३) में शुद्ध और अशुद्ध दो प्रकारकी सृष्टियोंका वर्णन है। इनमें अर्क-सृष्टि शुद्ध है। अर्कका तेज वायु और प्राण-तत्त्वोंमें विभक्त हुआ है। यह शाश्वत सृष्टि है। आदित्यसे संवत्सर हुआ। संवत्सर और वाक्से व्युष्टि या मिथुन-प्रक्रियाद्वारा जो सृष्टि हुई वह नश्वर है, अतः अशुद्ध है।

वेदोंका सृष्टि-विज्ञान उपनिषदोंमें स्पष्ट किया गया है। उसका विवेचन करनेसे इस लेखका विस्तार हो जायगा, जो यहाँ अभी अभीष्ट नहीं है।

सूर्य-नक्षत्र—सावित्र्युपनिषद्में गायत्रीमन्त्रके 'भर्गः' शब्दकी व्याख्यामें कहा गया है कि सावित्रीका दूसरा पाद है—'भुवः। भर्गो देवस्य धीमहि।' अन्तरिक्षलोकमें सविता

३९–द्विविधा तेजसो वृत्तिः सूर्यात्मा चानलात्मिका। तथैव रसशक्तिश्च सोमात्मा चानलात्मिका॥
[illegible]दिमयं तेजो मधुरादिमयो रसः। तेजोरसविभेदैस्तु वृत्तमेतच्चराचरम्॥
(—बृहज्जाबालोपनिषद् २।२-३)

देवताके तेजका हम ध्यान करते हैं। अग्नि भर्ग है, चन्द्रमा भर्ग है। सूर्योपनिषद्में भगवान् सूर्यनारायणके तेजकी वन्दना है। सूर्य-गायत्री में है—'आदित्याय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।' यहाँ 'सहस्रकिरण' शब्द सूर्यकी परम तेजस्विताका बोधक है। फिर स्पष्ट कहा है कि सूर्यसे ज्योति उत्पन्न होती है—'आदित्याज्ज्योतिर्जायते।' बृहदारण्यकमें भी है कि आदित्य-ज्योति ही यह पुरुष है और आदित्य ही सबको ज्योति देने तथा कर्ममें प्रवृत्त करते हैं[40]। मुण्डकोपनिषद् (२ । २ । ९-१०) के अनुसार भी ये सूर्य ही ज्योतिके मूल और निधान हैं।

इस ज्योतिःपिण्डसूर्यको प्रकाशित करनेवाले परमात्मा हैं। सूर्य उन्हें प्रकाशित नहीं करते; यहाँतक कि परमात्माके लोकतक सूर्य और उनके प्रकाशकी गति ही नहीं है। उन परमेश्वरके प्रकाशसे ही सब प्रकाशित हैं।[41] ब्रह्म ज्योतियोंकी भी ज्योति हैं,[42] जो सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र-रहित लोकमें अपना प्रकाश फैलाते हैं।[43]

सूर्यका नाम हिरण्यगर्भ है। सूर्यके चारों ओर परिविस्तृत प्रकाश-पुञ्ज हिरण्यमय होनेसे 'हिरण्य' कहलाता है। उस हिरण्यके गर्भमें अर्थात् मध्यमें स्थित हैं। अतः सूर्य हिरण्यगर्भ हैं। ... सूर्य-ब्रह्म, रुद्र और विष्णु भी कहते हैं। ... ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—ये तीन अग्नि-तत्त्व नित्य रहते हैं। तीनों अग्नियोंमें अविनाभाव-सम्बन्ध है, एकके बिना दूसरा नहीं रह सकता। अतः ... ही हैं और इन तीनोंसे प्रत्येकका और तीनोंके रूप ईश्वरका बोध हो जाता है।

ये सूर्य कल्प, युग, संवत्सर, मास, पक्ष, रात्रि, घटी, पल और क्षण—सबके नियन्ता हैं क्योंकि तीस दिन-रात्रि सूर्यके तीस अङ्ग या ... कहलाते हैं। संवत्सरके बारह मासोंके बारह देवता हैं, जो सब कुछ ग्रहण करते-कराते ... अतः वे आदित्य कहलाते हैं।[44] तेरहवें अधिक ... सूर्य ही बनाते हैं।[45] प्रतिवर्ष पृथ्वी जो सूर्यकी ... करती है, उस अवधिको द्वादश मासोंमें विभाजित ... भी कुछ दिन और घंटे बच रहते हैं। तीन वर्षोंकि एक पृथक् मास बन जाता है। उसे अधिमास ...

४०. याज्ञवल्क्य किं ज्योतिरयं पुरुष इति। आदित्यज्योतिः सम्राडिति होवाचादित्येनैवायं ज्योतिषास्ते कर्म कुरुते विपल्येतीत्येवमेवैतद् याज्ञवल्क्य ॥ (—बृ० उ० ४ ।

४१. न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥
(कठ० २ । २ । १५; मुण्डक० २ । २ । १०; श्वेता० ६
यत्र न सूर्यस्तपति यत्र न वायुर्वाति यत्र न चन्द्रमा भाति ... तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति
(बृहज्जाबाल उ० ८ । ६

४२. हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्। तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥
(मुण्डक उ० २ । २ । ९
...व्यापकनिरूपितधर्मरूपसम्बन्धः ।] ... ज्योतिर्...

सूर्योपासना—सूर्य स्वर्गद्वार और मुक्ति-पथ हैं[४८]। तैत्तिरीय उपनिषद्में कहा है कि 'स्वः' व्याहृतिकी प्रतिष्ठा आदित्यमें है और 'महः' की ब्रह्ममें है। इनके द्वारा स्वाराज्यकी प्राप्ति होती है[४९]। सूर्यको 'गुरु' भी कहा गया है। सूर्यदेवसे श्रीमारुतिने शिक्षा ग्रहण की थी। आगम-ग्रन्थोंमें भी सूर्यका गुरुरूप प्रदर्शित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि सूर्य अध्यात्मविद्याओंके प्रदाता और प्रचारक हैं। गायत्री मन्त्रमें सूर्यदेवसे बुद्धि माँगी गयी है[५०]। सूर्यके 'पूषा' रूपसे भक्तगण अपने कल्याणकी प्रार्थना करते हैं[५१]। श्वेताश्वतर उपनिषद्में भी सविताको बुद्धिकी योजना करनेवाला कहा गया है[५२]।

उपनिषदोंमें सूर्यकी उपासना विविध रूपोंमें बतायी गयी है। सूर्योपासना-विषयक कुछ विद्याओंका भी निरूपण उपनिषदोंमें हुआ है। ये विद्याएँ हैं—ब्रह्म-विज्ञान[५३] दहर विद्या,[५४] मधु विद्या,[५५] उपकोसल विद्या[५६], अन्य-विद्याएँ[५७] और पञ्चाग्निविद्या[५८]। सूर्यरूप ओंकारकी उपासना[५९], आदित्य-दृष्टिसे मासोपासना[६०], त्रिकाल-सन्ध्योपासना[६१], सूर्योपस्थान[६२] और महावाक्य-विधिसे सूर्य अद्वैत ब्रह्मकी भावना और उपासना[६३]—इन उपासनाओंसे समस्त इष्ट-प्राप्ति होती है और अन्तमें मुक्ति मिल जाती है।

सात्त्विक विद्याओंमें प्रवेशके लिये बुद्धिको विकसित करना और स्मरणशक्तिको बढ़ाना आवश्यक है। बुद्धि सूर्यका ही एक अंश है। अतः उसका विकास सूर्यके उपस्थान (आराधन) से ही हो सकता है। पलाशके वृक्षमें स्मरण-शक्तिवर्धनका गुण है; क्योंकि वह ब्रह्म-स्वरूप[६४] है। अतः ब्रह्मचारीके लिये पलाशका दण्ड-धारण करने और पलाशकी समिधाओंसे यज्ञ करनेका विधान किया गया है।

सूर्य सत्य-रूप हैं। आदित्यमण्डलस्थ पुरुष और दक्षिणेक्षन् पुरुष परस्पर रश्मियों और प्राणोंसे प्रतिष्ठित हैं—यह कहा जा चुका है। जब वह उत्क्रमणकी इच्छा करता है, तो उसमें ये रश्मियाँ प्रत्यागमन नहीं

---

४८. भूरित्यग्नौ प्रतितिष्ठति। भुव इति वायौ ॥ १ ॥ सुवरित्यादित्ये ॥ २ ॥ (तै० उ० १।६।१-२)
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ (मुण्डक उ० १।२।११)

४९. मह इति ब्रह्मणि। आप्नोति स्वाराज्यम् ॥ (तै० उ० १।६।२) ५०. धियो यो नः प्रचोदयात्।
५१. स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ॥ (श्रुतियोंका शान्ति-पाठ) ५२. श्वे० उ० २।१-४।

५३. छां० उ०, प्रपाठक ३, खण्ड ११ से २१, विशेषतः २१ बृ० उ० अध्याय ५, ब्राह्मण ४—५।

५४. छां० उ०, प्र० ८ खं० १। ५५. छां० उ०, प्र० ३, खं० १+१२। बृ० उ० अध्याय २, ब्राह्मण ५।

५६. बृ० उ०, अ० ६, ब्रा० ३। ५७. छां० उ०, प्र० ४, खं० १०।१५। ५८. बृ० उ०, अ० ६, ब्रा० २।

५९. छां० उ०, प्र० १, खं० ५। ६०. छां० उ०, प्र० २, खं० ९। ६१. कौषीतकि ब्राह्मण उप० २।५।
बृ० उ०, अ० ५, ब्रा० १४। ६२. छां० उ० ३, खं० ८।

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति। प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ॥
(मुण्डक उ० १।२।६)

६३. सोऽहमर्कः परं ज्योतिरर्कज्योतिरहं शिवः ॥ (महावाक्य उ०)
योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ (ईशावास्य० १६)
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥ (मुण्डक उ० २।२।९)
६४. ब्रह्म वै पलाशः ॥ (श० ब्रा० ५।३।५।१५)

करती । आशय यह कि सूर्य-पथसे उत्क्रमण करनेवाले व्यक्तिका संसारमें पुनरागमन नहीं होता।[६५] पूषा (सूर्य) ही जगत्में सत्यपर पड़े आवरणको हटाकर सत्य-धर्मकी दृष्टि प्रदान करते हैं । सूर्यका यह तेज कल्याणतम है।[६६] वह ब्रह्म है, आत्मा है, आदित्य है । अन्य देवता इसके अङ्ग हैं । आदित्यसे सारे लोक महिमान्वित हैं, ब्रह्मसे सारे वेद।[६७]

नारायण श्रुतिका वचन है कि आदित्यमण्डलका जो ताप है, वह ऋचाओंका है । अतः वह ऋचाओंका लोक है । आदित्यमण्डलकी अर्चि सामोंकी है, अतः वह सामोंका लोक है, इन अर्चियोंमें जो पुरुष है, वह यजुष् है और वह यजुर्गणका लोक है । इस प्रकार मण्डलमें जो हिरण्मय पुरुष है, वह यह त्रयी तप रही है । आदित्य ही तेज, ओज, बल, यश, श्रोत्र, आत्मा, मन, मन्यु, मनु, मृत्यु, सत्य, मित्र, आकाश, प्राण और लोकपाल आदि हैं । आदित्य भूताधिपति स्वयंभू ब्रह्मकी उपासनासे सायुज्य सार्ष्टि मुक्ति मिलती है।[६८]

उपर्युक्त विद्याओं और उपासनाओंका वर्णन लेखकी अपेक्षा रखता है । अतः अब हम यहीं लेख विश्राम देते हैं । उपनिषदोंमें प्रतिष्ठित हमारे सवितका महत्त्व करें ।

सूर्यमण्डलसे ऊपर जानेवाले

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्यमण्डलभेदिनौ ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥

'हे पुरुषव्याघ्र ! सूर्यमण्डलको पारकर ब्रह्मलोकको जानेवाले केवल दो ही पुरुष हैं—एक तो योगयुक्त संन्यासी और दूसरा युद्धमें लड़कर सम्मुख मर जानेवाला वीर ।' (—उद्योग॰ ३२ ।

६५—यदेतत् सत्यमसौ स आदित्यो य एष एतस्मिन् मण्डले पुरुषो यश्चायं दक्षिणेऽक्षन् पुरुषस्तावेतावन्योन्यस्मिन् प्रतिष्ठितौ रश्मिभिरेषोऽस्मिन् प्रतिष्ठितः प्राणैरयममुष्मिन् । स यदोत्क्रमिष्यन् भवति शुद्धमेवैतन्मण्डलं पश्यति नैनमेते रश्मयः प्रत्यायन्ति ॥ (—बृ॰ उ॰ ५ । ५ । २)

६६—हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् । तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये । पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह । तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि ॥(—ईशावास्य॰ १५—१६)

६७—मह इति । तद् ब्रह्म । स आत्मा । अङ्गान्यन्या देवताः ॥ … ॥ १ ॥ मह इत्यादित्यः । आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते … ॥ २ ॥ मह इति ब्रह्म । ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महीयन्ते ॥ (—तै॰ उ॰ १ । ५ । १-३)

६८—आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति तत्र ता ऋचस्तदृचां मण्डलं स ऋचां लोकोऽथ य एष एतस्मिन् मण्डलेऽर्चिर्दीप्यते तानि सामानि स साम्नां लोकोऽथ य एष एतस्मिन् मण्डलेऽर्चिषि पुरुषस्तानि यजूँषि स यजुषा मण्डलं स यजुषां लोकः । सैषा त्रय्येव विद्या तपति य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः ॥

आदित्यो वै तेज ओजो बलं यशश्चक्षुः श्रोत्रमात्मा मनो मन्युर्मनुर्मृत्युः सत्यो मित्रो वायुराकाशः प्राणो लोकपालः कः किं कं तत्सत्यमन्नममृतो जीवो विश्वः कतमः स्वयंभु ब्रह्मैतदमृत एष पुरुष एष भूतानामधिपतिर्ब्रह्मणः सायुज्यꣳ सलोकतामाप्नोत्येतासामेव देवतानां सायुज्यꣳ सार्ष्टिताꣳ समानलोकतामाप्नोति य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥

(—नारायण॰ [illegible] ४-१५)

तैत्तिरीय आरण्यकमें असंख्य सूर्योंके अस्तित्वका वर्णन

(लेखक—श्रीमुब्रायगणेशजी भट्ट)

आकाशमें हमें एक ही सूर्य दीख पड़ते हैं; किंतु तत्रमें सूर्य असंख्य—अनन्त हैं। वे एक-दूसरेके समीप ो हैं। दूर—बहुत दूर हैं। इस कारण हम केवल ोंसे उनको देख नहीं पाते। अनुसंधानकर्ता ानिक लोगोंने दूरदर्शक यन्त्रोंकी सहायतासे उन असंख्य ोंको देख लिया है और अब भी देख रहे हैं। परंतु ारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंने वेददर्शन-कालमें दूरदर्शक त्रोंके बिना केवल अपने तपःतेजके प्रभावसे नेकानेक असंख्य सूर्योंके दर्शन प्राप्त कर लिये थे। ास विषय कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय आरण्यक- १। २। ७) में विस्तृतरूपसे विद्यमान है—

अपश्यमहमेतान् सप्तसूर्यानिति। पञ्चकर्णो त्सायनः। सप्तकर्णश्च प्लाक्षिः। आनुश्राविकएव नौ श्यप इति। उभौ वेदयिते। नहि शेकुमिव हामेरुं गन्तुम्॥

वस ऋषिका पुत्र पञ्चकर्ण और प्लक्ष ऋषिका पुत्र सकर्ण—इन दोनों ऋषियोंकी उक्ति है कि हमने सात र्योंको प्रत्यक्ष देख लिया है; किंतु आठवाँ जो कश्यप ामक सूर्य है, उन्हें हम देख नहीं सके हैं। इससे ात पड़ता है कि कश्यप सूर्य मेरुमण्डलमें ही परिभ्रमण रते रहते हैं। हम वहाँतक जा न सके।

अपश्यमहमेतत्सूर्यमण्डलं परिवर्तमानम्। गार्ग्यः प्राणत्रातः। गच्छन्तमहामेरुम्। एवं चाजहतम्।

गर्गके पुत्र प्राणत्रात नामक महर्षिका कथन है—'हे पञ्चकर्ण और सप्तकर्ण! कश्यप नामक अष्टम सूर्यको मैंने प्रत्यक्ष देख लिया है। ये सूर्य मेरुमण्डलमें ही भ्रमण करते हैं। वहाँ जाकर उन्हें कोई भी देख सकता है। तुम वहाँ योग-मार्गसे जाकर देख लो।'

ये आठवें सूर्य कश्यप भूत, भविष्य और वर्तमान घटनाओंको अनिगूढ़रूपसे जानते हैं। यह इनका वैशिष्ट्य है। इसलिये कश्यप सूर्यको 'पश्यक' नामसे भी पुकारते हैं। '**कश्यपः पश्यको भवति। तत्सर्वं परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात्।**' यह श्रुति ही इसका प्रमाण है।

पञ्चकर्णादि ऋषियोंसे देखे हुए सूर्याष्ट नामक आरण्यकमें इस प्रकार वर्णित हैं—

आरोगो भ्राजः पटरः पतङ्गः। स्वर्णरो ज्योतिषीमान् विभासः। ते अस्मै सर्वे दिवमातपन्ति। ऊर्जं दुहाना अनपस्फुरन्त इति। कश्यपोऽष्टमः॥

आरोग, भ्राज, पटर, पतङ्ग, स्वर्णर, ज्योतिषीमान्, विभास और कश्यप—ये आठ सूर्योंके नाम हैं। हम नित्यप्रति आँखोंसे जिन सूर्यको देखते हैं, उनका नाम 'आरोग' है और शेष सभी सूर्य अतिशय दूर हैं। अथवा आड़में हैं, अतएव हम इन आँखोंसे उन्हें नहीं देख सकते।

इस सूर्याष्टकमें कश्यप प्रधान हैं। आरोगप्रभृति अन्य सूर्य कश्यपसे अपनी प्रकाशक-शक्ति भी प्राप्त करते हैं। आरोग सूर्यके परिभ्रमणको हम जानते हैं। अन्य भ्राज, पटर और पतङ्ग—ये तीन सूर्य अधोमुख होकर मेरुमार्गके नीचे परिभ्रमण करते हैं और वहाँके प्राणि-समूहोंको प्रकाश वितरण करते हैं। स्वर्णर, ज्योतिषीमान् और विभास—ये तीन सूर्य ऊर्ध्वमुखी होकर मेरुमार्गके ऊपर परिभ्रमण करते और वहाँके चराचर वस्तुओंको प्रकाश देते हैं।

आठ दिशाओंमें, हमारी दृष्टिसे पूर्व दिक् सूर्य है। इसी प्रकार आग्नेय आदि दिशाएँ भी एक-एक सूर्यसे युक्त हैं। सूर्यसे ही वसन्त आदि ऋतुओंका निर्माण होता है। बिना सूर्यके ऋतुओंका निर्माण और परिवर्तन असम्भव है। आग्नेय आदि सभी दिशाओंमें वसन्त आदि समस्त

ऋतुओंका क्रमशः आविर्भाव और परिवर्तन होता रहता है। अतएव सभी दिशाओंमें भिन्न-भिन्न सूर्यका अस्तित्व निश्चित है।

'पतयैवाऽऽवृताऽऽसहस्रसूर्यताया इति वैशम्पायनः।'

वैशम्पायनाचार्यजी कहते हैं कि 'जहाँ-जहाँ वसन्तादि ऋतुओंका और तत्तद्धर्मोंका आविर्भाव है, वहाँ-वहाँ तत्सम्पादक सूर्यका अस्तित्व रहता ही है। इस न्यायके अनुसार सहस्र असंख्य अनन्त सूर्योंका अस्तित्व आवश्यक है। पञ्चकर्ण, सप्तकर्ण और प्राणवान ऋषियोंको सात एवं आठ सूर्योंको देखकर तद्विषयक ज्ञान प्राप्त हो गया—इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है।'

'नानालिङ्गत्वादृतूनां नानासूर्यत्वम्।'

यदि एक ही सूर्य रहते तो वसन्तादि ऋतुओंसे होनेवाले औष्ण्य, शैत्य एवं साम्यादि विभिन्न सह्य, असह्य सुख-दुःखोंका अनुभव न होता। तब पूरे वर्षभर एक ही ऋतु और उसके प्रभावका अनुभव प्राप्त होता रहता। कारण-भेदके बिना कार्य-भेदका अनुभव सम्भव नहीं है। ऋतु-धर्म-वैलक्षण्यसे ही उसके कारणरूप असंख्य सूर्योंका अस्तित्व सिद्ध होता है। यह हमारा ही अभिमत नहीं, अपितु भगवती श्रुतिका भी मत है—

यद्द्याव इन्द्र ते शतꣳशतं भूमीः। उत स्युः।
न त्वा वज्रिन्सहस्रꣳसूर्याः। अनु न जातमष्ट
रोदसी-इति। (१।७।६).

'हे इन्द्र! यद्यपि तुमसे शत-शत स्वर्गलोकोंका निर्माण सम्भव है, और सैकड़ों भूलोकोंका सृजन सम्भव है, तथापि आकाशमें स्थित सहस्रों सूर्योंके प्रकाशको पूर्णतया तुम और तुमसे निर्मित सारे स्व मिलकर भी नहीं ले सकते।' इस मन्त्रमें सूर्योंका स्पष्ट उल्लेख है।

चित्रं देवानामुदगादनीकं
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्राद्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ
सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।
(यजु० वे० ३।[illegible])

भगवान् सूर्य अत्यन्त दयामय हैं। निःस्वार्थ [illegible] प्रजारक्षण करना ही उनका ध्येय है। रश्मि ही [illegible] सेना है, जो सर्वदा अन्धकाररूप वृत्रासुर[illegible] करती रहती है। सूर्य केवल हमारे ही नहीं, [illegible] मात्रके—यहाँतक कि वृक्ष, लता, गुल्म और [illegible] आदिके भी मित्र हैं। सूर्य जब उदय होते हैं [illegible] चराचर प्राणियोंका मन प्रफुल्लित हो उठता है। [illegible] प्रकाशसे आरोग्यकी वृद्धि होती है। समुदि[illegible] अपनी रश्मिरूपी सेनाको विभक्त करके त्रैलोक्यमें [illegible] स्थानपर भेजते हैं। इस रश्मि-सेनाके सञ्चर[illegible] चराचर समस्त प्राणियोंका संरक्षण होता है। इन र[illegible] सान्निध्यसे सत्यप्रियता, निर्भयता, नीरोगता, अ[illegible] उत्साह, क्षीरादिकी वृद्धि और धन-धान्यकी समृ[illegible] होती है। भगवान् सूर्य स्थावर और जङ्गम [illegible] आत्मा हैं। समस्त मानवकोटिके प्राण[illegible] प्रेरक और कल्याणके प्रदाता हैं। हमें उन ज्योतिःस्वरूप भगवान् सूर्यनारायणका सदा [illegible] करना चाहिये।

स जयति

स जयत्युदयेनैषां चतसृष्वपि दिक्षु निवसतां नृणाम्।
मेरोः प्रतिदिन मन्यामाशां विदधाति यः प्राचीम्॥
(— काव्यां० मुक्त स० भा० मङ्गला० में तृ० कर्कोचार्य)

जो मेरु पर्वतके चारों दिशाओंमें रहनेवाले मनुष्योंके लिये अन्यान्य दिशाओंमें प्राची (पूर्व) दिशा निर्देशन करते हैं, [illegible] वे—सर्वोत्कृष्ट रूपमें रहें।

तैत्तिरीय आरण्यकके अनुसार आदित्यका जन्म

(लेखक—श्रीसुब्रह्मण्यजी शर्मा, गोकर्ण)

सृष्टिके पहले सर्वत्र जल-ही-जल भरा था। देव-मानव, पशु-पक्षी तथा तरु-लता कहीं कुछ भी न था। इस पानीके साम्राज्यमें सर्वप्रथम केवल जगदीश्वर, प्रजापति ब्रह्माका आविर्भाव हुआ। तभी उन्हें एक कमलपत्र दिखायी पड़ा। तब वे उस कमलपत्रपर जा बैठे। कुछ काल व्यतीत होनेके बाद उनके मनमें जगत्की सृष्टि करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई। अतः सृष्टि करनेके लिये प्रजापति तपस्या करने लगे। तपस्याके पश्चात् अब यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि वे किस प्रकार 'प्रजा'का सृजन करें? प्रश्न उठते ही तुरंत प्रजापतिका शरीर काँपने लगा। उसके कम्पनसे अरुण, केतु एवं वातरशान—इन तीन प्रकारके ऋषियोंका आविर्भाव हुआ। नखके कम्पनसे वैखानस ऋषियोंका जन्म हुआ। केशके कम्पनसे वालखिल्योंका निर्माण हुआ। उसी समय प्रजापतिके शरीरके सार-सर्वस्वसे एक कूर्मका आकार स्वयं बन गया। वह कूर्म पानीमें संचरण करने लगा। आगे-पीछे संचरण करनेवाले उस कूर्मको देखकर प्रजापति ब्रह्मदेवको आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे कि यह कहाँसे आया? उन्होंने उस कूर्मसे पूछा—'तुम मेरे त्वक् (त्वचा) और मांससे पैदा हुए हो?' तब कूर्मने उत्तर दिया—'तुम्हारे मांस आदिसे मेरा जन्म नहीं हुआ है। मेरा जन्म तो तुमसे भी पहलेका है। मैं तो सर्वगत, नित्य चैतन्य, सनातन—शाश्वतस्वरूप हूँ और पहलेसे ही मैं यहाँ सर्वत्र और तुम्हारे हृदयमें भी विद्यमान हूँ। कुछ विचारकर देखो।' इस प्रकार कहकर कूर्मशरीरधारी नित्य चेतनस्वरूप परमात्माने सहस्रशीर्ष, सहस्रबाहु और सहस्रों पादोंसे युक्त अपने विश्वरूपको प्रकट करके प्रजापतिको दर्शन दिया। तब प्रजापतिने साष्टाङ्ग प्रणाम करके प्रार्थना की—'हे भगवन्! आप मुझसे पहले ही विद्यमान हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे पुराणपुरुष! आप ही इस जगत्का सृजन कीजिये। यह कार्य मुझसे पूर्ण न हो सकेगा।' तब, 'तथास्तु' कहकर कूर्मरूपी भगवान्ने अपनी अञ्जलिमें जल लेकर और **'ओवाहयेव'** इस मन्त्रसे पूर्वदिशामें जलका उपधान किया। उसी उपधान-क्रमसे—भगवान् 'आदित्य'का जन्म हुआ। (तै० आ० १। २३। २-५) । उसी समय विश्व प्रकाशमय हो गया। हे प्रकाशपूर्ण आदित्य! हमारे अन्धकारपूर्ण हृदयोंमें भी पूर्ण प्रकाशके उदय होनेका अनुग्रह प्रदान करें।

प्रकाशमान् सूर्यको नमस्कार

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये॥

(यजु० ३१। २०)

जो सूर्य पृथिव्यादि लोकोंके लिये तपते हैं, जो सब देवोंमें पुरोहित हैं—उनके प्रवर्तकके समान प्रकाशक हैं, जो उन सभी देवोंसे पहले उत्पन्न हुए, ब्रह्मस्वरूप परमेश्वरके समान प्रकाशमान् उन सूर्यनारायणको नमस्कार है।

ो सात प्रकारकी सात किरणें, भूमण्डलपर उनका तथा व्यापक प्रभा (प्रकाश) आदि अनेक ोंका विश्लेषण किया है।

सूर्यकी उत्पत्ति—सूर्य एक अग्निपिण्ड है अर्थात् ा, आन्तरिक्ष एवं दिव्य (सूर्य)—इन तीनों ोंका समष्टि रूप पिण्ड है। पिण्डकी उत्पत्ति और —ये दोनों ही बिना सोमके नहीं हो सकतीं। स्वभावसे ही विशकलनधर्मा है। वह सोमसे ेधत हुए बिना पकड़में नहीं आती। संसारके में घनता उत्पन्न करना सोमका काम है। सूर्यपिण्डकी उत्पत्ति भी इसी सोमहुतिसे होती ौर हुई है। ध्रुव, धर्म, धरुण एवं धर्म-भेदसे चार प्रकारके हैं। इस सोममात्राकी न्यूनता अथवा क्यके कारण अग्नि भी ध्रुव, धर्म, धरुण एवं ोंमें परिणत हो जाती है। ये ही अवस्थाएँ ड, तरल, विरल एवं गुण कहलाती हैं। सूर्य है। पिण्डका निर्माण सोमके बिना नहीं हो ा। ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें प्रतिपादित विज्ञानके आधारसे ी आहुतिसे ही सूर्यका उदय हुआ है, जैसा कि शत-तिका विज्ञान है—'आहुतेः (सोमाहुतेः) उदैत् र्यः)' अर्थात् सूर्यपिण्ड अग्नि और सोम—दोनोंकी ी है।

सूर्यकी स्थिति—सूर्य एक पिण्ड है, जो सदा स्थित रहता है। अग्निमें जबतक सोमाहुति होती है, रहती है। आहुतिके बंद होते बुझ जाती है। सूर्य-पिण्डमें भी ही यह अरबों वर्षोंसे एक-सा स्थिर बना हुआ है और आगे भी एक-सा स्थिर बना रहेगा।

सूर्यका प्रकाश—ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें सूर्यप्रकाशके विषयमें गहन चर्चा है। उनका कहना है कि सूर्य एक अग्नि-पिण्ड है। अग्निका स्वरूप काला है। वेद स्वयं सूर्यपिण्डके लिये '**आकृष्णेन रजसा वर्तमानः**' (यजु०) कह रहा है। उस काले पिण्डसे जो ऋक्, यजुः सोमात्मक प्राण निकलते हैं, वे सर्वथा रूप-रस आदिसे रहित हैं। पृथ्वीके ४८ कोसके ऊपरतक एक भूवायुका स्तर है, जो वेदोंमें '**एमूषवराह**' नामसे प्रसिद्ध है। वह वायुस्तर सोमात्मक है। यह सोम बाह्य पदार्थ है। जब धाता (सूर्य) सौर-प्राण इस सोममें मिलता है, उस समय प्राणसंयोगसे वह सोम जलने लगता है। उसके जलते ही पृथ्वी-मण्डलमें प्रकाश (प्रभा) हो जाता है, जो हमको दिखायी पड़ता है। ४८ कोसके ऊपर ऐसा भास्वर प्रकाश नहीं है—यह सिद्धान्त समझना चाहिये। *उस प्रकाशके पर्देमें ही हम उस काले पिण्डको* सफेद देखने लगते हैं।

विज्ञानान्तर—सूर्य एक अग्निपिण्ड है। अग्निपिण्ड काला होता है—यह भी निश्चित है। इस कृष्ण अग्निमय सूर्य-पिण्डमें ज्योति-प्रकाश सोमकी आहुतिसे उत्पन्न होता है, अर्थात् प्रकाश अग्नि और सोम—इन दोनोंके परस्पर सम्मिश्रणका फल है। इससे सिद्ध होता है कि केवल अग्निमें भी प्रकाश नहीं है और न केवल सोममें ही प्रकाश है। प्रकाश दोनोंके यज्ञात्मक सम्मिश्रणमें है। सूर्य-किरणोंमें उपलब्ध ताप भी पार्थिव अग्निके सम्मिश्रणका ही फल है। *भगवान् सूर्यकी अनन्त रश्मियोंमें सात रश्मियाँ* मुख्य हैं। सात रस, सात रूप, सात धातु आदि सभी सात रश्मियोंके आधारपर ही प्रतिष्ठित हैं।

त्रयीमय सूर्य—ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें सूर्यमण्डलको त्रयीमय (वेदत्रयीमय) माना गया है, अर्थात्—ऋक्, यजु एवं साममय माना है। इसका निरूपण शतपथ-श्रुति इस प्रकार कर रही है—'**यदेतन्मण्डलं तपति तन्महदुक्थम्। ता**

ऋचः स ऋचां लोकः । अथ यदर्चिर्दीप्यते तन्महाव्रतम् । तानि सामानि स साम्नां लोकः । अथ य एतस्मिन् मण्डले पुरुषः सोऽग्निः । तानि यजूंषि, स यजुषां लोकः । सैषा त्रय्येव विद्या तपति—

अर्थात् सूर्यमण्डल त्रयीविद्यामय है; अर्थात् सूर्यमण्डलमें तीन पर्व हैं—भूतपर्व, प्रकाशपर्व और प्राणपर्व । इनमेंसे भूतभाग ऋग्वेद है, प्रकाशभाग सामवेद है एवं प्राणभाग यजुर्वेद है । इस प्रकार त्रयी-विद्या ही सूर्यरूपसे तप रही है । ब्राह्मण-ग्रन्थोंके मतमें न केवल सूर्य ही, अपितु पदार्थमात्र त्रयीमय—वेदमय है । पदार्थमें उपलब्ध नियमन-भाग ऋग्वेद है, प्रकाश-भाग सामवेद है और पुरुषभाग यजुर्वेद है; किं बहुना, ऋक्, यजुः, साम— इन तीनोंकी समष्टि ही पदार्थ है ।

विश्वका जीवन सूर्य—विश्वका जीवन सूर्य है । प्राणन, अपानन-क्रिया (श्वास-प्रश्वास) जीवन है । इसका मूल सूर्य हैं; जैसा कि श्रुतिका उद्बोधन है—

'अयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः । ······व्यख्यन्महिषो दिवम्

'प्रातःकाल माता (पृथिवी) की ओर बढ़ते हुए तथा पिता (द्युलोक) की ओर जाते हुए नाना रूपवाले इन सूर्यने सारे विश्वपर आक्रमण किया है ।'

सूर्यकी किरणें समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणमें प्राणन, अपानन-क्रियाएँ करती रहती हैं । ऐसे वे सूर्य उदित होते ही सारे भूमण्डलमें व्याप्त हो जाते हैं । प्राणन-अपाननकी क्रिया ही जीवन है ।

निद्रा और उद्बोध—रात्रिमें प्राणिगण निद्रासे अभिभूत हो जाते और प्रातःकाल उद्बुद्ध हो जाते हैं, यह प्रत्यक्ष है । इन दोनोंके कारण भगवान् सूर्य ही हैं । इसका कारण शतपथ-ब्राह्मण इस प्रकार बतलाता है—

'अथ यद् अस्तमेति, गर्भो भूत्वा प्रविशति, तं गर्भं भवन्तमिमाः सर्वाः प्रजा अनुगर्भा भवन्ति ।' अर्थात् रात्रिमें समस्त सूर्य [illegible] अग्निमें गर्भरूपसे प्रविष्ट हो जाता है । इसमें प्रत्यक्ष यही है कि रात्रि होते ही पार्थिव प्राणरूपी [illegible] नाड़ीमें हमारा आत्मा गर्भरत रूपमें परिणत हो जाता है । रात्रिके समय पार्थिव अग्निकी योनिमें प्रविष्ट हुए सूर्यके साथ ही उनकी रश्मियोंसे बद्ध हमारी [illegible] इनका धक्का खाकर स्वयं भी पृथ्वीकी ओर [illegible] जाती है । ब्राह्मण-विज्ञानके अनुसार रात्रिमें भी सूर्यका अभाव नहीं होता । केवल प्रकाशके प्रवर्तक [illegible] सूर्यका ही अभाव रहता है । दूसरे ग्यारह सूर्य रहते हैं । दिनभर सूर्य प्राणोंका हरण किया करते हैं एवं सायं होते ही सारे प्राणोंको उन पदार्थोंमें छोड़ जाते हैं । जबतक हमारे प्रातिस्विक (निजी) आत्मीय प्राणों किसी अन्य बलिष्ठ प्राणका आक्रमण नहीं होता, तब हम आनन्दसे विचरण करते रहते हैं । परंतु जहाँ [illegible] बलिष्ठ प्राणने हमपर आक्रमण किया कि हम [illegible] हो जाते हैं । सायंकाल होते ही विश्वदेव हमपर आक्रमण करते हैं, अतः हमारी आत्मा अभिभूत हो जाती है [illegible] हम अचेत होकर सो जाते हैं; फिर प्रातःकाल होते सूर्य अपने प्राणोंको, जो रात्रिमें आये थे, खींचने [illegible] हैं । अतः हमारा आत्मीय प्राण उद्बुद्ध हो जाता है ।

एका मूर्तिस्त्रयो देवाः—ब्राह्मणोंके आधारसे [illegible] सूर्यमण्डल ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं । उत्पादक होनेसे यह ब्रह्मा, सबका आश्रय (अधिष्ठाता) होनेसे इन्द्र और यज्ञमय होनेसे विष्णु कहलाता है । इसलिये 'एका मूर्तिस्त्रयो देवाः—ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः' कहा जाता है । आजकल जो महेश्वर नामसे प्रसिद्ध हैं, वेदभाष्योंमें वे इन्द्र हैं, अर्थात् इन्द्रका पर्याय महेश्वर है । एक ही सूर्यनारायण गुण-भेदसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हैं । अतः एकका उपासक तीनोंका उपासक है । इस रहस्यसे आजकलके वैष्णव और शैव दोनों नितान्त अपरिचित हैं । इतना [illegible] जाय, वह अनुचित है । 'गर्भं भाग्या [illegible]' —ऋग्वेद [illegible]

वैष्णवागममें सूर्य

(लेखक—डॉ० श्रीसियारामजी सक्सेना 'प्रवर')

(१)

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः॥
(तन्त्रसार)

निरुक्तमें आदित्यका एक नाम 'भरत' है[1]। अतः का अर्थ हुआ—आदित्यकी ज्योति, इस ज्योतिकी सना करनेवाला। देशके सम्बन्धमें अर्थ यह हुआ सूर्यकी उपासना करनेवाला देश अर्थात्—भारत। तीर्योंमें गायत्रीकी उपासना आरम्भसे ही प्रचलित है। त्री वेद-माता है। फलितार्थ यह हुआ कि सूर्योपासना व वैदिक-विधि है और अन्य देवोंकी उपासनासे र्त्ती तथा उनकी आधारभूता है। 'तन्त्रसार'में णु, नारायण, नरसिंह, हयग्रीव, गोपाल, श्रीराम, शिव, श, दक्षिणामूर्ति, सूर्य, काम, शक्ति, त्वरिता, बाला, नमस्ता, कालिका, तारा और गरुडकी गायत्रियाँ दी हैं।[2] 'बृहद्ब्रह्म-संहिता' आदि अन्य तन्त्रों, निषदों तथा पुराणोंमें गणेश आदि अन्यान्य अनेक ताओंकी गायत्रियाँ मिलती हैं। इससे स्पष्ट है कि रतमें प्रचलित सभी मत सूर्यको सर्वदेवाधार मानते । 'तन्त्रसार' का निर्देश है कि 'अपने इष्टदेवताको र्यमण्डलमें स्थित समझकर सूर्यको अर्घ्य दे और र उस देवताकी गायत्री जपे।'[3] 'नन्दिकेश्वरसंहिता'में । यहाँतक कह दिया है कि सूर्यको अर्घ्य दिये बिना विष्णु, शङ्कर या देवीकी पूजा करनी ही नहीं चाहिये[4]। आशय यह है कि देवताओंकी शक्तियोंका अवस्थान सूर्यमण्डलमें है।

सब देवोंके परमदेव नारायण हैं। नारायणमें सब देवता हैं और नारायण सूर्यमण्डलके अधिवासी हैं। 'बृहद्ब्रह्मसंहिता'में अनेक बार यह बात कही गयी है; यथा—

सूर्यमण्डलमध्यस्थं श्रीमन्नारायणं हरिम्।
अर्घ्यं दत्त्वा तु गायत्र्या ………… ॥[5]
संध्यां कृत्वा हरिं ध्यात्वा सूर्यमण्डलमध्यगम् ॥[6]
सूर्यमण्डलमध्यस्थं ………………अच्युतम् …॥[7]
आदित्ये पुरुषो योऽसौ……… ……… ……॥[8]
संध्यां कृत्वा विधानेन मुनयो विष्णुदेवताम्।
सूर्यमण्डलमध्यस्थामर्घ्यं दद्यात् समाहितः॥[9]

'तन्त्रसार'में भी यही बात कही गयी है। सूर्यका ध्यान भी सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायणका ही ध्यान है। वैष्णव-तन्त्रोंकी इस विचारणाके आधार उपनिषदोंमें हैं[10]। श्रुति-वचन है कि आदित्यकी 'शुक्लाभा' को ही 'नीलं परं कृष्णम्' जानना चाहिये।

सूर्यमण्डलवर्ती देवके त्रयीरूपकी व्याख्या 'लक्ष्मीतन्त्र'के उन्तीसवें अध्यायमें हुई है। व्यापक परब्रह्मकी नारायणी शक्ति परिणामद्वारा प्रणवाकृति हो जाती है। प्रणवके अग्नि और सोम अथवा क्रिया और भूति—ये दो विभाग हैं। विष्णुका षाड्गुण्य चिन्मय-आद्य-परम उन्मेष ही शक्ति है, जो जगत्‌की रक्षाके लिये दो प्रकारसे प्रवर्तित होती है—

१. निरुक्त २। २। ८। २. तन्त्रसार, पृष्ठ ६८से ७०। ३. (क) ततः ॐ सूर्यमण्डलस्थायै अमुकदेवतायै नमः त्यनेन तत्तद्गायत्र्या त्रिवारं जलं निक्षिप्य तत्तद्गायत्रीं जपेत्। पृ० ६५।

(ख) सूर्यमण्डलवासिन्यै देवतायै ततः परम्। अर्घ्यमञ्जलिमादाय गायत्र्या वा निवेदयेत्॥ पृ०६८

४. नं० सं०, तन्त्रसार पृ० ६६में उद्धृत। ५. बृ० ब्र० सं० १। १२। ५४। ६. बृ० ब्र० सं० ३। ७। १८२; ७. बृ० ब्र० सं० ३। ७। १८३। ८. बृ० ब्र० सं०—३। ७। १९१। ९. बृ० ब्र० सं० ३। १०। १। १०. यथा—'य ष आदित्ये पुरुषो दृश्यते'…बृ० उप० ४। ११। १

ऐश्वर्य सम्मुख होकर और तेजोमुख होकर । ऐश्वर्य-सम्मुखत्व षाड्गुण्य है । इसे 'भूतिशक्ति' भी कहा जाता है । ऐश्वर्य-भूषित इस भूत-शक्तिका तनु सोममय है । 'भूति' जगत्का आप्यायन करती है, इससे उसे 'सोम' कहा जाता है ।

षाड्गुण्य-विग्रहा परमेश्वरी व्यूहिनी है । उनके तीन व्यूह हैं—इच्छामय, ज्ञानमय और क्रियामय । इनमें क्रियामय व्यूह ही शक्तिका तेजोमय रूप है । यह उज्ज्वल तेज और षाड्गुण्यमयी है । इसके भी तीन व्यूह हैं सूर्यशक्ति, सोमशक्ति और अग्निशक्ति । इनमें सूर्यशक्ति उज्ज्वल, परा और दिव्या है, जो निरन्तर जगत्का निर्वहण कर रही है । इसके अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत—तीन रूप हैं । अध्यात्मस्था सूर्यशक्ति पिङ्गला नाडीके मार्ग-पर चलती है[1] । अधिभूतस्था सूर्यशक्ति दिवमें आलोक-का प्रवर्तन करती है । आधिदैविकी सूर्यशक्ति सूर्यमण्डलमें सन्निहित है । सूर्यमण्डलमें जो तरनामिका तप्त अर्चियाँ हैं, वे ऋचाएँ हैं[2] । जो उसकी अन्तःस्थ दीप्तियाँ हैं, वे साम हैं और जो पराशक्ति पुरुषरूपमें सूर्यमण्डलके अन्तःस्थ है, वह रमणीय दिव्य पुरुष यजुर्मय है । 'क्रिया-व्यूह'की सोममयी और अग्निमयी शक्तियोंका वर्णन इस लेखकी सीमासे बाहरका विषय है । अतः हम केवल सूर्यशक्तिका वर्णन कर रहे हैं ।

सूर्यमण्डलस्थ अन्तर्यामी वह पुरुष [illegible] श्रीश, पीताम्बर, चतुर्भुज, प्रसन्नात्मा, [illegible] पद्मनेत्र है । इस अन्तःस्थ पुरुषकी [illegible] है, मानादिक 'रुद्रहोता' है, [illegible] होता' है, सोम 'उद्गाता' है, [illegible] नाडियाँ देवपत्नियाँ हैं, मन होताओंका [illegible] ध्यान 'पुरश्चरण' है, शक्ति 'श्रंगुक' है, 'ओंकार प्रणवनाद' है और [illegible] तथा 'पुरिन' है[3] । इस दिव्य यजुर्मय [illegible] करनेसे मनुष्य अभिचार और पापोंसे मुक्त हो[illegible] यह लक्ष्मीतन्त्रका निर्देश है ।

वैदिक विचारणामें प्रत्येक देवताका परम [illegible] ही है । वेद सूर्यको जगत्का कारण, जगत् [illegible] और ब्रह्म बताते हैं[4] । उपनिषदोंमें भी यही [illegible] है[5] । वैष्णवागमों और तन्त्रोंमें सूर्यरूप नारायणकी मान्यता वेदोंकी इसी प्रतिपत्ति[illegible] है । 'विष्णुसहस्रनाम'में सूर्य और उसके [illegible] विष्णुके नामोंमें गिनाया गया है[6] । 'नारदपञ्च[illegible] विष्णु-नामोंमें सूर्यके नामोंकी गणना करायी [illegible] आदित्य बारह हैं और विष्णु भी द्वादश हैं[7] । ज्योतिर्मयतामें भी सूर्य और विष्णुका अभे[illegible] सूर्य तेजोमय हैं,[8] विष्णु भी ज्योतिःस्वरूप हैं ।[9]

---

१. इसीलिये पिंगला नाडीको सूर्यनाडी कहा जाता है । यह पुरुषा है । २. मिलाइये—(क) आदित्यो [illegible] एतन्मण्डलं तपति । तत्र ता ऋचस्तदृचां मण्डलम् ॥ (—नारायणोपनिषद् ३ । १४) (ख) विष्णुपुराण । ३. [illegible] विस्तृत जानकारीके लिये द्रष्टव्य है—तैत्तिरीय आरण्यकका तृतीय प्रपाठक । इन्द्रिय, शुक्रिय नामोंके लिये द्रष्ट[illegible] अहिर्बुध्न्यसंहिता, अ०—५८ और ५९ । ४. यथा—ऋ० १ । ११५ । १ । ५. यथा—(१) आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशः [illegible] व्याख्यानम् । बृ० उ० ३ । ९ । १ (२) तैत्ति० उ० ३ । १ । १ । ६. वि० स० ना० । ना० पं० रा० इत्ये[illegible] १ । ७० । ७. ना० पं० रा० ४ । ८ । ४८ । ८. वही ४ । ८ । ४८ । ९. यथा—तेजस्विनां सूर्यः । ना० पं[illegible] १ । १ । ७० । रवेर्ज्योतिः स्वरूपस्य (पुराणसंहिता ८ । २९) तपत्यर्कः पु० सं० १५ । ३२ । १०. ब्रह्म[illegible] ना० पं० रा० १ । १ । ६२; १ । ६ । १०; १ । ७ । ८४ । परंज्योतिः ना० पं० रा० ४ । १ । ज्योतिरूपम् ना०पं० रा० १ । १२ । २७ । महा तेजोमयं ब्रह्म० ना० पं० रा०४ । ३ । ७८ । एकं ज्योतिः स्वरू[illegible] [illegible] नारदपाञ्चरात्र ४ । २ । १ ।

[मा]या सनातनी'[1] ही भास्करमें प्रभारूपा परिलक्षित [होती] हैं।[2]

किंतु वास्तवमें सूर्यकी आधिभौतिकी प्रभा ही 'ज्योतिः-[स्वरूप] ब्रह्म' नहीं है। ब्रह्मज्योति तो निर्गुण, [अनन्त]स, परम शुद्ध, प्रकृतिसे परे, कृष्ण-रूप, सनातन और [निर्लिप्त] हैं[3]। वह नित्य और सत्य है तथा भक्तानुग्रह-[का]र है[4]। वह आदित्यकी ज्योतिके भी भीतर [रहने]वाली आधारभूता परमा, शाश्वती 'ज्योति' है। इसीसे [उसे] ब्रह्मज्योति कहा गया है। यह ब्रह्मज्योति ही [वैष्ण]वोंके अतुल रूपधारी 'श्यामसुन्दर' हैं।[5]

[य]तः ब्रह्मज्योति सूर्य-ज्योतिका आधार है और हेतु [है]। अतः ब्रह्मज्योति अधिभूत सूर्यकी ज्योतिसे करोड़ों [गु]नी अधिक है।[6]

'नरसिंह' रूपकी व्याख्यामें आगमका कथन है कि जो हंसरूप जनार्दन आकाशमें सूर्यके साथ जाते हैं, उन विहंगम भगवान्‌का वर्णन सूर्यके वर्णसे किया जाता है।[7] तात्पर्य यह कि अनन्त आकाश-व्यापी विष्णुकी आभाके एक रूप सूर्य हैं। नृसिंहमन्त्रके 'भद्र' पदकी व्याख्यामें कहा गया है कि सूर्यमें प्रकाश भरने, सज्जनोंमें भद्रभाव जागरित करने और घोर संसार-ताप-रूप भवको भगा देनेके कारण नृसिंह 'भद्र' कहे गये हैं।[8] परमात्मा परात्पर श्रीकृष्णकी सतत उपासना सूर्यादिक सभी देव करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण सूर्य, इन्द्र, रुद्र आदि सभीके द्वारा वन्दित हैं[9]। सूर्य उन्हींके प्रसादसे तपते हैं।[10]

१.—ना० पं० रा० २।६।१८ २. प्रभारूपे भास्करे सा (—ना० पं० रा० २।६।२४)

३. अनन्तं परमं शुद्धं ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। निर्लिप्तं निर्गुणं कृष्णं परमं प्रकृतेः परम्॥ (—ना० पं० रा० १।१२।४८)

४. नित्यं सत्यं निर्गुणं च ज्योतिरूपं सनातनम्। प्रकृतेः परमीशानं भक्तानुग्रहकातरम्॥ (—ना० पं० रा० १।१२।२७)

५. ध्यायन्ते संततं सन्तो योगिनो वैष्णवाः सदा। ज्योतिरभ्यन्तरे रूपमतुलं श्यामसुन्दरम्॥ (—ना० पं० रा० १।१।३)

६. गोपगोपीश्वरो योगी सूर्यकोटिसमप्रभः। (—ना० पं० रा० ४।१।२४) सूर्यकोटिप्रतीकाशः॥ (—ना० पं० रा० ४।३।३०)

सूर्यकोटिप्रतीकाशः पूर्णेन्दुयुतसंनिभः। यस्मिन् परे विराजन्ते मुक्ताः संसारबन्धनैः॥ (—लक्ष्मीतन्त्र १७।१५)

तमेश्वरं कोटिदिवाकरद्युतिम्॥ (—पुराणसंहिता ११।२३।११)

७. सूर्येण यः सहायाति हंसरूपो जनार्दनः। विहंगमः स देवेशः सूर्यवर्णेन वर्ण्यते॥ (—अहिर्बुध्न्यसंहिता ५६।२६)

८. भां ददाति रवौ भद्रां भावं द्रावयते सताम्। भवं द्रावयते घोरं संसारतापसंततम्॥ (—अहि० सं० ५४।३३।३४)

९. गणेशशेषब्रह्मेशादिनेशप्रमुखाः सुराः। कुमाराश्च मुनयः सिद्धाश्च कपिलादयः॥ लक्ष्मीसरस्वतीदुर्गासावित्रीराधिकापराः। भक्त्या नमन्ति यं शश्वत् तं नमामि परात्परम्॥ (—ना० पं० रा०, प्रा० वन्दना)

……स्तुवन्ति वेदाः सावित्री वेदमातृकाः॥ (—ना० पं० रा० १।३।४१)

ब्रह्मसूर्येन्द्ररुद्रादिवन्द्यः॥ (—ना० पं० रा० ४।३।१११)

१०. यत्प्रसादेन……………तपत्यर्कः। (—पुराणसंहिता १६।१२)

वान् विष्णु इनके अन्तर्वर्ती परम प्रभु हैं, परात्पर रवि हैं, रविनु हैं, रविरूप हैं और रविके । नारायणगायत्रीके अनुसार वे हंस ही नहीं— हैं[2] । 'नारदपञ्चरात्र'में परमात्मा श्रीकृष्णके आठ नामोंमें एक नाम 'सर्वग्रहरूपी'[3] भी है । रा होना प्रत्येक ग्रहसे परम-श्रेष्ठ होना है। अतः । वचन है कि एक श्रीकृष्णमन्त्रके जपसे सभी अनुग्रह प्राप्त हो जाता है[4] ।

देव हेमवर्णके हैं[5] । भगवान् सूर्य अपने एक संवत्सर) वाले बहुयोजन-विस्तृत रथमें आसीन अपने निम्न अंशुओंसे जगत्को प्रकाशित करते उ महान् रथके वाहक सात अश्व हैं, जिनका क सारथि अरुण स्वयं है—

स्थाय भगवान् बहुयोजनविस्तृतम् ।
ादर्षे स्थितं स्वैकचक्रं दिव्यं प्रतिष्ठितम् ॥
त सप्तयः सप्तच्छन्दांसि स्यन्दनं महत् ।
येष्वारुणः सर्वानश्वान् वाहयति स्वयम् ॥[6]

के बारह रूप हैं । ये बारह आदित्य बारह से सम्बद्ध हैं । इनके नाम हैं—इन्द्र, धाता, भग, मित्र, वरुण, अर्यमा, अंशु, विवस्वान्, त्वष्टा, और विष्णु[7] । वैष्णवागमके अनुसार समस्त विश्व चतुर्व्यूहात्मक है । अष्ट वसु वासुदेवकी, एकादश रुद्र संकर्षणकी, द्वादश आदित्य अनिरुद्धकी और दिव्य पितर प्रद्युम्न (विष्णु)की विभूतियाँ हैं[8] । सभी प्राणियोंमें विष्णुका अन्तर्यामित्व है ।

सूर्यकी द्वादश कलाएँ हैं । इनके नाम हैं—तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुधूम्रा, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी और क्षमा[9] । (कहीं-कहीं[10] सुधूम्राके स्थानपर सुषुम्णा नाम मिलता है ।)

(२)

सूर्योपासनाके प्रमुख रूप हैं —गायत्री-उपासना, सन्ध्या, सूर्यमन्त्र, जप, सूर्यपूजा और पञ्चदेव-पूजा । किसी भी प्रकारकी पूजासे पूर्व इष्टदेवका आवाहन किया जाता है और अर्घ्य दिया जाता है । षोडशोपचार हो तो उत्तम है । जपसे पूर्व मातृका संस्कार किया जाता है । अब इनपर संक्षेपमें विचार किया जायगा ।

पूजासे पहले देवताका आवाहन किया जाता है । सूर्यका आवाहन इनके ध्यानके साथ किया जाता है; क्योंकि वे आकाशके मणि, ग्रहोंके स्वामी,[11] सप्ताश्व, द्विभुज, दिनेश और सिन्दूरवर्णी हैं तथा उनके भजनसे कुष्ठादि

---

१. रवेर्रूपभाजो (—ना० पं० रा० ४ । ८ । ४८)

२. (क) हंसो हंसी हंसचतुर्हंसरूपो कृपामयः । (—ना० पं० रा० ४ । ८ । ८८)

(ख) नारायणाय पुरुषोत्तमाय च महात्मने । विशुद्धसत्त्वधिष्ठाय महाहंसाय धीमहि ॥

(ना० पं० रा० ४ । ३ । ७)

३. सर्वग्रहरूपी परात्परः (ना० पं० रा० ४ । ३ । ३६)

४. इमं मन्त्रं महादेवि जप्त्वैव दिवानिशम् । सर्वग्रहानुग्रहभाक् सर्वप्रियतमो भवेत् ॥

(ना० पं० रा० ४ । ३ । ४४)

५. ([illegible]) । ६. (बृ० ब्र० सं० २ । ७ । ९३-९४)

[illegible] धाता भग पूषा [illegible] ॥

(बृ० ब्र० सं० ३ । १० । २२)

[illegible] । ९. बृ० ब्र० सं० ३ । १० । ४८ । १०. [illegible] ।

[illegible] । ११. [illegible]

...मं सूर्यनामसे तप रही है, वह (ऋक्-यजुः-...) तीन प्रकारकी है। वह वेद-जननी सावित्री ...र्ण प्रणव उसका आधार है। वह प्रकाशानन्द-...है, वर्णोंकी परामाता है और ब्रह्मसे उदित होकर प्रतिष्ठित होती है। वह दिव्य सूर्य-वपु सावित्री ...-विलोमसे सौम्य और आग्नेयी है। गानेवालेका ...रती है, अतः वह गायत्री है। अपनी किरणोंके ...थ्वी एवं सरिताओं आदिसे जीवन (जल) लेकर ...ः पौधोंमें छोड़ देती है। उसे सूर्यमयी शक्ति हैं[1]।

...देवता महादेवी गायत्री गुणभेदसे त्रिरूपा है। ...तःकालमें ब्रह्मशक्ति, मध्याह्नमें वैष्णवी शक्ति और ...ालमें वरदा शैवी शक्ति है। '**आद्यायै विद्महे ...र्यै धीमहि, तन्नः काली प्रचोदयात्**'—...न्त्रिक गायत्री-मन्त्र है[2]। ब्रह्मके उपासकोंको गायत्री-...करते समय ब्रह्मको गायत्रीका प्रतिपाद्य समझना ...ये। किंतु अन्य सब आराधक वैदिकी संध्या करते सूर्योपस्थान-पूर्वक सूर्यको अर्घ्य दें।[3] ब्रह्म-सावित्री ...त्री) वैदिक भी है और तान्त्रिक भी। दोनों ...से यह प्रशस्त है। प्रबल कलिकालमें गायत्रीमें ...का ही अधिकार है, अन्य मन्त्रोंमें नहीं। गायत्रीके ...में ब्राह्मणोंको 'ॐ', क्षत्रियोंको 'श्रीं' और वैश्योंको मिलाना चाहिये।[4]

...सन्ध्यामें मुख्यतः दस क्रियाएँ होती हैं—आसन-...ा, मार्जन, आचमन, प्राणायाम, अघमर्षण (भूतशुद्धि), ...दान, सूर्योपस्थान, न्यास, ध्यान और जप। ...दान और सूर्योपस्थान दोनों सूर्यदेवकी उपासना हैं। गायत्रीका जप करते समय सूर्यमण्डलमें अपने इष्टदेवका ध्यान करना चाहिये। स्नान-विधिमें कथित नियमसे तर्पण भी करना आवश्यक है। योगियोंके लिये संध्या, तर्पण और ध्यान आभ्यन्तर भी होते हैं। कुण्डलिनी शक्तिको जागरित करके उसे षट्चक्र क्रमसे सहस्रारमें ले जाकर परमशिव (परात्पर श्रीकृष्ण)के साथ एक कर देना आभ्यन्तर संध्या है। चन्द्र-सूर्याग्निस्वरूपिणी कुण्डलिनीको परम बिन्दुमें सन्निविष्ट करके आज्ञाचक्रमें निहित चन्द्र-मण्डलमय पात्रको अमृतसारसे परिपूर्ण कर उससे इष्टदेवता-का तर्पण करना आभ्यन्तर तर्पण है। रवि-शशि-वह्निकी ज्योतिको एकत्र केन्द्रित कर महाशून्यमें विलीन करके निरालम्ब पूर्णतामें स्थित हो जाना ही योगियोंका ध्यान है। वैष्णवागममें भी ऐसा ध्यान प्रशस्त है।[5]

भगवान् सूर्यकी पृथक्-पृथक् षोडशोपचार-विधिसे पूजा करनेके भी विधान हैं। 'महानिर्वाण-तन्त्र'में यह विधान है कि 'क भ' आदि 'ठ ड' वर्ण-बीजद्वारा सूर्यकी द्वादश कलाओंको पूजकर[6] फिर मन्त्रशोधित अर्घ्य-पात्रमें '**ॐ सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः**' मन्त्रसे सूर्यकी पूजा करनी चाहिये।[7] रामाराधक वैष्णवोंमें सूर्यका महत्त्व इसलिये भी है कि भगवान् रामने सूर्यवंशमें अवतार लिया था।[8] सूर्य-पूजा वंश-वृद्धिके लिये है। सूर्यशक्ति गायत्रीकी उपासना बुद्धि-वर्धन और सुमति-प्राप्तिके लिये है। सूर्य तेजोदेव हैं और उपासकोंको तेजस्वी बनाते हैं। श्रीमद्भागवतकी मान्यता है कि अदितिपुत्रों अर्थात् आदित्यों या देवोंकी उपासनाका फल स्वर्ग-प्राप्ति है।[9]

---

१. लक्ष्मीतन्त्र २९। २६—३२। २. महानिर्वाणतन्त्र ५। ५९—६५। ३. म० नि० तं० ८। ७७-७८। ४. म० नि० तं० ८। ८५-८६। ५. हृत्पद्मे पद्मनाभं च परमात्मानमीश्वरम्। प्रदीपकलिकाकारं ब्रह्मज्योतिः सनातनम्॥ (...ना० पं० रा० १। ६। १०) ६. सूर्यकलाओंकी पूजाके मन्त्र ये हैं—कं भं तपिन्यै नमः। खं बं तापिन्यै नमः। गं फं धूम्रायै ...: । घं पं मरीच्यै नमः। ङं० नं० ज्वालिन्यै नमः। चं धं रुच्यै नमः। छं दं सुषुम्णायै नमः। जं थं भोगदायै नमः। झं तं ...यै नमः। ञं णं बोधिन्यै नमः। टं ढं धारिण्यै नमः। ठं डं क्षमायै नमः। ७. म० नि० तं० ६। २७-३०। ८. सूर्यवंशध्वजो रामः॥ (—ना० पं० रा० ४। ३। ७) ९. (क)—स्वर्गकामोऽदितेः सुतान्॥ (—भाग० २। ३। ४)

नवग्रह-पूजनमें सूर्य-पूजा भी सम्मिश्रित है। सूर्य ग्रहके अधिपति हैं। नवग्रहोंमें शनि सूर्यके पुत्र हैं[1]। 'बृहद्ब्रह्मसंहिता'में नवग्रहकी स्थितिका विस्तृत वर्णन है[2]। 'रमेश्वरसंहिता'में नवग्रह भगवान्‌के मन्दिरके विमान-नाओंमें हैं। सर्वग्रह पीड़ा-शान्तिके लिये नवग्रह-वन किया जाता है। हिंदुओंमें प्रायः सभी कार्योंमें र यागादिकके आरम्भमें नवग्रहपूजन भी होता है। के अपने-अपने मन्त्र और दान हैं। ग्रहपीड़ा-निवारणके लिये रत्न-धारण करनेका विधान है।

श्रुति, गीता, इतिहास, पुराण और आगममें सूर्य और चन्द्रको स्वर्ग-पथ कहा गया है। 'बृहद्ब्रह्मसंहिता'में कहा है कि सूर्य-पथ योगियोंका परम पथ है, जो पञ्चक्लेशोंका शमन करता है, और मोक्ष चाहनेवाले उस पथपर चलकर विष्णुके परमपदको प्राप्त करते हैं[3]। 'सनत्कुमारसंहिता' कहती है कि जीव रुद्र, सूर्य, अग्नि आदिमें भ्रमण करते हैं। तात्पर्य यह कि कर्म-रत जीव, जो रुद्रादिक देव-भावनामें ही सीमित रह जाते हैं, वे बारम्बार जन्म-मरणके चक्रमें पड़ते हैं[4]। मुक्त होनेके लिये तो ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म श्रीकृष्णकी ही शरण लेनी चाहिये। उसके लिये सूर्य एक मार्ग हैं। 'तत्त्वत्रय'में कहा है कि सूर्यमेसे होकर जानेवाले जीव अपने सूक्ष्मशरीरसे मुक्त हो जाते हैं। ऐसे मुक्त जीव चिन्मय और अणुमात्र हो जाते हैं[5]। अणुमात्र होनेका अर्थ है—कार्मज शरीरसे मुक्ति। 'नारदपञ्चरात्र'में जीवका सूर्यमें लीन होना बताया गया है[6]। 'लक्ष्मीतन्त्र' का कथन है कि 'श्री' श्रीहरिकी प्रकाशानन्दरूपा पूर्णाहन्ता है। वह मन्त्रमाता है। सारे मन्त्र उसीसे उदित होते हैं और उसीमें अस्त होते हैं। सूर्य इस मन्त्रमय मार्गका जाग्रत् पद है, अग्नि स्वप्नपद है और उसीमें अस्त होते हैं। सोम सुषुप्ति पद है[7]। श्रीसूक्तमें 'सूर्यसोमाग्निकण्ठोत्थनादवत्' —मन्त्र-बीज है। उनमें जो लक्ष्मीनारायण-सम्बन्धी परमबीज है, वह सर्वकामफलप्रद है। वह पुत्रद, राज्यद, भूतिद और मोक्षद है। वह शत्रु-विध्वंसक है और वाञ्छित-की आकर्षक 'चिन्तामणि' है। बीजोंसे जो मन्त्र बनते हैं, वे सब श्रीकी शक्तिसे अधिष्ठित होते हैं और वे श्रीत्वको प्राप्त होकर शीघ्र फलदायी होते हैं[8]। यही मन्त्र-मार्ग है। इसका जाग्रत् पद सूर्य है—इसका आशय यह है कि सूर्य मन्त्रोंकी फलवत्ताके प्रमुख आधार हैं और मन्त्रका चरम फल है—श्री (शक्ति) की और इस प्रकार नारायण-(शक्तिमान्-) की प्राप्ति। इस दृष्टिसे भी सूर्य स्वर्गद्वार हैं।

आगम-प्राधान्यवाले सम्प्रदायोंमें सौर-सम्प्रदाय भी है[10]। आनन्दगिरिने 'शङ्करविजय' नामक काव्यके तेरहवें

---

१. बृ० ब्र० सं० २ । ७ । १०६ । २. बृ० ब्र० सं० २ । ७ । १०२ से ११५ ।

३. योगिना परमः पन्थाः स्मृतः क्लेशपरिक्षये । मोक्ष्यमाणाः यथा येन यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥

(—बृ० ब्र० सं० २ । ७ । ९६)

मिलाइये—'स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम्' (—महाभारत ३ । ३ । २६ सूर्यके नामोंसे ।)

४. केचिद् रुद्रे रवौ वह्नौ रौद्रे शक्तौ तथापरे । अन्ये कर्मरता जीवा भ्रमन्ति च मुहुर्मुहुः ॥

(—स० सं० ३१ । ७८)

५. तत्त्वत्रय, पृष्ठ १२ । ६. स्वरूपाणुमात्रं स्याज्ज्ञानानन्दैकलक्षणम् ॥ (—विष्वक्सेनसंहिता)

त्रसरेणुप्रमाणास्ते रश्मि कोटिविभूषिताः ॥ (—अहि० सं० ६ । २७),

७. पुनः प्रलीयते सूर्ये गतेषु च घटेषु च ॥ (—ना० पं० रा० २ । १ । ३३) । ८. ल० तं०, । ५२ । १२

९. लक्ष्मीतन्त्र ५२ । २०–२३

१०. ब्राह्मं शैवं वैष्णवं च सौरं शाक्तं तथार्हतम् ॥ (—पुराणसंहिता १ । १६)

्यक्तितोऽनुपलब्धिः" उक्त सूत्रमें बाह्य प्रकाशकी
। आदित्य-नामसे की गयी है तथा मूलसूत्रमें
भी स्पष्ट है कि "आदित्यरश्मेः स्फटिकान्त-
पि दाहेऽविघातात्" (न्या० सू० ३।१।४७)।
प्रधान तत्त्व अध्यात्म है, चक्षुः आदि करणा-
ो जीवरूपसे अधिदैव भी है तथा रश्मिके
। नेत्रगोलकरूपेण एवं बाह्य प्रकाश सहयोगसे
योगानुगृहीत विषयके रूपमें अधिभूत भी वही है—
ध्यात्मिकोऽयं पुरुषः सोऽसावेवाधिदैविकः।
स्तोभयविच्छेदः पुरुषो ह्याधिभौतिकः॥
(श्रीमद्भा० २।१०।८)

सी प्रकार—

"दमपमार्कवं पुरुष रूभे परस्परं सिध्यति यः
खे" कहा है—

सी आदित्य-तत्त्वका पुरुष नामसे ब्राह्मणभाग
। करता है—

"यदेतन्मण्डलं तपति"'एष एतस्मिन्मण्डले
य"'यदेतदर्चिर्दीप्यते"',"'पुरुषो"'यदेव
मयः"' उक्त ब्राह्मण-भागमें स्पष्टतया अध्यात्म,
दैव एवं अधिभूत (अधियज्ञ) स्वरूपसे भगवान्
ा निर्देश प्राप्त होता है।

इसके अनन्तर वैशेषिकदर्शनका स्थान है। इसमें
सूर्य-रश्मियोंका महत्त्व 'तेजोरूपस्पर्शवत्'
० द० २।१।३)से जीवात्माकी स्थितिको तेजके
नेत्र रूपका विभाग दिखाकर समानधर्मितया
त किया गया है। रूप और स्पर्शमें उद्भूत और
द्भूतकी स्थितिसे जीवात्माका देखा जाना और
ना जा सकना झलका दिया है। शाङ्कर उपस्कारमें
शब्दोंसे स्पष्ट किया ...
तदि' (२।१।

जिस प्रकार जीवात्मा नहीं दीखता, परंतु देहके जड
होनेसे किसी भी क्रियाकी सम्भवता चैतन्यके सम्पर्क बिना
सम्भव नहीं है तो 'हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति' (गीता १८।
६१) के अनुसार हृदय-देशमें स्थित उस चैतन्यकी शक्ति
ही जड देहको क्रियाशील बनाकर उसकी सत्ताको सिद्ध
कर देती है, उसी प्रकार सूर्यका तेज कहीं रूपके
द्वारा और कहीं स्पर्शद्वारा उद्भूत (प्रत्यक्ष) एवं अनुद्भूत
(अप्रत्यक्ष) रूपमें जीवात्मवादका चित्रपट प्रस्तुत
करता है।

इससे आगे चलकर दर्शनने जीवका आयुके अधिक
एवं न्यूनके लिये सूर्यके द्वारा बननेवाले वर्ष, मास, दिन
होरात्मक, कालके आश्रयसे तथा पूर्व, पश्चिम, दक्षिण,
उत्तर, ऊर्ध्व आदि अनेक प्रकारके व्यवहारकी सिद्धि-हेतु
सूर्यके द्वारा अनुप्राणित दिशारूपी द्रव्यके व्याजसे दिवाकर
इस जगत्की वस्तुस्थितिको सुन्दररूपमें चित्रित किया है।

'इत इदमिति यतस्तद्दिश्यं लिङ्गम्' (वै०
सू० २।२। १०) 'उपस्कारकालात् संयोगाप-
नायिका दिक् सन्निधानन्तु सूर्यसंयुक्ते संयोगा-
ल्पीयस्त्वं ते न सूर्यसंयोगा धर्णीयांसो
भूयांसो वा।'

वैशेषिक सिद्धान्तवादी प्रशस्तपाद उक्त जगद्-
व्यवहारकी साधनामें सूर्यको ही भगवान्के रूपमें आधार
मानते हैं। दिक्प्रकरणमें—"लोकसंव्यवहारार्थं मेरुं
प्रदक्षिणमावर्तमानस्य भगवतः सवितुर्यं संयोग-
विशेषाः लोकपालपरिगृहीतदिक्प्रदेशानामन्वर्थाः
प्राच्यादिभेदेन दशविधाः संज्ञाः कृताः।"

इसके अनन्तर सांख्यदर्शनकी कोटि है। महर्षि कपिल-
ने अपने सिद्धान्त सांख्यदर्शनमें बड़े ही रहस्यमय रूपमें
... ...में सूर्यकी अध्यात्म, अधिदैव तथा अधिभूत-
...रूपमें किया है, "नाप्राप्तप्रकाशकत्व-
... सर्वप्राप्तेर्वा" (५।१०४)।
... ... करते हुए सूर्यरश्मियों स्पष्ट
...) दूरस्थप्रदीपादिप्रकाशवत्"'।

सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
शीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥
(गीता ३ । ३०)

स सिद्धान्तका निष्कर्ष है—'सर्वं कर्माखिलं पार्थ परिसमाप्यते' (गी० ४ । ३३)।

सी कारण ब्रह्मसूत्र उत्तर मीमांसा नामसे कहा गया है। कर्म या कर्मफलका समर्पण परमब्रह्ममें सिद्ध ततया गया है। पहले पूर्वमीमांसामें दर्शनका क्षेत्र देखें—वेद-मन्त्रोंद्वारा सूर्यका वैभव अध्यात्म-अधिदेव-भूत (द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और भूलोक) रूपसे रच्छिन्न सत्तामें स्पष्ट किया है। इतना ही नहीं, बल्कि गत् विष्णुरूपसे सूर्यकी विभूति गायी गई है। क दैवतकाण्डमें विष्णुपदकी अन्वर्थता स्थावर-जङ्गममें रश्मि-जालकी व्यापकताके आधारपर है; क्योंकि ही रश्मियोंद्वारा सर्वत्र व्याप्त है। इसलिये यही विष्णु —'यद्विषितो भवति तद्विष्णुर्भवति' तथा 'इदं ष्णुर्विचक्रमे त्रेधा' (ऋ० वे० १।२।७।२) गीतामें तथ्यको और भी स्पष्ट कर दिया है—'आदित्याना-हं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्' (१० । २१)। मांसाका पूर्व भाग यज्ञकल्प है। इसमें सूर्य (आदित्य) से मा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा होमि' (यजु० ३४ । ५४)—इस मन्त्रमें चिरजीवनकी मनाएँ अभिकाङ्क्षित हैं। इसी प्रकार कर्म-प्रधान शास्त्र पू० मी०) में सूर्यकी रश्मियोंद्वारा भौतिक वस्तुओंकी तिका स्रोत दिखाते हुए पाण्डुरोग (पीलिया) की पूर्ण चिकित्साव्यवस्था पूर्वमीमांसादर्शनकी अपनायी सरणीमें वेद-न्त्रोंसे ही करता है—'शुकेषु मे हरिमाणं रोपणा-कासु दध्मसि। अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि-ध्मसि' (ऋ० १ । ५० । १२)। इस प्रकार यह पञ्चम तोटिका पूर्वमीमांसा-दर्शन भी ब्रह्माण्डपिण्डमें सूर्यके तात्त्विक स्वरूपको दर्शनसिद्धान्तकी दृष्टिसे व्यवस्थापित करता है।

परिशेषमें स्थान आता है 'ब्रह्मसूत्रका (उ०मी०द०का)। इसमें 'ज्योतिश्चरणाभिधानात्' (अ० १, पा० १, सू० २४) एवं 'ज्योतिर्दर्शनात्' (१ । ३ । ४०) इन दोनों सूत्रोंके द्वारा सूर्यकी ज्योतिस्वरूपा सत्ताको स्पष्टतासे निर्देशित किया है। ४०वें सू०के भाष्यमें भगवान् शंकर लिखते हैं—'अथ यत्रैतदस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथैते-रेव रश्मिभिरूर्ध्वमाक्रमते'। छा० उ०के अनुसार यही एकमात्र सूर्यतेज जो भौतिक-दैविक विधिसे नेत्रगोलक एवं तेजोवृत्तिरूपसे पिण्डमें विद्यमान है, द्युलोकमें प्रकाश-मान ब्रह्माण्डव्यापी भास्करतेज ब्रह्मरूपसे उपासित मुक्तिका आश्रय है। भाष्यकार और भी स्पष्ट कर देते हैं—'एवं प्राप्ते ब्रूमः परमेव ब्रह्मज्योतिः शब्दम्' 'ब्रह्म-ह्यानादि अमृतत्वमाप्तिः', (—यजु० नारायणसूक्त)। इस तथ्यको स्पष्ट करता है—'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।' योगदर्शनने इसीके बलपर कहा है—'विशोका वा ज्योतिष्मती' (सू० १ । ३६) उपनिषद्भाग इस दार्शनिक दृष्टिको प्रकाश देता है—'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' (ई० उ० ७)।

ब्रह्मसूत्र (१ । ३ । ३१)में 'मध्वादिष्वसम्भवादन-धिकारं जैमिनिः' पर भाष्यकार छां० उ० का उद्धरण देकर सूर्यको मधु (अमृत) रूप स्वीकार करते हैं—'असौ वा आदित्यो मधुः'। वेदा० द० १ । २ । २६ सूत्रके भाष्यमें ऋग्वेदका उद्धरण भाष्यकारने यह दिया है—'यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमामाततान रोदसी अन्तरिक्षम्'—जो एक परमतत्त्व सूर्यकी ब्रह्माण्ड-पिण्ड मध्यवर्ती सत्ताका विशुद्ध उदाहरण है।

इस प्रकार उक्त विचार-परम्परासे भगवान् सूर्यका दार्शनिक अस्तित्व या सूर्यतत्त्वकी विवेचनात्मक सत्यता निश्चित रूपसे स्पष्ट हो जाती है कि यही विशुद्धतत्त्व छहों दर्शनोंद्वारा विभिन्न विचारधाराओंमें प्रतिपादित स्थावर-जङ्गमात्मक दृष्ट-श्रुत विश्वमें अनुस्यूत विभूति है।

समस्त स्वरोंकी अन्तिमता निषाद स्वरमें होती है; क्योंकि समस्त जगत्का अन्तिम और व्यापी तत्त्व सूर्य इस स्वरके देवता हैं—

निषीदन्ति स्वरा यस्मान्निषादस्तेन हेतुना।
सर्वांश्चाभिभवत्येष यदादित्योऽस्य दैवतम्॥
(पृ० ४१२, श्लोक १०)

५—सूर्यकी किरणोंमें अगल-बगल घूपमें आड़ लगाकर बाँचके रखे गये छिद्रसे जो 'धूलिकण' दिखायी पड़ते हैं, उनकी चञ्चल गतिसे 'अणुमात्रा'का समय एवं उनके गुरुत्वसे 'त्रसरेणु'का तौल बताया गया है। चार अणुमात्रा कालका सामान्य एकमात्रा काल होता है। एक मात्रिक वर्णको ह्रस्व कहते हैं। मनमें यदि त्वरित गतिसे शब्दोच्चारणकी भावना रहती है तो उस उच्चारणका प्रत्येक स्वर-वर्ण एक अणुमात्रा कालका माना जाता है—

सूर्यरश्मिप्रतीकाशात् कणिका यत्र दृश्यते।
अणुत्वस्य तु सा मात्रा मात्रा च चतुराणवा॥
(या० शि० ११)
मानसे चाणवं विद्यात्। (या० शि० १२)
जालान्तरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः।
त्रसरेणुः स विज्ञेयः।

६—सूर्यकी गतिसे प्राप्त शरद् ऋतुका विषुवान् मध्यदिन जब बीत जाय, तब उषःकालमें उठकर वेदाध्ययन करना चाहिये। इस उषःकालका वेदाध्ययन वसन्त ऋतुकी रात्रि मध्यमानकी हो तबतक चालू रखना चाहिये—

शरद्विषुवतोऽतीतादुषस्युत्थानमिष्यते।
यावद्वासन्तिकी रात्रिर्मध्यमा पर्युपस्थिता॥
(नारदीय शि०, पृ० ४४२, श्लोक २)

७—वेदका स्वाध्याय आरम्भ करते समय पाँच देवताओंका नमस्कार विहित है। उनमें भगवान् सूर्यका नमस्कार समस्त वेदोंके स्वाध्यायारम्भमें आवश्यक है—

गणनाथसरस्वतीरविशुक्रबृहस्पतीन्।
पञ्चैतान् संस्मरन्नित्यं वेदवाणीं प्रवर्तयेत्॥
(सम्प्रदाय प्रबोधिनी-शिक्षा, श्लोक २१)

अतएव वेदाध्यायी एवं वेदप्रेमी तथा उच्चारणकी स्पष्टता चाहनेवालोंको भगवान् श्रीसूर्यनारायणकी आराधना अवश्य करनी चाहिये। सूर्याराधनासे मति निर्मल होती है और वेदोंके स्वाध्यायमें प्रगति होती है। वेदाङ्गोंमें सूर्यकी महिमा इसी ओर इङ्गित करती है।

वेदाध्ययनमें सूर्य-सावित्री

प्रणवं प्राक् प्रयुञ्जीत व्याहृतीस्तदनन्तरम्। सावित्रीं चानुपूर्व्येण ततो वेदान् समारभेत्॥

याज्ञवल्क्य-शिक्षा (२। २२) के अनुसार वेदपाठके प्रारम्भमें 'हरिः ॐ' उच्चारणके अनन्तर तीन व्याहृतियों—भूः भुवः स्वः—के सहित सावित्री अर्थात् सविता देवताकी गायत्री—'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्'—का उच्चारण कर लेना चाहिये। ॐकारका उच्चारण मनु० २। ७४ में निर्दिष्ट है; पर: वेदाध्ययनके आदि और अन्तमें उच्चारण न करनेसे वह व्यर्थ हो जाता है

ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा। स्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यति॥

वेद, रामायण, पुराण और महाभारतके आदि, मध्य और अन्तमें सर्वत्र 'हरि' का उच्चारण किया जाता है—

वेदे रामायणे चैव पुराणेषु च भारते। आदिमध्यावसानेषु हरिः सर्वत्र गीयते॥'

१. वाजसनेयी-संहिताके ३६ वें अध्यायकी तृतीय कण्डिकामें तीन ही व्याहृतियोंका स्मरण है। ऊँच... व्याहृतियोंका गो० स्मृ० १ का विधान भी शाखान्तरीय मान्य विधि है। २. म० भा० स्वर्गा० ६। ९३

योगशास्त्रीय सूर्यसंयमनके मूल सूत्रकी व्याख्या

'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्' (वि० पा० २६)

शब्दार्थ—भुवन-ज्ञानम्=भुवनका ज्ञान; सूर्ये संयमात्= सूर्यमें संयम करनेसे होता है।

अन्वयार्थ—सूर्यमें संयम करनेसे भुवनका ज्ञान होता है।

व्याख्या—प्रकाशमय सूर्यमें साक्षात्-पर्यन्त संयम करनेसे भूः, भुवः, स्वः आदि सातों लोकोंमें जो भुवन हैं अर्थात् जो विशेष पदवाले स्थान हैं, उन सबका यथावत् ज्ञान होता है। पिछले पचीसवें सूत्रमें सात्त्विक प्रकाशके आलम्बनसे संयम कहा गया है। इस सूत्रमें भौतिक सूर्यके प्रकाशद्वारा संयम बताया गया है, किंतु सूर्यका अर्थ सूर्यद्वारसे लेना चाहिये और यहाँ सूर्यद्वारसे अभिप्राय सुषुम्णा है। उसीमें संयम करनेसे उपर्युक्त फल प्राप्त हो सकता है। श्रीव्यासजीने भी सूर्यके अर्थ सूर्यद्वारसे किये हैं तथा मुण्डकमें भी सूर्यद्वारका वर्णन है। 'सूर्यद्वारेण ते विरजा।'

[*टिप्पणी*—कई टीकाकारोंने सूर्यका अर्थ पिंगला नाड़ीसे लगाया है, पर यह अर्थ न भाष्यकारको अभिमत है, न वृत्तिकारको और न इसका प्रसङ्गसे कोई सम्बन्ध है।]

भाष्यकारने इस सूत्रकी व्याख्यामें अनेक लोकोंका बड़े विस्तारके साथ वर्णन किया है, उसको इस विषयके लिये उपयोगी न समझकर हमने व्याख्यामें छोड़ दिया है और सूत्रका अर्थ भोजवृत्तिके अनुसार किया है।

इस भाष्यके सम्बन्धमें बहुतोंका मत है कि यह व्यासकृत नहीं है [illegible]

साधारणके साथ [illegible] पाठकोंके जानकारीके लिये यह देना उचित समझते हैं—

[illegible] भाष्यानुवाद सूत्र २६

भूमि आदि सात लोक, अवीचि आदि सात महानरक, (सात अधोलोक जो स्थूलभूतोंकी स्थूलता और तमसके तारतम्यसे क्रमानुसार पृथ्वीके तलेमें माने गये हैं) तथा महातल आदि सात पाताल (सात जगह के बड़े भाग, जो पृथ्वीके तलेमें सात महानरकोंमेंसे प्रत्येक स्थूल भागके साथ माने गये हैं); यह भुवन पदका अर्थ है। इनका विन्यास (ऊर्ध्व-अधोरूपसे फैलाव) इस प्रकार है कि अवीचि (पृथ्वीसे नीचे सबसे पहला नरक अर्थात् तामसी स्थूल भाग। अवीचिके पश्चात् क्रमानुसार स्थूलता और तामस आवरणकी न्यूनताको लेते हुए छः और स्थूल भाग हैं उन) से सुमेरु (हिमालय पर्वत) की पृष्ठपर्यन्त जो लोक है वह भूलोक है और सुमेरु पृष्ठसे ध्रुवतारे (पोलस्टार Polestar) पर्यन्त जो ग्रह, नक्षत्र, तारोंसे चित्रित लोक है, वह अन्तरिक्ष-लोक है—(यह अन्तरिक्ष-लोक ही भुवः-लोक कहलाता है)। इससे परे पाँच प्रकारके स्वर्गलोक हैं। उनमें भूलोक और अन्तरिक्ष-लोकसे परे जो तीसरा स्वर्गलोक है, वह महेन्द्रलोक (स्वःलोक) कहलाता है। चौथा जो महःलोक है, वह प्राजापत्य-स्वर्ग कहलाता है। इससे आगे जो जनःलोक, तपःलोक और सत्यलोक नामके तीन स्वर्ग हैं, वे तीनों ब्रह्मलोक कहे जाते हैं। (इन पाँचों—स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यलोकको ही द्यौःलोक कहते हैं।) इन सब लोकों[illegible]

नामका महेन्द्रलोक है। उनसे नीचे अन्तरिक्षमें भुवः नामक तारालोक है और उनसे नीचे प्रजा—मनुष्योंका लोक—भूलोक है।

जिस प्रकार पृथ्वीके ऊपर छः और लोक हैं, उसी प्रकार पृथ्वीसे नीचे चौदह और लोक हैं। उनमें सबसे नीचा अवीचिनरक है। उसके ऊपर महाकालनरक है जो मिट्टी, कंकड़, पाषाणादिसे युक्त है। उसके ऊपर अम्बरीषनरक है, जो जलपूरित है। उसके ऊपर रौरवनरक है, जो अग्निसे भरा हुआ है। उसके ऊपर महारौरवनरक है, जो वायुसे भरा हुआ है। उसके ऊपर महासूत्रनरक है, जो अंदरसे खाली है। उसके ऊपर अन्धतामिस्रनरक है, जो अन्धकारसे व्याप्त है। इन नरकोंमें वे ही पुरुष दुःख देनेवाली दीर्घ आयुको प्राप्त होते हैं, जिनको अपने किये हुए पाप-कर्मोंका दुःख भोगना होता है। इन नरकोंके साथ महातल, रसातल, अतल, सुतल, वितल, तलातल, पाताल—ये सात पाताल हैं। आठवीं इनके ऊपर वह भूमि है, जिसको वसुमती कहते हैं, जो सात द्वीपोंसे युक्त है, जिसके मध्य भागमें सुवर्णमय पर्वतराज सुमेरु विराजमान है। उस सुमेरु पर्वतराजके चारों दिशाओंमें चार शृङ्ग (पहाड़की चोटियाँ) हैं। उनमें जो पूर्व दिशामें शृङ्ग है, वह रजतमय है (सम्भवतः यह शान स्टेटका पर्वतशृङ्ग हो, बर्माकी शान स्टेटके नमूर पर्वतमें आजकल रजत निकलती भी है); दक्षिण दिशामें जो शृङ्ग है, वह वैदूर्य-मणिमय (नीलमणिके सदृश) है। जो पश्चिम दिशामें शृङ्ग है, वह स्फटिक-मणिमय है (जो कि प्रतिबिम्ब ग्रहण कर सकती है) और जो उत्तर दिशामें शृङ्ग है, वह सुवर्णमय (या सुवर्णके रंगवाले पुष्पविशेषके वर्णवाला) है। वहाँ वैदूर्य-मणिकी प्रभाके सम्बन्धसे सुमेरुके दक्षिण भागमें स्थित आकाशका वर्ण नीलकमलके पत्रके सदृश श्याम (दिखलायी देता) है। पूर्व भागमें स्थित आकाश श्वेतवर्ण (दिखलायी देता) है। पश्चिम भागमें स्थित आकाश स्वच्छ वर्ण (दिखलायी देता) है और उत्तर भागमें स्थित आकाश पीतवर्ण (दिखलायी देता) है; अर्थात् जैसे वर्णवाला जिस दिशाका शृङ्ग है, वैसे ही वर्णवाला उस दिशामें स्थित आकाशका भाग (दिखलायी देता) है। इस सुमेरु पर्वतके ऊपर उसके दक्षिण भागमें जम्बू-वृक्ष है, जिसके नामसे इस द्वीपका नाम जम्बू-द्वीप पड़ा है। (प्रायः विशेष देशोंमें विशेष वृक्ष हुआ करते हैं। सम्भव है यह प्रदेश किसी कालमें जम्बू-वृक्ष-प्रधान देश रहा हो। वर्तमान समयमें जम्मू रियासत सम्भवतः जम्बू-द्वीपका अवशेष है)।

इस सुमेरुके चारों ओर सूर्य भ्रमण करते हैं, जिससे यह सर्वदा दिन और रातसे संयुक्त रहता है। (जब कोई बड़े मोटे बेलनके साथ पतला छोटा बेलन घूमता है, तब वह भी अपना पूरा चक्र करता है। इस दृष्टिसे उस पतले बेलनके चारों ओर बड़े बेलनका चक्र हो जाता है। इसी प्रकार जब पृथ्वी सूर्यके चारों ओर घूमती है तो चौबीस घंटेमें सूर्यका भी पृथ्वीके चारों ओर घूमना हो जाता है। इस भाँति सुमेरु पर्वतके एक ओर उजाला और एक ओर अँधेरा है। उजाला दिन है और अँधेरा रात्रि है। इसी प्रकार दिन और रात सुमेरु पर्वतसे मिले-जैसे मालूम होते हैं)। सुमेरुकी उत्तर दिशामें नील, श्वेत और शृङ्गवान् नामवाले तीन पर्वत विद्यमान हैं, जिनका विस्तार दो-दो हजार वर्ष-योजन है। इन पर्वतोंके बीचमें जो अवकाश (बीचके भाग घाटी Valley) हैं, उसमें रमणक, हिरण्मय तथा (शृङ्गवान्‌के उत्तरमें समुद्रपर्यन्त उत्तरकुरु है। [टालेमीने लिखा है कि चीनके एक प्रदेशका नाम 'उत्तरकोर्ह' Ottarakorrha है, जो कि उत्तरकुरु शब्दका अपभ्रंश प्रतीत होता है। इससे आस-पासका समुद्रपर्यन्त प्रदेश उत्तरकुरु प्रतीत होता है।] पश्चिम ये तीन वर्ष

जो लोकालोक पर्वतसे परिवृत विश्वम्भरा (पृथिवी)-मण्डल है, यह सब ब्रह्माण्डके अन्तर्गत संक्षिप्तरूपसे वर्तमान है और यह ब्रह्माण्डप्रधानका एक सूक्ष्म अवयव है; क्योंकि जैसे आकाशके एक अति अल्प देशमें खद्योत विराजमान होता है, वैसे ही प्रधानके अति अल्प देशमें यह सारा ब्रह्माण्ड विराजमान है ।

इन सब पाताल, समुद्र और पर्वतोंमें असुर, गन्धर्व, किन्नर, किंपुरुष, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, अपस्मारक, अप्सराएँ, ब्रह्मराक्षस, कूष्माण्ड, विनायक नामवाले देवयोनि-विशेष (मनुष्योंकी अपेक्षा निकृष्ट अर्थात् राजसी-तामसी प्रकृतिवाले प्राणधारी) निवास करते हैं । और सब द्वीपोंमें पुण्यात्मा देव-मनुष्य निवास करते हैं । सुमेरु पर्वत देवताओंकी उद्यान-भूमि है । वहाँपर मिश्र-वन, नन्दन-वन, चैत्ररथ-वन, सुमानस-वन—ये चार वन हैं । सुमेरुके ऊपर सुधर्मा नामक देव-सभा है । सुदर्शन नामक पुर है और वैजयन्त नामक प्रासाद (देवमहल) है । यह सब पूर्वोक्त भूलोक कहा जाता है । इसके ऊपर अन्तरिक्षलोक है, जिसमें ग्रह (बुध, शुक्र आदि जो कि सूर्यके चारों ओर घूमते हैं), नक्षत्र (अश्विनी आदि जिसमें कि चन्द्रमा गति करते हैं), तारक (ग्रहों और नक्षत्रोंसे भिन्न अन्य तारे तथा तारा-मण्डल) भ्रमण करते हैं ।

यह सब ग्रह, नक्षत्र आदि, ध्रुव नामक ज्योति (Pole Star पोल स्टार) के साथ, वायुरूप रज्जुसे बँधे हुए (वायु-मण्डलमें स्थित) वायुके नियत संचारसे लब्ध संचारवाले होकर, ध्रुवके चारों ओर भ्रमण करते हैं।

ध्रुवसंज्ञक-ज्योति-मेढिकाष्ठ (एक काठका स्तम्भ जो कि खलिहानके मध्यमें खड़ा होता है, जिसके चारों ओर बैल घूमते हैं) के सदृश निश्चल है । इसके ऊपर स्वर्गलोक है, जिसको माहेन्द्रलोक कहते हैं । माहेन्द्र-लोकमें त्रिदश, अग्निष्वात्त, याम्य, तुषित, अपरिनिर्मित-वशवर्ती, परिनिर्मित-वशवर्ती—ये छः देवयोनि-विशेष निवास करते हैं । ये सब देवता संकल्पसिद्ध, अणिमादि ऐश्वर्य-सम्पन्न और कल्पायुवाले तथा वृन्दारक (पूजनेयोग्य), कामभोगी और औपपादिक देहवाले (बिना माता-पिताके दिव्य शरीरवाले) हैं और उत्तम अनुकूल अप्सराएँ इनकी स्त्रियाँ हैं ।

इस स्वर्गलोकसे आगे महान् नामक स्वर्ग-विशेष है, जिसको महर्लोक तथा प्राजापत्यलोक कहते हैं । इसमें कुमुद, ऋभु, प्रतर्दन, अञ्जनाभ, प्रचिताभ—ये पाँच प्रकारके देवयोनि-विशेष वास करते हैं । ये सब देवविशेष महाभूतवशी (जिनकी इच्छामात्रसे महाभूत कार्यरूपमें परिणत होते हैं) और ध्यानाहार (बिना अन्नादिके सेवन किये ध्यानमात्रसे तृप्त और पुष्ट होनेवाले) तथा सहस्र कल्प आयुवाले हैं । महर्लोकसे आगे जनःलोक है, जिसको प्रथम ब्रह्मलोक कहते हैं । जनःलोकमें ब्रह्मपुरोहित, ब्रह्मकायिक, ब्रह्ममहाकायिक और अमर—ये चार प्रकारके देवयोनि-विशेष निवास करते हैं । ये भूत तथा इन्द्रियोंको स्वाधीनकरणशील हैं । जनःलोकसे आगे तपोलोक है, जिसको द्वितीय ब्रह्मलोक कहते हैं । तपोलोकमें अभास्वर, महाभास्वर, सत्यमहाभास्वर—ये तीन प्रकारके देवयोनि-विशेष निवास करते हैं, जो भूत, इन्द्रिय, प्रकृति (अन्तःकरण)—इन तीनोंको स्वाधीनकरणशील हैं और पूर्वसे उत्तर-उत्तर दुगुनी-दुगुनी आयुवाले हैं । ये सभी ध्यानाहार ऊर्ध्वरेतस (जिनका वीर्यपात नहीं होता) हैं । ये ऊर्ध्व—सत्यादि लोकमें [illegible] ज्ञानवाले और अधर, अवीचि आदि लोकमें अनावृत [illegible]वाले अर्थात् सब लोकोंको यथार्थरूपसे जाननेवाले हैं । तपोलोकसे आगे सत्यलोक है, जिसको तृतीय [illegible] कहते हैं । इस मुख्य ब्रह्मलोकमें अच्युत, शुद्ध निवास, सत्याभ, संज्ञासंज्ञी—ये चार प्रकारके देवता-विशेष निवास

जो लोकालोक पर्वतसे परिवृत विश्वम्भरा (पृथिवी)-मण्डल है, वह सब ब्रह्माण्डके अन्तर्गत संक्षिप्तरूपसे वर्तमान है और यह ब्रह्माण्डप्रधानका एक सूक्ष्म अवयव है; क्योंकि जैसे आकाशके एक अति अल्प देशमें खद्योत विराजमान होता है, वैसे ही प्रधानके अति अल्प देशमें यह सारा ब्रह्माण्ड विराजमान है ।

इन सब पाताल, समुद्र और पर्वतोंमें असुर, गन्धर्व, किन्नर, किंपुरुष, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, अपस्मारक, अप्सराएँ, ब्रह्मराक्षस, कूष्माण्ड, विनायक नामवाले देवयोनि-विशेष (मनुष्योंकी अपेक्षा निकृष्ट अर्थात् राजसी-तामसी प्रकृतिवाले प्राणधारी) निवास करते हैं । और सब द्वीपोंमें पुण्यात्मा देव-मनुष्य निवास करते हैं । सुमेरु पर्वत देवताओंकी उद्यान-भूमि है । वहाँपर मिश्र-वन, नन्दन-वन, चैत्ररथ-वन, सुमानस-वन—ये चार वन हैं । सुमेरुके ऊपर सुधर्मा नामक देव-सभा है । सुदर्शन नामक पुर है और वैजयन्त नामक प्रासाद (देवमहल) है । यह सब पूर्वोक्त भूलोक कहा जाता है । इसके ऊपर अन्तरिक्षलोक है, जिसमें ग्रह (बुध, शुक्र आदि जो कि सूर्यके चारों ओर घूमते हैं), नक्षत्र (अश्विनी आदि जिसमें कि चन्द्रमा गति करते हैं), तारक (ग्रहों और नक्षत्रोंसे भिन्न अन्य तारे तथा तारा-मण्डल) भ्रमण करते हैं ।

यह सब ग्रह, नक्षत्र आदि, ध्रुव नामक ज्योति (Pole Star पोल स्टार) के साथ, वायुरूप रज्जुसे बँधे हुए (वायु-मण्डलमें स्थित) वायुके नियत सचारसे लब्ध संचारवाले होकर, ध्रुवके चारों ओर भ्रमण करते हैं।

ध्रुवसञ्ज्ञक-ज्योति-मेढिकाष्ठ (एक काठका स्तम्भ जो कि खलिहानके मध्यमें खड़ा होता है, जिसके चारों ओर बैल घूमते हैं) के सदृश निश्चल है । इसके ऊपर स्वर्गलोक है, जिसको माहेन्द्रलोक कहते हैं । माहेन्द्र-लोकमें त्रिदश, अग्निष्वात्त, याम्य, तुषित, अपरिनिर्मित-वशवर्ती, परिनिर्मित-वशवर्ती—ये छः देवयोनि-विशेष निवास करते हैं । ये सब देवता संकल्पसिद्ध, अणिमादि ऐश्वर्य-सम्पन्न और कल्पायुवाले तथा वृन्दारक (पूजनेयोग्य), कामभोगी और औपपादिक देहवाले (बिना माता-पिताके दिव्य शरीरवाले) हैं और उत्तम अनुकूल अप्सराएँ इनकी स्त्रियाँ हैं ।

इस स्वर्गलोकसे आगे महान् नामक स्वर्ग-विशेष है, जिसको महालोक तथा प्राजापत्यलोक कहते हैं । इसमें कुमुद, ऋभु, प्रतर्दन, अञ्जनाभ, प्रचिताभ—ये पाँच प्रकारके देवयोनि-विशेष काम करते हैं । ये सब देवविशेष महाभूतवशी (जिनकी इच्छामात्रसे महाभूत कार्यरूपमें परिणत होते हैं) और ध्यानाहार (बिना अन्नादिके सेवन किये ध्यानमात्रसे तृप्त और पुष्ट होनेवाले) तथा सहस्र कल्प आयुवाले हैं । महर्लोकसे आगे जनःलोक है, जिसको प्रथम ब्रह्मलोक कहते हैं । जनःलोकमें ब्रह्मपुरोहित, ब्रह्मकायिक, ब्रह्ममहाकायिक और अमर—ये चार प्रकारके देवयोनि-विशेष निवास करते हैं । ये भूत तथा इन्द्रियोंको स्वाधीनकरणशील हैं । जनःलोकसे आगे तपोलोक है, जिसको द्वितीय ब्रह्मलोक कहते हैं । तपोलोकमें अभास्वर, महाभास्वर, सत्यमहाभास्वर—ये तीन प्रकारके देवयोनि-विशेष निवास करते हैं, जो भूत, इन्द्रिय, प्रकृति (अन्तःकरण)—इन तीनोंको स्वाधीनकरणशील हैं और पूर्वसे उत्तर-उत्तर दुगुनी-दुगुनी आयुवाले हैं । ये सभी ध्यानाहार ऊर्ध्वरेतस (जिनका वीर्यपात नहीं होता) हैं । ये ऊर्ध्व—सत्यादि लोकमें ज्ञानवाले और अधर, अवीचि आदि लोकमें अनावृत वाले अर्थात् सब लोकोंको यथार्थरूपसे जाननेवाले तपोलोकसे आगे सत्यलोक है, जिसको तृतीय ... कहते हैं । इस मुख्य ब्रह्मलोकमें अच्युत, शुद्ध निवास, सत्याभ, संज्ञासंज्ञी—ये चार प्रकारके देवता-विशेष निवास

करते हैं। ये अहत-भवनन्यास (किसी एक नियत भवनके अभाव होनेसे अपने शरीररूप भवमें ही स्थित) होनेसे अप्रतिष्ठित हैं और यथाक्रमसे ऊँची-ऊँची स्थितिवाले हैं। ये प्रधान (अन्तःकरण) को स्वाधीन करणशील और पूरी सर्ग आयुवाले हैं। अच्युत नामक देव-विशेष सवितर्क-ध्यानजन्य सुख भोगनेवाले हैं, शुद्ध निवास सविचार ध्यानसे तृप्त हैं। इस प्रकार ये सभी सम्प्रज्ञात निष्ठ हैं। (समाधिपाद सूत्र १७) ये सब मुक्त नहीं हैं, किंतु त्रिलोकीके मध्यमें ही प्रतिष्ठित हैं। इन पूर्वोक्त सातों लोकोंको ही परमार्थसे ब्रह्मलोक जानना चाहिये। (क्योंकि हिरण्यगर्भके लिङ्गदेहसे ये सब लोक व्याप्त हैं।)

विदेह और प्रकृतिलय नामक योगी (समाधिपाद सूत्र १९) मोक्षपद (कैवल्यपद) के तुल्य स्थितिमें हैं, इसलिये वे किसी लोकमें निवास करनेवालोंके साथ नहीं उपन्यस्त किये गये।

सूर्यद्वार (सुषुम्णा नाड़ी) में संयम करके योगी इस भुवन-विन्यासके ज्ञानको सम्पादन करे। किंतु यह नियम नहीं है कि सूर्यद्वारमें संयम करनेसे ही भुवन-ज्ञान होता हो, अन्य स्थानमें संयम करनेसे भी भुवन-ज्ञान हो सकता है; परंतु जबतक भुवनका साक्षात्कार न हो जाय, तबतक दृढचित्तसे संयमका अभ्यास करता रहे और बीच-बीचमें उद्वेगसे उपराम न हो जाय।

[उपर्युक्त व्यासभाष्यमें बहुत-सी बातोंका हमने स्पष्टीकरण कर दिया है। कुछ एक बातें जो पौराणिक विचारोंसे सम्बन्ध रखती हैं, उनको हमने वैसा ही छोड़ दिया है।]

भूलोक अर्थात् पृथिवीलोकका विशेषरूपसे वर्णन किया गया है। उसके ऊपरी भागको जो सात द्वीपों और सात महासागरोंमें विभक्त किया गया है, उनका इस समय ठीक-ठीक पता चलना कठिन है; क्योंकि उस प्राचीन समयसे अबतक भूलोकसम्बन्धी बहुत कुछ परिवर्तन हो गया होगा। योजन पर कोस है। यहाँ कोसका क्या पैमाना है। यह भी नहीं बतलाया है। यह यहाँ हो सकता है अनुसार भाष्यकारके परिमाण पूरा हो सके। समयके अनुसार सात द्वीप और सात सागर निम्न हो सकते हैं। सात द्वीप—१—एशियाका भाग अर्थात् हिमालय-पर्वतके दक्षिणमें जो अफगानि भारतवर्ष, बर्मा और स्याम आदि देश हैं। २—एशि उत्तरी भाग अर्थात् हिमालय-पर्वतके उत्तरमें चीन तथा तुर्किस्तान इत्यादि। ३—यूरोप, ४—अ ५—उत्तरी अमेरिका, ६—दक्षिणी अमेरिका, ७— पर्वतके दक्षिण-पूर्वमें जो जावा, सुमात्रा और आदिका द्वीपसमूह है।

सात महासागर

१—हिंद महासागर, २—प्रशान्त महासागर, ३— महासागर, ४—उत्तर हिममहासागर, ५—दक्षिण हिम सागर, ६—अरबसागर और ७—भूमध्यसागर।

सुमेरु अर्थात् हिमालय-पर्वत उस समय भी ऊँ कोटिके योगियोंके तपका स्थान था। स्थूल भूतों स्थूलता और तमस्के तारतम्यके क्रमानुसार पृथि नीचेके भागको सात अधोलोकोंमें नरक-लोकोंके नाम विभक्त किया गया है। इनके साथ जो जलके भाग हैं उनको सात पातालोंके नामसे दर्शाया गया है तथा इन तामसी स्थानोंमें रहनेवाले मनुष्यसे नीची राजसी और तामसी योनियोंका असुर-राक्षस आदि नामोंसे वर्णन किया गया है।

भुवःलोक अन्तरिक्ष-लोक है, जिसके अन्तर्गत पृथिवीके अतिरिक्त इस सूर्य-मण्डलके भुवपर्यन्त सारे ग्रह नक्षत्र और तारका आदि तारागण हैं। यह सब भूलोक अर्थात् हमारी पृथिवीके सदृश स्थूल भूतोंवाले हैं। इनमें किसीमें पृथिवी, किसीमें जल, किसीमें अग्नि और किसीमें वायु-तत्त्वकी प्रधानता है।

सूर्यके भौतिक स्वरूपमें संयमद्वारा योगीको भूलोक अर्थात् पृथिवी-लोक और भुवःलोक अर्थात् अन्तरिक्षलोकके अन्तर्गत सारे स्थूल लोकोंका सामान्य ज्ञान प्राप्त होता है और इसी संयममें पृथिवीका आलम्बन करके अथवा केवल पृथिवीके आलम्बनसहित संयमद्वारा पृथिवीके ऊपरके द्वीपों, सागरों, पर्वतों आदि तथा उसके अधोलोकोंका विशेष ज्ञान प्राप्त होता है।

ध्यानकी अधिक सूक्ष्म अवस्थामें इसी उपर्युक्त संयमके सूक्ष्म हो जानेपर अथवा सूर्यके अध्यात्म सूक्ष्म स्वरूपमें संयमद्वारा सूक्ष्म लोकों अर्थात् स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यलोकका ज्ञान प्राप्त होता है।

वाचस्पति मिश्रने सूर्यद्वारको सुषुम्णा नाड़ी मानकर सुषुम्णा नाड़ीमें संयम करके भुवन-विन्यासके ज्ञानको सम्पादन करना बतलाया है। वास्तवमें कुण्डलिनी जाग्रत् होनेपर सुषुम्णा नाड़ीमें जब सारे स्थूल प्राणादि प्रवेश कर जाते हैं, तभी इस प्रकारके अनुभव होते हैं।

उस समय संयमकी भी आवश्यकता नहीं रहती, किंतु जिधर वृत्ति जाती है अथवा जिसका पहलेसे ही संकल्प कर लिया है, उसीका साक्षात्कार होने लगता है।

सूर्य संयमन यौगिक सिद्धि है, अतः इसकी प्रक्रिया योगि-सद्गुरुसे ही समझनी चाहिये।

अन्य पाँच सूक्ष्म और दिव्य लोक हैं, जिनकी सम्मिलित संज्ञा द्यौलोक है। यह सारे भूः-भुवः अर्थात् पृथिवी और अन्तरिक्षलोकके अंदर हैं। इनकी सूक्ष्मता और सात्त्विकताका क्रमानुसार तारतम्य चला गया है अर्थात् भूः और भुवःके अंदर स्वः, स्वःके अंदर महः, महःके अंदर जनः, जनःके अंदर तपः और तपःके अंदर सत्यलोक है।

इनके सूक्ष्मता और सात्त्विकताके तारतम्यसे और बहुत-से अवान्तर भेद भी हो सकते हैं। इनमेंसे स्वः, महः स्वर्गलोक और जनः, तपः और सत्यलोक ब्रह्मलोक कहलाते हैं। इनमें वे योगी स्थूल शरीरको छोड़नेके पश्चात् निवास करते हैं, जो वितर्कानुगत भूमिकी परिपक्व अवस्था, विचारानुगत भूमि तथा आनन्दानुगत और अस्मितानुगत भूमिकी आरम्भिक अवस्थामें संतुष्ट हो गये हैं और जिन्होंने विवेक-ख्यातिद्वारा सारे क्लेशोंको दग्धबीज करके असम्प्रज्ञातसमाधिद्वारा स्वरूपावस्थितिके लिये यत्न नहीं किया है। आनन्दानुगत और अस्मितानुगत भूमिकी परिपक्व अवस्थावाले उच्चतर और उच्चतम कोटिके विदेह और प्रकृतिलय योगी सूक्ष्म शरीरों, सूक्ष्म इन्द्रियों और सूक्ष्म विषयोंको अतिक्रमण कर गये हैं। इसलिये वे इन सब सूक्ष्म लोकोंसे परे कैवल्यपद-जैसी स्थितिको प्राप्त किये हुए हैं।

'दिशि दिशतु शिवम्'

अस्तव्यस्तत्वशून्यो निजरुचिरनिशानश्वरः कर्तुमीशो
विश्वं वेश्मेव दीपः प्रतिहततिमिरं यः प्रदेशस्थितोऽपि।
दिक्कालापेक्षयासौ त्रिभुवनमटतस्तिग्मभानोर्नवाख्यां
यातः शातक्रतव्यां दिशि दिशतु शिवं सोऽर्चिषामुद्गमो नः॥

(सूर्यशतकम् १८)

जिस प्रकार एकदेशमें स्थित दीपक गृहको अन्धकार-शून्य करता हुआ उसे प्रकाशमय कर देता है, उसी प्रकार एकदेशमें स्थित होते हुए भी विश्वको अन्धकाररहित एवं आलोकमय करनेमें समर्थ विनाश-व्यसनरहित तथा अपने तेजसे निशाको नष्ट करनेवाली और दिक् तथा कालकी व्यवस्था करनेकी अपेक्षासे इन्द्र-दिशा (पूर्व) में (प्रतिदिन) उदित होनेके कारण नवीन कही जानेवाली, तीन लोकोंमें पर्यटन करनेवाले सूर्यकी किरणें हम सब लोगोंका कल्याण करें। [सूर्यमें संयम करनेवाले योगियोंको भुवनोंका ज्ञान इन्हीं कल्याणकारिणी किरणोंके माध्यमसे होता है।]

नाडीचक्र और सूर्य

(लेखक—श्रीरामनारायणजी त्रिपाठी)

'नाडीचक्र और सूर्य' इस निबन्धमें सर्वप्रथम नाडीचक्र और सूर्यका परिचय देना अत्यन्त अपेक्षित है। तदनन्तर इनके पारस्परिक सम्बन्ध, प्रभाव तथा फल विचारणीय हैं।

मानव-शरीरमें पत्तोंकी अति सूक्ष्म शिराओंकी भाँति नाडियोंकी संख्या बहत्तर हजार बतायी गयी है।[1] ये नाडियाँ लिङ्गके ऊपर और नाभिके नीचे स्थित कन्दसे—जिसे मूलाधार कहते हैं—निकलकर सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हैं। इनमें बहत्तर नाडियाँ मुख्य हैं।[2] मूलाधारमें स्थित कुण्डलिनीचक्रके ऊपर तथा नीचे दस-दस नाडियाँ और तिरछी दो-दो नाडियाँ हैं। ये सभी नाडियाँ चक्रके समान शरीरमें स्थित होकर शरीर तथा वायुके आधार हैं। इनमें दस नाडियाँ प्रधान हैं तथा अन्य दस नाडियाँ वायु-वहन करनेवाली हैं।[3] प्रधान दस नाडियोंके नाम—इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू और शङ्खिनी हैं। इनमें प्रथम तीन—इडा, पिङ्गला और सुषुम्णा सर्वोत्तम नाडियाँ हैं जो प्राणमार्गमें स्थित हैं। मेरुदण्ड या शरीरके वाम भागमें अथवा वाम नासारन्ध्रमें इडा और दाहिनी ओर पिङ्गला और बीचमें सुषुम्णा रहती है। इसके अतिरिक्त बायें आँखमें गान्धारी, दाहिनीमें हस्तिजिह्वा, दक्षिण कानमें पूषा, बायें कानमें यशस्विनी, मुखमें अलम्बुषा, लिङ्गमें कुहू, गुदामें शङ्खिनी स्थित है। शरीरके दस द्वारोंमें ये दस नाडियाँ हैं।[4]

इन नाडियोंमें इडा नाडीमें चन्द्र, पिङ्गलामें सूर्य और सुषुम्णामें शम्भु या अग्नि स्थित हैं[5] अथवा क्रमसे इन तीनों नाडियोंके चन्द्र, सूर्य और अग्नि या शम्भु देवता हैं।[6] बायीं (इडा) नाडीका परिचायक चन्द्र शक्तिरूपसे तथा दाहिनी पिङ्गला नाडीका प्रचालक सूर्य शङ्कररूपसे रहते हैं। जो लोग चन्द्र-सूर्य नाडीका सर्वदा अभ्यास करते हैं, उन्हें त्रैकालिक ज्ञान स्वाभाविक होता है। इन नाडियोंके स्वरसे शुभाशुभ, सिद्धि-असिद्धिका ज्ञान किया जाता है। जैसे यात्रामें इडा तथा प्रवेशमें पिङ्गला शुभ है। चन्द्रनाडी श्वेत, सम, शीत, स्त्री तथा सूर्यनाडी असित, विषम, उष्ण पुरुष है। शुभ कर्ममें चन्द्रनाडी तथा रौद्रकर्ममें सूर्यनाडी प्रशस्त है। इनकी गति-क्रम यों है—

---

१. द्वासप्ततिसहस्राणि नाडीद्वाराणि पञ्जरे। (हठ० ५। १८)

२. ऊर्ध्वं मेढ्रादधो नाभेः कन्दोऽस्ति खगाण्डवत्। तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणि द्विसप्ततिः॥
तेषु नाडीसहस्रेषु द्विसप्ततिरुदाहृता। (यो० चू० उ० १४।१५)
नाभिस्थानगस्कन्धोर्ध्वमङ्कुरादेव निर्गताः। द्विसप्ततिसहस्राणि देहमध्ये व्यवस्थिताः॥ (शि० स्व० ३२)

३. प्रधाना दशनाड्यस्तु दश वायुप्रवाहकाः। (शि० स्व० ३४)

४. द्रष्टव्य—यो० चू० उ० १६-२१ श्लोक।

५. इडायां स्थितश्चन्द्रः पिङ्गलायां च भास्करः। सुषुम्णा शम्भुरूपेण शम्भुर्हंसः स्वरूपतः॥ (शि० स्व० ५०)

६. इडापिङ्गलासुषुम्णाः प्राणमार्गे च संस्थिताः। सततं प्राणवाहिन्यः सोमसूर्याग्निदेवताः॥
(यो० चू० उ० २१)

प्राणिना दक्षिणा नाडी पिङ्गला नाम सूर्यदैवत्या पितृयोनिः। वामा इडाख्या [illegible] देवयोनिः।

शुक्लपक्षमें प्रथम तीन दिनतक चन्द्र नाडी चलती है, इसके अनन्तर तीन दिन सूर्य नाडी चलती है। इस क्रमसे शुक्लपक्षमें नाडी-संचालन होता है और कृष्ण-पक्षमें पहले तीन दिन सूर्य-स्वर अर्थात् दाहिनी नाडीका उदय होता है, अनन्तर चन्द्र नाडीका। इस प्रकार प्रत्येक दिनमें भी इन दोनों नाडियोंका प्रवाह होता रहता है।

वास्तवमें नाडी-चक्र तबतक नहीं समझा जा सकता है, जबतक उसको संचालित करनेवाली चित्-शक्तिका स्वरूप न समझ लिया जाय। वह चित्-शक्ति कुण्डलिनी है, जिसे आधारशक्ति कहते हैं। उसके बोधके बिना योगके सब उपाय व्यर्थ हो जाते हैं। कहा गया है कि सोयी हुई कुण्डलिनी जब गुरु-कृपासे जग जाती है, तब सारे चक्र खिल जाते हैं और ब्रह्म-ग्रन्थि, विष्णु-ग्रन्थि तथा रुद्र-ग्रन्थि—ये तीनों ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं—

सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि च॥
(ह० यो० प्र० ३।२)

जब गुरु-कृपासे जागृत कुण्डलिनी ऊपरकी ओर उठती है तो वह शून्य पदवी अर्थात् सुषुम्ना नाडी प्राण-वायुके लिये राजपथ बन जाती है। जैसे राजा राजमार्गसे सुखसे निकलता है, वैसे प्राण-वायु सुषुम्ना नाडीमें सुखसे चली जाती है। उस समय चित्त निरालम्ब हो जाता है और योगीको मृत्युभय नहीं होता है। सुषुम्ना नाडीकी तन्त्रशास्त्रमें बहुत ही महिमा गायी गयी है। शून्य पदवी, ब्रह्मरन्ध्र, महापथ, श्मशान, शाम्भवी, मध्यमार्ग—ये सब सुषुम्नाके पर्याय-वाची शब्द हैं।

हठयोग-प्रदीपिकामें कहा गया है कि दण्डसे ताडन करनेपर जैसे सर्प अपनी कुटिलता छोड़ देता है, वैसे 'जालन्धर-बन्ध' लगाकर वायुको सुषुम्ना नाडीमें धारण करनेपर कुण्डलिनी भी सीधी हो जाती है। उसी समय इडा और पिङ्गलाका आश्रय करनेवाली मरण-अवस्था प्राप्त हो जाती है अर्थात् कुण्डलिनीके बोध हो जानेपर सुषुम्ना नाडीमें प्राणोंका प्रवेश हो जाता है और इडा एवं पिङ्गला नाडीसे प्राणोंका वियोग हो जाता है। इसीको योगी लोग मरण-अवस्था कहते हैं। कुण्डलिनीके सम्पीडनके लिये महामुद्राका विधान है। इस महामुद्राको आदिनाथ आदि महासिद्धोंने प्रकट किया है। इससे पाँच महाक्लेश—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश आदि शोक-मोह नष्ट हो जाते हैं।

इस महामुद्रामें इडा और पिङ्गला अर्थात् सूर्य और चन्द्र नाडीकी प्रमुख भूमिका होती है। शरीरके दक्षिण भागमें पिङ्गला और वामभागमें इडा रहती है। पिङ्गला दाहिनी फेरेसे और इडा बायें फेरेसे रहती है।

इडा वामे च विज्ञेया पिङ्गला दक्षिणे स्मृता।
(शि० स्व० ४९)

शरीरमें बायीं ओर रहनेवाली इडा नाडी अमृतरूप होनेके कारण संसारको पुष्ट करनेवाली होती है और पिङ्गला अर्थात् सूर्य नाडी जो दक्षिण भागमें रहती है, सदा संसारको उत्पन्न करती है—विशेषरूपसे उत्पत्तिका कार्य सूर्य नाडीका है।

हठयोग-प्रदीपिकामें सुषुम्ना नाडीकी तुलना मेरुसे की गयी है। उसमें सोमकलारस प्रवाहित होता है। मेरुके तुल्य सुषुम्ना नाडीके मध्यमें स्थित सोमकलाके रसको तालु-विवरमें रखकर रजोगुण, तमोगुणसे अनभिभूत सत्त्वगुणमें बुद्धिको रखनेवाला जो विद्वान् पुरुष आत्मतत्त्वको कहता है, वह नदियोंका अर्थात् इडा, पिङ्गला, सुषुम्ना तीनों नाडीस्वरूप गङ्गा, यमुना, सरस्वतीका मुख है। उसमें चन्द्रसे शरीरका सार झड़ता है। गोरक्षनाथजीने कहा है कि 'नाभिदेशमें अग्निरूप सूर्य स्थित है और तालुके मूलमें अमृतरूप चन्द्रमा

स्थित है। जब चन्द्रमा नीचेकी ओर मुख करके अमृत बरसाता है, तब सूर्य उसको ग्रस लेता है।' इसलिये हठयोग-प्रदीपिकामें कहा गया है कि योगीको ऐसी मुद्रा करनी चाहिये, जिससे अमृत व्यर्थ न जाय। 'विपरीत-करणी' मुद्रामें ऊपर नाभिवाले तथा नीचे तालुवाले योगीके ऊपर सूर्य और नीचे चन्द्रमा रहते हैं—

ऊर्ध्वनाभेरधस्तालोरूर्ध्वं भानुरधः शशी।'
(ह० यो० ३। ७९)

लिङ्ग-शरीरस्थ मेरुदण्डके भीतर ब्रह्मनाडीमें अनेक चक्रोंकी कल्पना की जाती है। कोई ३२ चक्रोंको तथा दूसरे ९ चक्रों 'नवचक्रमयो देहः' (भा० उ०) को अन्य छः चक्रोंको मानते हैं। इन छः चक्रोंका नाम मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा है तथा स्थान योनि, लिङ्ग, नाभि, हृदय, कण्ठ और भ्रूमध्य है। इन्हें षट्कमल भी कहते हैं, जिनमें क्रमशः ४, ६, १०, १२, १६ और २ दल होते हैं। ये दल विविध वर्णोंके होते हैं तथा प्रत्येक दलपर मातृकाके एक-एक वर्ण विद्यमान हैं। प्रत्येक चक्रपर चतुष्कोण, अर्धचन्द्राकार, त्रिकोण, षट्कोण, पूर्णचन्द्राकार, लिङ्गाकार यन्त्र है, जो पाँच महातत्त्व पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और महत्तत्त्वके द्योतक हैं। इन चक्रोंके विविध ग्रन्थोंके आधारसे भिन्न-भिन्न कई अधिष्ठान और देवाधिपति हैं। ये चक्र नाडी-पुञ्ज ही हैं, अन्य कोई वस्तु नहीं है—ऐसा विद्वानोंका मत है। इस दृष्टिसे वायुतत्त्वाधिपति होनेके कारण तथा नाडी-पुञ्जके कारण इन चक्रोंसे भी सूर्यका आन्तरिक और बाह्य सम्बन्ध सुनिश्चित है। ऐसी शास्त्रीय उक्तियाँ भी प्राप्त होती हैं—

पुरत्रयं च चक्रस्य सोमसूर्यानलात्मकम्।
त्रिखण्डंमातृकाचक्रं सोमसूर्यानलात्मकम्॥

शारदातिलकसंहितामें सूर्य-ज्योतिको ही [illegible] इच्छाशक्तिका प्रकाशक माना गया है। सूर्य-ज्योति ज्ञानात्मकतत्त्वकी प्रकाशिनी है।

इसके अतिरिक्त आठ प्रकारके कुम्भक [illegible] सर्वप्रथम सूर्यभेदन प्राणायाम है। सूर्यभेदन [illegible] सूर्यनाडीसे अर्थात् पिङ्गलासे बाहर वायुको [illegible] विधान है। इस प्रकारसे प्रतिदिन पाँच-पाँच [illegible] प्राणायामोंको बढ़ाते हुए अस्सी दिनतक कर[illegible] अन्य कुम्भकोंका अधिकारी होता है।

प्राणतोषिणीतन्त्र और योगशिखोपनिषद्के हठयोगको सूर्य और चन्द्रका अर्थात् प्राण और [illegible] ऐक्य कहा गया है। सूर्यनाडी प्राण तथा च[illegible] अपान बताया गया है। प्राण-अपानकी एक[illegible] प्राणायाम ही हठयोग है—

हकारेण तु सूर्यः स्यात् ठकारेणेन्दुरुच्य[illegible]
सूर्यचन्द्रमसोरैक्यं हठ इत्यभिधीय[illegible]

कुण्डलिनी जब उद्बुद्ध होती है तो [illegible] और प्रकाश होता है। प्रकाशका ही व्य[illegible] बिन्दु है। नादसे जायमान बिन्दु तीन प्रकारका है इच्छा, ज्ञान और क्रिया—जिसको योगी लोग [illegible] रूपमें सूर्य, चन्द्र और अग्नि कहते हैं तथा [illegible] ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी कहते हैं। कुछ [illegible] शरीरके आधे भागको सूर्य और आधे भागको च[illegible] कहते हैं। इन दोनोंको मिलाकर सुषुम्नामें [illegible] करना योगीका लक्ष्य मानते हैं।

उपर्युक्त बातोंसे सूर्य और नाडीचक्रका सम्[illegible] निश्चित हो गया। अब यह विचारणीय है कि श[illegible] नाडीचक्रसे आभ्यन्तर सोम-सूर्यका सम्बन्ध है या

१. विपरीतकरणीमुद्राका विधान हठयोग प्रदीपिकाके ३। ७९—८३ श्लोकोंमें [illegible]

तिष्ठति॥

सोम-सूर्यका। यह विचार इसलिये उपस्थित है कि योगशास्त्रोंमें कहा गया है—'यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे'—जो पिण्ड (शरीर) में है, वही ब्रह्माण्डमें है। यथार्थतः यह शरीर ही ब्रह्माण्ड है। दूसरे शब्दोंमें शरीरको ब्रह्माण्डकी प्रतिमूर्ति कह सकते हैं। ईश्वरने विश्वकी रचना करके मनुष्य-शरीरको ब्रह्माण्डकी प्रतिमूर्ति बनाकर उसमें अपने ज्ञानका समावेश किया, ताकि मनुष्य अपनेमें ही विश्वस्थित पदार्थके ज्ञानको सहजमें जान सके और भोग सके—उसको एतदर्थ अन्यत्र जाना न पड़े।

इस शरीरमें चतुर्दश भुवन, सप्तद्वीप, सप्तसागर, अष्ट-पर्वत, सर्वतीर्थ, सब देवता, सूर्यादि ग्रह और सब नदियाँ आदि पदार्थ भिन्न-भिन्न स्थानोंपर विद्यमान हैं। इसका विस्तृत विवरण शिवसंहिता द्वितीय पटल, शाक्तानन्द-तरङ्गिणी, निर्वाणतन्त्र, तत्त्वसार, प्राणतोषिणीतन्त्र आदि ग्रन्थोंमें दिया गया है। उद्धरणके रूपमें कुछ वाक्य नीचे लिखे जा रहे हैं—

देहेऽस्मिन् वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः।
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः॥
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठदेवताः॥
सृष्टिसंहारकर्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ।
नभो वायुश्च वह्निश्च जलं पृथिवी तथैव च॥
त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः।
(शि० सं० २ । १–८)

पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं शृणुविदानीं प्रयत्नतः।
पातालभूधरा लोकास्तथान्ये द्वीपसागराः॥
आदित्यादिग्रहाः सर्वे पिण्डमध्ये व्यवस्थिताः।
पिण्डमध्ये तु तान् ज्ञात्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्॥
(शाक्तानन्दतरङ्गिणी)

इसके अतिरिक्त शरीरान्तर्गत सुषुम्ना स्थित पञ्च-व्योमोंमें पाँचवाँ सूर्यव्योम भी है, जिसकी चर्चा मण्डलब्राह्मणोपनिषद् आदि ग्रन्थोंमें सकल और सविधि की गयी है। अतः यह सिद्ध है कि शरीरस्थ सूर्य है और उसका नाडी-चक्रोंसे निश्चित सम्बन्ध है।

बाह्य सूर्य प्रत्यक्ष एवं विदित हैं, उनका परिचय देना अनावश्यक है। वे अपने रश्मिरूपी करोंसे पूरे ब्रह्माण्डसे सम्बन्धित हैं। उनसे असम्बद्ध चराचर जगत्का कोई भी पदार्थ नहीं है। शरीर और शरीरस्थ नाडियोंसे उनका आधिदैविक सम्बन्ध है। जिस प्रकार सांसारिक सम्पूर्ण पदार्थोंके अधिष्ठान-देव भिन्न-भिन्न होते हैं, उसी प्रकार शरीरावयवों तथा शारीरिक सकल पदार्थोंके भी भिन्न-भिन्न अधिष्ठान-देव हैं। इस दृष्टिसे विचार करनेपर बाह्य सूर्यसे भी शरीरका सम्बन्ध निश्चित है तथा उसके अनुसार उपास्य-उपासक-भाव भी सिद्ध है। पार्थिव वनस्पतियों, औषधों, अन्नों और जीवोंके जीवनसे सूर्य और चन्द्रका विशेष सम्बन्ध है। इन्हींके द्वारा उनकी प्राणन, विकसन, वर्धन और विपरिणमन आदि क्रियाएँ होती हैं। वास्तवमें सूर्य स्थावर-जङ्गम सम्पूर्ण जगत्के आत्मा हैं।

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (ऋ० १ । ११५ । १)

सूर्यतापिनी-उपनिषद्में सूर्यको सर्वदेवमय कहा गया है—

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्करः।
त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो रविः॥
(११६)

अधिष्ठान-सम्बन्ध तथा उपास्य-उपासक-भावके द्वारा शरीरका सूर्यके साथ सर्वात्मना सम्बन्ध होनेपर भी नाडीचक्रसे उनका क्या सम्बन्ध है—इस परिप्रेक्ष्यमें विचारणीय यह है कि वैदिककालसे चली आ रही उपासना-पद्धतिमें विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य और गणेश—इन पञ्चदेवोंकी उपासना प्रधान है; क्योंकि ये पञ्च-देव पञ्चतत्त्वोंके अधिपति हैं। आकाशके विष्णु, तेजकी शक्ति, वायुके सूर्य, पृथ्वीके शम्भु और जलके गणेश अधिपति हैं।

है। अस्तु, किसी पवित्र एवं एकान्त स्थानमें अथवा अपने दैनिक साधना-कक्षमें पद्मासन या सिद्धासनसे बिल्कुल सीधे बैठकर १०-२० बार दीर्घ श्वासोच्छ्वास करें या नाड़ी-शोधन-प्राणायाम तीन मिनटतक करे, जिससे प्राणका सुषुम्णा नाड़ीमें संचार होने लगे। तत्पश्चात् मेरुदण्ड (रीढ़की हड्डी) को बिल्कुल सीधा रखते हुए प्रणव (ॐकार) अथवा 'सोऽहम्' मन्त्रका श्वासके साथ पाँच मिनटतक मौन जप करे। तत्पश्चात् अपने नाभि-केन्द्रके पृष्ठभागमें मेरुदण्डस्थित सूर्यचक्रमें पीले चमकीले रंगवाले कमलका मानसिक ध्यान करें। इसके साथ 'जागृत रहो, जागृत रहो, सदैव जागृत रहो' शब्दों-द्वारा अपने सूर्यचक्रको आटोसजेशन देते हुए अपनी चेतनाको सूर्यचक्रमें केन्द्रित करे। तत्पश्चात् निम्नलिखित भावनाको मनमें दुहराते हुए अपने श्वासको बहुत धीरे-धीरे हृदयमें तथा फेफड़ोंमें ले जाते हुए पेटमें भर दें—

'ॐ मैं आरोग्यता, सुख, शान्ति, प्राणशक्ति, स्फूर्ति, सफलता एवं सिद्धिके परमाणुओंको समष्टि प्रकृतिके भण्डारसे अपने भीतर आकर्षित कर रहा हूँ तथा सूर्य-चक्रमें उनका संचय एवं संग्रह हो रहा है।' दस-पाँच सेकंडके लिये श्वासको सूर्यचक्रमें ही ठहरा दे। तत्पश्चात् 'मेरा प्राण ऊर्ध्वगामी होकर शरीरके समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें (व्याप्त हो गया है और उसका) प्रकाश पहुँच रहा है।' इस ऑटोसजेशन (भावना) के साथ श्वासको बिल्कुल धीरे-धीरे बाहर छोड़ दे और सूर्य-चक्रसे प्राणका स्पन्दन मेरुदण्डमें ऊपरकी ओर गति करता हुआ अनुभव करें। एक-दो मिनटके विश्रामके पश्चात् इसी प्रकारकी क्रिया पुनः करें। इस क्रियाको पाँच बारसे दस बारतक करे। श्वास अन्दर भरने तथा छोड़नेका क्रम इतने धीरे-धीरे हो कि उसकी [illegible] न हो। सुखपूर्वक स्थितिके साथ उपर्युक्त [illegible] बार-बार दुहरावें। साथ ही आत्मनिर्देश (आटो [illegible] श्रद्धा एवं विश्वासके साथ दुहराना आवश्यक है। एक मासतक नियमित साधना [illegible] पश्चात् आपके शरीर, मन एवं मस्तिष्कमें [illegible] परिवर्तन होता हुआ प्रतीत होगा। आप अनुभव [illegible] कि आपकी भावनाओंके अनुसार आपके मन [illegible] बुद्धिका विकास हो रहा है। उपर्युक्त साधना योगके द्वारकी प्रथम सीढ़ी है। इस साधनाद्वारा चक्रके जागरणके साथ-साथ आपकी कुण्डलिनी भी शनैः-शनैः जागृत होने लगेगी।

किसी भी साधनमें मनकी एकाग्रता, [illegible] लिये आवश्यक है। साधनाके लिये निर्धारित [illegible] तक मनमें अन्य कोई विचार नहीं आना [illegible] योग-साधनाके जिज्ञासुओंके लिये, ध्यान [illegible] अभ्यासियोंके लिये सूर्य-चक्र जागरणके प्रथम सो[illegible] पैर धरनेके पश्चात् प्रभु-कृपा एवं सद्गुरुके मार्ग[illegible] आगेका मार्ग सुलभ हो जाता है। इसकी दीर्घ[illegible] साधनाके द्वारा आप अपने भीतर वाञ्छित गु[illegible] शक्तियोंका विकास सहजमें ही कर सकेंगे। संकल्पपूर्वक चेतनाका प्राणके साथ संयोग हो [illegible] साधकके मन एवं मस्तिष्कमें चुम्बकीय विद्युत्[illegible] निर्बाध प्रवाह जारी हो जाता है, जो साधकके आ[illegible] एवं उससे सम्बन्धित समाजमें उच्चतम आध्या[illegible] वातावरण उत्पन्न करनेमें समर्थ होता है। इस प्र[illegible] आकर्षक वातावरणका प्रभाव एवं उसकी अनुभू[illegible] उच्चकोटिके साधक, सन्त, महात्माओंके सा[illegible] सहजमें ही कर सकते हैं। उपर्युक्त साधनासे सू[illegible] (मणिपूरक) एवं अनाहत-चक्रमें एक सुनि[illegible] सीधा सम्बन्ध स्थापित होकर साधककी सर्वा[illegible] उन्नतिमें जो स्वैच्छिक सहयोग मिलता है, वह [illegible] अपने लक्ष्यतक पहुँचानेका मार्ग प्रशस्त कर देता [illegible] अन्तमें हम कठोपनिषद्के उस मन्त्रका स्मरण करते [illegible] लेखका समापन करते हैं, जिसमें हमें जाग्रत् होकर उत्क[illegible] महापुरुषोंसे प्रेरणा प्राप्त करनेका निर्देश दिया गया है—

उत्तिष्ठत ! जाग्रत !! प्राप्य वरान्निबोधत !!!

शान्तिः शान्तिः शान्तिः !!!!

मार्कण्डेयपुराणका सूर्य-संदर्भ

[मार्कण्डेयपुराणके इस संदर्भमें सूर्यतत्त्वका विवेचन एवं वेदोंका प्रादुर्भाव और ब्रह्माजीद्वारा सूर्यदेवकी स्तुति तथा सृष्टि-रचना-क्रमका वर्णन तो है ही, साथ ही अदितिके गर्भसे भगवान् सूर्यदेवके अवतार धारण करनेका वर्णन तथा सूर्य-महिमाके प्रसंगमें राज्यवर्द्धनकी कथा भी पौराणिक रोचकताके साथ उपनिबद्ध है ।]

सूर्यका तत्त्व, वेदोंका प्राकट्य, ब्रह्माजीद्वारा सूर्यदेवकी स्तुति और सृष्टि-रचनाका आरम्भ

क्रौष्टुकि बोले—द्विजश्रेष्ठ ! आपने मन्वन्तरोंकी स्थितिका विस्तारपूर्वक वर्णन किया और मैंने क्रमशः उसे भलीभाँति सुना । अब राजाओंका सम्पूर्ण वंश, जिसके आदि ब्रह्माजी हैं, मैं सुनना चाहता हूँ, आप उसका यथावत् वर्णन कीजिये ।

मार्कण्डेयजीने कहा—वत्स ! प्रजापति ब्रह्माजीको आदि बनाकर जिसकी प्रवृत्ति हुई है तथा जो सम्पूर्ण जगत्का मूल कारण है, उस राजवंशका तथा उसमें प्रकट हुए राजाओंके चरित्रोंका वर्णन सुनो—जिस वंशमें मनु, इक्ष्वाकु, अनरण्य, भगीरथ तथा अन्य सैकड़ों राजा, जिन्होंने पृथ्वीका पालन किया था, उत्पन्न हुए थे; वे सभी धर्मज्ञ, यज्ञकर्ता, शूरवीर तथा परम तत्त्वके ज्ञाता थे । ऐसे वंशका वर्णन सुनकर मनुष्य समस्त पापोंसे छूट जाता है । पूर्वकालमें प्रजापति ब्रह्माने नाना प्रकारकी प्रजाको उत्पन्न करनेकी इच्छा लेकर दाहिने अँगूठेसे दक्षको उत्पन्न किया और बायें अँगूठेसे उनकी पत्नीको प्रकट किया । दक्षके अदिति नामकी एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई, जिसके गर्भसे कश्यपने भगवान् सूर्यको जन्म दिया ।

क्रौष्टुकिने पूछा—भगवन् ! मैं भगवान् सूर्यके यथार्थ स्वरूपका वर्णन सुनना चाहता हूँ । वे किस प्रकार कश्यपजीके पुत्र हुए ? कश्यप और अदितिने कैसे उनकी आराधना की ? उनके यहाँ अवतीर्ण हुए भगवान् सूर्यका कैसा प्रभाव है ? ये सब बातें यथार्थरूपसे बताइये ।

मार्कण्डेयजी बोले—ब्रह्मन् ! पहले यह सम्पूर्ण लोक प्रभा और प्रकाशसे रहित था । चारों ओर घोर अन्धकार घेरा डाले हुए था । उस समय परम कारण-स्वरूप एक अविनाशी एवं बृहत् अण्ड प्रकट हुआ । उसके भीतर सबके प्रपितामह, जगत्के स्वामी, लोक-स्रष्टा कमलयोनि साक्षात् ब्रह्माजी विराजमान थे । उन्होंने उस अण्डका भेदन किया । महामुने ! उन ब्रह्माजीके मुखसे 'ॐ' यह महान् शब्द प्रकट हुआ । उससे पहले भूः, फिर भुवः, तदनन्तर स्वः—ये तीन व्याहृतियाँ उत्पन्न हुईं, जो भगवान् सूर्यका स्वरूप हैं । 'ॐ' इस स्वरूपसे सूर्यदेवका अत्यन्त सूक्ष्म रूप प्रकट हुआ । उससे 'महः' यह स्थूल रूप हुआ । फिर उससे 'जनः' यह स्थूलतर रूप उत्पन्न हुआ । उससे 'तपः' और तपसे 'सत्यम्' प्रकट हुआ । इस प्रकार ये सूर्यके सात स्वरूप स्थित हैं, जो कभी प्रकाशित होते हैं और कभी अप्रकाशित रहते हैं । ब्रह्मन् ! मैंने 'ॐ' यह रूप बताया है, वह सृष्टिका आदि-अन्त, अत्यन्त सूक्ष्म एवं निराकार है । वही परब्रह्म है तथा वही ब्रह्मका स्वरूप है ।

उक्त अण्डका भेदन होनेपर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके प्रथम मुखसे ऋचाएँ प्रकट हुईं । उनका वर्ण जपा-कुसुमके समान था । वे सब तेजोमयी, एक दूसरीसे पृथक् तथा रजोमय रूप धारण करनेवाली थीं । तत्पश्चात् ब्रह्माजीके दक्षिण मुखसे यजुर्वेदके मन्त्र अबाधरूपसे प्रकट हुए । जैसा सुवर्णका रंग होता है, वैसा ही उनका भी था । वे भी एक दूसरेसे पृथक्-पृथक् थे । फिर पारमेष्ठी ब्रह्माके पश्चिम मुखसे सामवेदके

त्विके कारण, परमज्ञेय, आदिपुरुष, परमज्योति, ज्ञानातीतस्वरूप, देवतारूपसे स्थूल तथा परसे भी परे हैं। सबके आदि एवं प्रभाका विस्तार करनेवाले हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपकी जो आद्याशक्ति है, उसीकी प्रेरणासे मैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, उनके देवता तथा प्रणव आदिसे युक्त समस्त सृष्टिकी रचना करता हूँ। इसी प्रकार पालन और संहार भी मैं उस आद्याशक्तिकी प्रेरणासे ही करता हूँ, अपनी इच्छासे नहीं। भगवन्! आप ही अग्निस्वरूप हैं। आप जब जल सोख लेते हैं, तब मैं पृथ्वी तथा जगत्‌की सृष्टि करता हूँ। आप ही सर्वव्यापी एवं आकाशस्वरूप हैं तथा आप ही इस पाञ्चभौतिक जगत्‌का पूर्णरूपसे पालन करते हैं। सूर्यदेव! परमात्म-तत्त्वके ज्ञाता विद्वान् पुरुष सर्वयज्ञमय विष्णुस्वरूप आपका ही यज्ञोंद्वारा यजन करते हैं तथा अपनी मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले जितेन्द्रिय यति आप सर्वेश्वर परमात्माका ही ध्यान करते हैं। देवस्वरूप आपको नमस्कार है। यज्ञरूप आपको प्रणाम है। योगियोंके ध्येय परब्रह्मस्वरूप आपको नमस्कार है। प्रभो! मैं सृष्टि करनेके लिये उद्यत हूँ और आपका यह तेजःपुञ्ज सृष्टिका विनाशक हो रहा है। अतः आप अपने इस तेजको समेट लीजिये।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् सूर्यने अपने महान् तेजको समेटकर स्वल्प तेजको ही धारण किया। तब ब्रह्माजीने पूर्वकल्पान्तरोंके अनुसार जगत्‌की सृष्टि आरम्भ की। महामुने! ब्रह्माजीने [illegible] ही [illegible] असुरों, [illegible] आदि-

पर्वत और द्वीपोंका विभाग किया। देवता, दैत्य तथा सर्प आदिके रूप और स्थान भी पहलेकी ही भाँति बनाये। ब्रह्माजीके मरीचि नामसे विख्यात जो पुत्र थे, उनके पुत्र कश्यप हुए। उनकी तेरह पत्नियाँ हुईं। वे सब-की-सब प्रजापति दक्षकी कन्याएँ थीं। उनसे देवता, दैत्य और नाग आदि बहुत-से पुत्र उत्पन्न हुए। अदितिने त्रिभुवनके स्वामी देवताओंको जन्म दिया। दितिने दैत्योंको तथा दनुने महापराक्रमी एवं भयानक दानवोंको उत्पन्न किया। विनतासे गरुड और अरुण*—ये दो पुत्र हुए। खसाके पुत्र यक्ष और राक्षस हुए। कद्रूने नागोंको और मुनिने गन्धर्वोंको जन्म दिया। क्रोधासे कुल्याएँ तथा अरिष्टासे अप्सराएँ उत्पन्न हुईं। इराने ऐरावत आदि हाथियोंको उत्पन्न किया। ताम्राके गर्भसे श्येनी आदि कन्याएँ उत्पन्न हुईं। उन्हींके पुत्र श्येन-बाज, भास और शुक आदि पक्षी हुए। कश्यप मुनिकी अदितिके गर्भसे जो संतानें हुईं, उनके पुत्र-पौत्र, दौहित्र तथा उनके भी पुत्रों आदिसे यह सारा संसार व्याप्त है। कश्यपके पुत्रोंमें देवता प्रधान हैं। इनमें कुछ तो सात्त्विक हैं, कुछ राजस हैं और कुछ तामस हैं। ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माजीने देवताओंको यज्ञभागका भोक्ता तथा त्रिभुवनका स्वामी बनाया, परंतु उनके सौतेले भाई दैत्यों, दानवों और राक्षसोंने एक साथ मिलकर उन्हें कष्ट पहुँचाना आरम्भ कर दिया। इस कारण एक हजार दिव्य वर्षोंतक उनमें बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। अन्तमें देवता पराजित हुए और बलवान् दैत्यों तथा दानवोंको विजय प्राप्त हुई। अपने पुत्रोंको दैत्यों और दानवोंके द्वारा पराजित एवं त्रिभुवनके राज्याधिकारसे वञ्चित तथा उनका यज्ञभाग छिन गया देख माता अदिति शोकसे अत्यन्त पीड़ित हो गयीं। उन्होंने भगवान् सूर्यकी आराधनाके लिये महान् [illegible] आरम्भ किया। वे नियमित आहार करती हुई [illegible] नियमोंका पालन और आकाशमें स्थित तेजोराशि [illegible] सूर्यका स्तवन करने लगीं।

[illegible] है।

रूपमें आप ही सृष्टि करते हैं। अच्युत (विष्णु) नामसे आप ही पालन करते हैं तथा कल्पान्तमें रुद्ररूप धारण करके आप ही सम्पूर्ण जगत्का संहार करते हैं।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् सूर्य अपने उस तेजसे प्रकट हुए, जिससे वे तपाये हुए ताँबेके समान कान्तिमान् दिखायी देते थे। देवी अदिति उनका दर्शन करके चरणोंमें गिर पड़ीं। तब भगवान् सूर्यने कहा—'देवि! तुम्हारी जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसे मुझसे माँग लो।' तब देवी अदिति घुटनेके बलसे पृथ्वीपर बैठ गयीं और मस्तक नवाकर प्रणाम करके वरदायक भगवान् सूर्यसे बोलीं—'देव! आप प्रसन्न होइये। अधिक बलवान् दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रोंके हाथसे त्रिभुवनका राज्य और यज्ञभाग छीन लिये हैं। गोपते! उन्हें प्राप्त करानेके लिये आप मुझपर कृपा करें। आप अपने अंशसे देवताओंके बन्धु होकर उनके शत्रुओंका नाश करें। प्रभो! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मेरे पुत्र पुनः यज्ञभागके भोक्ता तथा त्रिभुवनके स्वामी हो जायँ।'

तब भगवान् सूर्यने अदितिसे प्रसन्न होकर कहा—'देवि! मैं अपने सहस्र अंशोंसहित तुम्हारे गर्भसे अवतीर्ण होकर तुम्हारे पुत्रोंके शत्रुओंका नाश करूँगा।' इतना कहकर भगवान् सूर्य तिरोहित हो गये और अदिति भी सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जानेके कारण तपस्यासे निवृत्त हो गयीं। तदनन्तर सूर्यकी सुषुम्ना नामवाली किरण, जो सहस्र किरणोंका समुदाय थी, देवमाता अदितिके गर्भमें अवतीर्ण हुई। देवमाता अदिति एकाग्रचित्त हो कृच्छ्र और चान्द्रायण आदि व्रतोंका पालन करने लगीं और अत्यन्त पवित्रतापूर्वक उस गर्भको धारण किये रहीं। यह देख महर्षि कश्यपने कुछ कुपित होकर कहा—'तुम नित्य उपवास करके अपने गर्भके बच्चेको क्यों मारे डालती हो?' यह सुनकर उन्होंने कहा—'देखिये, यह रहा गर्भका बच्चा, मैंने इसे मारा नहीं है, यह स्वयं ही अपने शत्रुओंको मारनेवाला होगा।'

यह कहकर देवी अदितिने उस गर्भको उदरसे बाहर कर दिया। वह अपने तेजसे प्रज्वलित हो रहा था। उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी उस गर्भको देखकर कश्यपने प्रणाम किया और आदि ऋचाओंके द्वारा आदरपूर्वक उसकी स्तुति की। उनके स्तुति करनेपर शिशुरूपधारी सूर्य उस अण्डाकार गर्भसे प्रकट हो गये। उनके शरीरकी कान्ति कमलपत्रके समान श्याम थी। वे अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंका मुख उज्ज्वल कर रहे थे। तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ कश्यपको सम्बोधित करके मेघके समान गम्भीर वाणीमें आकाशवाणी हुई—'मुने! तुमने अदितिसे कहा था कि इस अण्डेको क्यों मार रही है? उस समय तुमने 'मारितं-अण्डम्' का उच्चारण किया था इसलिये तुम्हारा यह पुत्र 'मार्तण्ड'के नामसे विख्यात होगा और शक्तिशाली होकर सूर्यके अधिकारका पालन करेगा, इतना ही नहीं, यह यज्ञभागका अपहरण करनेवाले देवशत्रु असुरोंका संहार भी करेगा।'

यह आकाशवाणी सुनकर देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ और दानव बलहीन हो गये। तब इन्द्रने दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा। दानव भी उनका सामना करनेके लिये आ पहुँचे। फिर तो असुरोंके साथ देवताओंका घोर संग्राम हुआ। उनके अस्त्र-शस्त्रोंकी चमकसे तीनों लोकोंमें प्रकाश छा गया। उस युद्धमें भगवान् सूर्यकी उग्र दृष्टि पड़ने तथा उनके तेजसे दग्ध होनेके कारण सब असुर जलकर भस्म हो गये। अब तो देवताओंके हर्षकी सीमा न रही। उन्होंने तेजके उत्पत्तिस्थान भगवान् सूर्य और अदितिका स्तवन किया। उन्हें पूर्ववत् अपने अधिकार और यज्ञके भाग प्राप्त हो गये। भगवान् सूर्य भी अपने निजी अधिकारका पालन करने लगे। वे नीचे और ऊपर फैली हुई किरणोंके कारण कदम्बपुष्पके समान सुशोभित हो रहे थे। उनका मण्डल गोलाकार अग्निपिण्डके समान था।

तदनन्तर भगवान् सूर्यको प्रसन्न करके प्रजापति

रूपमें आप ही सृष्टि करते हैं । अच्युत (विष्णु) नामसे आप ही पालन करते हैं तथा कल्पान्तमें रुद्ररूप धारण करके आप ही सम्पूर्ण जगत्‌का संहार करते हैं ।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् सूर्य अपने उस तेजसे प्रकट हुए, जिससे वे तपाये हुए ताँबेके समान कान्तिमान् दिखायी देते थे । देवी अदिति उनका दर्शन करके चरणोंमें गिर पड़ीं । तब भगवान् सूर्यने कहा—'देवि ! तुम्हारी जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसे मुझसे माँग लो ।' तब देवी अदिति घुटनेके बलसे पृथ्वीपर बैठ गयीं और मस्तक नवाकर प्रणाम करके वरदायक भगवान् सूर्यसे बोलीं—'देव ! आप प्रसन्न होइये । अधिक बलवान् दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रोंके हाथसे त्रिभुवनका राज्य और यज्ञभाग छीन लिये हैं । गोपते ! उन्हें प्राप्त करानेके लिये आप मुझपर कृपा करें । आप अपने अंशसे देवताओंके बन्धु होकर उनके शत्रुओंका नाश करें । प्रभो ! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मेरे पुत्र पुनः यज्ञभागके भोक्ता तथा त्रिभुवनके स्वामी हो जायँ ।'

तब भगवान् सूर्यने अदितिसे प्रसन्न होकर कहा—'देवि ! मैं अपने सहस्र अंशोंसहित तुम्हारे गर्भसे अवतीर्ण होकर तुम्हारे पुत्रोंके शत्रुओंका नाश करूँगा ।' इतना कहकर भगवान् सूर्य तिरोहित हो गये और अदिति भी सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जानेके कारण तपस्यासे निवृत्त हो गयीं । तदनन्तर सूर्यकी सुषुम्ना नामवाली किरण, जो सहस्र किरणोंका समुदाय थी, देवमाता अदितिके गर्भमें अवतीर्ण हुई । देवमाता अदिति एकाग्रचित्त हो कृच्छ्र और चान्द्रायण आदि व्रतोंका पालन करने लगीं और अत्यन्त पवित्रतापूर्वक उस गर्भको धारण किये रहीं। यह देख महर्षि कश्यपने कुछ कुपित होकर कहा—'तुम नित्य उपवास करके अपने गर्भके बच्चेको क्यों मारे डालती हो ?' यह सुनकर उन्होंने कहा—'देखिये, यह रहा गर्भका बच्चा, मैंने इसे मारा नहीं है, यह स्वयं ही अपने शत्रुओंको मारनेवाला होगा ।'

यह कहकर देवी अदितिने उस गर्भको उदरसे बाहर कर दिया । वह अपने तेजसे प्रज्वलित हो रहा था । उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी उस गर्भको देखकर कश्यपने प्रणाम किया और आदि ऋचाओंके द्वारा आदरपूर्वक उसकी स्तुति की । उनके स्तुति करनेपर शिशुरूपधारी सूर्य उस अण्डाकार गर्भसे प्रकट हो गये। उनके शरीरकी कान्ति कमलपत्रके समान श्याम थी । वे अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंका मुख उज्ज्वल कर रहे थे । तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ कश्यपको सम्बोधित करके मेघके समान गम्भीर वाणीमें आकाशवाणी हुई—'मुने ! तुमने अदितिसे कहा था कि इस अण्डेको क्यों मार रही है ! उस समय तुमने 'मारितं-अण्डम्' का उच्चारण किया था इसलिये तुम्हारा यह पुत्र 'मार्तण्ड'के नामसे विख्यात होगा और शक्तिशाली होकर सूर्यके अधिकारका पालन करेगा, इतना ही नहीं, यह यज्ञभागका अपहरण करनेवाले देवशत्रु असुरोंका संहार भी करेगा ।'

यह आकाशवाणी सुनकर देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ और दानव बलहीन हो गये । तब इन्द्रने दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा । दानव भी उनका सामना करनेके लिये आ पहुँचे । फिर तो असुरोंके साथ देवताओंका घोर संग्राम हुआ। उनके अस्त्र-शस्त्रोंकी चमकसे तीनों लोकोंमें प्रकाश छा गया । उस युद्धमें भगवान् सूर्यकी उग्र दृष्टि पड़ने तथा उनके तेजसे दग्ध होनेके कारण सब असुर जलकर भस्म हो गये । अब तो देवताओंके हर्षकी सीमा न रही । उन्होंने तेजके उत्पत्तिस्थान भगवान् सूर्य और अदितिका स्तवन किया । उन्हें पूर्ववत् अपने अधिकार और यज्ञके भाग प्राप्त हो गये । भगवान् सूर्य भी अपने निजी अधिकारका पालन करने लगे । वे नीचे और ऊपर फैली हुई किरणोंके कारण कदम्बपुष्पके समान सुशोभित हो रहे थे । उनका मण्डल गोलाकार अग्निपिण्डके समान था ।

तदनन्तर भगवान् सूर्यको प्रसन्न करके प्रजापति

रूपमें आप ही सृष्टि करते हैं । अच्युत (विष्णु) नामसे आप ही पालन करते हैं तथा कल्पान्तमें रुद्ररूप धारण करके आप ही सम्पूर्ण जगत्का संहार करते हैं ।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् सूर्य अपने उस तेजसे प्रकट हुए, जिससे वे तपाये हुए ताँबेके समान कान्तिमान् दिखायी देते थे । देवी अदिति उनका दर्शन करके चरणोंमें गिर पड़ीं । तब भगवान् सूर्यने कहा—'देवि ! तुम्हारी जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसे मुझसे माँग लो ।' तब देवी अदिति घुटनेके बलसे पृथ्वीपर बैठ गयीं और मस्तक नवाकर प्रणाम करके वरदायक भगवान् सूर्यसे बोलीं—'देव ! आप प्रसन्न होइये । अधिक बलवान् दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रोंके हाथसे त्रिभुवनका राज्य और यज्ञभाग छीन लिये हैं । गोपते ! उन्हें प्राप्त करानेके लिये आप मुझपर कृपा करें । आप अपने अंशसे देवताओंके बन्धु होकर उनके शत्रुओंका नाश करें । प्रभो ! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मेरे पुत्र पुनः यज्ञभागके भोक्ता तथा त्रिभुवनके स्वामी हो जायँ ।'

तब भगवान् सूर्यने अदितिसे प्रसन्न होकर कहा—'देवि ! मैं अपने सहस्र अंशोंसहित तुम्हारे गर्भसे अवतीर्ण होकर तुम्हारे पुत्रोंके शत्रुओंका नाश करूँगा ।' इतना कहकर भगवान् सूर्य तिरोहित हो गये और अदिति भी सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जानेके कारण तपस्यासे निवृत्त हो गयीं । तदनन्तर सूर्यकी सुषुम्ना नामवाली किरण, जो सहस्र किरणोंका समुदाय थी, देवमाता अदितिके गर्भमें अवतीर्ण हुई । देवमाता अदिति एकाग्रचित्त हो कृच्छ्र और चान्द्रायण आदि व्रतोंका पालन करने लगीं और अत्यन्त पवित्रतापूर्वक उस गर्भको धारण किये रहीं । यह देख महर्षि कश्यपने कुछ कुपित होकर कहा—'तुम नित्य उपवास करके अपने गर्भके बच्चेको क्यों मारे डालती हो ?' यह सुनकर उन्होंने कहा—'देखिये, यह रहा गर्भका बच्चा, मैंने इसे मारा नहीं है, यह स्वयं ही अपने शत्रुओंको मारनेवाला होगा ।'

यह कहकर देवी अदितिने उस गर्भको उदरसे बाहर कर दिया । वह अपने तेजसे प्रज्वलित हो रहा था । उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी उस गर्भको देखकर कश्यपने प्रणाम किया और आदि ऋचाओंके द्वारा आदरपूर्वक उसकी स्तुति की । उनके स्तुति करनेपर शिशुरूपधारी सूर्य उस अण्डाकार गर्भसे प्रकट हो गये । उनके शरीरकी कान्ति कमलपत्रके समान श्याम थी । वे अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंका मुख उज्ज्वल कर रहे थे । तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ कश्यपको सम्बोधित करके मेघके समान गम्भीर वाणीमें आकाशवाणी हुई—'मुने ! तुमने अदितिसे कहा था कि इस अण्डेको क्यों मार रही है ? उस समय तुमने 'मारितं-अण्डम्' का उच्चारण किया था इसलिये तुम्हारा यह पुत्र 'मार्तण्ड'के नामसे विख्यात होगा और शक्तिशाली होकर सूर्यके अधिकारका पालन करेगा, इतना ही नहीं, यह यज्ञभागका अपहरण करनेवाले देवशत्रु असुरोंका संहार भी करेगा ।'

यह आकाशवाणी सुनकर देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ और दानव बलहीन हो गये । तब इन्द्रने दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा । दानव भी उनका सामना करनेके लिये आ पहुँचे । फिर तो असुरोंके साथ देवताओंका घोर संग्राम हुआ । उनके अस्त्र-शस्त्रोंकी चमकसे तीनों लोकोंमें प्रकाश छा गया । उस युद्धमें भगवान् सूर्यकी उग्र दृष्टि पड़ने तथा उनके तेजसे दग्ध होनेके कारण सब असुर जलकर भस्म हो गये । अब तो देवताओंके हर्षकी सीमा न रही । उन्होंने तेजके उत्पत्तिस्थान भगवान् सूर्य और अदितिका स्तवन किया । उन्हें पूर्ववत् अपने अधिकार और यज्ञके भाग प्राप्त हो गये । भगवान् सूर्य भी अपने निजी अधिकारका पालन करने लगे । वे नीचे और ऊपर फैली हुई किरणोंके कारण कदम्बपुष्पके समान सुशोभित हो रहे थे । उनका मण्डल गोलाकार अग्निपिण्डके समान था ।

तदनन्तर भगवान् सूर्यको प्रसन्न करके प्रजापति

विधानसे विधिपूर्वक [illegible] उनको प्राप्त थी। [illegible] जन्म हुआ।

सूर्यकी महिमाके प्रसङ्गमें राजा राज्यवर्धनकी कथा

[illegible] बोले—भगवन्! आपने आदित्य भगवान् सूर्यके माहात्म्य और स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन किया। अब मैं उनकी महिमाका वर्णन सुनना चाहता हूँ। आप प्रसन्न होकर बतानेकी कृपा करें।'

मार्कण्डेयजीने कहा—महान्! मैं तुम्हें आदित्य सूर्यकी महिमा बताता हूँ, सुनो। पूर्वकालमें दमके पुत्र राज्यवर्धन बड़े विख्यात राजा हो गये हैं। वे अपने राज्यका धर्मपूर्वक पालन करते थे, इसलिये वहाँके धन-जनकी दिनोंदिन वृद्धि होने लगी। उस राजाके शासन-कालमें समस्त राष्ट्र तथा नगरों और गाँवोंके लोग अत्यन्त स्वस्थ एवं प्रसन्न रहते थे। वहाँ कभी कोई उत्पात नहीं होता था तथा रोग भी नहीं सताता था। साँपोंके काटनेका तथा अनावृष्टिका भय भी नहीं था। राजाने बड़े-बड़े यज्ञ किये। याचकोंको दान दिये और धर्मके अनुकूल रहकर विषयोंका उपभोग किया। इस प्रकार राज्य करते तथा प्रजाका भलीभाँति पालन करते हुए उस राजाके सात हजार वर्ष ऐसे बीत गये, मानो एक ही दिन व्यतीत हुआ हो। दक्षिण देशके राजा विदूरथकी पुत्री मानिनी राज्यवर्धनकी पत्नी थी। एक दिन वह सुन्दरी राजाके मस्तकमें तेल लगा रही थी। उस समय वह राजपरिवारके देखते-देखते आँसू बहाने लगी। रानीके आँसुओंकी बूँदें जब राजाके शरीरपर पड़ीं तो उसे मुखपर आँसू बहाती देख उन्होंने मानिनीसे पूछा—'देवि! यह क्या?' स्वामीके इस प्रकार पूछनेपर उस मनस्विनीने कहा—'कुछ नहीं।' जब राजाने बार-बार पूछा, तब उस सुन्दरीने राजाकी केशराशिमेंसे एक पका बाल दिखाया और कहा—'राजन्! यह

[illegible], क्या यह पुत्र [illegible] लिये [illegible] नहीं है?' यह सुनकर राजा हँसने लगे। इसके [illegible] हुए [illegible] हँसकर कहा—'शुभे! शोकका क्या काम है? रोना नहीं चाहिये। जन्म, वृद्धि और [illegible] विकार सभी शरीरधारियोंके होते हैं। मैंने वेदोंका अध्ययन किया, यज्ञ किये, [illegible] दान दिया और मेरे बहुत पुत्र भी हुए। अब तुम्हें [illegible] जो अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसे उत्तम भोग मैंने तुम्हारे साथ भोग लिये। तुमने तथा मैंने [illegible] और पुत्रोंने सम्यक् प्रकारसे अपने धर्मका निर्वाह किया। और कौन-सा ऐसा शुभ कर्म है, जिसे मैंने नहीं किया। फिर इन पके बालोंसे तुम क्यों डरती हो? शुभे! मेरे बाल पक जायँ, शरीरमें झुर्रियाँ पड़ जायँ तथा यह देह भी शिथिल हो जाय तो कोई चिन्ता नहीं है। मैं अपने कर्तव्यका पालन कर चुका हूँ। कल्याणि! तुमने मेरे मस्तकपर जो पका बाल दिखाया है, अब वनवास लेकर उसकी भी दवा करता हूँ। पहले बाल्यावस्था और कुमारावस्थामें तदनुरूप उचित कर्म किये जाते हैं, फिर युवावस्थामें यौवनोचित कर्म होते हैं तथा बुढ़ापेमें वनका आश्रय लेना उचित है। मेरे पूर्वजों तथा उनके भी पूर्वजोंने ऐसा ही किया है। अतः मैं तुम्हारे आँसू बहानेका कोई कारण नहीं देखता। पके बालका दिखायी देना तो मेरे लिये महान् अभ्युदयका कारण है।'

महाराजकी यह बात सुनकर वहाँ उपस्थित हुए अन्य राजा, पुरवासी तथा पार्श्ववर्ती मनुष्य उनसे शान्तिपूर्वक बोले—'राजन्! आपको इन महारानीको रोनेकी आवश्यकता नहीं है। रोना तो हमलोगोंको अथवा समस्त प्राणियोंको चाहिये; क्योंकि आप हमें छोड़कर वनवास लेनेकी बात मुँहसे निकाल रहे हैं। महाराज! आपने हमारा [illegible] आपके बड़े

...की बात सुनकर हमारे प्राण निकले जाते हैं। ...ने सात हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीका पालन किया। अब आप वनमें रहकर जो तपस्या करेंगे, वह इस ...ी-पालनजनित पुण्यकी सोलहवीं कलाके बराबर भी ...ीं हो सकती।'

राजाने कहा—'मैंने सात हजार वर्षोंतक इस ...ीका पालन किया, अब मेरे लिये यह वनवासका ...मय आ गया। मेरे कई पुत्र हो गये। मेरी संतानोंको ...खकर थोड़े ही दिनोंमें यमराज मेरा यहाँ रहना नहीं ...ह सकेंगे। नागरिको! मेरे मस्तकपर जो यह ...फेद बाल दिखायी देता है, इसे अत्यन्त भयानक कर्म करनेवाली मृत्युका दूत समझो, अतः मैं राज्यपर अपने ...त्रका अभिषेक करके सब भोगोंको त्याग दूँगा और वनमें रहकर तपस्या करूँगा। जबतक यमराजके सैनिक नहीं आते, तभीतक यह सब कुछ मुझे कर लेना है।'

तदनन्तर वनमें जानेकी इच्छासे महाराजने ज्योतिषियोंको बुलाया और पुत्रके राज्याभिषेकके लिये शुभ दिन एवं लग्न पूछे। राजाकी बात सुनकर वे शास्त्रदर्शी ज्योतिषी व्याकुल हो गये। उन्हें दिन, लग्न और होरा आदिका ठीक ज्ञान न हो सका। फिर तो अन्य नगरों, अधीनस्थ राज्यों तथा उस नगरसे भी बहुत-से श्रेष्ठ ब्राह्मण आये और वनमें जानेके लिये उत्सुक राजा राज्यवर्धनसे मिले। उस समय उनका माथा काँप उठा। वे बोले—'राजन्! हमपर प्रसन्न होइये और पहलेकी भाँति अब भी हमारा पालन कीजिये। आपके वन चले जानेपर समस्त जगत् संकटमें पड़ जायगा, अतः आप ऐसा यत्न करें, जिससे जगत्को कष्ट न हो।'

इसके बाद मन्त्रियों, सेवकों, वृद्ध नागरिकों और ब्राह्मणोंने मिलकर सलाह की—'अब यहाँ क्या करना चाहिये?' राजा राज्यवर्धन अत्यन्त धार्मिक थे। उनके प्रति सब लोगोंका अनुराग था, इसलिये सलाह करनेवाले लोगोंमें यह निश्चय हुआ कि हम सब लोग एकाग्रचित्त एवं भलीभाँति ध्यानपरायण होकर तपस्याद्वारा भगवान् सूर्यकी आराधना करके इन महाराजकी आयुके लिये प्रार्थना करें। इस प्रकार एक निश्चय करके कुछ लोग अपने घरोंपर विधिपूर्वक अर्घ्य, उपचार आदि उपहारोंसे भगवान् भास्करकी पूजा करने लगे। दूसरे लोग मौन रहकर ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके जपसे सूर्यदेवको संतुष्ट करने लगे। अन्य लोग निराहार रहकर नदीके तटपर निवास करते हुए तपस्याके द्वारा भगवान् सूर्यकी आराधनामें लग गये। कुछ लोग अग्निहोत्र करते, कुछ दिन-रात सूर्यसूक्तका पाठ करते और कुछ लोग सूर्यकी ओर दृष्टि लगाकर खड़े रहते थे।

सूर्यकी आराधनाके लिये इस प्रकार यत्न करनेवाले उन लोगोंके समीप आकर सुदामा नामक गन्धर्वने कहा—'द्विजवरो! यदि आपलोगोंको सूर्यदेवकी आराधना अभीष्ट है तो ऐसा कीजिये, जिससे भगवान् भास्कर प्रसन्न हो सकें। आपलोग यहाँसे शीघ्र ही कामरूप पर्वतपर जाइये। वहाँ गुरुविशाल नामक वन है, जिसमें सिद्ध पुरुष निवास करते हैं। वहाँपर एकाग्रचित्त होकर आपलोग सूर्यकी आराधना करें। वह परम हितकारी सिद्ध क्षेत्र है। वहाँ आपलोगोंकी सब कामनाएँ पूर्ण होंगी।'

सुदामाकी यह बात सुनकर वे समस्त द्विज गुरुविशाल वनमें गये। वहाँ उन्होंने सूर्यदेवका पवित्र एवं सुन्दर मन्दिर देखा। उस स्थानपर ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंके लोग मिताहारी एवं एकाग्रचित्त हो पुष्प, चन्दन, धूप, गन्ध, जप, होम, अन्न और दीप आदिके द्वारा भगवान् सूर्यकी पूजा एवं स्तुति करने लगे।

ब्राह्मण बोले—देवता, दानव, यक्ष, ग्रह और नक्षत्रोंमें भी जो सबसे अधिक तेजस्वी हैं, उन भगवान् सूर्यकी हम शरण लेते हैं। जो देवेश्वर भगवान् सूर्य

आकाशमें स्थित होकर चारों ओर प्रकाश फैलाते तथा अपनी किरणोंसे पृथ्वी और आकाशको व्याप्त किये रहते हैं, उनकी हम शरण लेते हैं। आदित्य, भास्कर, भानु, सविता, दिवाकर, पूषा, अर्यमा, स्वर्भानु तथा दीप्त-दीधिति—ये जिनके नाम हैं, जो चारों युगोंका अन्त करनेवाले कालाग्नि हैं, जिनकी ओर देखना कठिन है, जिनकी प्रलयके अन्तमें भी गति है, जो योगीश्वर, अनन्त, रक्त, पीत, सित और असित हैं, ऋषियोंके अग्निहोत्रों तथा यज्ञके देवताओंमें जिनकी स्थिति है, जो अक्षर, परम गुह्य तथा मोक्षके उत्तम द्वार हैं, जिनके उदयास्तमनरूप रथमें छन्दोमय अश्व जुते हुए हैं तथा जो उस रथपर बैठकर मेरुगिरिकी प्रदक्षिणा करते हुए आकाशमें विचरण करते हैं, अनृत और ऋत दोनों ही जिनके स्वरूप हैं, जो भिन्न-भिन्न पुण्यतीर्थोंके रूपमें विराजमान हैं, एकमात्र जिनपर इस विश्वकी रक्षा निर्भर है, जो कभी चिन्तनमें नहीं आ सकते, उन भगवान् भास्करकी हम शरण लेते हैं। जो ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, प्रजापति, वायु, आकाश, जल, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, ग्रह, नक्षत्र और चन्द्रमा आदि हैं, वनस्पति, वृक्ष और ओषधियाँ जिनके स्वरूप हैं, जो व्यक्त और अव्यक्त प्राणियोंमें स्थित हैं उन भगवान् सूर्यकी हम शरण लेते हैं। ब्रह्मा, शिव तथा विष्णुके जो रूप हैं, वे आपके ही हैं। जिनके तीन स्वरूप हैं, वे भगवान् भास्कर हमपर प्रसन्न हों। जिन अजन्मा जगदीश्वरके अङ्गमें यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है तथा जो जगत्के जीवन हैं, वे भगवान् सूर्य हमपर प्रसन्न हों। जिनका एक परम प्रकाशमान रूप ऐसा है, जिसकी ओर प्रभापुञ्जकी अधिकताके कारण देखना कठिन हो जाता है तथा जिनका दूसरा रूप चन्द्रमा है, जो अत्यन्त सौम्य है, वे भगवान् भास्कर हमपर प्रसन्न हों।

इस प्रकार भक्तिपूर्वक स्तवन और पूजन करनेवाले उन द्विजोंपर तीन महीनोंमें भगवान् सूर्य प्रसन्न हुए और अपने मण्डलसे निकलकर उसीके [illegible] धारण किये वे नीचे उतरे और दुर्दर्श होते हु[ए] सबके समक्ष प्रकट हो गये। तब उन [illegible] सूर्यदेवके स्पष्ट रूपका दर्शन करके उन्हें [illegible] होकर प्रणाम किया। उस समय उनके शरीर [illegible] और कम्प हो रहा था। वे बोले—'सहस्र [illegible] सूर्यदेव! आपको बारंबार नमस्कार है। आ[प] हेतु तथा सम्पूर्ण जगत्के विजयकेतु हैं, आप ही रक्षक, सबके पूज्य, सम्पूर्ण यज्ञोंके आधार [illegible] वेत्ताओंके ध्येय हैं, आप हमपर प्रसन्न हों।'

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तब भगवान् सूर्यने प्र[सन्न] होकर सब लोगोंसे कहा—'द्विजगण! आपको जि[स] वस्तुकी इच्छा हो, वह मुझसे माँगें।' यह [illegible] आदि वर्णोंके लोगोंने उन्हें प्रणाम करके कहा—'अन्धकारका नाश करनेवाले भगवान् सूर्यदेव! यदि आप हमारी भक्तिसे प्रसन्न हैं तो हमारे राजा राज्यवर्[धन] नीरोग, शत्रुविजयी, सुन्दर केशोंसे युक्त तथा स्थि[र] यौवनवाले होकर दस हजार वर्षोंतक जीवित रहें।'

'तथास्तु' कहकर भगवान् सूर्य अन्तर्हित हो गये। वे सब लोग भी मनोवाञ्छित वर पाकर प्रसन्नतापूर्वक महाराजके पास लौट आये। वहाँ उन्होंने सूर्यसे व[र] पाने आदिकी सब बातें यथावत् कह सुनायीं। य[ह] सुनकर रानी मानिनीको बड़ा हर्ष हुआ, परंतु राजा बहुत देरतक चिन्तामें पड़े रहे। वे उन लोगोंसे कुछ न बोले। मानिनीका हृदय हर्षसे भरा हुआ था। वह बोली—'महाराज! बड़े भाग्यसे आयुकी वृद्धि हुई है। आपका अभ्युदय हो। राजन्! इतने बड़े अभ्युदयके समय आपको प्रसन्नता क्यों नहीं होती? दस हजार वर्षोंतक आप नीरोग रहेंगे, आपकी जवानी स्थिर रहेगी फिर भी आपको खुशी क्यों नहीं होती?'

राजा बोले—कल्याणि! मेरा अभ्युदय कैसे हुआ! तुम मेरा अभिनन्दन क्यों करती हो? जब हजार-हजार

...प्राप्त हो रहे हैं, उस समय किसीको बधाई देना ...उचित माना जाता है ? मैं अकेला ही तो दस ...वर्षोंतक जीवित रहूँगा। मेरे साथ तुम तो नहीं ...रहोगी। क्या तुम्हारे मरनेपर मुझे दुःख नहीं होगा ? ..., पौत्र, प्रपौत्र, इष्ट, बन्धु-बान्धव, भक्त, सेवक तथा ...वर्ग—ये सब मेरी आँखोंके सामने मरेंगे। उस समय ... अपार दुःखका सामना करना पड़ेगा। जिन लोगोंने ...यन्त दुर्बल होकर शरीरकी नाड़ियाँ सुखा-सुखाकर ...रे लिये तपस्या की, वे सब तो मरेंगे और मैं भोग भोगते हुए ...जीवित रहूँगा। ऐसी दशामें क्या मैं धिक्कार देनेयोग्य नहीं ...! सुन्दरि ! इस प्रकार मुझपर यह आपत्ति आ गयी। ...रा अभ्युदय नहीं हुआ है। क्या तुम इस बातको नहीं समझती ? फिर क्यों मेरा अभिनन्दन कर रही हो ?

मानिनी बोली—महाराज ! आप जो कहते हैं, वह सब ठीक है। मैंने तथा पुरवासियोंने आपके प्रेमवश इस दोषकी ओर नहीं देखा है। नरनाथ ! ऐसी अवस्थामें क्या करना चाहिये, यह आप ही सोचें; क्योंकि भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर जो कुछ कहा है, वह अन्यथा नहीं हो सकता।

राजाने कहा—देवि ! पुरवासियों और सेवकोंने प्रेमवश मेरे ऊपर जो उपकार किया है, उसका बदला चुकाये बिना मैं किस प्रकार भोग भोगूँगा। यदि भगवान् सूर्यकी ऐसी कृपा हो कि समस्त प्रजा, भृत्यवर्ग, तुम, अपने पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और मित्र भी जीवित रह सकें तो मैं राज्यसिंहासनपर बैठकर प्रसन्नतापूर्वक भोगोंका उपभोग कर सकूँगा। यदि वे ऐसी कृपा नहीं करेंगे तो मैं उसी कामरूप पर्वतपर निराहार रहकर तबतक तपस्या करूँगा, जबतक कि इस जीवनका अन्त न हो जाय।

राजाके यों कहनेपर रानी मानिनीने कहा—ऐसा ही हो। फिर तो वे भी महाराजके साथ कामरूप पर्वतपर चली गयीं। वहाँ पहुँचकर राजाने पत्नीके साथ सूर्यमन्दिरमें जाकर सेवापरायण हो भगवान् भानुकी आराधना आरम्भ की। दोनों दम्पति उपवास करते-करते दुर्बल हो गये। सर्दी, गर्मी और वायुका कष्ट सहन करते हुए दोनोंने घोर तपस्या की। 'सूर्यकी पूजा और भारी तपस्या करते-करते जब एक वर्षसे अधिक समय व्यतीत हो गया, तब भगवान् भास्कर प्रसन्न हुए। उन्होंने राजाको समस्त सेवकों, पुरवासियों और पुत्रों आदिके लिये इच्छानुसार वरदान दिया। वर पाकर राजा अपने नगरको लौट आये और धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ राज्य करने लगे। धर्मज्ञ राजाने बहुत-से यज्ञ किये और उन्होंने दिन-रात खुले हाथ दान किया। वे यौवनको स्थिर रखते हुए अपने पुत्र, पौत्र और भृत्य आदिके साथ दस हजार वर्षोंतक जीवित रहे। उनका यह चरित्र देखकर भृगुवंशी प्रमतिने विस्मित होकर यह गाथा गायी—'अहो ! भगवान् सूर्यकी भक्तिकी कैसी शक्ति है, जिससे राजा राज्यवर्धन अपने तथा स्वजनोंके लिये आयुर्वर्धन बन गये।'

जो मनुष्य ब्राह्मणोंके मुखसे भगवान् सूर्यके इस उत्तम माहात्म्यका श्रवण तथा पाठ करता है, वह सात रातके किये हुए पापोंसे मुक्त हो जाता है। मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रसङ्गमें सूर्यदेवके जो मन्त्र आये हैं, उनमेंसे एक-एकका भी यदि तीनों सन्ध्याओंके समय जप किया जाय तो वह समस्त पातकोंका नाश करनेवाला होता है। सूर्यके जिस मन्दिरमें इस समूचे माहात्म्यका पाठ किया जाता है, वहाँ भगवान् सूर्य विराजमान रहते हैं। अतः ब्रह्मन् ! यदि तुम्हें महान् पुण्यकी प्राप्ति अभीष्ट हो तो सूर्यके इस उत्तम माहात्म्यको मन-ही-मन धारण एवं जप करते रहो। द्विजश्रेष्ठ ! जो सोनेके सींगसे युक्त सुन्दर काली दुधारू गाय दान करता है तथा जो अपने मनको संयममें रखकर तीन दिनोंतक इस माहात्म्यका श्रवण करता है, उन दोनोंको पुण्यफलकी प्राप्ति समान ही होती है।

ब्रह्मपुराणमें सूर्य-प्रसङ्ग

[ब्रह्मपुराणके प्रस्तुत संदर्भमें कोणादित्य एवं भगवान् सूर्यकी महिमा, सूर्य-महत्त्वके साथ अदिति सम्भवका वर्णन और श्रीसूर्यदेवकी स्तुति तथा उनके अष्टोत्तर शतनामोंके वर्णनवाले वस्तु-विषय संकलित

कोणादित्यकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—भारतवर्षमें दक्षिण समुद्रके किनारे ओण्ड्रदेशके नामसे विख्यात एक प्रदेश है, जो स्वर्ग एवं मोक्ष देनेवाला है। समुद्रसे उत्तर विरज-मण्डलतकका प्रदेश पुण्यात्माओंके सम्पूर्ण गुणोंद्वारा सुशोभित है। उस देशमें उत्पन्न जो जितेन्द्रिय ब्राह्मण तपस्या एवं स्वाध्यायमें संलग्न रहते हैं, वे सदा ही वन्दनीय एवं पूजनीय हैं। उस देशके ब्राह्मण श्राद्ध, दान, विवाह, यज्ञ अथवा आचार्यकर्म—सभी कार्योंके लिये उत्तम हैं। वे षट्कर्मपरायण, वेदोंके पारङ्गत विद्वान्, इतिहासवेत्ता, पुराणार्थविशारद, सर्वशास्त्रार्थकुशल, यज्ञशील और राग-द्वेषरहित होते हैं। कोई वैदिक अग्निहोत्रमें लगे रहते और कोई स्मार्त-अग्निकी उपासना करते हैं। वे स्त्री, पुत्र और धनसे सम्पन्न, दानी और सत्यवादी होते हैं तथा यज्ञोत्सवसे विभूषित पवित्र उत्कलदेशमें निवास करते हैं। वहाँ क्षत्रिय आदि अन्य तीन वर्णोंके लोग भी परम संयमी, स्वकर्मपरायण, शान्त और धार्मिक होते हैं। उक्त प्रदेशमें भगवान् सूर्य कोणादित्यके नामसे विख्यात होकर रहते हैं। उनका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

मुनियोंने कहा—सुरश्रेष्ठ! पूर्वोक्त ओण्ड्रदेशमें जो सूर्यका क्षेत्र है तथा जहाँ भगवान् भास्कर निवास करते हैं, उसका वर्णन कीजिये। अब हम उसे ही सुनना चाहते हैं।

ब्रह्माजी बोले—मुनिवरो! लवणसमुद्रका उत्तरी तट अत्यन्त मनोहर और पवित्र है। वह सब ओर बालुका-राशिसे आच्छादित है। उस सर्वगुणसम्पन्न प्रदेशमें चम्पा, अशोक, मौलसिरी, करवीर (कने[र]), नागकेसर, ताड़, सुपारी, नारियल, कैथ औ[र] ... प्रकारके वृक्ष चारों ओर शोभा पाते हैं। व[हाँ] सूर्यका पुण्यक्षेत्र है, जो सम्पूर्ण जगत्में वि[ख्यात है]। उसका विस्तार सब ओरसे एक योजनसे अ[धिक है]। वहाँ सहस्र किरणोंसे सुशोभित साक्षात् भगवा[न् सूर्यका] निवास है। वे 'कोणादित्य'*के नामसे वि[ख्यात] ... भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। वहाँ मा[घ मासके] शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको इन्द्रियसंयमपूर्वक ... करना चाहिये। फिर प्रातः शौच आदिसे ... एवं विशुद्धचित्त हो सूर्यदेवका स्मरण करते हुए ... पूर्वक समुद्रमें स्नान करे। स्नानोपरान्त देवता, ... और मनुष्योंका तर्पण करनेकी विधि है। तद[नन्तर] जलसे बाहर आकर दो स्वच्छ वस्त्र धारण करे। फिर आचमन करके पवित्रतापूर्वक सूर्योदयके स[मय] समुद्रके तटपर पूर्वाभिमुख होकर बैठ जाय। ... चन्दन और जलसे ताँबेके पात्रमें एक अष्टदल कमल[की] ऐसी आकृति बनाये जो केसरयुक्त और गोलाकार हो। उसकी कर्णिका ऊपरकी ओर उठी हो। फिर ति[ल], चावल, जल, लाल चन्दन, लाल फूल और कुशा उ[स] पात्रमें रख दे। ताँबेका बर्तन न मिले तो मदार[के] पत्तेका दोना बनाकर उसीमें तिल आदि रखे। ... पात्रको एक दूसरे पात्रसे ढक देना चाहिये। इसके ... हृदय आदि अङ्गोंके क्रमसे अङ्गन्यास और कर[न्यास] करके पूर्ण श्रद्धाके साथ अपने आत्मस्वरूप भग[वान्] सूर्यका ध्यान करे।

इसके बाद पूर्वोक्त अष्टदल कमलके मध्यभागमें त[था] अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य और ईशान कोणोंके द[लों]...

* कोणादित्यकी सम्प्रति ... स्थिति सम्बन्धमें आगे निबन्ध दिये गये हैं।

न: मध्यभागमें क्रमशः प्रभूत, विमल, सार, , परम और सुखस्वरूप सूर्यदेवका पूजन करे। र वहाँ आकाशसे सूर्यदेवका आवाहन करके कि ऊपर उनकी स्थापना करे । तत्पश्चात् सुमुख और सम्पुट आदि मुद्राएँ दिखाये। फिर ो स्नान आदि कराकर एकाग्रचित्त हो इस ध्यान करे—'भगवान् सूर्य श्वेत कमलके आसनपर ण्डलमें विराजमान हैं। उनकी आँखें पीली और ा रंग लाल है। उनके दो भुजाएँ हैं। उनका क कमलके समान लाल है। वे सब प्रकारके शुभ से युक्त और सभी तरहके आभूषणोंसे विभूषित उनका रूप सुन्दर है। वे वर देनेवाले तथा शान्त प्रभापुञ्जसे देदीप्यमान हैं।' तदनन्तर उदयकालमें सिन्दूरके समान अरुण वर्णवाले भगवान् सूर्यका करके अर्घ्यपात्र ले। उसे सिरके पास लगाये पृथ्वीपर घुटने टेककर मौन हो एकाग्रचित्तसे त्र्यक्षर ा उच्चारण करते हुए भगवान् सूर्यको अर्घ्य दे। पुरुषको दीक्षा नहीं दी गयी है, वह भावयुक्त के साथ सूर्यका नाम लेकर ही अर्घ्य दे; क्योंकि न् सूर्य भक्तिके द्वारा ही वशमें होते हैं।

अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य एवं ईशानकोण, मध्यभाग पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमशः हृदय, सिर, शिखा, , नेत्र और अस्त्रकी पूजा करे।* फिर अर्घ्य देना ये। गन्ध, धूप, दीप और नैवेद्य निवेदनकर जप, स्तुति, कार तथा मुद्रा करके देवताका विसर्जन करे। जो ण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री और शूद्र अपनी इन्द्रियोंको ें रखते हुए सदा संयमपूर्वक भक्तिभाव और विशुद्ध चित्तसे भगवान् सूर्यको अर्घ्य देते हैं, वे मनोवाञ्छित भोगोंका उपभोग करके परम गतिको प्राप्त होते हैं।† जो मनुष्य तीनों लोकोंको प्रकाशित करनेवाले आकाश-विहारी भगवान् सूर्यकी शरण लेते हैं, वे सुखके भागी होते हैं। जबतक भगवान् सूर्यको विधिपूर्वक अर्घ्य न दे दिया जाय, तबतक श्रीविष्णु, शंकर अथवा इन्द्रका पूजन नहीं करना चाहिये। अतः प्रतिदिन पवित्र हो प्रयत्न करके मनोहर फूलों और चन्दन आदिके द्वारा सूर्यदेवको अर्घ्य देना आवश्यक है। इस प्रकार जो सप्तमी तिथिको स्नान करके शुद्ध एवं एकाग्रचित्त हो सूर्यको अर्घ्य देता है, उसे मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। रोगी पुरुष रोगसे मुक्त हो जाता है, धनकी इच्छा रखनेवालेको धन मिलता है, विद्यार्थीको विद्या प्राप्त होती है और पुत्रकी कामना रखनेवाला मनुष्य पुत्रवान् होता है।

इस प्रकार समुद्रमें स्नान करके सूर्यको अर्घ्य दे, उन्हें प्रणाम करे, फिर हाथमें फूल लेकर मौन हो सूर्यके मन्दिरमें जाय। मन्दिरके भीतर प्रवेश करके भगवान् कोणादित्यकी तीन बार प्रदक्षिणा करे और अत्यन्त भक्तिके साथ गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, साष्टाङ्ग प्रणाम, जय-जयकार तथा स्तोत्रोंद्वारा उनकी पूजा करे। इस प्रकार सहस्र किरणोंद्वारा मण्डित जगदीश्वर सूर्यदेवका पूजन करके मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है। इतना ही नहीं, वह सब पापोंसे मुक्त हो दिव्य शरीर धारण करता है और अपने आगे-पीछेकी सात-सात पीढ़ियोंका उद्धार करके सूर्यके समान तेजस्वी एवं इच्छानुसार गमन करनेवाले विमानपर

---

* पूजनके वाक्य इस प्रकार हैं—ह्रां हृदयाय नमः, अग्निकोणे। ह्रूं शिरसे नमः, नैर्ऋत्ये। ह्रूं शिखायै नमः, व्ये। ह्रैं कवचाय नमः, ऐशाने। ह्रौं नेत्रत्रयाय नमः, मध्यभागे। ह्रः अस्त्राय नमः, चतुर्दिक्षु इति।

† ये चार्घ्यं सम्प्रयच्छन्ति सूर्याय नियतेन्द्रियाः। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्राश्च संयताः॥
भक्तिभावेन सततं विशुद्धेनान्तरात्मना। ते भुक्त्वाभिमतान् कामान् प्राप्नुवन्ति परां गतिम्॥
(२८। ३०-३८)

बैठकर सूर्यके लोकमें जाता है। उस समय गन्धर्वगण उसका यशोगान करते हैं। वहाँ एक कल्पतक श्रेष्ठ भोगोंका उपभोग करके पुण्य क्षीण होनेपर वह पुनः इस संसारमें आता और योगियोंके उत्तम कुलमें जन्म ले चारों वेदोंका विद्वान्, स्वधर्मपरायण तथा पवित्र ब्राह्मण होता है। तदनन्तर भगवान् सूर्यसे ही योगकी शिक्षा प्राप्त करके मोक्ष पा लेता है। चैत्र मासके शुक्लपक्षमें भगवान् कोणादित्यकी यात्रा होती है। यह यात्रा दमनभंजिकाके नामसे विख्यात है। जो मनुष्य यह यात्रा करता है, उसे भी पूर्वोक्त फलकी प्राप्ति होती है। भगवान् सूर्यके शयन और जागरणके समय, संक्रान्तिके दिन, विषुवयोगमें उत्तरायण या दक्षिणायन आरम्भ होनेपर, रविवारको सप्तमी तिथिको अथवा पर्वके समय जो जितेन्द्रिय पुरुष वहाँकी श्रद्धापूर्वक यात्रा करते हैं, वे सूर्यकी भाँति तेजस्वी विमानके द्वारा उनके लोकमें जाते हैं। वहाँ (पूर्वोक्त क्षेत्रमें) समुद्रके तटपर रामेश्वर नामसे विख्यात भगवान् महादेवजी विराजमान हैं, जो समस्त अभिलषित फलोंके देनेवाले हैं। जो समुद्रमें स्नान करके वहाँ श्रीरामेश्वरका दर्शन करते और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नमस्कार, स्तोत्र, गीत और मनोहर वाद्योंद्वारा उनकी पूजा करते हैं, वे महात्मा पुरुष राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञोंका फल पाते और परम सिद्धिको प्राप्त होते हैं।

भगवान् सूर्यकी महिमा

मुनियोंने कहा—सुरश्रेष्ठ ! आपने भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवान् भास्करके उत्तम क्षेत्रका जो वर्णन किया है, वह सब हमलोगोंने सुना। अब यह बताइये कि उनकी भक्ति कैसे की जाती है और वे किस प्रकार प्रसन्न होते हैं ? इस समय यही सब सुननेकी हमारी इच्छा है।

ब्रह्माजी बोले—मनके द्वारा [illegible] भावना होती है, उसे ही भक्ति और जो इष्टदेवकी कथा सुनना, उनके भ[illegible] तथा अग्निकी उपासनामें संलग्न रहना भक्त है। जो इष्टदेवका चिन्तन कर[illegible] ध्याता, उन्हींकी पूजामें रत रहता त[illegible] काम करता है, वह निश्चय ही सनातन इष्टदेवके लिये किये जानेवाले कर्मोंका अ[illegible] उनके भक्तोंमें दोष नहीं देखता, [illegible] निन्दा नहीं करता, सूर्यके व्रत रखता तथा [illegible] ठहरते, सोते, सूँघते और आँख खोलते[illegible] भगवान् भास्करका स्मरण करता है, वह [illegible] भक्त माना गया है। विज्ञ पुरुषको सद[illegible] भक्ति करनी चाहिये। भक्ति, समाधि, स्तुति [illegible] जो नियम किया जाता है और ब्राह्मणको [illegible] जाता है, उसे देवता, मनुष्य और पितर—सभी [illegible] हैं। पत्र, पुष्प, फल और जल—जो कुछ [illegible] पूर्वक अर्पण किया जाता है, उसे देवता ग्र[illegible] हैं; परंतु वे नास्तिकोंकी दी हुई वस्तु नहीं करते। नियम और आचारके साथ भावशुद्धि [illegible] उपयोग करना चाहिये। हृदयके भावको शुद्ध र[illegible] जो कुछ किया जाता है, वह सब सफल होत[illegible] भगवान् सूर्यके स्तवन, जप, उपहार-समर्पण, [illegible] उपवास (व्रत) और भजनसे मनुष्य सब पापोंसे [illegible] हो जाता है। जो पृथ्वीपर मस्तक रखकर [illegible] सूर्यको नमस्कार करता है, वह तत्काल सब पापोंसे [illegible] जाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो म[illegible] भक्तिपूर्वक सूर्यदेवकी प्रदक्षिणा करता है, उसके [illegible] सातों द्वीपोंसहित पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है। [illegible] सूर्यदेवको अपने हृदयमें धारण करके केवल [illegible] प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा निश्चय ही

[प]रिक्रमा हो जाती है।* जो षष्ठी या सप्तमीको [एक] समय भोजन करके नियम और व्रतका पालन करते [हुए] सूर्यदेवका भक्तिपूर्वक पूजन करता है, उसे अश्वमेध [यज्ञ]का फल मिलता है। जो षष्ठी अथवा सप्तमीको [दि]न-रात उपवास करके भगवान् भास्करका पूजन करता [है], वह परमगतिको प्राप्त होता है।

[जब] शुक्लपक्षकी सप्तमीको रविवार हो, उस दिन [वि]जयासप्तमी होती है। उसमें दिया हुआ दान महान् [फ]ल देनेवाला है। विजयासप्तमीको किया हुआ स्नान, [दा]न, तप, होम और उपवास—सब कुछ बड़े-बड़े [पात]कोंका नाश करनेवाला है। जो मनुष्य रविवारके [दि]न श्राद्ध करते और महातेजस्वी सूर्यका यजन करते [हैं], उन्हें अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। जिनके समस्त [ध]ार्मिक कार्य सदा भगवान् सूर्यके उद्देश्यसे होते हैं, उनके [कु]लमें कोई दरिद्र अथवा रोगी नहीं होता। जो सफेद, [ला]ल अथवा पीली मिट्टीसे भगवान् सूर्यके मन्दिरको लीपता है, उसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है। जो निराहार [र]हकर भाँति-भाँतिके सुगन्धित पुष्पोंद्वारा सूर्यदेवका [पू]जन करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। जो तिलके तेलसे दीपक जलाकर भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह कभी अन्धा नहीं होता। दीप-दान करनेवाला मनुष्य सदा ज्ञानके प्रकाशसे प्रकाशित रहता है। जो सदा देव-मन्दिरों, चौराहों और सड़कोंपर दीप-दान करता है, वह रूपवान् तथा सौभाग्यशाली होता है। दीपकी शिखा सदा ऊपरकी ही ओर उठती है, उसकी गति कभी नीचेकी ओर नहीं होती। इसी प्रकार दीप-दान करनेवाला पुरुष भी दिव्य तेजसे प्रकाशित होता है। वह कभी तिर्यग्योनिमें नहीं पड़ता। जलते हुए दीपकको न कभी चुराये, न नष्ट करे। दीपहर्ता मनुष्य बन्धन, नाश, क्रोध एवं तमोमय नरकको प्राप्त होता है। उदयकालमें प्रतिदिन सूर्यको अर्घ्य देनेसे एक ही वर्षमें सिद्धि प्राप्त होती है। सूर्यके उदयसे लेकर अस्ततक उनकी ओर मुँह करके खड़ा हो किसी मन्त्र अथवा स्तोत्रका जप करना आदित्यव्रत कहलाता है। यह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। सूर्योदयके समय श्रद्धापूर्वक अर्घ्य देकर सब कुछ साङ्गोपाङ्ग दान करे। इससे सब पापोंसे छुटकारा मिल जाता है†। अग्नि, जल, आकाश, पवित्र भूमि, प्रतिमा तथा पिण्डी (प्रतिमाकी वेदी)में यत्नपूर्वक सूर्यदेवको अर्घ्य देना चाहिये।‡ उत्तरायण अथवा दक्षिणायनमें सूर्यदेवका विशेषरूपसे पूजन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार जो मानव प्रत्येक वेलामें अथवा कुवेलामें भी भक्तिपूर्वक श्रीसूर्यदेवका पूजन करता है, वह उन्हींके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो तीर्थमें पवित्र हो भगवान् सूर्यको स्नान करानेके लिये एकाग्रमनापूर्वक जल भरकर लाता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है।

---

* भावशुद्धिः प्रयोक्तव्या नियमाचारसंयुता। भावशुद्धया क्रियते यत्तत्सर्वं सफलं भवेत्॥
स्तुतिजप्योपहारेण पूजयापि विवस्वतः। उपवासेन भक्त्या वै सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
प्रणिपाय शिरो भूम्या नमस्कारं करोति यः। तत्क्षणात् सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥
भक्तियुक्तो नरो योऽसौ रवेः कुर्यात् प्रदक्षिणाम्। प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥
सूर्यं मनसि यः कृत्वा कुर्याद् व्योमप्रदक्षिणाम्। प्रदक्षिणीकृतास्तेन सर्वे देवा भवन्ति हि॥
(२९। १७—२१)

† अर्घ्येण सहितं चैव सर्वं साङ्गं प्रदापयेत्। उदये श्रद्धया युक्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
(२९। ४६)

‡ अग्नौ तोयेऽन्तरिक्षे च शुचौ भूम्यां तथैव च। प्रतिमायां तथा पिण्ड्यां देयमर्घ्यं प्रयत्नतः॥
(२९। ४८)

माना गया है। उसके सब ओर हाथ-पैर हैं, सब ओर नेत्र, सिर और मुख हैं तथा सब ओर कान हैं। वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है।* सम्पूर्ण मस्तक उसके मस्तक, सम्पूर्ण भुजाएँ उसकी भुजा, सम्पूर्ण पैर उसके पैर, सम्पूर्ण नेत्र उसके नेत्र एवं सम्पूर्ण नासिकाएँ उसकी नासिका है। वह स्वेच्छाचारी है और अकेला ही सम्पूर्ण क्षेत्रमें सुखपूर्वक विचरता है। यहाँ जितने शरीर हैं, ये सभी क्षेत्र कहलाते हैं। उन सबको यह योगात्मा जानता है, इसलिये क्षेत्रज्ञ कहलाता है। अव्यक्त पुरमें शयन करता है, अतः उसे पुरुष कहते हैं। विश्वका अर्थ है बहुविध, यह परमात्मा सर्वत्र बतलाया जाता है, इसीलिये बहुविधरूप होनेके कारण यह विश्वरूप माना गया है। एकमात्र यही महान् है और एकमात्र वही पुरुष कहलाता है। अतः यह एकमात्र सनातन परमात्मा ही महापुरुष नाम धारण करता है। वह परमात्मा स्वयं ही अपने आपको सौ, हजार, लाख और करोड़ों रूपोंमें प्रकट कर लेता है। जैसे आकाशसे गिरा हुआ जल भूमिके रसविशेषसे दूसरे स्वादका हो जाता है, उसी प्रकार गुणमय रसके सम्पर्कसे वह परात्मा अनेकरूप प्रतीत होने लगता है। जैसे एक ही वायु समस्त शरीरमें पाँच रूपोंमें स्थित है, उसी प्रकार आत्माकी भी एकता और अनेकता मानी गयी है। जैसे अग्नि दूसरे स्थानकी विशेषतासे अन्य नाम धारण करती है, उसी प्रकार वह परमात्मा ब्रह्मा आदिके रूपोंमें भिन्न-भिन्न नाम धारण करता है। जैसे एक दीप हजारों दीपोंको प्रकट करता है, वैसे ही वह एक ही परमात्मा हजारों रूपोंको उत्पन्न करता है। संसारमें जो चराचर भूत हैं, वे नित्य नहीं हैं;

[illegible] वह [illegible] अनेक [illegible] नाश है। वह [illegible] है। [illegible] तथा [illegible] उनकी [illegible] उसे [illegible] कोई [illegible] उसका ज्ञान [illegible] उसी [illegible] पूजन करता हूँ। [illegible] जो और उस परमेश्वरको नमस्कार करते [illegible] ज्ञान [illegible] प्राप्त होते हैं। अपने-अपने आश्रमोंमें स्थित मनुष्य भक्ति[illegible] आदिभूत उस परमात्माका पूजन करते हैं [illegible] सद्गति प्रदान करते हैं। वे सर्वात्मा, सर्व[illegible] कहलाते हैं। मैं भगवान् सूर्यको ऐसा [illegible] ज्ञानके अनुसार उनका पूजन करता हूँ। [illegible] यह गोपनीय उपदेश मैंने अपनी भक्तिके कारण बतलाया है। आपने भी इस उत्तम इतिहासको [illegible] समझ लिया। देवता, मुनि और पुराण—[illegible] परमात्माको वरदायक मानते हैं और इसी [illegible] लोग भगवान् दिवाकरका पूजन करते हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—इस प्रकार मित्रदेवने [illegible] कालमें नारदजीको यह उपदेश दिया था। [illegible] उपदेशको मैंने भी आपलोगोंसे कह सुनाया। जो सू[illegible] भक्त न हो, उसे इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो मनुष्य प्रतिदिन इस प्रसङ्गको सुनाता [illegible] सुनता है, वह निःसंदेह भगवान् सूर्यमें प्रवे[illegible] करता है। आरम्भसे ही इस कथाको सुनकर रोगी मनुष्य रोगसे मुक्त हो जाता है और जिज्ञासुको उत्तम ज्ञान एवं अभीष्ट गतिकी प्राप्ति होती है। मुनियो!

---

* वसन्नपि शरीरेषु न स लिप्येत कर्मभिः। ममान्तरात्मा तव च ये चान्ये देहसंस्थिताः॥
सर्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यः केनचित् क्वचित्। सगुणो निर्गुणो विश्वो ज्ञानगम्यो ह्यसौ स्मृतः॥
सर्वतः पाणिपादान्तः सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः। सर्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥
(१०। ६३-६५)

...का पाठ करता है, वह जिस-जिस वस्तुकी ...करता है, उसे निश्चय ही प्राप्त कर लेता है।

...की महिमा तथा अदितिके गर्भसे उनके अवतारका वर्णन

...ह्माजी कहते हैं—भगवान् सूर्य सबके आत्मा, ...लोकोंके ईश्वर, देवताओंके भी देवता और प्रजापति ...ही तीनों लोकोंकी जड़ हैं, परम देवता हैं। ... विधिपूर्वक डाली हुई आहुति सूर्यके पास ही ... है। सूर्यसे वृष्टि होती है, वृष्टिसे अन्न पैदा होता ... अन्नसे प्रजा जीवन-निर्वाह करती है। क्षण, ... दिन, रात, पक्ष, मास, संवत्सर, ऋतु और युग— ... काल-संख्या सूर्यके बिना नहीं हो सकती। ... ज्ञान हुए बिना न कोई नियम चल सकता है ...न अग्निहोत्र आदि ही हो सकते हैं। सूर्यके ... ऋतुओंका विभाग भी नहीं होगा और उसके ... वृक्षोंमें फल और फूल कैसे लग सकते हैं, खेती ...क सकती है और नाना प्रकारके अन्न कैसे ... हो सकते हैं। उस दशामें स्वर्गलोक तथा ...में जीवोंके व्यवहारका भी लोप हो जायगा। ..., सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रभाकर, मार्तण्ड, ..., भानु, चित्रभानु, दिवाकर तथा रवि—इन ... सामान्य नामोंके द्वारा भगवान् सूर्यका ही बोध ... है। विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, ..., विवस्वान्, अंशुमान्, त्वष्टा तथा पर्जन्य—ये ... सूर्य पृथक्-पृथक् माने गये हैं। चैत्र मासमें विष्णु, ...में अर्यमा, ज्येष्ठमें विवस्वान्, आषाढ़में अंशुमान्, ...में पर्जन्य, भादोंमें वरुण, आश्विनमें इन्द्र, कार्तिकमें ... अगहनमें मित्र, पौषमें पूषा, माघमें भग और फाल्गुनमें त्वष्टा नामक सूर्य तपते हैं। इस प्रकार यहाँ एक ही सूर्यके चौबीस नाम बताये गये हैं। इनके अतिरिक्त और भी हजारों नाम विस्तारपूर्वक कहे गये हैं।

मुनियोंने पूछा—प्रजापते! जो एक हजार नामोंके द्वारा भगवान् सूर्यकी स्तुति करते हैं, उन्हें क्या पुण्य होता है तथा उनकी कैसी गति होती है?

ब्रह्माजी बोले—मुनिवरो! मैं भगवान् सूर्यका कल्याणमय सनातन स्तोत्र कहता हूँ, जो सब स्तुतियोंका सारभूत है। इसका पाठ करनेवालोंको सहस्र नामोंकी आवश्यकता नहीं रह जाती। भगवान् भास्करके जो पवित्र, शुभ एवं गोपनीय नाम हैं, उन्हींका वर्णन करता हूँ, सुनो। विकर्तन, विवस्वान्, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोकप्रकाशक, श्रीमान्, लोकचक्षु, महेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, कर्ता, हर्ता, तमिस्रहा, तपन, तापन, शुचि, सप्ताश्ववाहन, गभस्तिहस्त, ब्रह्मा और सर्वदेवनमस्कृत—इस प्रकार इक्कीस नामोंका यह स्तोत्र भगवान् सूर्यको सदा प्रिय है।* यह शरीरको नीरोग बनानेवाला, धनकी वृद्धि करनेवाला और यश फैलानेवाला स्तोत्रराज है। इसकी तीनों लोकोंमें प्रसिद्धि है। द्विजवरो! जो सूर्यके उदय और अस्तकालमें दोनों सन्ध्याओंके समय इस स्तोत्रके द्वारा भगवान् सूर्यकी स्तुति करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। भगवान् सूर्यके समीप एक बार भी इसका जप करनेसे मानसिक, वाचिक, शारीरिक तथा कर्मजनित सब पाप नष्ट हो जाते हैं। अतः ब्राह्मणो! आपलोग यत्नपूर्वक सम्पूर्ण अभिलषित फलोंके देनेवाले भगवान् सूर्यका इस स्तोत्रके द्वारा स्तवन करें।

मुनियोंने पूछा—भगवन्! आपने भगवान् सूर्यको निर्गुण एवं सनातन देवता बतलाया है, फिर आपके ही

---

* विकर्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रविः। लोकप्रकाशकः श्रीमाँल्लोकचक्षुर्महेश्वरः॥
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्ता हर्ता तमिस्रहा। तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः॥
गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्वदेवनमस्कृतः। एकविंशतिरित्येष स्तव इष्टः सदा रवेः॥
(३१ । ३१—३३)

[illegible] हुए। वे देवताओंकी गति और महान् [illegible] किस प्रकार प्रकट हुए, इस विषयमें मुझे बड़ा संदेह है।

ब्रह्माजी बोले—प्रजापति दक्षके साठ कन्याएँ हुईं, जो श्रेष्ठ और सुन्दरी थीं। उनके नाम अदिति, दिति, दनु और विनता आदि थे। उनमेंसे तेरह कन्याओंका विवाह दक्षने कश्यपजीसे किया था। अदितिने तीनों लोकोंके स्वामी देवताओंको जन्म दिया। दितिसे दैत्य और दनुसे बलाभिमानी भयङ्कर दानव उत्पन्न हुए। विनता आदि अन्य स्त्रियोंने भी स्थावर-जङ्गम भूतोंको जन्म दिया। इन दक्ष-सुताओंके पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया। कश्यप-के पुत्रोंमें देवता प्रधान हैं। वे सात्त्विक हैं। इनके अतिरिक्त दैत्य आदि राजस और तामस हैं। देवताओंको यज्ञका भागी बनाया गया है। परंतु दैत्य और दानव उनसे शत्रुता रखते थे। अतः वे मिलकर उन्हें कष्ट पहुँचाने लगे। माता अदितिने देखा, दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रों-को अपने स्थानसे हटा दिया और सारी त्रिलोकी नष्टप्राय कर दी। तब उन्होंने भगवान् सूर्यकी आराधनाके लिये महान् प्रयत्न किया। वे नियमित आहार करके कठोर नियमका पालन करती हुई एकाग्रचित्त हो आकाशमें स्थित तेजोराशि भगवान् भास्करका स्तवन करने लगीं।

अदिति बोलीं—भगवन्! आप अत्यन्त सूक्ष्म, परम पवित्र और अनुपम तेज धारण करते हैं। तेजस्वियोंके ईश्वर, तेजके आधार तथा सनातन देवता हैं। आपको नमस्कार है। गोपते! [illegible] [illegible] है। प्रभाकर! [illegible] आठ मासतक पृथ्वीके जलरूप रसको ग्रहण [illegible] प्रणाम करती हूँ। आपका [illegible] से संयुक्त होता है। आप गुणात्मा [illegible] विभावसो! आपका जो रूप ऋक्, यजुः [illegible] एकताको प्राप्त होकर इस विश्वके रूपमें तपता [illegible] नमस्कार है। सनातन! उससे भी परे जो [illegible] प्रतिपादित स्थूल एवं सूक्ष्मरूप निर्मल स्वरूप है, उसको मेरा प्रणाम है।*

ब्रह्माजी कहते हैं—इस प्रकार बहुत [illegible] आराधना करनेपर भगवान् सूर्यने दक्षकन्या [illegible] अपने तेजोमय स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन कराया।

अदिति बोलीं—जगत्‌के आदिकारण [illegible] सूर्य! आप मुझपर प्रसन्न हों। गोपते! मैं [illegible] भलीभाँति देख नहीं पाती। दिवाकर! आप ऐसी [illegible] करें, जिससे मुझे आपके रूपका भलीभाँति दर्शन [illegible] सके। भक्तोंपर दया करनेवाले प्रभो! मेरे पुत्र आ[illegible] भक्त हैं। आप उनपर कृपा करें।

तब भगवान् भास्करने अपने सामने पड़ी हुई [illegible] स्पष्ट दर्शन देकर कहा—'देवि! आपकी जो इच्छा [illegible] उसके अनुसार मुझसे कोई एक वर माँग लो।'

---

* नमस्तुभ्यं परं सूक्ष्मं सुपुण्यं बिभ्रतेऽतुलम्। धाम धामवतामीश धामाधारं च शाश्वतम्॥
जगतामुपकाराय त्वामहं स्तौमि गोपते। आददानस्य यद्रूपं तीव्रं तस्मै नमाम्यहम्॥
ग्रहीतुमष्टमासेन कालेनाम्बुमयं रसम्। बिभ्रतस्तत्र यद्रूपमतितीव्रं नतास्मि तत्॥
समेतमग्निसोमाभ्यां नमस्तस्मै गुणात्मने। यद्रूपमृग्यजुः साम्नामैक्येन तपते तव॥
विश्वमेतत्त्रयीसंज्ञं नमस्तस्मै विभावसो। ... ...
यत्तु तस्मात्परं रूपमोमित्युक्त्वाभिसंहितम्। अस्थूलं स्थूलममलं नमस्तस्मै सनातन॥ ...
(३२। १२—१६)

अदिति बोलीं—देव ! आप प्रसन्न हों। अधिक बलवान् दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रोंके हाथसे त्रिलोकीका राज्य और यज्ञभाग छीन लिया है। गोपते ! उन्हींके लिये आप मेरे ऊपर कृपा करें। अपने अंशसे मेरे पुत्रोंके भाई होकर आप उनके शत्रुओंका नाश करें।

भगवान् सूर्यने कहा—देवि ! मैं अपने हजारवें अंशसे तुम्हारे गर्भका बालक होकर प्रकट होऊँगा और तुम्हारे पुत्रोंके शत्रुओंका नाश करूँगा।

यों कहकर भगवान् भास्कर अन्तर्हित हो गये और देवी अदिति भी अपना समस्त मनोरथ सिद्ध हो जानेके कारण तपस्यासे निवृत्त हो गयीं। तत्पश्चात् वर्षके अन्तमें देवमाता अदितिकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये भगवान् सविताने उनके गर्भमें निवास किया। उस समय देवी अदिति यह सोचकर कि मैं पवित्रतापूर्वक ही इस दिव्य गर्भको धारण करूँगी, एकाग्रचित्त होकर कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रतोंका पालन करने लगीं। उनका यह कठोर नियम देखकर कश्यपजीने कुछ कुपित होकर कहा—'तू नित्य उपवास करके गर्भके बच्चेको क्यों मारे डालती है ?' तब वे भी रुष्ट होकर बोलीं—'देखिये, यह रहा गर्भका बच्चा। मैंने इसे मारा नहीं है, यह अपने शत्रुओंका मारनेवाला होगा।' यों कहकर देवमाताने उसी समय उस गर्भका प्रसव किया। वह उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी अण्डाकार गर्भ सहसा प्रकाशित हो उठा। उसे देखकर कश्यपजीने वैदिक वाणीके द्वारा आदरपूर्वक उसका स्तवन किया। स्तुति करनेपर उस गर्भसे बालक प्रकट हो गया। उसके अङ्गोंकी आभा पद्मपत्रके समान श्याम थी। उसका तेज सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त हो गया। इसी समय अन्तरिक्षसे कश्यप मुनिको सम्बोधित करके मेघके समान गम्भीर स्वरमें आकाशवाणी हुई—'मुने ! तुमने अदितिसे कहा था—'त्वया मारितमण्डम्' (तूने इस अंडेके बच्चेको मार डाला), इसलिये तुम्हारा यह पुत्र मार्तण्डके नामसे विख्यात होगा और यज्ञभागका अपहरण करनेवाले, अपने शत्रुभूत असुरोंका संहार करेगा।' यह आकाशवाणी सुनकर देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ और दानव हतोत्साह हो गये। तत्पश्चात् देवताओंसहित इन्द्रने दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा। दानवोंने भी आकर उनका सामना किया। उस समय देवताओं और असुरोंमें बड़ा भयानक युद्ध हुआ। उस युद्धमें भगवान् मार्तण्डने दैत्योंकी ओर देखा, अतः वे सभी महान् असुर उनके तेजसे जलकर भस्म हो गये। फिर तो देवताओंके हर्षकी सीमा नहीं रही। उन्होंने अदिति और मार्तण्डका स्तवन किया। तदनन्तर देवताओंको पूर्ववत् अपने-अपने अधिकार और यज्ञभाग प्राप्त हो गये। भगवान् मार्तण्ड भी अपने अधिकारका पालन करने लगे। ऊपर और नीचे सब ओर किरणें फैली होनेसे भगवान् सूर्य कदम्बपुष्पकी भाँति शोभा पाते थे। वे आगमें तपाये हुए गोलेके सदृश दिखायी देते थे। उनका विग्रह अधिक स्पष्ट नहीं जान पड़ता था।

श्रीसूर्यदेवकी स्तुति तथा उनके अष्टोत्तरशत नामोंका वर्णन

मुनियोंने कहा—भगवन् ! आप पुनः हमें सूर्यदेवसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा सुनाइये।

ब्रह्माजी बोले—स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणियोंके नष्ट हो जानेपर जिस समय सम्पूर्ण लोक अन्धकारमें विलीन हो गये थे, उस समय सबसे पहले प्रकृतिसे गुणोंकी हेतुभूत समष्टि बुद्धि (महत्तत्त्व)का आविर्भाव हुआ। उस बुद्धिसे पञ्चमहाभूतोंका प्रवर्तक अहंकार प्रकट हुआ। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पाँच महाभूत हुए। तदनन्तर एक अण्ड उत्पन्न हुआ। उसमें ये सातों लोक प्रतिष्ठित थे। सातों द्वीपों और समुद्रोंसहित पृथ्वी भी थी। उसीमें मैं, विष्णु और महादेवजी भी थे। वहाँ सब लोग तमोगुणसे अभिभूत एवं विमूढ थे और परमेश्वरका ध्यान करते थे। तदनन्तर अन्धकारको

दूर करनेवाले एक महातेजस्वी देवता प्रकट हुए । उस समय हमलोगोंने ध्यानके द्वारा जाना कि ये भगवान् सूर्य हैं । उन परमात्माको जानकर हमने दिव्य स्तुतियोंके द्वारा उनका स्तवन आरम्भ किया—'भगवन् ! तुम आदिदेव हो । ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण तुम देवताओंके ईश्वर हो । सम्पूर्ण भूतोंके आदिकर्ता भी तुम्हीं हो । तुम्हीं देवाधिदेव दिवाकर हो । सम्पूर्ण भूतों, देवताओं, गन्धर्वों, राक्षसों, मुनियों, किन्नरों, सिद्धों, नागों तथा पक्षियोंका जीवन तुमसे ही है । तुम्हीं ब्रह्मा, तुम्हीं महादेव, तुम्हीं विष्णु, तुम्हीं प्रजापति तथा तुम्हीं वायु, इन्द्र, सोम, विवस्वान् एवं वरुण हो । तुम्हीं काल हो, सृष्टिके कर्ता, धर्ता, संहर्ता और प्रभु भी तुम्हीं हो । नदी, समुद्र, पर्वत, बिजली, इन्द्रधनुष, प्रलय, सृष्टि, व्यक्त, अव्यक्त एवं सनातन पुरुष तुम्हीं हो । साक्षात् परमेश्वर तुम्हीं हो । तुम्हारे हाथ और पैर सब ओर हैं । नेत्र, मस्तक और मुख भी सब ओर हैं । तुम्हारे सहस्रों किरणें, सहस्रों मुख, सहस्रों चरण और सहस्रों नेत्र हैं । तुम सम्पूर्ण भूतोंके आदिकारण हो । भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम्—ये सब तुम्हारे ही स्वरूप हैं । तुम्हारा जो स्वरूप अत्यन्त तेजस्वी, सबका प्रकाशक, दिव्य, सम्पूर्ण लोकोंमें प्रकाश बिखेरनेवाला

और देवेश्वरोंके द्वारा भी कठिनतासे देखे [illegible] है, उसको हमारा नमस्कार है । देवता और [illegible] जिसका सेवन करते हैं, भृगु, अत्रि और पुल[illegible] महर्षि जिसकी स्तुतिमें संलग्न रहते हैं तथा जो अ[illegible] अव्यक्त है, उस तुम्हारे स्वरूपको हमारा प्रणाम [illegible] सम्पूर्ण देवताओंमें उत्कृष्ट तुम्हारा जो रूप वे[illegible] पुरुषोंके द्वारा जानने योग्य, नित्य और सर्वज्ञान[illegible] है, उसको हमारा नमस्कार है । तुम्हारा जो [illegible] इस विश्वकी सृष्टि करनेवाला, विश्वमय, अग्नि [illegible] देवताओंद्वारा पूजित, सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त [illegible] अचिन्त्य है, उसे हमारा प्रणाम है । तुम्हारा जो [illegible] यज्ञ, वेद, लोक तथा द्युलोकसे भी परे परम[illegible] विख्यात है, उसको हमारा नमस्कार है । जो [illegible] अलक्ष्य, अचिन्त्य, अव्यय, अनादि और अनन्त [illegible] उस स्वरूपको हमारा प्रणाम है । प्रभो ! तुम [illegible] भी कारण हो, तुमको बारंबार नमस्कार है [illegible] मुक्त करनेवाले तुम्हें प्रणाम है, प्रणाम है [illegible] दैत्योंको पीड़ा देनेवाले और रोगोंसे छुटकारा दि[illegible] हो । तुम्हें अनेकानेक नमस्कार है । तुम सब[illegible] सुख, धन और उत्तम बुद्धि प्रदान करनेवाले तुम्हें बारंबार नमस्कार है* ।

---

* आदिदेवोऽसि देवानामैश्वर्याच्च त्वमीश्वरः । आदिकर्तासि भूतानां देवदेवो दिवाकरः ॥
जीवनः सर्वभूतानां देवगन्धर्वरक्षसाम् । मुनिकिंनरसिद्धानां तथैवोरगपक्षिणाम् ॥
त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः । वायुरिन्द्रश्च सोमश्च विवस्वान् वरुणस्तथा ॥
त्वं कालः सृष्टिकर्ता च हर्ता भर्ता तथा प्रभुः । सरितः सागराः शैला विद्युदिन्द्रधनूंषि च ॥
प्रलयः प्रभवश्चैव व्यक्ताव्यक्तः सनातनः । ईश्वरात्परतो विद्या विद्यायाः परतः शिवः ॥
शिवात्परतरो देवस्त्वमेव परमेश्वरः । सर्वतः पाणिपादान्तः सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ॥
सहस्रांशुः सहस्रास्यः सहस्रचरणेक्षणः । भूतादिर्भूर्भुवः स्वश्च महः सत्यं तपो जनः ॥
प्रदीप्तं दीपनं दिव्यं सर्वलोकप्रकाशकम् । दुर्निरीक्ष्यं सुरेन्द्राणां यद्रूपं तस्य ते नमः ॥
सुरसिद्धगणैर्जुष्टं भृग्वत्रिपुलहादिभिः । स्तुतं परममव्यक्तं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥
वेद्यं वेदविदां नित्यं सर्वज्ञानसमन्वितम् । सर्वदेवादिदेवस्य यद्रूपं तस्य ते नमः ॥
विश्वकृद्विश्वभूतं च वैश्वानरसुरार्चितम् । विश्वस्थितमचिन्त्यं च यद्रूपं तस्य ते नमः ॥
परं यज्ञात्परं वेदात्परं लोकात्परं दिवः । परमात्मेत्यभिख्यातं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥
अविज्ञेयमनालक्ष्यमध्यानगतमव्ययम् । अनादिनिधनं चैव यद्रूपं तस्य ते नमः ॥
नमो नमः कारणकारणाय नमो नमः पापविमोचनाय । नमो नमस्ते दितिजार्दनाय नमो नमो रोगविमो[illegible] ॥
नमो नमः सर्ववरप्रदाय नमो नमः सर्वसुखप्रदाय । नमो नमः सर्वधनप्रदा[illegible] ॥

इस प्रकार स्तुति करनेपर तेजोमय रूप धारण करनेवाले भगवान् भास्करने कल्याणमयी वाणीमें कहा—'आपलोगोंको कौन-सा वर प्रदान किया जाय ?'

देवताओंने कहा—प्रभो ! आपका रूप अत्यन्त तेजोमय है, इसके तापको कोई सह नहीं सकता। अतः जगत्‌के हितके लिये यह सबके सहने योग्य हो जाय।

तब 'एवमस्तु' कहकर आदिकर्ता भगवान् सूर्य सम्पूर्ण लोकोंके कार्य सिद्ध करनेके लिये समय-समयपर गर्मी, सर्दी और वर्षा करने लगे। तदनन्तर ज्ञानी, योगी, ध्यानी तथा अन्यान्य मोक्षाभिलाषी पुरुष अपने हृदय-मन्दिरमें स्थित भगवान् सूर्यका ध्यान करने लगे। समस्त शुभ लक्षणोंसे हीन अथवा सम्पूर्ण पातकोंसे युक्त ही क्यों न हो, भगवान् सूर्यकी शरण लेनेसे मनुष्य सब पापोंसे तर जाता है। अग्निहोत्र, वेद तथा अधिक दक्षिणावाले यज्ञ, भगवान् सूर्यकी भक्ति एवं नमस्कारकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते। भगवान् सूर्य तीर्थोंमें सर्वोत्तम तीर्थ, मङ्गलोंमें परम मङ्गलमय और पवित्रोंमें परम पवित्र हैं। अतः श्रेष्ठ पुरुष उनकी शरण लेते हैं। जो इन्द्र आदिके द्वारा प्रशंसित सूर्यदेवको नमस्कार करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो अन्तमें सूर्यलोकमें चले जाते हैं।

मुनियोंने कहा—ब्रह्मन् ! हमारे मनमें चिरकालसे यह इच्छा हो रही है कि भगवान् सूर्यके एक सौ आठ नामोंका वर्णन सुनें। आप उन्हें बतानेकी कृपा करें।

ब्रह्माजी बोले—ब्राह्मणो ! भगवान् भास्करके परम गोपनीय एक [illegible] है स्वर्ग और मोक्ष [illegible]

त्वष्टा, पूषा (पोषक), अर्क, सविता, रवि, गभस्तिमान् (किरणोंवाले), अज (अजन्मा), काल, मृत्यु, धाता (धारण करनेवाले), प्रभाकर (प्रकाशका खजाना), पृथ्वी, आप् (जल), तेज, ख (आकाश), वायु, परायण (शरण देनेवाले), सोम, बृहस्पति, शुक्र, बुध, अङ्गारक (मंगल), इन्द्र, विवस्वान्, दीप्तांशु (प्रज्वलित किरणोंवाले), शुचि (पवित्र), सौरि (सूर्यपुत्र मनु), शनैश्चर, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, स्कन्द (कार्तिकेय), वैश्रवण (कुबेर), यम, वैद्युत (बिजलीमें रहनेवाले), अग्नि, जाठराग्नि, ऐन्धन (ईन्धनमें रहनेवाले), अग्नि, तेजःपति, धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदाङ्ग, वेदवाहन, कृत (सत्ययुग), त्रेता, द्वापर, कलि, सर्वामराश्रय, कला, काष्ठा, मुहूर्त, क्षपा (रात्रि), याम (प्रहर), क्षण, संवत्सरकर, अश्वत्थ, कालचक्र, विभावसु (अग्नि), पुरुष, शाश्वत, योगी, व्यक्ताव्यक्त, सनातन, कालाध्यक्ष, प्रजाध्यक्ष, विश्वकर्मा, तमोनुद (अन्धकारको भगानेवाले), वरुण, सागर, अंश, जीमूत (मेघ), जीवन, अरिहा (शत्रुओंका नाश करनेवाले), भूताश्रय, भूतपति, सर्वलोकनमस्कृत, स्रष्टा, संवर्तक (प्रलयकालीन), अग्नि, सर्वादि, अलोलुप (निर्लोभ), अनन्त, कपिल, भानु, कामद (कामनाओंको पूर्ण करनेवाले), सर्वतोमुख (सब ओर मुखवाले), जय, विशाल, वरद, सर्वभूतनिषेवित, मन, सुपर्ण (गरुड़), भूतादि, शीघ्रग (शीघ्र चलनेवाले), प्राणधारण, धन्वन्तरि, धूमकेतु, आदिदेव, अदितिपुत्र, द्वादशात्मा (बारह स्वरूपोंवाले), रवि, दक्ष, पिता, माता, पितामह, स्वर्गद्वार, प्रजाद्वार, मोक्षद्वार, त्रिविष्टप (स्वर्ग), [illegible] प्रशान्तात्मा, विश्वात्मा, विश्वतोमुख, चराचरात्मा, [illegible] मैत्रेय तथा करुणान्वित (दयालु)* —ये

---

* कालो मृत्युर्धाता प्रभाकरः ।
[illegible] सविता शुक्रो बुधोऽङ्गारक एव च ॥
[illegible] रुद्रश्च स्कन्दो वैश्रवणो यमः ॥

अमित तेजस्वी एवं दीप्ति वाले ... भगवान् सूर्यके जितने ... एक सौ आठ सुन्दर नाम ... हैं। जो मनुष्य ... मुक्त हो जाता और ... भगवान् सूर्यके इस स्तोत्रका ... करता है।

भागवतीय सौर-सन्दर्भ

[इस भागवतीय सन्दर्भमें सूर्यके रथ और उनकी गति, भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें गतियाँ, शिशुमारचक्र तथा राहु आदिकी स्थिति एवं नीचेके लोकोंका पौराणिक वर्णन और कौतूहलपूर्ण वर्णन है।—सं०]

सूर्यके रथ और उसकी गति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! परिमाण और लक्षणोंके सहित इस भूमण्डलका कुल इतना ही विस्तार है, जो हमने तुम्हें सुना दिया। इसीके अनुसार विद्वान्‌लोग द्युलोकका भी परिमाण बताते हैं। जिस प्रकार चना, मटर आदिके दो दलोंमेंसे एकका स्वरूप जान लेनेसे दूसरेका भी जाना जा सकता है, उसी प्रकार भूर्लोकके परिमाणसे ही द्युलोकका भी परिमाण जान लेना चाहिये। इन दोनोंके बीचमें अन्तरिक्षलोक है। यह इन दोनोंका सन्धिस्थान है। इसके मध्यभागमें स्थित ग्रह और नक्षत्रोंके अधिपति भगवान् सूर्य अपने ताप और प्रकाशसे तीनों लोकोंको तपाते और प्रकाशित करते रहते हैं। वे उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवत् (मध्यम) नामोंसे क्रमशः मन्द, शीघ्र और समान गतियोंसे चलते हुए समयानुसार मकरादि राशियोंमें ऊँचे-नीचे और समान स्थानोंमें जाकर दिन-रातको बड़ा-छोटा और समान करते हैं। जब भगवान् सूर्य मेष या तुला राशिपर आते हैं, तो दिन-रात समान हो जाते हैं, जब वृष आदि पाँच राशियोंमें चलते हैं तो प्रतिमास रात्रियाँ एक-एक घड़ी कम होती जाती हैं और उसी हिसाबसे दिन बढ़ते जाते हैं। जब वृश्चिक आदि पाँच राशियोंमें चलते हैं, तब दिन और रात्रियोंमें इसके विपरीत परिवर्तन होता है अर्थात् दिन प्रतिमास एक-एक घड़ी घटते जाते हैं और रात्रियाँ बढ़ती जाती हैं। इस प्रकार दक्षिणायन आरम्भ होनेतक दिन बढ़ते रहते हैं और उत्तरायण आरम्भ होनेतक रात्रियाँ। (उत्तरायणमें दिन बड़ा रात छोटी होती है।)

इस प्रकार पण्डितजन मानसोत्तर पर्वतपर सूर्यकी परिक्रमाका मार्ग नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन बताते हैं। उस पर्वतपर मेरुके पूर्वकी ओर इन्द्रकी देवधानी नामकी पुरी है, दक्षिणकी ओर यमराजकी संयमनी,

वैद्युतो जाठरश्चाग्निरैन्धनस्तेजसां पतिः। धर्मध्वजो वेदकर्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः ॥
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वामराश्रयः। कला काष्ठा मुहूर्ताश्च क्षपा यामास्तथा क्षणाः ॥
संवत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः। पुरुषः शाश्वतो योगी व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ॥
कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुदः। वरुणः सागरोऽंशो जीमूतो जीवनोऽरिहा ॥
भूताश्रयो भूतपतिः सर्वलोकनमस्कृतः। स्रष्टा संवर्तको वह्निः सर्वस्यादिरलोलुपः ॥
अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः। जयो विशालो वरदः सर्वभूतनिषेवितः ॥
मनः सुपर्णो भूतादिः शीघ्रगः प्राणधारणः। धन्वन्तरिर्धूमकेतुरादिदेवो दितेः सुतः ॥
द्वादशात्मा रविर्दक्षः पिता माता पितामहः। स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम् ॥
देहकर्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः। चराचरात्मा ...

वरुणकी निम्लोचनी नामकी पुरी और
ाकी विभावरीपुरी है । इन पुरियोंमें मेरुके
मय-समयपर सूर्योदय, मध्याह्न, सायंकाल
होते रहते हैं । इन्हींके कारण सम्पूर्ण
ृत्ति या निवृत्ति होती है । राजन् ! जो
रहते हैं, उन्हें तो सूर्यदेव सदा मध्याह्न-
र ही तपाते रहते हैं । वे अपनी गतिके
नी आदि नक्षत्रोंकी ओर जाते हुए यद्यपि
ी ओर रखकर चलते हैं तथापि सारे
ो घुमानेवाली निरन्तर दायीं ओर बहती
वायुद्वारा घुमा दिये जानेसे वे उसे दायीं
चलते जान पड़ते हैं । जिस पुरीमें भगवान्
होता है, उससे ठीक दूसरी ओरकी पुरीमें
ं मालूम होते होंगे और वे वहाँ लोगोंको
करके तपा रहे होंगे; उसके ठीक सामनेकी
त होनेके कारण वे उन्हें निद्रावश किये
लोगोंको मध्याह्नके समय वे स्पष्ट दीख
ही यदि किसी प्रकार पृथ्वीके दूसरी ओर
तो उनका दर्शन नहीं कर सकेंगे ।

जब इन्द्रकी पुरीसे यमराजकी पुरीको चलते
ह घड़ीमें वे सवा दो करोड़ और साढ़े बारह
से कुछ—प्रायः पचीस हजार वर्ष—अधिक
फिर इसी क्रमसे वे वरुण और चन्द्रमाकी
ार करके पुनः इन्द्रकी पुरीमें पहुँचते हैं ।
चन्द्रमा आदि अन्य ग्रह भी ज्योतिश्चक्रमें
ोंके साथ-साथ उदित और अस्त होते रहते
प्रकार भगवान् सूर्यका वेदमय रथ एक मुहूर्तमें
ख आठ सौ योजनके हिसाबसे चलता हुआ
पुरियोंमें घूमता रहता है । इसका सम्वत्सर
एकचक्र (रथ) बतलाया जाता है ।
प्ररूप बारह अरे हैं, ऋतुरूप छः नेमियाँ
हैं, चौमासेरूप तीन नाभियाँ (आँवन) हैं ।
इस रथकी धुरीका एक सिरा मेरु पर्वतकी चोटीपर है
और दूसरा मानसोत्तर पर्वतपर । इसमें लगा हुआ यह
पहिया कोल्हूके पहियेके समान घूमता हुआ मानसोत्तर
पर्वतके ऊपर चक्कर लगाता है । इस धुरीमें—जिसका
मूल भाग जुड़ा हुआ है, ऐसी एक धुरी और है, वह
लंबाईमें इससे चौथाई है । उसका ऊपरी भाग तैलयन्त्रके
धुरेके समान ध्रुवलोकसे लगा हुआ है ।

इस रथमें बैठनेका स्थान छत्तीस लाख योजन लंबा
और नौ लाख योजन चौड़ा है । इसका जूआ भी छत्तीस
लाख योजन ही लम्बा है । उसमें अरुण नामक सारथिने
गायत्री आदि छन्दोंके-से नामवाले सात घोड़े जोत
रक्खे हैं । वे ही इस रथपर बैठे हुए भगवान् सूर्यको
ले चलते हैं । सूर्यदेवके आगे उन्हींकी ओर मुँह करके
बैठे हुए अरुण उनके सारथिका कार्य करते हैं । उस
रथके आगे अँगूठेके पोरुएके बराबर आकारवाले
वालखिल्यादि साठ हजार ऋषि स्वस्तिवाचनके लिये
नियुक्त हैं । वे उनकी स्तुति करते रहते हैं । इनके
सिवा ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस और देवता
भी—जो कुल मिलाकर चौदह हैं, किंतु जोड़से रहनेके
कारण सात गण कहे जाते हैं—प्रत्येक मासमें भिन्न-
भिन्न नामोंवाले होकर अपने भिन्न-भिन्न कर्मोंसे प्रत्येक
मासमें भिन्न-भिन्न नाम धारण करनेवाले आत्मस्वरूप
भगवान् सूर्यकी दो-दो मिलकर उपासना करते हैं । इस
प्रकार भगवान् सूर्य भूमण्डलके नौ करोड़ इक्यावन लाख
योजन लंबे घेरेमेंसे प्रत्येक क्षणमें दो हजार दो योजनकी
दूरी पार कर लेते हैं ।

भिन्न-भिन्न ग्रहोंकी स्थिति और गति

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन् ! आपने जो
कहा कि यद्यपि 'भगवान् सूर्य राशियोंकी ओर जाते
समय मेरु और ध्रुवको दायीं ओर रखकर चलते मालूम
होते हैं; किंतु वस्तुतः उनकी गति दक्षिणावर्त नहीं
होती'—इस विषयको हम किस प्रकार समझें ?

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! जैसे कुम्हारके [illegible] घूमते हुए चाकपर घूमनेवाली चींटी [illegible] गति भी उस चाककी गतिसे अलग [illegible] पड़ती है; क्योंकि वह भिन्न-भिन्न समयमें उस चाकके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें देखी जाती है—उसी प्रकार नक्षत्र और राशियोंसे उपलक्षित कालचक्रमें पड़कर ध्रुव और मेरुको दायें रखकर घूमनेवाले सूर्य आदि ग्रहोंकी गति वास्तवमें उससे भिन्न ही है; क्योंकि वे कालभेदसे भिन्न-भिन्न राशि और नक्षत्रोंमें देखे जाते हैं। वेद और विद्वान् लोग भी जिनकी गतिको जाननेके लिये उत्सुक रहते हैं, वे साक्षात् आदिपुरुष भगवान् नारायण ही लोकोंके कल्याण और कर्मोंकी शुद्धिके लिये अपने वेदमय विग्रह-कालको बारह मासोंमें विभक्तकर वसन्त आदि छः ऋतुओंमें उनके यथायोग्य गुणोंका विधान करते हैं। इस लोकमें वर्णाश्रमधर्मका अनुसरण करनेवाले पुरुष वेदत्रयीद्वारा प्रतिपादित छोटे-बड़े कर्मोंसे इन्द्रादि देवताओंके रूपमें और योगके साधनोंसे अन्तर्यामिरूपमें उनकी श्रद्धापूर्वक आराधना करके सुगमतासे ही परमपद प्राप्त कर सकते हैं।

भगवान् सूर्य सम्पूर्ण लोकोंकी आत्मा हैं। वे पृथ्वी और द्युलोकके मध्यमें स्थित आकाशमण्डलके भीतर कालचक्रमें स्थित होकर बारह मासोंको भोगते हैं, जो संवत्सरके अवयव हैं और मेष आदि राशियोंके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे प्रत्येक मास चन्द्रमानसे शुक्ल और कृष्ण—दो पक्षका, पितृमानसे एक रात और एक दिनका तथा सौरमानसे सवा दो नक्षत्रका बताया जाता है। जितने कालमें सूर्यदेव इस संवत्सरका छठा भाग भोगते हैं, उसका वह अवयव 'ऋतु' कहा जाता है। आकाशमें भगवान् सूर्यका जितना मार्ग है, उसका आधा वे जितने समयमें पार कर लेते हैं, उसे एक 'अयन' कहते हैं तथा जितने समयमें वे अपनी मन्द, तीव्र और समान गतिसे स्वर्ग और पृथ्वीमण्डलके सहित [illegible] पूरे आकाशका चक्कर लगा लेते हैं, [illegible] संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर [illegible] कहते हैं।

इसी प्रकार सूर्यकी किरणोंसे एक ल[illegible] ऊपर चन्द्रमा है। उनकी चाल बहुत तेज है, ये सब नक्षत्रोंसे आगे रहते हैं। सूर्यके मार्गको एक मासमें एक मासके [illegible] दिनोंमें और एक पक्षके मार्गको एक ही [illegible] करते हैं। ये कृष्णपक्षमें क्षीण होती [illegible] पितृगणके और शुक्लपक्षमें बढ़ती हु[illegible] देवताओंके दिन-रातका विभाग करते हैं [illegible] तीस मुहूर्तोंमें एक-एक नक्षत्रको पार [illegible] अन्नमय और अमृतमय होनेके कारण ये जीवोंके प्राण और जीवन हैं। ये जो सोलह [illegible] युक्त मनोमय, अन्नमय, अमृतमय पुरुषस्वरूप [illegible] चन्द्रमा हैं—ये ही देवता, पितर, मनुष्य, भू[illegible] पक्षी, सरीसृप और वृक्षादि समस्त प्राणियोंके [illegible] पोषण करते हैं, इसलिये इन्हें 'सर्वमय' कहते हैं।

चन्द्रमासे तीन लाख योजन ऊपर अभि[illegible] सहित अट्ठाईस नक्षत्र हैं। भगवान्ने इन्हें काल[illegible] नियुक्त कर रक्खा है। अतः ये मेरुको दायीं रखकर घूमते रहते हैं। इनसे दो लाख योजन ऊपर [illegible] दिखायी देते हैं। ये सूर्यकी शीघ्र, मन्द और [illegible] गतियोंके अनुसार उन्हींके समान कभी आगे, [illegible] पीछे और कभी साथ-साथ रहकर चलते हैं। ये [illegible] करनेवाले ग्रह हैं। इसलिये लोकोंके प्रायः सर्वदा अनुकूल रहते हैं। इनकी गतिसे ऐसा अनुमान हो[illegible] है कि ये वर्षा रोकनेवाले ग्रहोंको शान्त कर देते हैं।

शुक्रकी व्याख्याके अनुसार ही बुधकी गति [illegible] समझ लेनी चाहिये। ये चन्द्रमाके पुत्र शुक्रसे दो लाख [illegible]

व सूर्यकी गतिका उल्लङ्घन करके चलते हैं
त अधिक आँधी, बादल और सूखाके भयकी
देते हैं। इनसे दो लाख योजन ऊपर मङ्गल
ये यदि वक्रगतिसे न चलें तो, एक-एक राशि-
न-तीन पक्षमें भोगते हुए बारहों राशियोंको
रते हैं। ये अशुभ ग्रह हैं और प्रायः अमङ्गलके
हैं। इनके ऊपर दो लाख योजनकी दूरीपर
, बृहस्पति हैं। ये यदि वक्रगतिसे न चलें,
-एक राशिको एक-एक वर्षमें भोगते हैं। ये
ब्राह्मणकुलके लिये अनुकूल रहते हैं।

हस्पतिसे दो लाख योजन ऊपर शनैश्चर
देते हैं। ये तीस-तीस महीनेतक एक-एक
रहते हैं। अतः इन्हें सब राशियोंको पार
तीस वर्ष लग जाते हैं। ये प्रायः सभीके लिये
तकारक हैं। इनके ऊपर ग्यारह लाख योजनकी
कश्यप आदि सप्तर्षि दिखायी देते हैं। ये सब
की मङ्गलकामना करते हुए ध्रुव-लोककी—जो
न् विष्णुका परमपद है—प्रदक्षिणा किया करते हैं।

शिशुमारचक्रका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! सप्तर्षियोंसे
लाख योजन ऊपर ध्रुवलोक है। इसे भगवान्
का परमपद कहते हैं। यहाँ उत्तानपादके पुत्र
भगवद्भक्त ध्रुवजी विराजमान हैं। इनके साथ ही
इन्द्र, प्रजापति, कश्यप और धर्मको भी नक्षत्ररूपसे
किया गया था। ये सब एक साथ अत्यन्त
सूर्यके ध्रुवकी प्रदक्षिणा करते रहते हैं। अब भी
कल्पपर्यन्त रहनेवाले लोक इन्हींके आधारपर स्थित हैं।
इस लोकका पराक्रम हम पहले (चौथे स्कन्धमें)
कर चुके हैं। सदा जागते रहनेवाले अव्यक्तगति
न् कालकी प्रेरणासे जो ग्रह-नक्षत्रादि ज्योतिर्गण
र घूमते रहते हैं, भगवान्ने उन सबके

आधारस्तम्भरूपसे ध्रुवलोकको ही नियुक्त किया है। अतः यह एक ही स्थानमें रहकर सदा प्रकाशित होता है। जिस प्रकार दायँ चलानेके समय अनाजको रूँदनेवाले पशु छोटी, बड़ी और मध्यम रस्सीमें बँधकर क्रमशः निकट, दूर और मध्यमें रहते हुए खंभेके चारों ओर मण्डल बाँधकर घूमते रहते हैं, उसी प्रकार सारे नक्षत्र और ग्रहगण बाहर-भीतरके क्रमसे इस कालचक्रमें नियुक्त होकर ध्रुवलोकका ही आश्रय लेकर वायुकी प्रेरणासे कल्पके अन्ततक घूमते रहते हैं। जिस प्रकार मेघ और बाज आदि पक्षी अपने कर्मोंकी सहायतासे वायुके अधीन रहकर आकाशमें उड़ते रहते हैं, उसी प्रकार ये ज्योतिर्गण भी प्रकृति और पुरुषके संयोगवश अपने-अपने कर्मोंके अनुसार चक्कर काट रहे हैं, पृथ्वीपर नहीं गिरते।

कोई-कोई पुरुष भगवान्की योगमायाके आधार-स्थित इस ज्योतिश्चक्रका शिशुमार (जलजन्तु विशेष) के रूपमें वर्णन करते हैं। यह शिशुमार कुण्डली मारे हुए है और इसका मुख नीचेकी ओर है। इसकी पूँछके सिरेपर ध्रुव स्थित हैं। पूँछके मध्यभागमें प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म हैं। पूँछकी जड़में धाता और विधाता हैं। इसके कटिप्रदेशमें सप्तर्षि हैं। यह शिशुमार दाहिनी ओर सिकुड़कर कुण्डली मारे हुए है। ऐसी स्थितिमें अभिजित्से लेकर पुनर्वसुपर्यन्त जो उत्तरायणके चौदह नक्षत्र हैं, वे इसके दाहिने भागमें हैं और पुष्यसे लेकर उत्तराषाढापर्यन्त जो दक्षिणायनके चौदह नक्षत्र हैं, वे बायें भागमें हैं। लोकमें भी जब शिशुमार कुण्डलाकार होता है, तो उसके दोनों ओरके अङ्गोंकी संख्या समान रहती है, उसी प्रकार यहाँ नक्षत्र-संख्यामें भी समानता है। इसकी पीठमें अजवीथी (मूल, पूर्वाषाढ और उत्तराषाढ नामके तीन नक्षत्रोंका समूह) है और उदरमें आकाशगङ्गा है। राजन्! इसके दाहिने और बायें कटितटोंमें पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र

हैं, पीठके दाहिने और बायें चरणोंमें आर्द्रा और आश्लेषा नक्षत्र हैं तथा दाहिने और बायें नथुनोंमें क्रमशः अभिजित और उत्तराषाढ हैं। इसी प्रकार दाहिने और बायें नेत्रोंमें श्रवण और पूर्वाषाढ एवं दाहिने और बायें कानोंमें धनिष्ठा और मूल नक्षत्र हैं। मघा आदि दक्षिणायनके आठ नक्षत्र बायीं पसलियोंमें और विपरीत-क्रमसे मृगशिरा आदि उत्तरायणके आठ नक्षत्र दाहिनी पसलियोंमें हैं। शतभिषा और ज्येष्ठा— ये दो नक्षत्र क्रमशः दाहिने और बायें कंधोंकी जगह हैं। इसकी ऊपरकी थूथनीमें अगस्त्य, नीचेकी ठोड़ीमें नक्षत्ररूप यम, मुखोंमें मङ्गल, लिङ्गप्रदेशमें शनि, कुम्भमें बृहस्पति, छातीमें सूर्य, हृदयमें नारायण, मनमें चन्द्रमा, नाभिमें शुक्र, स्तनोंमें अश्विनीकुमार, प्राण और अपानमें बुध, गलेमें राहु, समस्त अङ्गोंमें केतु और रोमोंमें सम्पूर्ण तारागण स्थित हैं।

राजन्! यह भगवान् विष्णुका सर्वदेवमय स्वरूप है। इसका नित्यप्रति सायंकालके समय पवित्र और मौन होकर चिन्तन करना चाहिये तथा इस मन्त्रका जप करते हुए भगवान्‌की स्तुति करनी चाहिये—'ॐ नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनायानिमिषां पतये महापुरुषायाभिधीमहि।' (सम्पूर्ण ज्योतिर्गणोंके आश्रय, कालचक्रस्वरूप, सर्वदेवाधिपति परमपुरुष परमात्माका नमस्कारपूर्वक हम ध्यान करते हैं।) तीनों काल इस मन्त्रका जप करनेवाले पुरुषके पापोंको भगवान् नष्ट कर देते हैं। ग्रह, नक्षत्र और तारोंके रूपमें भी वे ही प्रकाशित हो रहे हैं, ऐसा समझकर जो पुरुष प्रातः, मध्याह्न और सायं—तीनों समय उनके आधिदैविक स्वरूपका नित्यप्रति चिन्तन और वन्दन करता है, उसके उस समय किये हुए पाप तुरंत नष्ट हो जाते हैं।

राहु आदिकी स्थिति और नीचेके अतल आदि लोकोंका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! कुछ लोगोंका कथन है कि सूर्यसे दस हजार योजन नीचे राहु नक्षत्रोंके समान घूमता है। इसने भगवान्‌की कृपासे देवत्व और ग्रहत्व प्राप्त किया है, स्वयं यह सिंहिकापुत्र असुराधम होनेके कारण किसी प्रकार इस पदके योग्य नहीं है। इसके जन्म और कर्मोंका हम आगे वर्णन करेंगे। सूर्यका जो यह अत्यन्त तपता हुआ मण्डल है, उसका विस्तार दस हजार योजन बतलाया जाता है। इसी प्रकार चन्द्रमण्डलका विस्तार बारह हजार योजन और राहुका तेरह हजार योजन। अमृतपानके समय यह देवताके वेषमें सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें आकर बैठ गया था। उस समय सूर्य और चन्द्रमाने इसका भेद बतला दिया था। उस वैरको याद करके यह अमावस्या और पूर्णिमाके दिन उनपर आक्रमण करता है। ... भगवान्‌ने सूर्य और चन्द्रमाकी रक्षाके लिये उन दोनोंके पास अपने उस प्रिय आयुध सुदर्शनचक्रको नियुक्त कर दिया जो निरन्तर साथ घूमता रहता है, इसलिये राहु उसके असह्य तेजसे उद्विग्न और चकितचित्त होकर मुहूर्तमात्र उनके सामने टिककर फिर सहसा लौट आता है। उसके उतनी देर उनके सामने ठहरनेको ही 'ग्रहण' कहते हैं।

राहुसे दस हजार योजन नीचे सिद्ध, चारण और विद्याधर आदिके स्थान हैं। उनके नीचे जहाँतक वायुकी गति है और बादल दिखायी देते हैं, वहाँतक अन्तरिक्षलोक है। यह यक्ष, राक्षस, पिशाच, प्रेत और भूतोंका विहारस्थल है। उससे नीचे सौ योजनकी दूरीपर यह पृथ्वी है। जहाँतक हंस, गीध, बाज और गरुड आदि प्रधान-प्रधान पक्षी उड़ सकते हैं, वहींतक इसकी सीमा है। पृथ्वीके विस्तार और स्थिति आदिका वर्णन तो हो ही चुका है। इसके भी नीचे अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल नामके सात भू-विवर (भूगर्भस्थित बिल या लोक) हैं। ये एकके नीचे एक दस-दस हजार योजनकी दूरीपर स्थित हैं और इनमेंसे प्रत्येककी ऊँचाई-

भी दस-दस हजार योजन ही है। ये भूमिबिल भी एकारके स्वर्ग ही हैं। इनमें स्वर्गसे भी अधिक भोग, ऐश्वर्य, आनन्द, संतान-सुख और धन- है। यहाँके वैभवपूर्ण भवन, उद्यान और स्थलोंसे दैत्य, दानव और नाग तरह-तरहकी माया-मयी क्रीडाएँ करते हुए निवास करते हैं। वे सब गार्हस्थ्य-धर्मका पालन करनेवाले हैं। उनके स्त्री, पुत्र, बन्धु, बान्धव और सेवकलोग उनसे बड़ा प्रेम रखते हैं और सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं। उनके भोगोंमें बाधा डालनेकी इन्द्र आदिमें भी सामर्थ्य नहीं है।

श्रीमद्भागवतके हिरण्यमय पुरुष

(लेखक—श्रीरतनलालजी गुप्त)

शुक्लयजुर्वेदके विभ्राटसूक्तके ऋषि भगवान् आदित्यको 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'के रूपमें स्तवन करते हुए भाव-विभोर हो उठते हैं। उनकी ऋषि-चेतनामें देवताओंके महान् अधिदेवता द्यौ, पृथ्वी एवं अन्तरिक्षको अपने विविध विचित्र वर्णोंके रश्मि-जालसे आहत करके स्थावर-जङ्गम समस्त देव एवं जीव-जगत्का पालन-पोषण करते हुए उनमें जीवनका आधान करते हैं। भगवान् विष्णुकी इस लोक-पालनी शक्तिका लोक-लोचनके समक्ष प्रतिनिधित्व करनेके कारण ही वेदोंमें यत्र-तत्र सर्वत्र सूर्यदेवको 'विष्णु' के नामसे अभिहित किया गया है। श्रीमद्भागवतमें महर्षि कृष्णद्वैपायनने भगवान् आदित्यको इसी रूपमें प्रस्तुत किया है—

'स एष भगवानादिपुरुष एव साक्षान्नारायणो लोकानां स्वस्तय आत्मानं त्रयीमयं कर्मविशुद्धिनिमित्तं कविभिरपि च वेदेन विजिज्ञास्यमानो द्वादशधा विभज्य षट्सु वसन्तादिष्वृतुषु यथोपजोषमृतुगुणान् विदधाति ॥

(५। २२। ३)

वेद और क्रान्तदर्शी ऋषिजन जिनकी गतिको जाननेके लिये उत्सुक रहते हैं, वे साक्षात् आदिपुरुष भगवान् नारायण ही लोकोंके कल्याण एवं कर्मोंकी शुद्धिके लिये अपने वेदमय विग्रह-कालको बारह मासोंमें विभक्त कर वसन्त आदि छः ऋतुओंमें उनके अनुरूप गुणोंका विधान करते हैं।

अतएव जीव-जगत्के अन्तर्यामी नारायणरूपसे भगवान् सूर्यकी श्रद्धापूर्वक उपासना अनायास ही परम पदकी प्राप्ति करानेवाली है। इसके प्रमाणरूपमें प्रस्तुत किया गया है—राजर्षि भरतको, जो भगवान् नारायणकी उपासनाका व्रत लेकर उदीयमान सूर्यमण्डलमें सूर्य-सम्बन्धिनी ऋचाओंके द्वारा हिरण्यमय पुरुष भगवान् नारायणकी आराधना करते हुए कहते हैं—भगवान् सूर्यनारायणका कर्मफलदायक तेज प्रकृतिसे परे है। उसीने स्वसङ्कल्पद्वारा इस जगत्की उत्पत्ति की है। फिर वही अन्तर्यामीरूपसे इसमें प्रविष्ट होकर अपनी चित्-शक्तिके द्वारा विषयलोलुप जीवोंकी रक्षा करता है, हम उसी बुद्धि-प्रवर्तक तेजकी शरण लेते हैं—

परोरजः सवितुर्जातवेदो
देवस्य भर्गो मनसेदं जजान।
सुरेतसादः पुनराविश्य चष्टे
हंसं गृध्राणं नृषद्रिङ्गिरामिमः ॥

(५। ७। १४)

इस प्रकार सृष्टि, स्थिति और प्रलय आदिकी सामर्थ्यसे युक्त ये आदित्यदेव भगवान् नारायणके समान वेदमय भी हैं। जिस प्रकार सृष्टिके आदिकालमें श्रीभगवान् लोकपिता-मह ब्रह्माके हृदयमें वेदज्ञानको उदित करते हैं, ठीक उसी प्रकार महर्षि याज्ञवल्क्यकी आराधनासे संतुष्ट होकर आदित्यदेवने उनको यजुर्वेदका वह मन्त्र प्रदान किया, जो अबतक किसी और ऋषिकी चेतनामें उद्भूत नहीं

हुआ था। इस प्रसङ्गमें महर्षि याज्ञवल्क्यने भगवान् आदित्यका जो उपस्थान किया है, उसमें वैदिक वाङ्मय एवं श्रीमद्भागवतपुराणकी सूर्य-सम्बन्धिनी मान्यताका समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं—'मैं ॐकारस्वरूप भगवान् सूर्यको नमस्कार करता हूँ। भगवन्! आप सम्पूर्ण जगत्के आत्मा और कालस्वरूप हैं। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जितने भी जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज—चार प्रकारके प्राणी हैं, उन सबके हृदय-देशमें और बाहर आकाशके समान व्याप्त रहकर भी आप उपाधिके धर्मोसे असङ्ग रहनेवाले अद्वितीय भगवान् ही हैं। आप ही क्षण, लव, निमेष आदि अवयवोंसे संघटित संवत्सरोंके द्वारा जलके आकर्षण-विकर्षणके (आदान-प्रदानके) द्वारा समस्त लोकोंकी जीवनयात्रा चलाते हैं। प्रभो! आप समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ हैं। जो लोग तीनों समय वेदविधिसे आपकी उपासना करते हैं, उनके सारे पाप और दुःखोंके बीजको आप भस्म कर देते हैं। सूर्यदेव! आप सारी सृष्टिके मूल कारण एवं समस्त ऐश्वर्योंके स्वामी हैं। इसलिये हम आपके इस तेजोमय मण्डलका पूरी एकाग्रताके साथ ध्यान करते हैं। आप सबके आत्मा और अन्तर्यामी हैं। जगत्में जितने चराचर प्राणी हैं, सब आपके ही आश्रित हैं। आप ही उनके अचेतन मन, इन्द्रिय और प्राणोंके प्रेरक हैं।' (श्रीमद्भा० १२। ६। ६७—६९)

इसके अतिरिक्त भगवान् नारायणकी सूर्यदेवके रूपमें अभिव्यक्तिको प्रतिपादित करनेवाले अन्य साक्ष्य भी श्रीमद्भागवतमें वर्णित हुए हैं। गजेन्द्रमोक्षके समय भगवान् श्रीहरि 'छन्दोमयेन गरुडेन' अर्थात् वेदमय वाहनसे जैसे वहाँ पहुँचते हैं, उसी प्रकार भगवान् सूर्यके रथका भी वहन गायत्री आदि नामवाले वेदमय अश्व करते हैं—

यत्र हयाश्छन्दोनामानः
वहन्ति देवमादित्यं।

(श्रीमद्भा० ...)

सत्राजित्के द्वारा भगवान् सूर्यकी उ... फलस्वरूप उसकी पुत्री सत्यभामाको अर्ना... रूपमें अङ्गीकृत करके भगवान् श्रीकृष्णने ... देवसे अपना अभेद प्रदर्शित किया है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवतमें भगवान् आदित्यदेवका अद्वैत सिद्ध हुआ है। इसी ... वेदव्यासने 'योऽसावादित्ये पुरुषः' तथा '... पुरुषं वेदयन्ते स इन्द्रः प्रजापतिस्तद्ब्र...' श्रुति-वाक्योंकी परम्पराको अपनी विशिष्ट शैल... करके श्रीमद्भागवतकी वेदात्मकताको अक्षुण्ण ...

भागवतकारने भगवान् आदित्यको निर्गुण ... परब्रह्म परमात्माकी सगुण-साकार-अभिव्यक्ति ... है। इनके दृश्यमान प्राकृत सौरमण्डलको भगवान् ... की अनादि अविद्यासे निर्मित बतलाया है। यही ... लोक-लोकान्तरोंमें भ्रमण करता है। वास्तवमें तो ... लोकोंके आत्मा भगवान् श्रीहरि ही अन्तर्यामी ... सूर्य बने हुए हैं। वे ही समस्त वैदिक क्रियाओंके ... हैं। वे यद्यपि एक ही हैं तथापि ऋषियोंने उ... अनेक रूपोंमें वर्णन किया है।

भगवान् सूर्यकी द्वादश मासकी विभूतियोंके वर्णन ... प्रसङ्गमें व्यासदेव इस बातका हमें पुनः स्मरण क... देते हैं कि ये आदित्यरूप भगवान् विष्णुकी विभू... हैं। जो लोग इनका प्रातःकाल और सायंकाल स्म... करते हैं, उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं—

एता भगवतो विष्णोरादित्यस्य विभूतयः।
स्मरतां संध्ययोर्नॄणां हरन्त्यंहो दिने दिने॥

(श्रीमद्भा० १२। ...)

श्रीविष्णुपुराणमें सूर्य-संदर्भ

(द्वितीय अंश, आठवें अध्यायसे बारहवें अध्यायतक)

[श्रीविष्णुपुराणके मूलवक्ता मुनिसत्तम श्रीपराशरजी हैं। इसमें सूर्य-सम्बन्धी खगोलीय विवरण द्रष्टव्य हैं। श्रीपराशरजीके ब्रह्माण्डकी स्थितिका वर्णन कर चुकनेपर श्रीसूतजीने सूर्यादिके और प्रमाण—'*सूर्यादीनां च संस्थानं प्रमाणं मुनिसत्तम*'—के सम्बन्धमें प्रश्न किया है। उस उत्तरमें प्रकृत-पुराणमें सूर्य, नक्षत्र एवं राशियोंकी व्यवस्था, कालचक्र, लोकपाल, क, शिशुमार-चक्र, द्वादश सूर्यों एवं अधिकारियोंके नाम, सूर्यशक्ति, वैष्णवी-शक्ति तथा वर्णन और लोकान्तरसम्बन्धी व्याख्यानका उपसंहार किया गया है। यह वर्णन रोचक एवं जिज्ञासाका शास्त्रीय समाधान प्रस्तुत करता है।]

आठवाँ अध्याय

त्र एवं राशियोंकी व्यवस्था तथा कालचक्र और लोकपाल आदिका वर्णन

पराशरजी बोले—हे सुव्रत ! मैंने तुमसे यह स्थिति कही, अब सूर्य आदि ग्रहोंकी र उनके परिमाण सुनो । 'मुनिश्रेष्ठ ! थका विस्तार नौ हजार योजन है तथा इससे उसका ईषा-दण्ड (जूआ और रथके बीचका) है। उसका धुरा डेढ़ करोड़ सात लाख लंबा है, जिसमें उसका पहिया लगा हुआ है। ह्न, मध्याह्न और पराह्णरूप) तीन नाभि, रिवत्सरादि) पाँच अरे और (षड्ऋतुरूप) नेमिवाले उस अक्षयस्वरूप संवत्सरात्मक चक्रमें र्ण कालचक्र स्थित है। सात छन्द ही उसके हैं। उनके नाम सुनो; गायत्री, बृहती, उष्णिक्, ी, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और पंक्ति—ये छन्द ही सूर्यके घोड़े कहे गये हैं। महामते ! भगवान् सूर्यके दूसरा धुरा साढ़े पैंतालीस हजार योजन लंबा है। धुरोंके परिमाणके तुल्य ही उसके युगार्द्धों) का परिमाण है। इनमेंसे छोटा धुरा रथके एक युगार्द्ध (जूए) के सहित ध्रुवके आधारपर स्थित है और दूसरे धुरेका चक्र मानसोत्तरपर्वतपर स्थित है।

इस मानसोत्तर पर्वतके पूर्वमें इन्द्रकी, दक्षिणमें यमकी, पश्चिममें वरुणकी और उत्तरमें चन्द्रमाकी पुरी है। उन पुरियोंके नाम सुनो। इन्द्रकी पुरी वस्वौकसारा है, यमकी संयमनी है, वरुणकी सुखा है तथा चन्द्रमाकी विभावरी है। मैत्रेय ! ज्योतिश्चक्रके सहित भगवान् भानु दक्षिणदिशामें प्रवेशकर छोड़े हुए बाणके समान तीव्र वेगसे चलते हैं।

भगवान् सूर्यदेव दिन और रात्रिकी व्यवस्थाके कारण हैं और रागादि क्लेशोंके क्षीण हो जानेपर वे ही क्रममुक्तिभागी योगीजनोंके देवयान नामक श्रेष्ठ मार्ग हैं। मैत्रेय ! सभी द्वीपोंमें सर्वदा मध्याह्न तथा मध्यरात्रिके समय सूर्यदेव मध्य-आकाशमें सामनेकी ओर रहते हैं*। इसी प्रकार उदय और अस्त भी सदा एक दूसरेके सम्मुख ही होते हैं। ब्रह्मन् ! समस्त दिशा और विदिशाओंमें जहाँके लोग (रात्रिका अन्त होनेपर) सूर्यको जिस स्थानपर देखते हैं, उनके लिये वहाँ उसका उदय होता है और जहाँ दिनके अन्तमें सूर्यका तिरोभाव होता है, वहीं

* अर्थात् जिस द्वीप या खण्डमें सूर्यदेव मध्याह्नके समय सम्मुख पड़ते हैं, उससे समान रेखापर दूसरी ओर द्वीपान्तरमें वे उसी प्रकार मध्यरात्रिके समय रहते हैं।

…ने उत्कृष्ट मार्गको थोड़े समयमें ही पार कर …। हे द्विज ! दक्षिणायनमें दिनके समय शीघ्रता-… चलनेसे उस समयके साढ़े तेरह नक्षत्रोंको …रह मुहूर्तोंमें पार कर लेते हैं। किंतु रात्रिके … मन्दगामी होनेसे) उतने ही नक्षत्रोंको अठारह …में पार करते हैं। कुलाल-चक्रके मध्यमें स्थित जीव …प्रकार धीरे-धीरे चलता है, उसी प्रकार उत्तरायणके … सूर्य मन्दगतिसे चलते हैं, इसलिये उस समय वह …सी भूमि भी अतिदीर्घकालमें पार करते हैं। अतः …यणका अन्तिम दिन अठारह मुहूर्तका होता है, उस … भी सूर्य अति मन्द गतिसे चलते हैं। और …धिकार्धके साढ़े तेरह नक्षत्रोंको एक दिनमें पार … हैं, किंतु रात्रिके समय वह उतने ही (साढ़े …) नक्षत्रोंको बारह मुहूर्तोंमें ही पार कर लेते … अतः जिस प्रकार नाभिदेशमें चक्रके मन्द-मन्द …नेसे वहाँका मृतपिण्ड भी मन्दगतिसे घूमता है, उसी …कार ज्योतिश्चक्रके मध्यमें स्थित ध्रुव अति मन्द गतिसे …ता है। मैत्रेय ! जिस प्रकार कुलाल-चक्रकी नाभि …पने स्थानपर ही घूमती रहती है, उसी प्रकार ध्रुव … अपने स्थानपर ही घूमता रहता है।

इस प्रकार उत्तर तथा दक्षिण सीमाओंके मध्यमें …ण्डलाकार घूमते रहनेसे सूर्यकी गति दिन अथवा …त्रिके समय मन्द अथवा शीघ्र हो जाती है। जिस …यनमें सूर्यकी गति दिनके समय मन्द होती है, उसमें …त्रिके समय शीघ्र होती है तथा जिस समय रात्रि-…कालमें शीघ्र होती है, उस समय दिनमें मन्द हो जाती … है। हे द्विज ! सूर्यको सदा एक बराबर मार्ग ही पार …करना पड़ता है। एक दिन-रात्रिमें ये समस्त राशियोंका …भोग कर लेते हैं। सूर्य छः राशियोंको रात्रिके समय …भोगते हैं और छःको दिनके समय। दिनका बढ़ना-…घटना राशियोंके परिमाणानुसार ही होता है तथा रात्रिकी …लघुता-दीर्घता भी राशियोंके परिमाणसे ही होती है। राशियोंके भोगानुसार ही दिन अथवा रात्रिकी लघुता एवं दीर्घता होती है। उत्तरायणमें सूर्यकी गति रात्रिकालमें शीघ्र होती है तथा दिनमें मन्द। दक्षिणायनमें उनकी गति इसके विपरीत होती है।

रात्रि उषा कहलाती है तथा दिन व्युष्टि (प्रभात) कहा जाता है। इन उषा तथा व्युष्टिके बीचके समयको सन्ध्या कहते हैं। इस अति दारुण और भयानक संध्याकालके उपस्थित होनेपर मंदेह नामक भयंकर राक्षसगण सूर्यको खाना चाहते हैं। मैत्रेय ! उन राक्षसोंको प्रजापतिका यह शाप है कि उनका शरीर अक्षय रहकर भी मरण नित्यप्रति हो। अतः संध्या-कालमें उनका सूर्यसे अति भीषण युद्ध होता है। महामुने ! उस समय द्विजोत्तमगण जो ब्रह्मस्वरूप ॐकार तथा गायत्रीसे अभिमन्त्रित जल छोड़ते हैं, उन वज्रस्वरूप जलसे वे दुष्ट राक्षस दग्ध हो जाते हैं। अग्निहोत्रमें जो 'सूर्यो ज्योतिः' इत्यादि मन्त्रसे प्रथम आहुति दी जाती है, उससे सहस्रांशु दिननाथ देदीप्यमान हो जाते हैं। ॐकार जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिरूप तीन धामोंसे युक्त भगवान् विष्णु हैं तथा सम्पूर्ण वाणियों (वेदों)के अधिपति हैं। उसके उच्चारणमात्रसे ही वे राक्षसगण नष्ट हो जाते हैं। सूर्य भगवान् विष्णुका अतिश्रेष्ठ अंश एवं विकाररहित अन्तर्ज्योतिःस्वरूप हैं। ॐकार उनका वाचक है और वे उसे उन राक्षसोंके वधमें अत्यन्त प्रेरित करनेवाले हैं। उस ॐकारकी प्रेरणासे अतिप्रदीप्त होकर वह ज्योति मंदेह नामक सम्पूर्ण पापी राक्षसोंको दग्ध कर देती है। इसलिये संध्योपासनकर्मका उल्लङ्घन कभी नहीं करना चाहिये। जो पुरुष संध्योपासन नहीं करता, वह भगवान् सूर्यका घात करता है। तदनन्तर (उन राक्षसोंका वध करनेके पश्चात्) भगवान् सूर्य संसारके पालनमें प्रवृत्त हो वालखिल्यादि ब्राह्मणोंसे सुरक्षित होकर गमन करते हैं।

पंद्रह निमेष मिलकर एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठाओंकी एक कला गिनी जाती है। तीस कलाओंका एक मुहूर्त होता है और तीस मुहूर्तोंके सम्पूर्ण रात्रि-दिन होते हैं। दिनोंका ह्रास अथवा वृद्धि क्रमशः प्रातःकाल, मध्याह्नकाल आदि दिवसांशोंके ह्रास-वृद्धिके कारण होते हैं; किंतु दिनोंके घटते-बढ़ते रहनेपर भी संध्या सर्वदा समान भावसे एक मुहूर्तकी ही होती है। उदयसे लेकर सूर्यकी तीन मुहूर्तकी गतिके कालको 'प्रातःकाल' कहते हैं। यह सम्पूर्ण दिनका पाँचवाँ भाग होता है। इस प्रातःकालके अनन्तर तीन मुहूर्तका समय 'सङ्गव' कहलाता है तथा सङ्गवकालके पश्चात् तीन मुहूर्तका 'मध्याह्न' होता है। मध्याह्नकालसे पीछेका समय 'अपराह्न' कहलाता है। इस काल भागको भी बुधजन तीन मुहूर्तका ही बताते हैं। अपराह्नके बीतनेपर 'सायाह्न' आता है। इस प्रकार (सम्पूर्ण दिनमें) पंद्रह मुहूर्त और (प्रत्येक दिवसांशमें) तीन मुहूर्त होते हैं।

वैषुवत् दिवस पंद्रह मुहूर्तका होता है; किंतु उत्तरायण और दक्षिणायनमें क्रमशः उसके वृद्धि और ह्रास होने लगते हैं। इस प्रकार उत्तरायणमें दिन रात्रिका ग्रास करने लगता है और दक्षिणायनमें रात्रि दिनका ग्रास करती रहती है। शरद् और वसन्त-ऋतुके मध्यमें सूर्यके तुला अथवा मेष राशिमें जानेपर 'विषुव' होता है। उस समय दिन और रात्रि समान होते हैं। सूर्यके कर्कराशिमें उपस्थित होनेपर दक्षिणायन कहा जाता है और उसके मकरराशिपर आनेसे उत्तरायण कहलाता है।

ब्रह्मन्! मैंने जो तीस मुहूर्तके एक रात्रि-दिन कहे हैं, ऐसे पंद्रह रात्रि-दिवसका एक पक्ष कहा जाता है। दो पक्षका एक मास होता है, दो सौर मासकी एक ऋतु और तीन ऋतुका एक अयन होता है तथा दो अयन ही (मिलकर) [illegible] तीर, शाल्व, [illegible] तथा [illegible]—[illegible] [illegible] अनुसार [illegible] क्रमसे संवत्सर [illegible] [illegible] वर्णित किये गये हैं। [illegible] सब प्रकारके कालनिर्णयका [illegible] उनमें पहला संवत्सर, दूसरा परि[illegible] चौथा अनुवत्सर और पाँचवाँ वत्सर नामसे विख्यात है।

श्वेतवर्षके उत्तरमें जो शृङ्गवान् पर्वत है, उसके तीन शृङ्ग हैं, [illegible] शृङ्गवान् कहा जाता है। [illegible] उत्तरमें, एक दक्षिणमें तथा एक मध्[illegible] ही वैषुवत् है। शरद्-वसन्त ऋतुके म[illegible] वैषुवत् अवसर आते हैं। अतः [illegible] अथवा तुलाराशिके आरम्भमें तिमिरहारी सू[illegible] पर स्थित होकर दिन और रात्रिको [illegible] कर देते हैं। उस समय ये दोनों पंद्रह-पंद्र[illegible] होते हैं। मुने! जिस समय सूर्य [illegible] नक्षत्रके प्रथम भाग अर्थात् मेषराशिके अ[illegible] चन्द्रमा निश्चय ही विशाखाके चतुर्थांश ([illegible] वृश्चिकके आरम्भ) में हों अथवा जिस सम[illegible] विशाखाके तृतीय भाग अर्थात् तुलाके अन्ति[illegible] भोग करते हों और चन्द्रमा कृतिकाके प्रथम [illegible] मेषान्तमें स्थित जान पड़ें तभी यह विषुव नामक पवित्र काल कहा जाता है। इस समय देवता, ब्रा[illegible] और पितृगणके उद्देश्यसे संयतचित्त होकर दानादि [illegible] चाहिये। यह समय दान-ग्रहणके लिये मानो देवताओं[illegible] खुले हुए मुखके समान है। अतः 'विषुव' कालमें दान करनेवाला मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। यागादिके काल-निर्णयके लिये दिन, रात्रि, पक्ष, कला, काष्ठा और क्षण आदिका विषय भलीभाँति जानना चाहिये।

[illegible] और अनुमति—दो प्रकारकी पूर्णमासी* तथा [illegible] और कुहू—ये दो प्रकारकी अमावास्या† होती हैं। [illegible]फाल्गुन, चैत्र-वैशाख तथा ज्येष्ठ-आषाढ—ये छः [illegible]तरायण होते हैं और श्रावण-भाद्रपद, आश्विन-[illegible] तथा अगहन-पौष—ये छः मास दक्षिणायन [illegible]ते हैं।

[illegible]ने पहले तुमसे जिस लोकालोकपर्वतका वर्णन [illegible]है, उसीपर चार व्रतशील लोकपाल निवास करते [illegible] द्विजवर ! सुधामा, कर्दमके पुत्र शङ्खपाद, [illegible]सोमा तथा केतुमान्—ये चारों निर्द्वन्द्व, निरभिमान, [illegible]लस्य और निष्परिग्रह लोकपालगण लोकालोकपर्वतके [illegible] दिशाओंमें स्थित हैं।

[illegible] जो अगस्त्यके उत्तर तथा अजवीथिके दक्षिणमें [illegible]ानरमार्गसे भिन्न (मृगवीथि नामक) मार्ग है, वही [illegible]यानपथ है। उस पितृयानमार्गमें महात्मा मुनिजन [illegible]ते हैं। जो लोग अग्निहोत्री होकर प्राणियोंकी [illegible]पत्तिके आरम्भक ब्रह्म (वेद)की स्तुति करते हुए [illegible]ानुष्ठानके लिये उद्यत हो कर्मका आरम्भ करते हैं, [illegible]नका वह (पितृयान) दक्षिणमार्ग है। वे युग-[illegible]ुगान्तरमें विच्छिन्न हुए वैदिक धर्मकी संतान, तपस्या, [illegible]र्णाश्रमकी मर्यादा और विविध शास्त्रोंके द्वारा पुनः [illegible]स्थापना करते हैं। पूर्वतन धर्मप्रवर्तक ही अपनी उत्तरकालीन संतानके यहाँ उत्पन्न होते हैं और फिर उत्तरकालीन धर्मप्रचारकगण अपने यहाँ संतानरूपसे उत्पन्न हुए पितृगणके कुलोंमें जन्म लेते हैं। इस प्रकार वे व्रतशील महर्षिगण चन्द्रमा और तारागणकी स्थितिपर्यन्त सूर्यके दक्षिणमार्गमें बार-बार आते-जाते रहते हैं।

नागवीथिके उत्तर और सप्तर्षियोंके दक्षिणमें जो सूर्यका उत्तरीय मार्ग है, उसे देवयानमार्ग कहते हैं। उसमें जो प्रसिद्ध निर्मलस्वभाव और जितेन्द्रिय ब्रह्मचारिगण निवास करते हैं, वे संतानकी इच्छा नहीं करते। अतः उन्होंने मृत्युको जीत लिया है। सूर्यके उत्तर-मार्गमें अठासी हजार ऊर्ध्वरेता मुनिगण प्रलयकालपर्यन्त निवास करते हैं। उन्होंने लोभके असंयोग, मैथुनके त्याग, इच्छा-द्वेषकी अप्रवृत्ति, कर्मानुष्ठानके त्याग, कामवासनाके असंयोग और शब्दादि विषयोंके दोषदर्शन इत्यादि कारणोंसे शुद्धचित्त होकर अमरता प्राप्त कर ली है। भूतोंके प्रलयपर्यन्त स्थिर रहनेको ही अमरता कहते हैं। त्रिलोकीकी स्थितितकके इस कालको वे अपुनर्मार (पुनर्मृत्युरहित) कहा जाता है। द्विज ! ब्रह्महत्या और अश्वमेध-यज्ञसे जो पाप और पुण्य होते हैं, उनका फल प्रलयपर्यन्त कहा गया है।

मैत्रेय ! जितने प्रदेशमें ध्रुव स्थित है, पृथ्वीसे लेकर उस प्रदेशपर्यन्त सम्पूर्ण देश प्रलयकालमें नष्ट हो जाता है। सप्तर्षियोंसे उत्तर-दिशामें ऊपरकी ओर जहाँ ध्रुव स्थित हैं, वह अति तेजोमय स्थान ही आकाशमें भगवान् विष्णुका तीसरा दिव्य धाम है। विप्रवर ! पुण्य-पापके क्षीण हो जानेपर दोष-पङ्कशून्य संयतात्मा मुनिजनोंका यही परम स्थान है। पाप-पुण्यके निवृत्त हो जाने तथा देह-प्राप्तिके सम्पूर्ण कारणोंके नष्ट हो जानेपर प्राणिगण जिस स्थानपर जाकर फिर शोक नहीं करते, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। जहाँ भगवान्‌के समान ऐश्वर्यसे प्राप्त हुए योगद्वारा सतेज होकर धर्म और ध्रुव आदि लोकसाक्षिगण निवास करते हैं, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। मैत्रेय ! जिसमें यह भूत,

* जिस पूर्णिमामें पूर्णचन्द्र विराजमान होते हैं, वह 'राका' कहलाती है तथा जिसमें एक कला हीन होती है, वह 'अनुमति' कही जाती है।

† दृष्टचन्द्रा अमावास्याका नाम 'सिनीवाली' है और नष्टचन्द्राका नाम 'कुहू' है।

अन्तरोंमें बरसनेवाले) दोनों प्रकारके जलमय अत्यन्त पवित्र और मनुष्योंके पापभयको दूर ।

। जो जल मेघोंद्वारा बरसाया जाता है, वह जीवनके लिये अमृतरूप होता है और पोषण करता है। हे विप्र! उस वृष्टिके म वृद्धिको प्राप्त होकर समस्त ओषधियाँ कनेपर सूख जानेवाले (गोधूम एवं यव आदि प्रजावर्गके (शरीरकी उत्पत्ति एवं पोषण साधक होते हैं। उनके द्वारा शास्त्रविद् नित्यप्रति यथाविधि यज्ञानुष्ठान करके देवताओंको रते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण यज्ञ, वेद, ब्राह्मण आदि मस्त देवसमूह और प्राणिगण वृष्टिके ही आश्रित मुनिश्रेष्ठ! अन्नको उत्पन्न करनेवाली वृष्टि ही बको धारण करती है तथा उस वृष्टिकी उत्पत्ति होती है।

मुनिवरोत्तम! सूर्यका आधार ध्रुव है, ध्रुवका ार है तथा शिशुमारके आश्रय भगवान् श्रीनारायण उस शिशुमारके हृदयमें श्रीनारायण स्थित हैं, समस्त प्राणियोंके पालनकर्ता तथा आदिभूत न पुरुष कहा जाता है।

दसवाँ अध्याय

द्वादश सूर्योंके नाम एवं अधिकारियोंका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—आरोह और अवरोहके द्वारा ने एक वर्षमें जितनी गति है, उस सम्पूर्ण मार्गकी काष्ठाओंका अन्तर एक सौ अस्सी मण्डल है। रथ (प्रतिमास) भिन्न-भिन्न आदित्य, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, ... गणोंसे अधिष्ठित होता ... सूर्यके रथमें ... गन्धर्व—ये सात मासाधिकारी रहते हैं। ऐसे ही अर्यमा नामक आदित्य, पुलह ऋषि, रथौजा यक्ष, पुञ्जिकस्थला अप्सरा, प्रहेति राक्षस, कच्छनीर सर्प और नारद नामक गन्धर्व—ये वैशाख मासमें सूर्यके रथपर निवास करते हैं। हे मैत्रेय! अब ज्येष्ठ मासमें निवास करनेवालोंके नाम सुनो। उस समय मित्र नामक आदित्य, अत्रि ऋषि, तक्षक सर्प, पौरुषेय राक्षस, मेनका अप्सरा, हाहा गन्धर्व और रथस्वन नामक यक्ष—ये उस रथमें वास करते हैं। आषाढ़ मासमें वरुण नामक आदित्य, वसिष्ठ ऋषि, नाग सर्प, सहजन्या अप्सरा, हूहू गन्धर्व, रथ राक्षस और रथचित्र नामक यक्ष उसमें रहते हैं। श्रावण मासमें इन्द्र नामक आदित्य, विश्वावसु गन्धर्व, स्रोत यक्ष, एलापत्र सर्प, अङ्गिरा ऋषि, प्रम्लोचा अप्सरा और सर्पि नामक राक्षस सूर्यके रथमें बसते हैं। भाद्रपदमें विवस्वान् नामक आदित्य, उग्रसेन गन्धर्व, भृगु ऋषि, आपूरण यक्ष, अनुम्लोचा अप्सरा, शंखपाल सर्प और व्याघ्र नामक राक्षसका उसमें निवास होता है। आश्विन मासमें पूषा नामक आदित्य, वसुरुचि गन्धर्व, वात राक्षस, गौतम ऋषि, धनञ्जय सर्प, सुषेण गन्धर्व और घृताची नामक अप्सराका उसमें वास होता है। कार्तिक मासमें पर्जन्य आदित्य, विश्वावसु नामक गन्धर्व, भरद्वाज ऋषि, ऐरावत सर्प, विश्वाची अप्सरा, सेनजित् यक्ष तथा आप नामक राक्षस रहते हैं।

मार्गशीर्षमासके अधिकारी अंश नामक आदित्य, काश्यप ऋषि, तार्क्ष्य यक्ष, महापद्म सर्प, उर्वशी अप्सरा, चित्रसेन गन्धर्व और विद्युत् नामक राक्षस हैं। हे विप्रवर! क्रतु ऋषि, भग आदित्य, ऊर्णायु गन्धर्व, स्फूर्ज राक्षस, ... सर्प, अरिष्टनेमि यक्ष तथा पूर्वचित्ति अप्सरा—ये ...ण पौषमासमें जगत्को प्रकाशित करनेके लिये ...में रहते हैं।

हे मैत्रेय ! त्वष्टा नामक आदित्य, जमदग्नि ऋषि, कम्बल सर्प, तिलोत्तमा अप्सरा, ब्रह्मोपेत राक्षस, ऋतजित् यक्ष और धृतराष्ट्र गन्धर्व—ये सात माघ मासमें भास्करमण्डलमें रहते हैं। अब जो फाल्गुन मासमें सूर्यके रथमें रहते हैं उनके नाम सुनो। हे महामुने! वे विष्णु नामक आदित्य, अश्वतर सर्प, रम्भा अप्सरा, सूर्यवर्चा गन्धर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र ऋषि और यज्ञोपेत नामक राक्षस हैं।

हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार भगवान् विष्णुकी शक्तिसे तेजोमय हुए ये सात-सात गण एक-एक मासतक सूर्यमण्डलमें रहते हैं। मुनि लोग सूर्यकी स्तुति करते हैं, गन्धर्व सम्मुख रहकर उनका यशोगान करते हैं, अप्सराएँ नृत्य करती हैं, राक्षस रथके पीछे चलते हैं, सर्प वहन करनेके अनुकूल रथको सुसज्जित करते हैं, यक्षगण रथकी बागडोर सँभालते हैं तथा (नित्यसेवक) बालखिल्यादि इसे सब ओरसे घेरे रहते हैं। हे मुनिसत्तम ! सूर्यमण्डलके ये सात-सात गण ही अपने-अपने समयपर उपस्थित होकर शीत, ग्रीष्म और वर्षा आदिके कारण होते हैं।

ग्यारहवाँ अध्याय

सूर्यशक्ति एवं वैष्णवी शक्तिका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन् ! आपने जो कहा कि सूर्यमण्डलमें स्थित सातों गण शीत-ग्रीष्म आदिके कारण होते हैं, यह मैं सुन चुका। हे गुरो ! आपने सूर्यके रथमें स्थित और विष्णु-शक्तिसे प्रभावित गन्धर्व, सर्प, राक्षस, ऋषि, बालखिल्यादि, अप्सरा तथा यक्षोंके तो पृथक्-पृथक् व्यापार बतलाये; किंतु यह नहीं बतलाया कि सूर्यका कार्य क्या है ? ॥ [illegible] यदि सातों गण ही शीत, ग्रीष्म और वर्षाके कारण [illegible] फिर सूर्यका क्या प्रयोजन है ? और यह [illegible] जाता है कि वृष्टि सूर्यसे होती है ? [illegible] गणोंका यह वृष्टि आदि कार्य समान ही [illegible] 'सूर्य उदय हुआ, अब मध्यमें है, अब अस्त होता [illegible]' ऐसा लोग क्यों कहते हैं ?

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! तुमने जो [illegible] पूछा है, उसका उत्तर सुनो। सूर्य सात गणोंमें [illegible] एक हैं तथापि उनमें प्रधान होनेसे उनकी [illegible] भगवान् विष्णुकी सर्वशक्तिमयी ऋक्, यजुः [illegible] साम नामकी पराशक्ति है। वह वेदत्रयी ही सू[र्यको] ताप प्रदान करती है और (उपासना किये जानेपर) संसारके समस्त पापोंको नष्ट कर देती है। [illegible] द्विज ! जगत्की स्थिति और पालनके लिये वे [ऋक्,] यजुः और सामरूप विष्णु सूर्यके भीतर निवास [करते] हैं। प्रत्येक मासमें जो सूर्य होते हैं, उन्हींमें वेदत्रयीरूपिणी विष्णुकी पराशक्ति निवास करती [है।] पूर्वाह्णमें ऋक्, मध्याह्नमें यजुः तथा सायंका[लमें] बृहद्रथन्तरादि सामश्रुतियाँ सूर्यकी स्तुति करती हैं।* यह ऋक्-यजुः-सामस्वरूपिणी वेदत्रयी भगवान् विष्णु[का] ही अङ्ग है। यह विष्णु-शक्ति सर्वदा आदित्यमें रहती है।

यह त्रयीमयी वैष्णवी शक्ति केवल सूर्यकी ही अधिष्ठात्री हो, यही नहीं, बल्कि ब्रह्मा, [विष्णु] और महादेव भी त्रयीमय ही हैं। सर्गके आ[दिमें] ब्रह्मा ऋङ्मय हैं, उसकी स्थितिके समय [विष्णु] यजुर्मय हैं तथा अन्तकालमें रुद्र साममय [हैं।]

* इस विषयमें यह श्रुति भी है—

ऋचः पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते, यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्नः सामवेदेनास्तमये महीयते।

इसी भावका यह श्लोक भी द्रष्टव्य है—

ऋचः स्तुवन्ति पूर्वाह्णे मध्याह्नेऽथ यजूंषि वै।
बृहद्रथन्तरादीनि सामान्यह्नः [illegible]

(वि० पु० २।११।१०)

इस प्रकार वह त्रयीमयी सात्त्विकी वैष्णवी शक्ति अपने मासोंमें स्थित आदित्यमें ही (अतिशयरूपसे) अवस्थित रहती है। उससे अधिष्ठित सूर्यदेव भी अपनी प्रखर किरणोंसे अत्यन्त प्रज्वलित होकर संसारके सम्पूर्ण अन्धकारको नष्ट कर देते हैं।

उन सूर्यदेवकी मुनिगण स्तुति करते हैं और गन्धर्वगण उनके सम्मुख यशोगान करते हैं। अप्सराएँ नृत्य करती हुई चलती हैं, राक्षस रथके पीछे रहते हैं, सर्पगण रथका साज सजाते हैं, यक्ष घोड़ोंकी बागडोर सँभालते हैं तथा बालखिल्यादि रथको सब ओरसे घेरे रहते हैं। त्रयीशक्तिरूप भगवान् (सूर्यस्वरूप) विष्णुका न कभी उदय होता है और न अस्त (अर्थात् वे स्थायीरूपसे सदा विद्यमान रहते हैं।) ये सात प्रकारके गण तो उनसे पृथक् हैं। स्तम्भमें लगे हुए दर्पणके समान जो कोई उनके निकट जाता है, उसीको अपनी छाया दिखायी देने लगती है। हे द्विज! इसी प्रकार वह वैष्णवीशक्ति सूर्यके रथसे कभी चलायमान नहीं होती और प्रत्येक मासमें पृथक्-पृथक् सूर्यके (परिवर्तित होकर) उसमें स्थित होनेपर वह उसकी अधिष्ठात्री होती है।

हे द्विज! दिन और रात्रिके कारणस्वरूप भगवान् सूर्य पितृगण, देवगण और मनुष्यादिको सदा तृप्त करते हुए घूमते रहते हैं। सूर्यकी जो सुषुम्ना नामकी किरण है, उससे शुक्लपक्षमें चन्द्रमाका पोषण होता है और फिर कृष्णपक्षमें उस अमृतमय चन्द्रमाकी एक-एक कलाका देवगण निरन्तर पान करते हैं। हे द्विज! कृष्णपक्षके क्षय होनेपर (चतुर्दशीके अनन्तर) दो कला-युक्त चन्द्रमाका पितृगण पान करते हैं। इस प्रकार सूर्यद्वारा पितृगणका तर्पण होता है।

सूर्य अपनी किरणोंसे पृथिवीसे जितना जल खींचते हैं, उतनेको प्राणियोंकी पुष्टि और अन्नकी वृद्धिके लिये बरसा देते हैं। उससे भगवान् सूर्य समस्त प्राणियोंको आनन्दित कर देते हैं और इस प्रकार देव, मनुष्य और पितृगण आदि सभीका पोषण करते हैं। हे मैत्रेय! इस रीतिसे सूर्यदेव देवताओंकी पाक्षिक, पितृगणकी मासिक तथा मनुष्योंकी नित्यप्रति तृप्ति करते रहते हैं।

बारहवाँ अध्याय

नवग्रहोंका वर्णन तथा लोकान्तरसम्बन्धी व्याख्या

पराशरजी बोले—चन्द्रमाका रथ तीन पहियोंवाला है। उसके वाम तथा दक्षिण ओर कुन्द-कुसुमके समान श्वेतवर्ण दस घोड़े जुते हुए हैं। ध्रुवके आधारपर स्थित उस वेगशाली रथसे चन्द्रदेव भ्रमण करते हैं और नागवीथिपर आश्रित अश्विनी आदि नक्षत्रोंका भोग करते हैं। सूर्यके समान इनकी किरणोंके भी घटने-बढ़नेका निश्चित क्रम है। हे मुनिश्रेष्ठ! सूर्यके समान समुद्रगर्भसे उत्पन्न हुए उनके घोड़े भी एक बार जोत दिये जानेपर एक कल्पपर्यन्त रथ खींचते रहते हैं। हे मैत्रेय! सुरगणके पान करते रहनेसे क्षीण हुए कलामात्र चन्द्रमाका प्रकाशमय सूर्यदेव अपनी एक किरणसे पुनः पोषण करते हैं। जिस क्रमसे देवगण चन्द्रमाका पान करते हैं, उसी क्रमसे जलापहारी सूर्यदेव उन्हें शुक्ल प्रतिपत्से प्रतिदिन पुष्ट करते हैं। हे मैत्रेय! इस प्रकार आधे महीनेमें एकत्र हुए चन्द्रमाके अमृतको देवगण फिर पीने लगते हैं; क्योंकि देवताओंका आहार तो अमृत है। तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस (३३३३३) देवगण चन्द्रस्थ अमृतका पान करते हैं। जिस समय दो कलामात्रसे अवस्थित चन्द्रमा सूर्यमण्डलमें प्रवेश करके उसकी 'अमा' नामक किरणमें रहते हैं, वह तिथि 'अमावस्या' कहलाती है। उस दिन रात्रिमें वे पहले तो जलमें प्रवेश करते हैं, फिर वृक्ष-लता आदिमें निवास करते हैं और तदनन्तर क्रमसे सूर्यमें चले जाते हैं। वृक्ष और लता आदिमें

कश्यपजीसे उनकी पत्नी दितिके गर्भसे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षनामक पुत्र उत्पन्न हुए । फिर सिंहिका नामवाली एक कन्या भी हुई, जो विप्रचित्तिनामक दानवकी पत्नी हुई । उसके गर्भसे राहु आदिकी उत्पत्ति हुई, जो 'सैंहिकेय'नामसे विख्यात हुए । हिरण्यकशिपुके चार पुत्र हुए, जो अपने बल-पराक्रमके कारण विख्यात थे । इनमें पहला ह्राद, दूसरा अनुह्राद और तीसरे प्रह्लाद हुए, जो महान् विष्णुभक्त थे और चौथा संह्राद था । ह्रादका पुत्र ह्रद हुआ । संह्रादके पुत्र आयुष्मान्, शिबि और बाष्कल थे । प्रह्लादका पुत्र विरोचन हुआ और विरोचनसे बलिका जन्म हुआ । बलिके सौ पुत्र हुए, जिनमें बाणासुर ज्येष्ठ था । हे महामुने ! पूर्वकल्पमें इस बाणासुरने भगवान् उमापतिको (भक्ति-भावसे) प्रसन्न कर उन परमेश्वरसे यह वरदान प्राप्त किया था कि 'मैं आपके पास ही विचरता रहूँगा ।' हिरण्याक्षके पाँच पुत्र थे—शम्बर, शकुनि, द्विमूर्धा, शङ्कु और आर्य । कश्यपजीकी दूसरी पत्नी दनुके गर्भसे सौ दानव पुत्र उत्पन्न हुए ।

इनमें स्वर्भानुकी कन्या सुप्रभा थी और पुलोमा दानवकी पुत्री थी शची । उपदानवकी कन्या हयशिरा थी और वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा । पुलोमा और कालका—ये दो वैश्वानरकी कन्याएँ थीं । ये दोनों कश्यपजीकी पत्नी हुईं । इन दोनोंके करोड़ों पुत्र थे । प्रह्लादके वंशमें चार करोड़ 'निवातकवच'नामक दैत्य हुए । कश्यपजीकी ताम्रा नामवाली पत्नीसे छः पुत्र हुए । इनके अतिरिक्त काकी, श्येनी, भासी, गृध्रिका और शुचिग्रीवा आदि भी कश्यपजीकी भार्याएँ थीं । उनसे काक आदि पक्षी उत्पन्न हुए । ताम्राके पुत्र घोड़े और ऊँट थे । विनताके अरुण और गरुड़नामक दो पुत्र हुए । सुरसासे हजारों साँप उत्पन्न हुए और कद्रूके गर्भसे भी शेष, वासुकि और तक्षक आदि सहस्रों नाग हुए । क्रोधवशाके गर्भसे दंशनशील दाँतवाले सर्प उत्पन्न हुए । धरासे जल-पक्षी उत्पन्न हुए । सुरभिसे गाय-भैंस आदि दुधारू पशु उत्पन्न हुए । इराके गर्भसे तृण आदि उत्पन्न हुए । खसासे यक्ष-राक्षस और मुनिके गर्भसे अप्सराएँ तथा इसी प्रकार अरिष्टाके गर्भसे गन्धर्व उत्पन्न हुए । कश्यपजीसे स्थावर-जङ्गम जगत्की उत्पत्ति हुई ।

इन सबके असंख्य पुत्र हुए । देवताओंने युद्धमें जीत लिया । अपने पुत्रोंके मारे जाने कश्यपजीको सेवासे संतुष्ट किया । वह इन्द्रका वध करनेवाले पुत्रको पाना चाहती थी । उसने अपना यह अभिमत वर प्राप्त कर लिया गर्भवती और व्रतपालनमें तत्पर थी, उस समय भोजनके बाद बिना पैर धोये ही सो गयी । यह छिद्र (त्रुटि या दोष) ढूँढ़कर उसके गर्भमें ही उस गर्भके टुकड़े-टुकड़े कर दिये, (प्रभावसे उनकी मृत्यु नहीं हुई ।) वे तेजस्वी और इन्द्रके सहायक उनचास मरुत् हुए । मुने ! यह सारा वृत्तान्त मैंने सुना श्रीहरिस्वरूप ब्रह्माजीने पृथुको नरलोकके राज्यपर अभिषिक्त करके क्रमशः दूसरोंको भी राज्य दिये— विभिन्न समूहोंका राजा बनाया । अन्य सबके अधिपति (तथा परिगणित अधिपतियोंके भी अधिपति) श्रीहरि ही हैं ।

ब्राह्मणों और ओषधियोंके राजा चन्द्रमा हुए । जलके स्वामी वरुण हुए । राजाओंके राजा कुबेर हुए । बारह सूर्यों (आदित्यों) के अधीश्वर भगवान् विष्णु थे । वसुओंके राजा पावक और मरुद्गणोंके स्वामी इन्द्र हुए । प्रजापतियोंके स्वामी दक्ष और दानवोंके अधिपति प्रह्लाद हुए । पितरोंके यमराज और भूत आदिके स्वामी सर्वसमर्थ भगवान् शिव हुए तथा शैलों (पर्वतों) के राजा हिमवान् हुए और नदियोंका स्वामी सागर हुआ । गन्धर्वोंके चित्ररथ, नागोंके वासुकि, सर्पोंके तक्षक और पक्षियोंके गरुड़ राजा हुए । श्रेष्ठ हाथियोंका स्वामी

हुआ और गौओंका अधिपति साँड़ । वनचर स्वामी शेर हुआ और वनस्पतियोंका प्लक्ष ... घोड़ोंका स्वामी उच्चैःश्रवा हुआ ... पूर्व दिशाका रक्षक हुआ । दक्षिण दिशामें और पश्चिममें केतुमान् रक्षक नियुक्त हुए । र उत्तर दिशामें हिरण्यरोमक नामका राजा हुआ ।

इक्यावनवाँ अध्याय

दि ग्रहों तथा दिक्पाल आदि देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका वर्णन

गवान् श्रीहयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन् ! सात जुते हुए एक पहियेवाले रथपर विराजमान की प्रतिमाको स्थापित करना चाहिये । भगवान् ने दोनों हाथोंमें दो कमल धारण किये हुए हों । दाहिने भागमें दावात और कलम लिये दण्डी हों और वामभागमें पिङ्गल हाथमें दण्ड लिये द्वार- विद्यमान हों । ये दोनों सूर्यदेवके पार्षद हैं । न् सूर्यदेवके उभय पार्श्वमें बाल-व्यजन (चँवर) 'राज्ञी' तथा 'निष्प्रभा'* खड़ी हों अथवा घोड़ेपर हुए एकमात्र सूर्यकी ही प्रतिमा बनानी चाहिये । दिक्पाल हाथोंमें वरद मुद्रा, दो-दो कमल तथा लिये क्रमशः पूर्वादि दिशाओंमें स्थित दिखाये चाहिये ।

बारह दलोंका एक कमल-चक्र बनावे । उसमें सूर्य, †आदि नामवाले बारह आदित्योंका क्रमशः बारह में स्थापन करे । यह स्थापना वरुण-दिशा एवं वायव्य-कोणसे आरम्भ करके नैर्ऋत्यकोणके अन्ततकके दलोंमें हो चाहिये । उक्त आदित्यगण चार-चार हाथवाले हों और उन हाथोंमें मुद्गर, शूल, चक्र एवं कमल धारण किये हों । अग्निकोणसे लेकर नैर्ऋत्यतक, नैर्ऋत्यसे वायव्य तक, वायव्यसे ईशानतक और वहाँसे अग्निकोणतक दलोंमें उक्त आदित्योंकी स्थिति जाननी चाहिये ।

बारह आदित्योंके नाम इस प्रकार हैं—वरुण, सूर्य, सहस्रांशु, धाता, तपन, सविता, गभस्तिक, रवि, पर्जन्य, त्वष्टा, मित्र और विष्णु । ये मेष आदि बारह राशियों स्थित होकर जगत्को ताप एवं प्रकाश देते हैं । वरुण आदि आदित्य क्रमशः मार्गशीर्ष मास (या वृश्चिकराशि) से लेकर कार्तिक मास (या तुलाराशि तकके मासों (एवं राशियों) में स्थित होकर अपना कार्य सम्पन्न करते हैं । इनकी अङ्गकान्ति क्रमशः काली, लाल, कुछ-कुछ लाल, पीली, पाण्डुवर्ण, श्वेत, कपिलवर्ण, पीतवर्ण, तोतेके समान हरी, धवलवर्ण, धूम्रवर्ण और नीली है । इनकी शक्तियाँ द्वादशदल कमलके केसरोंके अग्रभागमें स्थित होती हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—इडा, सुषुम्ना, विश्वार्चि, इन्दु, प्रमर्दिनी (प्रवर्द्धिनी), प्रहर्षिणी, महाकाली, कपिला, प्रबोधिनी, नीलाम्बरा, वनान्तस्था (घनान्तस्था) और अमृताख्या । वरुण आदिकी जो अङ्गकान्ति है, वही इन शक्तियोंकी भी है । केसरोंके अग्रभागोंमें इनकी स्थापना करे । सूर्यदेवका तेज प्रचण्ड और मुख विशाल है । उनके दो भुजाएँ हैं । वे अपने हाथोंमें कमल और खड्ग धारण करते हैं ।

---

* 'राज्ञी' और 'निष्प्रभा'—ये चँवर डुलानेवाली स्त्रियोंके नाम हैं; अथवा इन नामोंद्वारा सूर्यदेवकी दोनों यों की ओर संकेत किया गया है । 'राज्ञी' शब्दसे उनकी रानी 'संज्ञा' गृहीत होती हैं और 'निष्प्रभा' शब्दसे या—ये दोनों देवियाँ चँवर डुलाकर पतिकी सेवा करती रहती हैं ।

† सूर्य आदि द्वादश आदित्योंके नाम अन्यत्र गिनाये गये हैं और अर्यमा आदि द्वादश आदित्योंके नाम १९वें अध्यायमें ने चाहिये । ये नाम वैवस्वत मन्वन्तरके आदित्योंके हैं । चाक्षुष मन्वन्तरमें वे ही 'तुषित' नामसे विख्यात थे । अन्य ओंमें भी आदित्योंकी नामावली तथा उनके मासक्रममें यहाँकी अपेक्षा कुछ अन्तर मिलता है । इसकी संगति कल्पभेदके सार माननी चाहिये ।

चन्द्रमा कुण्डिका तथा जपमाला धारण करते हैं। मङ्गलके हाथोंमें शक्ति और अक्षमाला शोभित होती हैं। बुधके हाथोंमें धनुष और अक्षमाला शोभा पाती हैं। बृहस्पति कुण्डिका और अक्षमालाधारी हैं। शुक्रका भी ऐसा ही स्वरूप है अर्थात् उनके हाथोंमें भी कुण्डिका और अक्षमाला शोभित होती हैं। शनि किङ्किणी-सूत्र धारण करते हैं। राहु अर्द्धचन्द्रधारी हैं तथा केतुके हाथोंमें खड्ग और दीपक शोभा पाते हैं।

समस्त लोकपाल द्विभुज हैं। विश्वकर्मा अक्षसूत्र धारण करते हैं। हनुमान्‌जीके हाथमें वज्र है। उन्होंने अपने दोनों पैरोंसे एक असुरको दबा रक्खा है। किंनर-मूर्तियाँ हाथमें वीणा लिये हों और विद्याधर माला धारण किये आकाशमें स्थित दिखाये जायँ। पिशाचोंके शरीर दुर्बल कङ्कालमात्र हों। वेतालोंके मुख निकराल हों। क्षेत्रपाल शूलधारी बनाये जायँ। प्रेतोंके पेट लंबे और शरीर कृश हों।

तिहत्तरवाँ अध्याय

सूर्यदेवकी पूजा-विधिका वर्णन

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द! अब मैं करन्यास और अङ्गन्यासपूर्वक सूर्यदेवताके पूजनकी विधि बताऊँगा। 'मैं तेजोमय सूर्य हूँ'—ऐसा चिन्तन करके अर्घ्य-पूजन करे। लाल रंगके चन्दन या रोलीसे मिश्रित जलको ललाटके निकटतक ले जाकर उसके द्वारा अर्घ्यपात्रको पूर्ण करे। उसका गन्धादिसे पूजन करके सूर्यके अङ्गोंद्वारा रक्षावगुण्ठन करे। तत्पश्चात् जलसे पूजा-सामग्रीका प्रोक्षण करके पूर्वाभिमुख हो सूर्यदेवकी पूजा करे। 'ॐ आं हृदयाय नमः' इस प्रकार आदिमें स्वर-बीज लगाकर सिर आदि अन्य सब अङ्गोंमें भी न्यास करे। पूजा-गृहके द्वारदेशमें दक्षिणकी ओर 'दण्डी'का और वामभागमें 'पिङ्गल'का पूजन करे। ईशानकोणमें 'ॐ गं गणपतये नमः'—इस मन्त्रसे गणेशकी और अग्निकोणमें गुरुकी पूजा करे। ...

पद्मप्रकार आसनका चिन्तन ...
पीठके अग्नि आदि चारों को...
सार, आराध्य तथा परम सुख...
प्रभूतासनकी पूजा करे। उपर्युक्त ...
वर्ण क्रमशः श्वेत, लाल, पीले और ...
आकृति सिंहके समान है। ...
करनी चाहिये।

पीठस्थ कमलके भीतर 'रां दी...
इस मन्त्रद्वारा दीप्ताकी, 'रीं सूक्ष्म...
मन्त्रसे सूक्ष्माकी, 'रूं जयायै नमः'—...
'रें भद्रायै नमः'—इससे भद्राकी, 'रैं...
इससे विभूतिकी, 'रों विमलायै नमः'—...
'रौं अमोघायै नमः'—इससे अमोघ...
'रं विद्युतायै नमः'—इससे विद्युताकी पू...
दिशाओंमें पूजा करे और मध्यभागमें 'र...
नमः'—इस मन्त्रसे नवीं पीठशक्ति ...
आराधना करे। तत्पश्चात् 'ॐ ब्रह्मविष्णुशि...
सौराय योगपीठात्मने नमः'—इस मन्त्रके द्वा...
आसन (पीठ) का पूजन करे। ...
'खखोल्काय नमः' इस षडक्षर मन्त्रके ...
'ॐ हं खं' जोड़कर नौ अक्षरोंसे युक्त '...
खखोल्काय नमः'—इस मन्त्रद्वारा ...
विग्रहका आवाहन करे। इस प्रकार आवाह...
भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये।

अञ्जलिमें लिये हुए जलको ललाटके निकट...
जाकर रक्त वर्णवाले सूर्यदेवका ध्यान करके ...
भावनाद्वारा अपने सामने स्थापित करे।
'ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः'—ऐसा कहकर उक्त ...
सूर्यदेवको अर्घ्य दे। इसके बाद 'बिम्बमुद्रा' ...
हुए आवाहन आदि उपचार अर्पित करे। तद...

१. ललाटे करौ कृत्वा प्रतिदिष्टे तु मध्यमे। अङ्गुल्यौ धारयेत्तस्मिन् बिम्बमुद्रेति सोच्यते॥

…प्रीतिके लिये गन्ध (चन्दन-रोली) आदि … करे । तत्पश्चात् 'पद्ममुद्रा' और 'बिम्बमुद्रा' … अग्नि आदि कोणोंमें हृदय आदि अङ्गोंकी … करे । अग्निकोणमें 'ॐ आं हृदयाय नमः'—…न्त्रसे हृदयकी, नैर्ऋत्यकोणमें 'ॐ भूः अर्काय स्वाहा'—इससे सिरकी, वायव्यकोणमें …वः सुरेशाय शिखायै वषट्'—इससे शिखाकी, …कोणमें 'ॐ स्वः कवचाय हुम्'—इससे कवचकी, … और उपासकके बीचमें 'ॐ हां नेत्रत्रयाय वौषट्'—…की तथा देवताके पश्चिमभागमें 'वः अस्त्राय फट्'—…न्त्रसे अस्त्रकी पूजा करे[2]। इसके बाद पूर्वादि …ओंमें मुद्राओंका प्रदर्शन करे ।

… हृदय, सिर, शिखा और कवच—इनके लिये …दि दिशाओंमें धेनुमुद्राका प्रदर्शन करे । नेत्रोंके …र गोश्रृङ्गकी मुद्रा दिखाये । अस्त्रके लिये त्रासनी-…की योजना करे । तत्पश्चात् ग्रहोंको नमस्कार …र उनका पूजन करे । 'ॐ सों सोमाय नमः'—… मन्त्रसे पूर्वमें चन्द्रमाकी, 'ॐ बुं बुधाय नमः'—… मन्त्रसे दक्षिणमें बुधकी, 'ॐ बृं बृहस्पतये नमः'—… मन्त्रसे पश्चिममें बृहस्पतिकी और 'ॐ भं भार्गवाय …मः'—इस मन्त्रसे उत्तरमें शुक्रकी पूजा करे । … तरह पूर्वादि दिशाओंमें चन्द्रमा आदि ग्रहोंकी पूजा करके, अग्नि आदि कोणोंमें शेष ग्रहोंका पूजन करे । यथा—'ॐ भौं भौमाय नमः'—इस मन्त्रसे अग्निकोणमें मङ्गलकी, 'ॐ शं शनैश्चराय नमः'—इस मन्त्रसे नैर्ऋत्यकोणमें शनैश्चरकी, 'ॐ रां राहवे नमः'—इस मन्त्रसे वायव्यकोणमें राहुकी तथा 'ॐ कें केतवे नमः'—इस मन्त्रसे ईशानकोणमें केतुकी गन्ध आदि उपचारोंसे पूजा करे । खखोल्की (भगवान् सूर्य)के साथ इन सब ग्रहोंका पूजन करना चाहिये ।

मूलमन्त्रका[3] जप करके अर्घ्यपात्रमें जल लेकर सूर्यको समर्पित करनेके पश्चात् उनकी स्तुति करे । इस तरह स्तुतिके पश्चात् सामने मुँह किये खड़े होकर सूर्यदेवको नमस्कार करके कहे—'प्रभो ! आप मेरे अपराधों और त्रुटियोंको क्षमा करें ।' इसके बाद 'अस्त्राय फट्'—इस मन्त्रसे अणुसंहारका समाहरण करके 'शिव ! सूर्य ! (कल्याणमय सूर्यदेव !)'—ऐसा कहते हुए संहारिणी-शक्ति या मुद्राके द्वारा सूर्यदेवके उपसंहृत तेजको अपने हृदय-कमलमें स्थापित कर दे तथा सूर्यदेवका निर्माल्य उनके पार्षद चण्डको अर्पित करे । इस प्रकार जगदीश्वर सूर्यका पूजन करके उनके ध्यान, जप और होम करनेसे साधकका सारा मनोरथ सिद्ध होता है ।

---

१. हस्तौ तु सम्मुखौ कृत्वा संनतप्रोन्नताङ्गुली । तलान्तर्मिलिताङ्गुष्ठौ मुद्रैषापद्मसंज्ञिता ॥

२. मन्त्रमहार्णवमें हृदयादि अङ्गोंके पूजनका क्रम इस प्रकार दिया गया है—

अग्निकोणे—ॐ सत्यतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा हृदयाय नमः, हृदयश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । नैर्ऋतिकोणे—ॐ ब्रह्मतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिरसे स्वाहा शिरः श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । …यव्ये—ॐ विष्णुतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिखायै वषट् शिखाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । …शान्ये—ॐ रुद्रतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा कवचाय हु कवचश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । पूज्यपूजकयोर्मध्ये —ॐ अग्नितेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । देवतापश्चिमे—ॐ सर्वतेजोज्वालामणे हु फट् स्वाहा अस्त्राय फट् अस्त्रश्रीपादुका पूजयामि तर्पयामि नमः ।

३. 'शारदातिलक'के अनुसार सूर्यका दशाक्षर मूल मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ ह्रीं घृणिः सूर्य आदित्य श्रीं ।' …न्तु यहाँ 'ॐ ह खं' इन बीजोंके साथ 'खखोल्काय नमः ।' इस षडक्षर मन्त्रका उल्लेख है । अतः इसीको यहाँ मूल मन्त्र …मझना चाहिये ।

लिङ्गपुराणमें सूर्योपासनाकी विधि

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

णके उत्तरभागके २२वें अध्यायमें सूर्यो-
ृत ही सुन्दर वर्णन किया गया है। इस-
स अध्यायको अर्थके सहित ज्यों-का-त्यों
रहे हैं। सूर्यमें और ब्रह्म परमात्मामें कोई
। ब्रह्मके भर्ग-तेजका रूप ही सूर्यनारायण
ों काल भगवती गायत्रीका जप करते हैं, वे
ी ही उपासना करते हैं। लिङ्गपुराण-
विधिसे जो सूर्योपासना करेंगे, उनकी मनः-
ल पूर्ण होगी—ऐसा पुराणका मत है।

ानयागादिकर्माणि कृत्वा वै भास्करस्य च।
ग्निस्नानं ततः कुर्याद् भस्मस्नानं शिवार्चनम्॥

'भगवान् सूर्यका स्नान-पूजन आदि कर्म करके
स्नान, भस्मस्नान तथा शिवार्चन करे।'

ष्ठेन मृदमादाय भक्त्या भूमौ न्यसेन्मृदम्।
द्वितीयेन तथाभ्युक्ष्य तृतीयेन च शोधयेत्॥

'छठे महाव्याहृति अर्थात् ॐ तपः इस मन्त्रसे मिट्टी
कर भक्तिपूर्वक उसे पृथ्वीपर स्थापित करे। दूसरे
ॐ भुवः) से सींचकर, तीसरे (ॐ स्वः) से
भिमन्त्रित करे।'

चतुर्थेनैव विभजेन्मलमेकेन शोधयेत्।
स्नात्वा षष्ठेन तच्छेषां मृदं हस्तगतां पुनः॥

'चतुर्थ (ॐ महः) से मिट्टीका विभाग करे।
प्रथम (ॐ भूः) से मलको शुद्ध करे अर्थात् स्नान
करे। फिर छठे (ॐ तपः) से शेष मिट्टीको सात
बार अभिमन्त्रित करे।'

त्रिधा विभज्य सर्वं च चतुर्भिर्मध्यमं पुनः।
षष्ठेन सप्तवाराणि वामं मूलेन चालभेत्॥
दशवारं च षष्ठेन दिशोबन्धः प्रकीर्तितः॥

'मिट्टीका तीन विभाग करके 'ॐ महः' से अभिमन्त्रित
करे। फिर छठे (ॐ तपः) से बायें हाथको मूल
मन्त्रसे स्पर्श करे। सात बार अभिमन्त्रित करके फिर
इसी मन्त्रसे दस बार दिग्बन्धन करे।'

वामेन तीर्थं सव्येन शरीरमनुलिप्य च।
स्नात्वा सर्वैः स्मरन् भानुमभिषेकं समाचरेत्॥

'बायें हाथपर तीर्थकी (पवित्र) मिट्टी रखकर दायें
हाथसे शरीरमें लेप करे। फिर सम्पूर्ण मन्त्रोंसे सूर्यका
स्मरण करता हुआ तीर्थ-जलसे अभिषेक करे।'

शृङ्गेण पर्णपुटकैः पालाशेन दलेन वा।
सौरैरेभिश्च विविधैः सर्वसिद्धिकरैः शुभैः॥

'शृङ्गसे, पत्तेके दोनेसे अथवा पलाशपत्रसे सर्व-
सिद्धिकारी सूर्यमन्त्रोंको पढ़े।'

सौराणि च प्रवक्ष्यामि वाष्कलादीनि सुव्रत।
अङ्गानि सर्वदेवेषु सारभूतानि सर्वतः॥

अब सूर्यके वाष्कल आदि मन्त्रोंको, जो सब देवोंमें
सारभूत हैं, कहता हूँ—

ॐभूः ॐभुवः ॐस्वः ॐमहः ॐजनः ॐतपः ॐसत्यम्
ॐ ऋतम् ॐ ब्रह्म।

नवाक्षरमयं मन्त्रं वाष्कलं परिकीर्तितम्॥
न क्षरन्तीति लोकानि ऋतमक्षरमुच्यते।
सत्यमक्षरमित्युक्तं प्रणवादिनमोऽन्तकम्॥

'ॐ भूः' आदि नवाक्षर वाष्कल-मन्त्र कहे जाते हैं।
'ॐभूः' आदि सात लोक नष्ट नहीं होते हैं। ऋतको
अक्षर कहते हैं। प्रणव (ॐ) आदिमें और 'नमः'
अन्तमें हो ऐसे ॐनमः को सत्याक्षर कहा गया है।'

ॐ भूर्भुवः स्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॐनमः सूर्याय खखोल्काय नमः॥

यह भगवान् सूर्यका मूलमन्त्र है।

मूलं मन्त्रमिदं प्रोक्तं भास्करस्य महात्मनः।
नवाक्षरेण दीप्तास्य मूलमन्त्रेण भास्करम्॥

'सुन्दर ताम्रपात्रको गन्ध, जल, लाल चन्दन, रक्त पुष्प, तिल, कुश, अक्षत, दूर्वा, अपामार्ग, पञ्चगव्य अथवा गोघृतसे पूर्ण करके मूलमन्त्र (नवाक्षर मन्त्र) से दोनों जानुके बल पूर्वमुख बैठकर देवदेव भगवान् सूर्यको नमस्कारपूर्वक अर्घ्य दे। इससे दस हजार अश्वमेध यज्ञोंका सर्वसम्मत फल उसे प्राप्त होता है।'

दत्त्वैवार्घ्यं यजेद् भक्त्या देवदेवं त्रियम्बकम् ॥
अथवा भास्करं चेष्ट्वा आग्नेयं स्नानमाचरेत्।
पूर्ववद् वै शिवस्नानं मन्त्रमात्रेण भेदितम् ॥

'इस प्रकार सूर्यको अर्घ्य देकर भगवान् शंकरका पूजन करे। अथवा सूर्यका पूजन करके शिवके लिये भस्मस्नान करे। तत्पश्चात् 'सद्योजात' आदि मन्त्रोंसे भगवान् शंकरको स्नान कराये।'

दन्तधावनपूर्वं च स्नानं सौरं च शाङ्करम्।
विघ्नेशं वरुणञ्चैव गुरुं तीर्थं समर्चयेत् ॥

दन्तधावन करके सौर-स्नान, शांकर-स्नान करनेके पश्चात् गणेश, वरुण तथा गुरुतीर्थका पूजन करे।

बद्ध्वा पद्मासनं तीर्थे तथा तीर्थं समर्चयेत्।
तीर्थं संगृह्य विधिना पूजास्थानं प्रविश्य च ॥
मार्गणार्घ्यपवित्रेण तदाक्रम्य च पादुकम्।
पूर्ववत् करविन्यासं देहविन्यासमाचरेत् ॥

'पद्मासन बाँधकर तीर्थका पूजन करे। विधिवत् पूजन करके पूजास्थानमें जाय और पादुका उतार करके पूर्ववत् करन्यास और देहन्यास करे।'

अर्घ्यस्य सादनञ्चैव समासात् परिकीर्तितम्।
[illegible] पद्मासनं योगी प्राणायामं समभ्यसेत् ॥
[illegible]णि संगृह्य कमलाद्यानि भावयेत्।
दक्षिणे स्थाप्य जलभाण्डं च वामतः ॥
[illegible] सौराणि सर्वकामार्थसिद्धये।
[illegible] प्रक्षाल्य च यथाविधि ॥
[illegible] सार्धं जलभाण्डे तथैव च।
[illegible]चैवार्घ्यमर्घ्यद्रव्यसमन्वितम् ॥
[illegible]त्वा सम्पूज्य प्रथमेन च।
[illegible] स्थापयेदात्मनोपरि ॥

पाद्यमाचमनीयञ्च गन्धपुष्पसमन्वितम्।
अम्भसा शोधिते पात्रे स्थापयेत् पूर्ववत् पृथक् ॥
संहिताञ्चैव विन्यस्य कवचेनावगुण्ठ्य च।
अर्घ्याम्बुना समभ्युक्ष्य द्रव्याणि च विशेषतः।
आदित्यञ्च जपेद् देवं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥

'ताम्रपात्र सूर्य-पूजामें सब कामनाओंकी सिद्धि करनेवाले होते हैं। अर्घ्यपात्र लेकर उसे यथाविधि शुद्ध करके पूर्वोक्त जल जलपात्रमें रखकर अर्घ्यद्रव्यसे युक्त करे। तदनन्तर संहितामन्त्रोंको पढ़कर प्रथमसे पूजन करके, चतुर्थसे मिलाकर अपने पास रखे। पाद्य, आचमनीय, गन्ध-पुष्पसे युक्त करके जलसे शुद्ध किये पात्रमें पहलेकी तरह रखे। मन्त्रोंसे तथा कवचसे अभिमन्त्रित करे। अर्घ्यके जलसे द्रव्योंका प्रोक्षण कर फिर सर्व-देवोंसे नमस्कृत भगवान् सूर्यकी उपासना करे।'

आदित्यो वै तेज ऊर्जो बलं यशो विवर्धति।
इत्यादिना नमस्कृत्य कल्पयेदासनं प्रभोः ॥
प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम्।
आग्नेय्यादिषु कोणेषु मध्यमान्तं हृदा न्यसेत् ॥

'आदित्यो वै तेजः' आदि यजुर्वेदकी श्रुतियोंद्वारा सूर्य भगवान्‌को नमस्कार करके सूर्यके आसनकी कल्पना करे। परमैश्वर्ययुक्त, परमसुख भगवान् सूर्यकी आराधना करे। अग्निकोण आदि उपदिशाओंमें ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ महः आदि मध्यम व्याहृतियोंका न्यास करे।'

अङ्गं प्रविन्यसेच्चैव बीजमङ्कुरमेव च।
नालं सुषिरसंयुक्तं सूक्ष्मकंटकसंयुतम् ॥
दलं दलाग्रं शुक्लं हेमाभं रक्तमेव च।
कर्णिकाकेसरोपेतं दीप्ताद्यैः शक्तिभिर्वृतम् ॥
दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमलाक्रमात्।
अघोरा विद्युता चैव दीप्ताद्याश्चाष्ट शक्तयः ॥
भास्कराभिमुखाः सर्वाः कृताञ्जलिपुटाः शुभाः।
अथवा पद्महस्ता वा सर्वाभरणभूषिताः ॥
मध्यतो वरदां देवीं स्थापयेत् सर्वतोमुखीम्।
आवाहयेन् ततो देवीं भास्करं परमेश्वरम् ॥

'इस प्रकार अङ्गन्यास करके धर्मस्वरूप छिद्रयुक्त नालसे युक्त सुन्दर सफेद, [illegible] सुवर्ण[illegible]

'सुन्दर ताम्रपात्रको गन्ध, जल, लाल चन्दन, रक्त पुष्प, तिल, कुश, अक्षत, दूर्वा, अपामार्ग, पञ्चगव्य अथवा गोमूत्रसे पूर्ण करके मूलमन्त्र (नवाक्षर मन्त्र) से दोनों जानुके बल पूर्वमुख बैठकर देवदेव भगवान सूर्यको नमस्कारपूर्वक अर्घ्य दे। इससे दस हजार अश्वमेध यज्ञोंका सर्वसम्मत फल उसे प्राप्त होता है।'

दत्त्वैवार्घ्यं यजेद् भक्त्या देवदेवं त्रियम्बकम्॥
अथवा भास्करं चेष्ट्वा आग्नेयं स्नानमाचरेत्।
पूर्ववद् यै शिवस्नानं मन्त्रमार्गेण

पाद्यमाचमनीयञ्च गन्धपुष्पसमन्वितम्।
अम्भसा शोधिते पात्रे स्थापयेत् पूर्ववत् पृथक्॥
संहिताश्चैव विन्यस्य कवचेनावगुण्ठ्य च॥
अर्घ्याम्बुना समभ्युक्ष्य द्रव्याणि च विशेषतः।
आदित्यश्च जपेद् देवं सर्वदेवनमस्कृतम्॥

'ताम्रपात्र सूर्य-पूजामें सब कामनाओंकी सिद्धि करनेवाले होते हैं। अर्घ्यपात्र लेकर उसे यथाविधि शुद्ध करके पूर्वोक्त जल आदिसे उसमें रखकर अर्घ्यद्रव्यसे युक्त करे। तदनन्तर संहितामन्त्रोंको पढ़कर प्रथमसे पूजन करके अपने पास रखे। पाद्य, आचमनीय, ... जलसे शुद्ध किये पात्रमें ...

'सुन्दर ताम्रपात्रको गन्ध, जल, लाल चन्दन, रक्त
ण, तिल, कुश, अक्षत, दूर्वा, अपामार्ग, पञ्चगव्य
यवा गोघृतसे पूर्ण करके मूलमन्त्र (नवाक्षर मन्त्र)
दोनों जानुके बल पूर्वमुख बैठकर देवदेव भगवान्
र्यको नमस्कारपूर्वक अर्घ्य दे। इससे दस हजार अश्वमेध
ज्ञोंका सर्वसम्मत फल उसे प्राप्त होता है।'

दत्त्वैवार्घ्यं यजेद् भक्त्या देवदेवं त्रियम्बकम्॥
अथवा भास्करं चेष्ट्वा आग्नेयं स्नानमाचरेत्।
पूर्ववद् वै शिवस्नानं मन्त्रमात्रेण भेदितम्॥

'इस प्रकार सूर्यको अर्घ्य देकर भगवान् शंकरका
ूजन करे। अथवा सूर्यका पूजन करके शिवके लिये
स्मस्नान करे। तत्पश्चात् 'सद्योजात' आदि मन्त्रोंसे
गवान् शंकरको स्नान कराये।'

दन्तधावनपूर्वं च स्नानं सौरं च शाङ्करम्।
विघ्नेशं वरुणञ्चैव गुरुं तीर्थं समर्चयेत्॥

दन्तधावन करके सौर-स्नान, शांकर-स्नान करनेके
श्चात् गणेश, वरुण तथा गुरुतीर्थका पूजन करे।

बद्ध्वा पद्मासनं तीर्थं तथा तीर्थं समर्चयेत्।
तीर्थं संगृह्य विधिना पूजास्थानं प्रविश्य च॥
मार्गणार्घ्यपवित्रेण तदाक्रम्य च पादुकम्।
पूर्ववत् करविन्यासं देहविन्यासमाचरेत्॥

'पद्मासन बाँधकर तीर्थका पूजन करे। विधिवत्
पूजन करके पूजास्थानमें जाय और पादुका उतार
करके पूर्ववत् करन्यास और देहन्यास करे।'

अर्घ्यस्य सादनञ्चैव समासात् परिकीर्तितम्।
बद्ध्वा पद्मासनं योगी प्राणायामं समभ्यसेत्॥
रक्तपुष्पाणि संगृह्य कमलाद्यानि भावयेत्।
आत्मनो दक्षिणे स्थाप्य जलभाण्डं च वामतः॥
ताम्रपात्राणि सौराणि सर्वकामार्थसिद्धये।
अर्घ्यपात्रं समादाय प्रक्षाल्य च यथाविधि॥
पूर्वोक्तेनाम्बुना सार्धं जलभाण्डे तथैव च।
अघोरकेन चैवार्घ्यमर्घ्यद्रव्यसमन्वितम्॥
संहितामन्त्रितं कृत्वा सम्पूज्य प्रथमेन च।
तुरीयेणावगुण्ठ्यैव स्थापयेद्‌ात्मनोपरि॥

पाद्यमाचमनीयञ्च गन्धपुष्पसमन्वितम्।
अम्भसा शोधिते पात्रे स्थापयेत् पूर्ववत् पृथक्॥
संहिताञ्चैव विन्यस्य कवचेनावगुण्ठ्य च॥
अर्घ्याम्बुना समभ्युक्ष्य द्रव्याणि च विशेषतः।
आदित्यञ्च जपेद् देवं सर्वदेवनमस्कृतम्॥

'ताम्रपात्र सूर्य-पूजामें सब कामनाओंकी सिद्धि
करनेवाले होते हैं। अर्घ्यपात्र लेकर उसे यथाविधि शुद्ध
करके पूर्वोक्त जल जलपात्रमें रखकर अर्घ्यद्रव्यसे युक्त
करे। तदनन्तर संहितामन्त्रोंको पढ़कर प्रथमसे पूजन करके,
चतुर्थसे मिलाकर अपने पास रखे। पाद्य, आचमनीय,
गन्ध-पुष्पसे युक्त करके जलसे शुद्ध किये पात्रमें
पहलेकी तरह रखे। मन्त्रोंसे तथा कवचसे अभिमन्त्रित
करे। अर्घ्यके जलसे द्रव्योंका प्रोक्षण कर फिर सर्व-
देवोंसे नमस्कृत भगवान् सूर्यकी उपासना करे।'

आदित्यो वै तेज ऊर्जो बलं यशो विवर्धति।
इत्यादिना नमस्कृत्य कल्पयेदासनं प्रभोः॥
प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम्।
आग्नेय्यादिषु कोणेषु मध्यमान्तं हृदा न्यसेत्॥

'आदित्यो वै तेजः' आदि यजुर्वेदकी श्रुतियोंद्वारा
सूर्य भगवान्‌को नमस्कार करके सूर्यके आसनकी कल्पना
करे। परमैश्वर्ययुक्त, परमसुख भगवान् सूर्यकी आराधना
करे। अग्निकोण आदि उपदिशाओंमें ॐ भूः, ॐ भुवः,
ॐ स्वः, ॐ महः आदि मध्यम व्याहृतियोंका न्यास करे।'

अङ्गं प्रविन्यसेच्चैव बीजमङ्कुरमेव च।
नालं सुषिरसंयुक्तं सूत्रकंटकसंयुतम्॥
दलं दलाग्रं सुश्वेतं हेमाभं रक्तमेव च।
कर्णिकाकेसरोपेतं दीप्ताद्यैः शक्तिभिर्वृतम्॥
दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमलाक्रमात्।
अघोरा विकृता चैव दीप्ताद्याश्चाष्ट शक्तयः॥
भास्कराभिमुखाः सर्वाः कृताञ्जलिपुटाः शुभाः।
अथवा पद्महस्ता वा सर्वाभरणभूषिताः॥
मध्यतो वरदां देवीं स्थापयेत् सर्वतोमुखीम्।
आवाहयेत् ततो देवीं भास्करं परमेश्वरम्॥

'इस प्रकार अङ्गन्यास करके धर्मस्वरूप छिद्रयुक्त
नालसे युक्त सुन्दर सफेद, सुवर्णके समान और लाल

वालखिल्यं गणञ्चैव निर्माल्यग्रहणं विभोः।
पूजयेद्वासनं मूर्तेर्देवतामपि पूजयेत्॥
अर्घ्यञ्च दापयेत् तेषां पृथगेव विधानतः।
आवाहने च पूजान्ते तेषामुद्वासने तथा॥
सहस्रं वा तदर्द्धं वा शतमष्टोत्तरं तु वा।
वाष्कलञ्च जपेदग्रे दशांशेन च योजयेत्॥

'वालखिल्य आदि ऋषियोंका पूजन करे। निर्माल्य ग्रहण करे। पृथक्-पृथक् विधानसे अर्घ्य दे। आवाहन आदि पूजाके अन्तमें उनके उद्वासनमें एक हजार अथवा पाँच सौ या एक सौ आठ वाष्कल मन्त्र जपे। फिर दशांश हवन आदिकी विधि करे।'

कुण्डं च पश्चिमे कुर्याद् वर्तुलञ्चैव मेखलम्।
चतुरङ्गुलमानेन चोत्सेधाद् विस्तरादपि॥

'मण्डलके पश्चिम भागमें मेखलासहित गोला कुण्ड बनाये।'

एकहस्तप्रमाणेन नित्ये नैमित्तिके तथा।
कृत्वाश्वत्थदलाकारं नाभिं कुण्डे दशाङ्गुलम्॥

'नित्य-नैमित्तिक कार्यमें एक हाथका कुण्ड बनावे। पीपलके पत्तेके समान बनाकर कुण्डमें दस अङ्गुलकी नाभि बनाये।'

तदर्धेन पुरस्तात्तु गजोष्ठसदृशं स्मृतम्।
गलमेकाङ्गुलञ्चैव शेषं द्विगुणविस्तरम्॥
तत्प्रमाणेन कुण्डस्य त्यक्त्वा कुर्वीत मेखलाम्।
यत्नेन साधयित्वैव पश्चाद्धोमञ्च कारयेत्॥

'उसी प्रमाणसे मेखला बनाकर यत्नपूर्वक सिद्ध करके हवन करे।'

षष्ठेनोल्लेखनं कुर्यात् प्रोक्षयेद् वारिणा पुनः।
आसनं कल्पयेन्मध्ये प्रथमेन समाहितः॥
प्रभावतीं ततः शक्तिमाद्येनैव तु विन्यसेत्।
वाष्कलेनैव सम्पूज्य गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्॥
वाष्कलेनैव मन्त्रेण क्रियां प्रतियजेत् पृथक्।
मूलमन्त्रेण विधिना पश्चात् पूर्णाहुतिर्भवेत्॥
क्रमादेवं विधानेन सूर्याग्निर्जनितो भवेत्।
पूर्वोक्तेन विधानेन प्रागुक्तं कमलं न्यसेत्॥

'षष्ठ अर्थात् 'ॐ तपः'से उल्लेखन करके जलसे प्रोक्षण करे। तदनन्तर आसन रखे। इसके बाद 'ॐ भूः' से समाहित हो प्रभावती आदि शक्तिका न्यास करे। तदनन्तर वाष्कल-मन्त्रसे गन्ध-पुष्पादिके द्वारा पूजन करे। फिर वाष्कल-मन्त्रसे हवन करके मूलमन्त्रसे पूर्णाहुति करे। क्रमशः इस विधानसे सूर्याग्नि प्रकट करे। पूर्वोक्त विधिसे कथित कमलको स्थापित करे।'

मुखोपरि समभ्यर्च्य पूर्ववद् भास्करं प्रभुम्।
दशैवाहुतयो देया वाष्कलेन महामुने॥

'कमलके मुखके ऊपर पूजन करके पूर्वकी भाँति भगवान् सूर्यको वाष्कल-मन्त्रसे दस आहुति दे।'

अङ्गानाञ्च तथैकैकं संहिताभिः पृथक् पुनः।
जयादिस्विष्टपर्यन्तमिध्मप्रक्षेपमेव च॥
सामान्यं सर्वमार्गेषु पारम्पर्यक्रमेण च।
निवेद्य देवदेवाय भास्करायामितात्मने॥
पूजाहोमादिकं सर्वं दत्त्वार्घ्यञ्च प्रदक्षिणम्।
अङ्गैः सम्पूज्य संक्षिप्य ह्युद्वास्य नमस्य च॥

'तथा संहितामन्त्रोंसे एक-एक अङ्गकी पूजा करके क्रमसे अमित तेजस्वी भगवान् सूर्यको सब कुछ निवेदित करे। पूजा-हवन आदि देकर प्रदक्षिणा करके नमस्कार करे।'

शिवपूजां ततः कुर्याद् धर्मकामार्थसिद्धये।
एवं संक्षेपतः प्रोक्तं यजनं भास्करस्य च॥

'उसके बाद भगवान् शिवका पूजन करे। इस प्रकार संक्षेपमें भगवान् सूर्यकी पूजाका विधान कहा गया है।'

यः सकृद् वा यजेद् देवं देवदेवं जगद्गुरुम्।
भास्करं परमात्मानं स याति परमां गतिम्॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वपापविवर्जितः।
सर्वैश्वर्यसमोपेतः तेजसा प्रतिमश्च सः॥
पुत्रपौत्रादिमित्रैश्च बान्धवैश्च समन्ततः।
भुक्त्वैव सकलान् भोगान् इहैव धनधान्यवान्॥
यानवाहनसम्पन्नो भूषणैर्विविधैरपि।
कालं गतोऽपि सूर्येण मोदते कालमक्षयम्॥

[व]ती (वस्वेकसारा)पुरीमें सूर्य मध्यमें आते हैं। समय वैवस्वतके संयमनीपुरीमें वे उदित होते हुए [दिख]ायी पड़ते हैं; सुखा नामक नगरीमें उस समय आधी [रात] होती है और विभावरीनगरीमें सायंकाल होता है। [इस] प्रकार जिस समय वैवस्वत (यमराज) की संयमनी-[पुरी]में सूर्य मध्याह्नके होते हैं, उस समय वरुणकी सुखा [नग]रीमें वे उदित होते दिखायी पड़ते हैं। विभावरीपुरीमें [आध]ी रात रहती है और महेन्द्रकी अमरावतीपुरीमें [साय]ंकाल होता है। जिस समय वरुणकी सुखानगरीमें [सूर्य] मध्याह्नके होते हैं, उस समय चन्द्रमाकी विभावरी-[पु]रीमें वे ऊँचाईपर प्रस्थान करते हैं अर्थात् उदित होते [हैं]। इसी प्रकार महेन्द्रकी अमरावतीपुरीमें जब भानु [उदि]त होते हैं, तब संयमनीपुरीमें आधी रात रहती है और [वरु]णकी सुखानगरीमें वे अस्ताचलको चले जाते हैं। इस [प्रक]ार सूर्य अलातचक्र (जलते हुए लुकको घुमानेसे [बन]नेवाला मण्डल-) की भाँति शीघ्र गतिसे चलते हैं और [स्व]यं भ्रमण करते हुए नक्षत्रोंको भ्रमण कराते हैं। इस [प्रक]ार चारों पार्श्वोंमें सूर्य प्रदक्षिणा करते हुए गमन [कर]ते हैं तथा अपने उदय एवं अस्तकालके स्थानोंपर [इस प्र]कार उदित और अस्त होते रहते हैं। दिनके पहले [तथ]ा पिछले भागोंमें दो-दो देवताओंके निवास-स्थानोंपर [वे] पहुँचते हैं। इस प्रकार वे एक पुरीमें प्रातःकाल [उद]ित हो बढ़नेवाली किरणों और कान्तियोंसे युक्त [हो]कर मध्याह्नकालमें तपते हैं और मध्याह्नके अनन्तर [ते]जोविहीन होती हुई उन्हीं किरणोंके साथ अस्त होते [हैं]। सूर्यके इस प्रकारके उदय और अस्तसे पूर्व तथा [पश्चि]मकी दिशाओंकी सृष्टि स्मरण की जाती है। वे [जि]स प्रकार पूर्वभागमें तपते हैं, उसी प्रकार दोनों [पार्श्व]ों तथा पृष्ठ (पश्चिम)-भागमें भी तपते हैं। जिस [स्था]नपर उनका प्रथम उदय दिखायी पड़ता है, उसे उनका उदय-स्थान और जिस स्थानपर लय होता है उसे इनका अस्तस्थान कहते हैं।

सुमेरुपर्वत सभी पर्वतोंके उत्तरमें और लोकालोक पर्वतके दक्षिण ओर अवस्थित है। सूर्यके दूर हो जानेके कारण भूमिपर आती हुई उनकी किरणें अन्य पदार्थोंपर पड़ जाती हैं, अतः यहाँ आनेसे वे रुक जाती हैं। इसी कारण रातमें वे नहीं दिखलायी पड़ते। इस प्रकार जिस समय पुष्करके मध्यभागमें सूर्य होते हैं, उस समय ऊपर स्थित दिखलायी पड़ते हैं। एक मुहूर्त-(दो घड़ी-) में सूर्य इस पृथ्वीके तीसवें भागतक जाते हैं। इस गतिकी संख्या योजनोंमें सुनिये। वह पूर्ण संख्या इकतीस लाख पचास हजार योजनसे भी अधिक स्मरण की जाती है। सूर्यकी इतनी गति एक मुहूर्तकी है। इस क्रमसे वे जब दक्षिण दिशामें भ्रमण करते हैं तो एक मासमें उत्तर दिशामें चले जाते हैं। दक्षिणायनमें सूर्य पुष्करद्वीपके मध्यभागमें होकर भ्रमण करते हैं। मानसोत्तर और मेरुके मध्यमें इनका तीन गुना अन्तर है—ऐसा सुना जाता है। सूर्यकी विशेष गति दक्षिण दिशामें जानिये। नौ करोड़ पैंतालीस लाख योजनका यह मण्डल कहा गया है और सूर्यकी यह गति एक दिन तथा एक रात-की है। जब दक्षिणायनसे निवृत्त होकर सूर्य विषुव-स्थलपर[1] हो जाते हैं, उस समय क्षीरसागरकी उत्तर दिशाकी ओर भ्रमण करने लगते हैं। उस विषुव-मण्डलको भी योजनोंमें सुनिये।

सम्पूर्ण विषुवमण्डल तीन करोड़ एक लाख इक्कीस योजनोंमें विस्तृत है। जब श्रावण मासमें चित्रभानु उत्तर दिशामें सूर्य हो जाते हैं, तब गोमेद द्वीपके अनन्तरवाले प्रदेशमें उत्तर दिशामें वे विचरण करते हैं। उत्तर दिशाके प्रमाण, दक्षिण दिशाके प्रमाण तथा

१. यह स्थान या रेखा जिसपर सूर्यके पहुँचनेके समय दिन और रात बराबर होते हैं, विषुवत्स्थल कहा जाता है।

…जाती है। इसी प्रकार दक्षिणायनमें सूर्य दिनमें शीघ्र …से चलते हैं और रातमें उनकी मन्द गति हो जाती … इस प्रकार अपने गमनके तारतम्यसे दिन और …का विभाग करते हुए वे दक्षिणकी अजावीथी एवं …लोककी उत्तर दिशाकी ओर प्रवृत्त होते हैं। …संतान पर्वत और वैश्वानरके मार्गसे बाहरकी ओर …जब आते हैं, तब पुष्कर नामक द्वीपसे उनकी कान्ति …धिक प्रखर हो जाती है। पथकी पार्श्वभूमियोंसे …हरकी ओर वहाँ लोकालोक नामक पर्वत है, जिसकी …चाई दस हजार योजन है और अवस्थिति मण्डलाकार …। उक्त पर्वतका मण्डल प्रकाश एवं अन्धकार दोनोंसे …क रहता है। सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह एवं तारागण …भी ज्योतिपुञ्ज इस लोकालोकके भीतरी भागमें प्रकाशित …ते हैं। जितने स्थानपर प्रकाश होता है, उतना ही …क माना गया है। उसके बादकी संज्ञा निरालोक (अन्धकारमय) मानी गयी है। 'लोक' धातु आलोकन …र्थात् दिखायी देनेके अर्थमें प्रयुक्त होता है और न …दिखायी पड़नेका नाम अलोक है। भ्रमण करते …ए सूर्य जब लोक (प्रकाश) और अलोक (प्रकाशरहित)-…की सन्धिपर पहुँचते हैं अर्थात् दोनोंका संयोग कराते …हैं तो उस समयको लोग सन्ध्याके नामसे पुकारते हैं।

उषा और व्युष्टिमें परस्पर अन्तर माना गया है; अर्थात् प्रातःकी उषा एवं संध्याका निशामुख दोनों संधिकालोंमें कुछ अन्तर है। ऋषिगण उषाको रात्रिमें और व्युष्टिको दिनके भीतर स्मरण करते हैं। एक मुहूर्त तीस कलाका और एक दिन पंद्रह मुहूर्तका होता है। दिनके प्रमाणमें ह्रास और वृद्धि होती है। उसका कारण संध्या-कालमें एक मुहूर्तकी ह्रास-वृद्धि है, जो सदा बढ़ा-घटा करती है। सूर्य विषुव-प्रभृति विभिन्न पथोंसे गमन करते हुए, तीन मुहूर्तोंका व्यतिक्रम करते हैं। सम्पूर्ण दिनके पाँच भाग कहे गये हैं। दिनके प्रथम तीन मुहूर्तोंको प्रातःकाल कहते हैं। उस प्रातःकालके व्यतीत हो जानेपर तीन मुहूर्ततक संगवनामक काल रहता है। उसके अनन्तर तीन मुहूर्ततक मध्याह्नकाल रहता है। उस मध्याह्न कालके बाद अपराह्ण-कालका स्मरण किया जाता है। पण्डितोंने इसको भी तीन ही मुहूर्तोंका बतलाया है। अपराह्णके बीत जानेपर जो काल प्रारम्भ होता है, उसे सायंकाल कहते हैं। इस प्रकार पंद्रह मुहूर्तोंवाले एक दिनमें ये तीन-तीन मुहूर्तोंके पाँच काल होते हैं। विषुव-स्थानमें सूर्यके जानेपर दिनका प्रमाण पद्रह मुहूर्तोंका स्मरण किया जाता है। दक्षिणायनमें दिनका प्रमाण घट जाता है और इसके बाद उत्तरायणमें आनेपर बढ़ जाता है। इस प्रकार दिन बढ़कर रातको घटाता है और रात बढ़कर दिनको कम करती है। विषुव शरद् और वसन्त ऋतुको माना गया है। जहाँतक सूर्यके आलोकका अन्त होता है, वहाँतककी संज्ञा लोक है और उस लोकके पश्चात् अलोककी स्थिति कही जाती है।

× × ×

ऋषिगण! इस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा एवं ग्रहगणोंके भ्रमणकी दिव्य कथाको सुनकर ऋषियोंने लोमहर्षणके पुत्र सूतजीसे पुनः पूछा।

ऋषियोंने कहा—सौम्य! ये ज्योतिर्गण ग्रह, नक्षत्र आदि किस प्रकार सूर्यके मण्डलमें भ्रमण करते हैं? सभी एक समूहमें मिलकर या अलग-अलग? कोई इन्हें भ्रमण कराता है अथवा ये स्वयमेव भ्रमण करते हैं? इस रहस्यको जाननेकी हमें बड़ी इच्छा है, कृपया कहिये।

सूतजी बोले—ऋषिगण! यह विषय प्राणियोंको मोहमें डालनेवाला है। क्योंकि प्रत्यक्ष दिखायी देता हुआ भी यह व्यापार लोगोंको आश्चर्य एवं अज्ञानमें डाल देता है। मैं कह रहा हूँ, सुनिये। जहाँपर चौदह नक्षत्रोंमें शिशुमार नामक एक ज्योतिश्चक्र अवस्थित है, वहीं

दोनों मध्यमण्डलके प्रमाणको क्रमपूर्वक एक समान जानना चाहिये। इसके मध्यमें जरद्गव, उत्तरमें ऐरावत तथा दक्षिणमें वैश्वानर नामक स्थान सिद्धान्ततया निर्दिष्ट किये गये हैं। उत्तरावीथी नागवीथी और दक्षिणावीथी अजवीथी मानी गयी है। दोनों आषाढ़ (पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़) तथा मूल—ये तीन-तीन नक्षत्र अजावीथी—आदि तीन वीथियोंके कहे जाते हैं; अर्थात् मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, अभिजित, पूर्वाभाद्रपद, स्वाती और उत्तराभाद्रपद—ये नागवीथी कहे जाते हैं। अश्विनी, भरणी और कृत्तिका—ये तीन नक्षत्र नागवीथीके नामसे स्मरण किये जाते हैं। रोहिणी, आर्द्रा और मृगशिरा—ये भी नागवीथीके ही नामसे स्मरण किये जाते हैं। पुष्य, आश्लेषा और पुनर्वसु—इन तीनोंकी ऐरावती नामक वीथी स्मरण की जाती है। ये तीन वीथियाँ हैं। इनका मार्ग उत्तर कहा जाता है। पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी और मघा—इनकी संज्ञा आर्षभीवीथी है। पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती—ये गोवीथीके नामसे स्मरण किये जाते हैं। श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा—ये जरद्गव नामक वीथीमें हैं। इन तीन वीथियोंका मार्ग मध्यम कहा जाता है। हस्त, चित्रा तथा स्वाती—ये अजावीथीके नामसे स्मरण किये जाते हैं। ज्येष्ठा, विशाखा तथा अनुराधा—ये मृगवीथी कहे जाते हैं। मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़—ये वैश्वानरीवीथीके नामसे विख्यात हैं। इन तीन वीथियोंका मार्ग दक्षिण दिशामें है। अब इनमेंसे दोका अन्तर योजनोंद्वारा बता रहा हूँ। यह अन्तर इकतीस लाख तैंतीस सौ योजनोंका है। यहाँ इतना अन्तर बतलाया गया है। अब विषुव-स्थलसे दक्षिणायन और उत्तरायण-पथोंका परिमाण योजनोंमें बतला रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिये। मध्यभागमें स्थित एक रेखा दूसरीसे पचास हजार अधिक योजन अन्तरपर है। बाहर और भीतरकी इन दिशाओं और रेखाओंके मध्यमें चलते हुए सूर्य सर्वदा

उत्तरायणमें भीतरसे मण्डलोंको पार क[illegible] दक्षिणायनमें सूर्यमण्डल बाहर रह जाता है बहिर्भागमें विचरण करते हुए सूर्य उत्त[illegible] अस्सी योजन भीतर प्रवेश करते हैं। अ[illegible] परिमाण सुनिये। यह मण्डल अठारह ह[illegible] योजनका सुना जाता है। उस मण्डलका तिरछा जानना चाहिये। इस प्रकार एक सूर्य मेरुके मण्डलको इस प्रकार प्राप्त होते कुम्हारकी चाक नाभिके ऊपर चलती है भाँति चन्द्रमा भी नाभिके क्रमसे मण्डलको प्रा[illegible] दक्षिणायनमें सूर्य चक्रके समान शीघ्रतासे [illegible] समाप्तकर निवृत्त हो जाते हैं। इसी कारण अधिक भूमिको वह थोड़े ही समयमें चक्कर देते हैं। दक्षिणायनके सूर्य केवल बारह मुहू[illegible] नक्षत्रोंकी कुल संख्याके आधे अर्थात् साढ़े तेरह मण्डलमें भ्रमण करते हैं और रातके शेष मुहूर्त्तोंमें उतने ही अर्थात् साढ़े तेरह नक्षत्रोंके भ्रमण करते हैं। कुम्हारकी चाकके मध्यभागमें वस्तु जिस प्रकार मन्द गतिसे भ्रमण करती है, उसी उत्तरायणके मन्द पराक्रम-शील सूर्य मन्दगतिसे करते हैं। यही कारण है कि वे बहुत कालमें भी अपेक्षाकृत थोड़े मण्डलका भ्रमण पाते हैं। उत्तरायणके सूर्य अठारह मुहूर्तोंमें तेरह नक्षत्रोंके मध्यमें विचरण करते हैं और ही नक्षत्रोंके मण्डलोंमें रातके बारह मुहूर्त्तोंमें करते हैं। सूर्य और चन्द्रमाकी गतिसे मन्द चाकपर रखे हुए मिट्टीके पिंडकी भाँति चक्र घूमता हुआ ध्रुव भी नक्षत्र-मण्डलोंमें निरन्तर भ्र[illegible] करता रहता है। ध्रुव तीस मुहूर्त्तोंमें अर्थात् दिन-रातभरमें भ्रमण करता हुआ दोनों सीमाओंमें स्थित उन मण्डलोंकी परिक्रमा करता है। उत्तरा[illegible] सूर्यकी गति दिनमें मन्द कही गयी है और रातको ती[illegible]

युग उस रथके पहियेकी छोर तथा कलाएँ जुएके भाग हैं। दसों दिशाएँ अश्वोंकी नासिका तथा क्षण के दाँतोंकी पंक्तियाँ हैं। निमेष रथका अनुकर्ष* तथा जुएका दण्ड है। अर्थ तथा काम—इस) के जुएके अक्षके अग्रभाग हैं। गायत्री, उष्णिक्, ष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती—ये सात अश्वरूप धारणकर वायुवेगसे उस रथको वहन करते । इस रथका चक्र अक्षमें बँधा हुआ है। अक्ष मे संलग्न चक्रके समेत भ्रमण करता है। इस र किसी विशेष प्रयोजनके वश होकर उस रथका र्माण ब्रह्माने किया है। उक्त साधनोंसे संयुक्त भगवान् का वह रथ आकाशमण्डलमें भ्रमण करता है। के दक्षिण भागकी ओर जुआ और अक्षका शिरोभाग । चक्रका और जुएमें रश्मिका संयोग है। चक्के र जुएके भ्रमण करते समय दोनों रश्मियाँ भी डलाकार भ्रमण करती हैं। वह जुआ और अक्षका रोभाग कुम्हारके चक्केकी भाँति ध्रुवके चारों ओर भ्रमण करता है। उत्तरायणमें इसका भ्रमण-मण्डल -मण्डलमें प्रविष्ट हो जाता है और दक्षिणायनमें -मण्डलसे बाहर निकल आता है। इसका कारण ह है कि उत्तरायणमें ध्रुवके आकर्षणसे दोनों रश्मियाँ क्षिप्त हो जाती हैं और दक्षिणायनमें ध्रुवके रश्मियोंके रित्याग कर देनेसे बढ़ जाती हैं। ध्रुव जिस समय श्मियोंको आकृष्ट कर लेता है, उस समय सूर्य दोनों दशाओंकी ओर अस्सी सौ मण्डलोंके व्यवधानपर ंचरण करते हैं और जिस समय ध्रुव दोनों रश्मियोंको याग देता है, उस समय भी उतने ही परिमाणमें वेग-र्वक बाहरी ओरसे मण्डलोंको वेष्टित करते हुए भ्रमण करते हैं।

सूतजी बोले—ऋषिवृन्द! भगवान् भास्करका वह थ महीने-महीनेके क्रमानुसार देवताओंद्वारा अधिरोहित होता है अर्थात् प्रत्येक महीनेमें देवादिगण इसपर आरूढ होते हैं। इस प्रकार बहुतसे ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, सारथि तथा राक्षसके समूहोंके समेत वह सूर्यका वहन करता है।

ये देवादिके समूह क्रमसे सूर्यमण्डलमें दो-दो मासतक निवास करते हैं। धाता, अर्यमा—दो देव; पुलस्त्य तथा पुलह नामक दो ऋषि-प्रजापति; वासुकि तथा सङ्कीर्ण नामक दो सर्प; गानविद्यामें विशारद तुम्बुरु तथा नारद नामक दो गन्धर्व; कृतस्थला तथा पुञ्जिकस्थली नामक दो अप्सराएँ; रथकृत तथा रथौजा नामक दो सारथि; हेति तथा प्रहेति नामक दो राक्षस—ये सब सम्मिलितरूपसे चैत्र तथा वैशाखके महीनोंमें सूर्य-मण्डलमें निवास करते हैं। ग्रीष्म ऋतुके ज्येष्ठ तथा आषाढ़—दो महीनोंमें मित्र तथा वरुण नामक दो देव; अत्रि तथा वसिष्ठ नामक दो ऋषि; तक्षक तथा रम्भक नामक दो सर्पराज; मेनका तथा धन्या नामक दो अप्सराएँ; हाहा तथा हूहू नामक दो गन्धर्व; रथन्तर तथा रथकृत नामक दो सारथि; पुरुषाद और वध नामक दो राक्षस सूर्य-मण्डलमें निवास करते हैं। तदुपरान्त सूर्यमण्डलमें अन्य देवादिगण निवास करते हैं। उनमें इन्द्र तथा विवस्वान्—ये दो देव; अंगिरा तथा भृगु—ये दो ऋषि; एलापत्र तथा शंखपाल नामक दो नागराज; विश्वावसु तथा सुषेण नामक दो गन्धर्व; प्रात और रवि नामक दो सारथि; प्रम्लोचा तथा निम्लोचन्ती नामकी दो अप्सराएँ; हेति तथा व्याघ्र नामक दो राक्षस रहते हैं। ये सब श्रावण तथा भाद्रपदके महीनोंमें सूर्य-मण्डलमें निवास करते हैं। इसी प्रकार शरद् ऋतुके दो महीनोंमें अन्य देवगण निवास करते हैं। पर्जन्य और पूषा नामक दो देव; भरद्वाज और गौतम नामक दो महर्षि; चित्रसेन और सुरुचि नामक दो गन्धर्व; विश्वाची तथा घृताची नामक दो शुभ लक्षणसम्पन्न अप्सराएँ; सुप्रसिद्ध ऐरावत तथा धनञ्जय नामक दो नागराज; सेनजित् तथा सुषेण नामक दो सारथि तथा नायक चार और बाल

* रथके नीचे रहनेवाली पहियेके ऊपर बँधी हुई लकड़ी।

मनुष्यगण सर्वदा अपना जीवन धारण करते हैं। इस प्रकार सूर्य अपनी किरणोंद्वारा सबका पालन करते हैं। सूर्य अपने उस एकचक्र रथद्वारा शीघ्र गमन करते और दिनके व्यतीत हो जानेपर उन्हीं विषमसंख्यक (सात) अश्वोंद्वारा अपने स्थानको पुनः प्राप्त करते हैं। हरे रंगवाले अपने अश्वोंसे वे वहन किये जाते हैं और अपनी सहस्र किरणोंसे जलका हरण करते हैं एवं तृप्त होनेपर हरित वर्णवाले अपने अश्वोंसे संयुक्त रथपर चढ़कर उसी जलको पुनः छोड़ते हैं। इस प्रकार अपने एक चक्रवाले रथद्वारा दिन-रात चलते हुए सूर्य सातों द्वीपों तथा सातों समुद्रोंसमेत निखिल पृथ्वीमण्डलका भ्रमण करते हैं। उनका वह अनुपम रथ अश्वरूपधारी छन्दोंसे युक्त है, उसीपर वे समासीन होते हैं। वे अश्व इच्छानुकूल रूप धारण करनेवाले, एक बार जोते गये, इच्छानुकूल चलनेवाले तथा मनके वेगके समान शीघ्रगामी हैं। उनके रंग हरे हैं, उन्हें थकावट नहीं लगती। वे दिव्य तेजोमय शक्तिशाली तथा ब्रह्मवेत्ता हैं। ये प्रतिदिन अपने निर्धारित परिधि-मण्डलकी परिक्रमा बाहर तथा भीतरसे करते हैं। युगके आदिकालमें जोते गये वे अश्व महाप्रलयतक सूर्यका भार वहन करते हैं। बालखिल्य आदि ऋषिगण चारों ओरसे परिभ्रमणके समय सूर्यको रात-दिन घेरे रहते हैं। महर्षिगण स्वरचित-स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करते हैं। गन्धर्व तथा अप्सराओंके समूह संगीत तथा नृत्योंसे उनका सत्कार करते हैं। इस प्रकार वे दिनमणि भास्कर पक्षियोंके समान वेगशाली अश्वोंद्वारा भ्रमण कराये जाते हुए नक्षत्रोंकी वीथियोंमें विचरण करते हैं। उन्हींकी भाँति चन्द्रमा भी भ्रमण करते हैं।

ऋषियोंके ज्योतिष्पुञ्जके सम्बन्धके प्रश्नमें सूतजीने कहा—आदिम कालमें यह समस्त जगत् रात्रिकालमें अन्धकारसे आच्छन्न एवं आलोकहीन था। अव्यक्तयोनि ब्रह्माजीने जगत्की किसी भी वस्तुमें प्रकाश नहीं किया था। इस प्रकार (युगादिमें) चार पदार्थोंके शेष रह जानेपर यह जगत् ब्रह्मद्वारा अधिष्ठित हुआ। पश्चात् स्वयं उत्पन्न होनेवाले लोकके परमार्थसाधक भगवान्‌ने खद्योतरूप धारणकर इस जगत्को व्यक्तरूपमें प्रकट करनेकी चिन्ता की और कल्पके आदिमें अग्निको जल और पृथ्वीमें मिली हुई जानकर प्रकाश करनेके लिये तीनोंको एकत्र किया। इस प्रकार तीन प्रकारसे अग्नि उत्पन्न हुई।

इस लोकमें जो अग्नि भोजन आदि सामग्रियोंको पकानेवाली है, वह पार्थिव (पृथ्वीके अंशसे उत्पन्न) अग्नि है। जो यह सूर्यमें अधिष्ठित होकर तपती है, वह 'शुचि' नामक अग्नि है। उदरस्थ पदार्थोंको पकानेवाली अग्नि 'विद्युत्'की अग्नि कही जाती है। उसे 'सौम्य' नामसे भी जानते हैं। इस विद्युत् अग्निका उपकारक ईंधन जल है। कोई अग्नि अपने तेजोंसे बढ़ती है और कोई बिना किसी ईंधनके ही बढ़ती है। काष्ठके ईंधनसे प्रज्वलित होनेवाली अग्निका निर्मथ्य नाम है। यह अग्नि जलसे शान्त हो जाती है। भोजनादिको पकानेवाली जठराग्नि ज्वालाओंसे युक्त, देखनेमें सौम्य एवं कान्तिविहीन है। यह अग्नि श्वेत मण्डलमें ज्वालारहित एवं प्रकाश-विहीन है। सूर्यकी प्रभा सूर्यके अस्त हो जानेपर रात्रिकालमें अपने चतुर्थ अंशसे अग्निमें प्रवेश करती है। इसी कारण रात्रिमें अग्नि प्रकाशयुक्त हो जाती है। प्रातःकाल सूर्यके उदित होनेपर अग्निकी उष्णता अपने तेजके चतुर्थ अंशसे सूर्यमें प्रवेश कर लेती है, इसी कारण दिनमें सूर्य तपता है। सूर्य और अग्निके प्रकाश, उष्णता और तेज—इन सभीके परस्पर प्रविष्ट होनेके कारण दिन और रात्रिकी शोभा-वृद्धि होती है।

पृथ्वीके उत्तरवर्ती अर्धभाग तथा दक्षिणभागमें सूर्यके उदित होनेपर रात्रि जलमें प्रवेश करती है, इसीलिये दिन और रात—दोनोंके प्रवेश करनेके कारण जल दिनमें लाल वर्णका दिखायी देता है। पुनः सूर्यके अस्त

नामक दो राक्षस—ये सब आश्विन तथा कार्तिक मासोंमें सूर्यमण्डलमें निवास करते हैं। हेमन्त ऋतुके दो महीनोंमें जो देवादिगण सूर्यमें निवास करते हैं, वे ये हैं—अंश और भग—ये दो देव; कश्यप और क्रतु—ये दो ऋषि; महापद्म तथा कर्कोटक नामक दो सर्पराज; चित्रसेन और पूर्णायु नामक गायक दो गन्धर्व; पूर्वचित्ति तथा उर्वशी—ये दो अप्सराएँ; तक्षा तथा अरिष्टनेमि नामक दो सारथि एवं नायक विद्युत् तथा सूर्य नामक दो उग्र राक्षस—ये सब मार्गशीर्ष और पौषके महीनोंमें सूर्यमण्डलमें निवास करते हैं। तदनन्तर शिशिर ऋतुके दो महीनोंमें त्वष्टा तथा विष्णु—ये दो देव; जमदग्नि तथा विश्वामित्र—ये दो ऋषि; काद्रवेय तथा कम्बलाश्वतर—ये दो नागराज; सूर्यवर्चा तथा धृतराष्ट्र—ये दो गन्धर्व; सुन्दरतासे मनको हर लेनेवाली तिलोत्तमा तथा रम्भा नामक दो अप्सराएँ; ऋतजित् तथा सत्यजित् नामक दो महाबलवान् सारथि; ब्रह्मोपेत तथा यज्ञोपेत नामक दो राक्षस निवास करते हैं।

ये उपर्युक्त देव आदि गण क्रमसे दो-दो महीनेतक सूर्यमण्डलमें निवास करते हैं। ये बारह सप्तकों (देव, ऋषि, राक्षस, गन्धर्व, सारथि, नाग और अप्सरा)के जोड़े इन स्थानोंके अभिमानी कहे जाते हैं और ये सब बारह सप्तक देवादिगण भी अपने अतिशय तेजसे सूर्यको उत्तम तेजोंवाला बनाते हैं। ऋषिगण अपने बनाये हुए गेय वाक्योंसे सूर्यकी स्तुति करते हैं। गन्धर्व एवं अप्सराएँ अपने-अपने नृत्यों तथा गीतोंसे सूर्यकी उपासना करती हैं। विद्यामें परम प्रवीण सारथि यक्षगण सूर्यके अश्वोंकी डोरियाँ पकड़ते हैं। सर्पगण सूर्यमण्डलमें द्रुतगतिसे इधर-उधर दौड़ते तथा राक्षसगण पीछे-पीछे चलते हैं। इनके अतिरिक्त बालखिल्य ऋषि उदयकालसे सूर्यके समीप अवस्थित रह कर उन्हें अस्ताचलको प्राप्त कराते हैं। इन उपर्युक्त देवताओंमें जिस प्रकारका पराक्रम, तपोबल, योगबल, धर्म, तत्त्व तथा शारीरिक बल रहता है, उनके तेजरूप ईंधनसे समृद्ध होकर सूर्य तेजस्वी रूपमें तपते हैं। ये सूर्य अपने तेजसे जीवोंके अकल्याणका प्रशमन करते हैं, आपदाको इन्हीं मङ्गलमय उपादानोंसे दूर करते, यहीं-कहींपर शुभाचरण करनेवालोंके अवलम्बन हैं। ये उपर्युक्त सप्तक सूर्यके साथ ही अपने समेत आकाशमण्डलमें भ्रमण करते हैं। ये दयावश प्रजावर्गसे तपस्या तथा जप कराते हुए रक्षा करते हैं तथा उनके हृदयको प्रसन्नतासे पूर्ण करते हैं। अतीतकाल, भविष्यत्काल तथा वर्तमान कालके स्थानाभिमानियोंके ये स्थान विभिन्न मन्वन्तरोंमें भी वर्तमान रहते हैं। इस प्रकार नियमपूर्वक चौदह संख्यामें जोड़े रूपमें वे सप्तक देवादिगण सूर्यमण्डलमें निवास करते हैं और चौदह मन्वन्तरोंतक क्रमशः विद्यमान रहते हैं।

इस प्रकार सूर्य ग्रीष्म, शिशिर तथा वर्षा ऋतुमें अपनी किरणोंका क्रमशः परिवर्तन कर घाम, हिम तथा वृष्टि करते हुए प्रतिदिन देवता, पितर तथा मनुष्योंको तृप्त करते हैं और प्रतिक्षण भ्रमण करते हैं। देवगण दिन-दिनके क्रमसे शुक्ल एवं कृष्णपक्षमें महीने भर कालत्रयके अनुसार उस मीठे अमृतका पान करते हैं, जो सुवृष्टिके लिये सूर्यकी किरणोंद्वारा रक्षित रहता है। सभी देवता, सौम्य तथा कव्यादि पितरगण सूर्यके उस अमृत-रसका पान करते हैं और कालान्तरमें सुवृष्टि करते हुए संसारको तृप्त करते हैं। मानवगण सूर्यकी किरणोंद्वारा बढ़ायी गयी तथा जलद्वारा परिवर्धित और वृष्टिद्वारा प्रवर्धित ओषधियोंसे एवं अन्नसे क्षुधाको अपने वशमें करते हैं। सूर्यकी उस सञ्चित अमृतराशिसे देवताओंकी तृप्ति पंद्रह दिनोंतक तथा स्वधामय पितरोंकी तृप्ति एक महीनेतक होती है। वृष्टिजनित अन्नराशिसे

पद्मपुराणीय सूर्य-संदर्भ

['पद्मपुराण'के इस छोटे-से संकलित परिच्छेदमें भगवान् सूर्यकी महिमा एवं उनकी संक्रान्तिमें दानका माहात्म्य, उपासना और उसके फल-वर्णनके साथ ही भद्रेश्वरकथा भी दी जा रही है।]

वान् सूर्यका तथा संक्रान्तिमें दानका माहात्म्य

वैशम्पायनजीने पूछा—विप्रवर ! आकाशमें दिन जिसका उदय होता है, यह कौन है ? इसका प्रभाव है ? तथा किरणोंके इन स्वामीका प्रादुर्भाव हाँसे हुआ है ? मैं देखता हूँ—देवता, बड़े-बड़े मुनि, द्ध, चारण, दैत्य, राक्षस तथा ब्राह्मण आदि समस्त नव इनकी ही सदा आराधना किया करते हैं।

व्यासजी बोले—वैशम्पायन ! यह ब्रह्मके स्वरूपसे कट हुआ ब्रह्मका ही उत्कृष्ट तेज है। इसे साक्षात् ह्ममय समझो। यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन ारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। निर्मल किरणोंसे सुशोभित ह तेजका पुञ्ज पहले अत्यन्त प्रचण्ड और दुःसह था। से देखकर इसकी प्रखर रश्मियोंसे पीड़ित हो सब लोग धर-उधर भागकर छिपने लगे। चारों ओरके समुद्र, समस्त बड़ी-बड़ी नदियाँ और नद आदि सूखने लगे। नमें रहनेवाले प्राणी मृत्युके ग्रास बनने लगे। मानव-मुदाय भी शोकसे आतुर हो उठा। यह देख इन्द्र आदि देवता ब्रह्माजीके पास गये और उनसे यह सारा ाल कह सुनाया। तब ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—देवगण ! यह तेज आदिब्रह्मके स्वरूपसे जलमें प्रकट हुआ है। यह तेजोमय पुरुष उस ब्रह्मके ही समान है। समें और आदिब्रह्ममें तुम अन्तर न समझना। ब्रह्मासे कर कीटपर्यन्त चराचर प्राणियोंसहित समूची त्रिलोकीमें सीकी सत्ता है। ये सूर्यदेव सत्त्वमय हैं। इनके द्वारा राचर जगत्का पालन होता है। देवता, जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज आदि जितने भी प्राणी हैं—सबकी रक्षा सूर्यसे ही होती है। इन सूर्यदेवताके प्रभावका हम पूरा-पूरा वर्णन नहीं कर सकते। इन्होंने ही लोकोंका उत्पादन और पालन किया है। सबके रक्षक होनेके कारण इनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। पौ फटनेपर इनका दर्शन करनेसे राशि-राशि पाप विलीन हो जाते हैं। द्विज आदि सभी मनुष्य इन सूर्यदेवकी आराधना करके मोक्ष पा लेते हैं। सन्ध्योपासनके समय ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण अपनी भुजाएँ ऊपर उठाये इन्हीं सूर्यदेवका उपस्थान करते हैं और उसके फलस्वरूप समस्त देवताओंद्वारा पूजित होते हैं। सूर्यदेवके ही मण्डलमें रहनेवाली सन्ध्यारूपिणी देवीकी उपासना करके सम्पूर्ण द्विज स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस भूतलपर जो पतित और जूठन खानेवाले मनुष्य हैं, वे भी भगवान् सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे पवित्र हो जाते हैं। सन्ध्याकालमें सूर्यकी उपासना करनेमात्रसे द्विज सारे पापोंसे शुद्ध हो जाते हैं।* जो मनुष्य चाण्डाल, गोघाती (कसाई), पतित, कोढ़ी, महापातकी और उपपातकीके दीख जानेपर भगवान् सूर्यका दर्शन करते हैं, वे भारी-से-भारी पापसे भी मुक्त हो पवित्र हो जाते हैं। सूर्यकी उपासना करनेमात्रसे मनुष्य-को सब रोगोंसे छुटकारा मिल जाता है। जो सूर्यकी उपासना करते हैं, वे इहलोक और परलोकमें भी अन्धे, दरिद्र, दुःखी और शोकग्रस्त नहीं होते। श्रीविष्णु और शिव आदि देवताओंके दर्शन सब लोगोंको नहीं होते, ध्यानमें ही उनके स्वरूपका साक्षात्कार किया जाता है, किंतु भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता माने गये हैं।

* सन्ध्योपासनमात्रेण कल्मषात् पूततां व्रजेत्। (७५ । १६)

हो [illegible] दिन जलमें प्रवेश करता है, [illegible] समय जल [illegible] दिखायी पड़ता है। इस [illegible] पृथ्वीके [illegible] दक्षिणी तथा उत्तरी भागोंमें सूर्यके उदय तथा अस्तके [illegible] दिन-रात्रि जलमें प्रवेश करती हैं।

यह सूर्य, जो तप रहा है, अपनी किरणोंसे जलका पान करता है। इस सूर्यमें निवास करनेवाली अग्नि सहस्र किरणोंवाली तथा [illegible] कुम्भके समान [illegible] है। यह चारों ओरसे अपनी सहस्र नाड़ियोंसे नदी, समुद्र, तालाब, कुँआ आदिके जलोंको ग्रहण करती है। उस सूर्यकी सहस्र किरणोंसे शीत, वर्षा एवं उष्णताका निःसरण होता है। उसकी एक सहस्र किरणोंमें चार सौ नाड़ियाँ विचित्र आकृतिवाली तथा वृष्टि करनेवाली [illegible] हैं। चन्दना, मेध्या, केतना, चेतना, अमृता तथा जीवना — सूर्यकी ये किरणें वृष्टि करनेवाली हैं। हिमसे उत्पन्न होनेवाली सूर्यकी तीन सौ किरणें कही जाती हैं, जो चन्द्रमा, ताराओं एवं ग्रहोंद्वारा पी जायी जाती हैं। ये मध्यकी नाड़ियाँ हैं। अन्य ह्लादिनी नामक किरणें हैं, जो नामसे शुक्ला कही जाती हैं। उनकी संख्या भी तीन सौ हैं। वे सभी घामकी सृष्टि करनेवाली हैं। वे शुक्ला नामक किरणें मनुष्य, देवता एवं पितरोंका पालन करती हैं। ये किरणें मनुष्योंको ओषधियोंद्वारा, पितरोंको स्वधाद्वारा एवं समस्त देवताओंको अमृतद्वारा संतुष्ट करती हैं।

सूर्य वसन्त और ग्रीष्म ऋतुओंमें तीन सौ किरणोंद्वारा शनैः-शनैः तपते हैं। इसी प्रकार वर्षा और शरद् ऋतुओंमें चार सौ किरणोंसे वृष्टि करते हैं तथा हेमन्त और शिशिर ऋतुओंमें तीन सौ किरणोंसे बर्फ गिराते हैं। ये ही सूर्य ओषधियोंमें तेज धारण कराते हैं, स्वधामें सुधाको धारण कराते हैं एवं अमृतमें अमरत्वकी वृद्धि करते हैं। इस प्रकार सूर्यकी वे सहस्र किरणें तीनों लोकोंके तीन मुख्य प्रयोजनोंकी साधिका होती हैं।

[illegible] होकर [illegible] पुनः [illegible] हो जाते हैं। [illegible] [illegible] एवं [illegible] [illegible] नक्षत्र, ग्रह और चन्द्रमा आदि [illegible] [illegible] हैं। चन्द्रमा, [illegible] एवं ग्रहोंको उत्पन्न [illegible] चाहिये। सूर्यकी सुषुम्ना [illegible] है, वही क्षीण चन्द्रमाको बढ़ाती है। [illegible] नामक जो रश्मि है, वह नक्षत्रोंको उत्पन्न [illegible] दक्षिण दिशामें [illegible] नामक जो किरण [illegible] बुधको संतुष्ट करती है। पश्चिम दिशामें [illegible] नामक किरण है, वह शुक्रकी उत्पत्तिस्थली [illegible] है। संवर्धन नामक जो रश्मि है, वह मङ्गलकी [illegible] है। छठी अश्वभू नामक जो रश्मि [illegible] बृहस्पतिकी उत्पत्तिस्थली है। सुराट् नामक रश्मि शनैश्चरकी वृद्धि करती है। अतः वे [illegible] कभी नष्ट नहीं होते और नक्षत्र नामसे [illegible] जाते हैं। इन उपर्युक्त नक्षत्रोंके क्षेत्र अपनी [illegible] द्वारा सूर्यपर आकर गिरते हैं और सूर्य उनका ग्रहण करता है, इसीसे उनकी नक्षत्रता सिद्ध होती [illegible] इस मर्त्यलोकसे उस लोकको पार करनेवाले (जाने [illegible] सत्कर्मपरायण पुरुषोंके तारण करनेसे इनका नाम [illegible] पड़ा और श्वेत वर्णके होनेके कारण ही इनका शु[illegible] नाम है। दिव्य तथा पार्थिव सभी प्रकारके वंशोंके [illegible] एवं तेजके योगसे 'आदित्य' यह नाम कहा [illegible] है। 'स्रवति' धातु स्रव क्षरण (झरने) अर्थमें प्रयु[illegible] कहा गया है, तेजके झरनेसे ही यह सविताके [illegible] स्मरण किया जाता है। ये विवस्वान् नामक सूर्य [illegible] अदितिके आठवें पुत्र कहे गये हैं।

सहस्र किरणोंवाले भास्करका स्थान शुक्ल वर्ण एवं अग्निके समान तेजस्वी तथा दिव्य तेजो[illegible] है। सूर्यका विष्कम्भ-मण्डल नव सहस्र योजनों[illegible] विस्तृत कहा है और इस प्रकार भास्करका पूर्ण मण्डल विष्कम्भ-मण्डलसे तिगुना कहा जाता है।

न् एवं जिसकी अन्तिम सीमातक विचरते और मेरु- ; शिखरोंपर भ्रमण करते रहते हैं । वे दिन-रात ग्रहोंसे सात योजन ऊपर रहते हैं । जिनकी ो चन्द्रमा आदि ग्रह भी नहीं विचरण हैं । सूर्य बारह स्वरूप धारण करके बारह में बारह राशियोंमें संक्रमण करते रहते हैं । उनके गसे ही संक्रान्ति होती है, जिसको प्रायः सभी जानते हैं ।

ने ! संक्रान्तियोंमें पुण्यकर्म करनेसे लोगोंको जो मिलता है, वह सब हम बतलाते हैं । धन, मिथुन, और कन्या राशिकी संक्रान्तिको षडशीति कहते हैं प, वृश्चिक, कुम्भ और सिंह राशिपर जो सूर्यकी ति होती है, उसका नाम विष्णुपदी है । षडशीति ो संक्रान्तिमें किये हुए पुण्यकर्मका फल छियासी गुना, विष्णुपदीमें लाखगुना और उत्तरायण या यन आरम्भ होनेके दिन कोटि-कोटिगुना अधिक है । दोनों अयनोंके दिन जो कर्म किया जाता है, अक्षय होता है । मकरसंक्रान्तिमें सूर्योदयके पहले करना चाहिये । इससे दस हजार गोदानका फल होता है । उस समय किया हुआ तर्पण, दान और मन अक्षय होता है । विष्णुपदीनामक संक्रान्तिमें हुए दानको भी अक्षय बताया गया है । दाताको ; जन्ममें उत्तम निधिकी प्राप्ति होती है । शीतकाल- ईंधन वस्त्र दान करनेसे शरीरमें कभी दुःख नहीं । तुला-दान और शय्या-दान दोनोंका ही फल होता है । माघमासके कृष्णपक्षकी अमावास्याको यके पहले जो तिल और जलसे पितरोंका तर्पण करता है, वह स्वर्गमें अक्षय सुख भोगता है । जो अमावास्याके दिन सुवर्णजटित सींग और मणिके समान कान्तिवाली शुभलक्षणा गौको, उसके खुरोंमें चाँदी मढ़ाकर काँसेके बने हुए दुग्धपात्रसहित श्रेष्ठ ब्राह्मणके लिये दान करता है, वह चक्रवर्ती राजा होता है । जो उक्त तिथियोंको तिलकी गौ बनाकर उसे सब सामग्रियों-सहित दान करता है, वह सात जन्मके पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें अक्षय सुखका भागी होता है । ब्राह्मण-को भोजनके योग्य अन्न देनेसे भी अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है । जो उत्तम ब्राह्मणको अनाज, वस्त्र, घर आदि दान करता है, उसे लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती । माघमासके शुक्लपक्षकी तृतीयाको मन्वन्तर-तिथि कहते हैं । उस दिन जो कुछ दान किया जाता है, वह सब अक्षय बताया गया है । अतः दान और सत्पुरुषोंका पूजन—ये परलोकमें अनन्त फल देनेवाले हैं ।

भगवान् सूर्यकी उपासना और उसका फल तथा भद्रेश्वरकी कथा

व्यासजी कहते हैं—कैलासके रमणीय शिखरपर भगवान् महेश्वर सुखपूर्वक बैठे थे । इसी समय स्कन्दने उनके पास जाकर पृथ्वीपर मस्तक टेक उन्हें प्रणाम किया और कहा—'नाथ ! मैं आपसे रविवार आदिका यथार्थ फल सुनना चाहता हूँ ।'

महादेवजीने कहा—बेटा ! रविवारके दिन मनुष्य व्रत रहकर सूर्यको लाल फूलोंसे अर्घ्य दे और रातको हविष्यान्न भोजन करे । ऐसा करनेसे वह कभी स्वर्गसे भ्रष्ट नहीं होता । रविवारका व्रत परम पवित्र और हितकर है । वह समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, पुण्यप्रद, ऐश्वर्यदायक, रोगनाशक और स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है । यदि रविवारके दिन सूर्यकी संक्रान्ति तथा शुक्लपक्षकी सप्तमी हो तो उस दिनका किया हुआ व्रत, पूजन और जप—ये सभी अक्षय होते हैं । शुक्लपक्षके रविवारको ग्रहपति सूर्यकी पूजा करनी चाहिये । हाथमें फूल लेकर लाल कमलपर विराजमान, सुन्दर ग्रीवासे सुशोभित, रक्तवस्त्रधारी और लाल रंगके आभूषणोंसे विभूषित भगवान् सूर्यका ध्यान करे और

देवता बोले—ब्रह्मन् ! सूर्यदेवताको प्रसन्न करनेके लिये आराधना, उपासना करनेकी बात तो दूर है, इनका दर्शन ही प्रलयकालकी आगके समान प्रतीत होता है जिससे कभी भूलोकके सम्पूर्ण प्राणी इनके तेजके प्रभावसे मृत्युको प्राप्त हो गये। समुद्र आदि जलाशय नष्ट हो गये। हमलोगोंसे भी इनका तेज सहन नहीं होता; फिर दूसरे लोग कैसे सह सकते हैं। इसलिये आप ही ऐसी कृपा करें, जिससे हमलोग भगवान् सूर्यका पूजन कर सकें। सब मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्यदेवकी आराधना कर सकें—इसके लिये आप ही कोई उपाय करें।

व्यासजी कहते हैं—देवताओंके वचन सुनकर ब्रह्माजी ग्रहोंके स्वामी भगवान् सूर्यके पास गये और सम्पूर्ण जगत्का हित करनेके लिये उनकी स्तुति करने लगे।

ब्रह्माजी बोले—देव ! तुम सम्पूर्ण संसारके नेत्रस्वरूप और निरामय हो। तुम साक्षात् ब्रह्मरूप हो। तुम्हारी ओर देखना कठिन है। तुम प्रलयकालकी अग्निके समान तेजस्वी हो। सम्पूर्ण देवताओंके भीतर तुम्हारी स्थिति है। तुम्हारे श्रीविग्रहमें वायुके सखा अग्नि निरन्तर विराजमान रहते हैं। तुम्हींसे अन्न आदिका पाचन तथा जीवनकी रक्षा होती है। देव ! तुम्हीं सम्पूर्ण भुवनोंके स्वामी हो। तुम्हारे बिना समस्त संसारका जीवन एक दिन भी नहीं रह सकता। तुम्हीं सम्पूर्ण लोकोंके प्रभु तथा चराचर प्राणियोंके रक्षक, पिता और माता हो। तुम्हारी ही कृपासे यह जगत् टिका हुआ है। भगवन् ! सम्पूर्ण देवताओंमें तुम्हारी समानता करनेवाला कोई नहीं है। शरीरके भीतर, बाहर तथा समस्त विश्वमें—सर्वत्र तुम्हारी सत्ता है। तुमने ही इस जगत्को धारण कर रखा है। तुम्हीं रूप और गन्ध आदि उत्पन्न करनेवाले हो। रसोंमें जो स्वाद है वह तुम्हींसे आता है। इस प्रकार तुम्हीं सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर और सबकी रक्षा करनेवाले सूर्य हो। प्रभो ! तीर्थों, पुण्यक्षेत्रों, यज्ञों और जगत्के एकमात्र कारण तुम्हीं हो। तुम परम पवित्र, सबके साक्षी [illegible] धाम हो। सर्वज्ञ, सबके कर्ता, संहारक, रक्षक, कीचड़ और रोगोंका नाश करनेवाले तथा दरिद्र[illegible] का निवारण करनेवाले भी तुम्हीं हो। [illegible] परलोकमें सबके श्रेष्ठ बन्धु एवं सब कुछ [illegible] देखनेवाले तुम्हीं हो। तुम्हारे सिवा दूसरा [illegible] नहीं है, जो सब लोकोंका उपकारक हो।

आदित्यने कहा—महाप्राज्ञ पितामह ! [illegible] विश्वके स्वामी तथा स्रष्टा हैं, शीघ्र अपना [illegible] बताइये। मैं उसे पूर्ण करूँगा।

ब्रह्माजी बोले—सुरेश्वर ! तुम्हारी किरणें [illegible] प्रखर हैं। लोगोंके लिये वे अत्यन्त दुःसह हो [illegible] अतः जिस प्रकार उनमें कुछ मृदुता आ [illegible] उपाय करो।

आदित्यने कहा—प्रभो ! वास्तवमें मेरी कोटि[illegible] किरणें संसारका विनाश करनेवाली ही हैं, अतः [illegible] किसी युक्तिद्वारा इन्हें खरादकर कम कर दें।

तब ब्रह्माजीने सूर्यके कहनेसे विश्वकर्माको बु[illegible] और वज्रकी सान बनवाकर उसीके ऊपर प्रलय[illegible] समान तेजस्वी सूर्यको आरोपित करके उनके प्र[illegible] तेजको छाँट दिया। उस छँटे हुए तेजसे ही भग[illegible] श्रीविष्णुका सुदर्शनचक्र बन गया। अमोघ यम[illegible] शंकरजीका त्रिशूल, कालका खड्ग, कार्तिकेयको आन[illegible] प्रदान करनेवाली शक्ति तथा भगवती दुर्गाके विचि[illegible] शूलका भी उसी तेजसे निर्माण हुआ। ब्रह्माजी[illegible] आज्ञासे विश्वकर्माने उन सब अस्त्रोंको फुर्तीसे तैयार किया था। सूर्यदेवकी एक हजार किरणें शेष रह गयीं, बाकी सब छाँट दी गयीं। ब्रह्माजीके बताये हुए उपायके अनुसार ही ऐसा किया गया।

कश्यपमुनिके वीर्य और अदितिके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण सूर्य आदित्यके नामसे प्रसिद्ध हु[illegible]

*

, पुण्डरीक, मूलस्थान और भावित। जो भक्तिपूर्वक इन नामोंका सदा स्मरण करता रोगका भय कैसे हो सकता है। कार्तिकेय! पूर्वक सुनो। सूर्यका नामस्मरण सब पापोंको और शुभद है। महामते! आदित्यकी विषयमें तनिक भी संदेह नहीं करना। 'ॐ इन्द्राय नमः स्वाहा', 'ॐ विष्णवे नमः' मन्त्रोंका जप, होम और सन्ध्योपासन करना। ये मन्त्र सब प्रकारसे शान्ति देनेवाले और विघ्नोंके विनाशक हैं। ये सब रोगोंका नाश करते हैं।

ब भगवान् भास्करके मूलमन्त्रका वर्णन करूँगा म्पूर्ण कामनाओं एवं प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाला भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। वह मन्त्र प्रकार है—'ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः।' न्त्रसे सदा सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होती है, नैश्चित बात है। इसके जपसे रोग नहीं सताते किसी प्रकारके अनिष्टका भय नहीं होता। न्त्र न किसीको देना चाहिये और न किसीसे चर्चा करनी चाहिये, अपितु प्रयत्नपूर्वक इसका र जप करते रहना चाहिये। जो लोग अभक्त, हीन, पाखंडी और लौकिक व्यवहारोंमें आसक्त उनसे तो इस मन्त्रकी कदापि चर्चा नहीं करनी िये। संध्या और होमकर्ममें मूलमन्त्रका जप करना िये। उसके जपसे रोग और क्रूर ग्रहोंका प्रभाव हो जाता है। वत्स! दूसरे-दूसरे अनेक शास्त्रों बहुतेरे विस्तृत मन्त्रोंकी क्या आवश्यकता है, इस मन्त्रका जप ही सब प्रकारकी शान्ति तथा सम्पूर्ण र्योंकी सिद्धि करनेवाला है।

देवता और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाले नास्तिक को इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो प्रतिदिन , दो या तीन समय भगवान् सूर्यके समीप इसका पाठ करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। पुत्रकी कामनावालेको पुत्र, कन्या चाहनेवालेको कन्या, विद्याकी अभिलाषा रखनेवालेको विद्या और धनार्थीको धन मिलता है। जो शुद्ध आचार-विचारसे युक्त होकर संयम तथा भक्तिपूर्वक इस प्रसङ्गका श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा सूर्यलोकको प्राप्त करता है। सूर्य देवताके व्रतके दिन तथा अन्यान्य व्रत, अनुष्ठान, यज्ञ, पुण्यस्थान और तीर्थोंमें जो इसका पाठ करता है, उसे कोटिगुना फल मिलता है।

व्यासजी कहते हैं—मध्यदेशमें भद्रेश्वर नामसे प्रसिद्ध एक चक्रवर्ती राजा थे। वे बहुत-सी तपस्याओं तथा नाना प्रकारके व्रतोंसे पवित्र हो गये थे। प्रतिदिन देवता, ब्राह्मण, अतिथि और गुरुजनोंका पूजन करते थे। उनका बर्ताव न्यायके अनुकूल होता था। वे स्वभावके सुशील और शास्त्रोंके तात्पर्य तथा विधानके पारगामी विद्वान् थे। सदा सद्भावपूर्वक प्रजाजनोंका पालन करते थे। एक समयकी बात है, उनके बायें हाथमें श्वेत कुष्ठ हो गया। वैद्योंने बहुत कुछ उपचार किया; किंतु उससे कोढ़का चिह्न और भी स्पष्ट दिखायी देने लगा। तब राजाने प्रधान-प्रधान ब्राह्मणों और मन्त्रियोंको बुलाकर कहा—'विप्रगण! मेरे हाथमें एक ऐसा पापका चिह्न प्रकट हो गया है, जो लोकमें निन्दित होनेके कारण मेरे लिये दुःसह हो रहा है। अतः मैं किसी महान् पुण्यक्षेत्रमें जाकर अपने शरीरका परित्याग करना चाहता हूँ।'

ब्राह्मण बोले—महाराज! आप धर्मशील और बुद्धिमान् हैं। यदि आप अपने राज्यका परित्याग कर देंगे तो यह सारी प्रजा नष्ट हो जायगी। इसलिये आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। प्रभो! हमलोग इस रोगको दबानेका उपाय जानते हैं, वह यह है कि आप यत्नपूर्वक महान् देवता भगवान् सूर्यकी आराधना कीजिये।

फूलोंसे पूरित कर ईशान कोणकी ओर फेंक दे। इसके बाद 'आदित्याय विद्महे भास्कराय धीमहि तन्नो भानुः प्रचोदयात्'—इस सूर्य-गायत्रीका जप करे। तदनन्तर गुरुके उपदेशके अनुसार विधिपूर्वक सूर्यकी पूजा करे। भक्तिके साथ पुष्प और बेल आदिके सुन्दर फल अर्पण करके जल चढ़ाना चाहिये। जलके बाद चन्दन, चन्दनके बाद धूप, धूपके बाद दीप, दीपके पश्चात् नैवेद्य तथा उसके बाद जल निवेदन करना चाहिये। तत्पश्चात् जप, स्तुति, मुद्रा और नमस्कार करना उचित है। पहली मुद्राका नाम 'अञ्जलि' और दूसरीका नाम 'धेनु' है। इस प्रकार जो सूर्यका पूजन करता है, वह उन्हींका सायुज्य प्राप्त करता है।

भगवान् सूर्य एक होते हुए भी कालभेदसे नाना रूप धारण करके प्रत्येक मासमें तपते रहते हैं। एक ही सूर्य बारह रूपोंमें प्रकट होते हैं। मार्गशीर्षमें मित्र, पौषमें सनातन विष्णु, माघमें वरुण, फाल्गुनमें सूर्य, चैत्रमासमें भानु, वैशाखमें तापन, ज्येष्ठमें इन्द्र, आषाढ़में रवि, श्रावणमें गभस्ति, भाद्रपदमें यम, आश्विनमें हिरण्यरेता और कार्तिकमें दिवाकर तपते हैं। इस प्रकार बारह महीनोंमें भगवान् सूर्य बारह नामोंसे पुकारे जाते हैं। इनका रूप अत्यन्त विशाल, महान् तेजस्वी और प्रलयकालीन अग्निके समान देदीप्यमान है। जो इस प्रसङ्गका नित्य पाठ करता है, उसके शरीरमें पाप नहीं रहता। उसे रोग, दरिद्रता और अपमानका कष्ट भी कभी नहीं उठाना पड़ता। वह क्रमशः यश, राज्य, सुख तथा अक्षय स्वर्ग प्राप्त करता है।

अब मैं सबको प्रकाश प्रदान क[illegible] उत्तम महामन्त्र वर्णन करूँगा। [illegible] प्रकार है—'सहस्र भुजाओं (किरणों) [illegible] भगवान् आदित्यको नमस्कार है। अन्ध[illegible] करनेवाले श्रीसूर्यदेवको अनेक बार न[illegible] रश्मियोंरूपी सहस्रों जिह्वाएँ धारण करने[illegible] नमस्कार है। भगवन्! तुम्हीं ब्रह्मा, तुम्हीं [illegible] तुम्हीं रुद्र हो, तुम्हें नमस्कार है। [illegible] प्राणियोंके भीतर अग्नि और वायुरूपसे निव[illegible] तुम्हें बारंबार प्रणाम है।

तुम्हारी सर्वत्र गति और सब भूतोंमें [illegible] तुम्हारे बिना किसी भी वस्तुकी सत्ता नहीं [illegible] इस चराचर जगत्में समस्त देहधारियोंके भी[illegible] हो।* इस मन्त्रका जप करके मनुष्य अपने अभिलषित पदार्थों तथा स्वर्ग आदिके भो[illegible] करता है। आदित्य, भास्कर, सूर्य, अर्क, दिवाकर, हिरण्यरेता, मित्र, पूषा, त्वष्टा, स्व[illegible] तिमिरारि—ये सूर्यके बारह नाम बताये ग[illegible] जो मनुष्य पवित्र होकर सूर्यके इन बारह [illegible] पाठ करता है, वह सब पापों और रोगोंसे मु[illegible] परम गतिको प्राप्त होता है।

षडानन! अब मैं महात्मा भास्करके जो दूसरे प्रधान नाम हैं, उनका वर्णन करूँगा। उनके नाम हैं तपन, तापन, कर्ता, हर्ता, महेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोके[illegible] व्योमाधिप, दिवाकर, अग्निगर्भ, महाविप्र, खग, स[illegible] वाहन, पद्महस्त, तमोभेदी, ऋग्वेद, यजु, सा[illegible]

* ॐ नमः सहस्रबाहवे आदित्याय नमो नमः। नमस्ते पद्महस्ताय वरुणाय नमो नमः॥
नमस्तिमिरनाशाय श्रीसूर्याय नमो नमः। नमः सहस्रजिह्वाय भानवे च नमो नमः॥
त्वं च ब्रह्मा त्वं च विष्णू रुद्रस्त्वं च नमो नमः। त्वमग्निः सर्वभूतेषु वायुस्त्वं च नमो नमः॥
सर्वगः सर्वभूतेषु न हि किंचित्त्वया विना। चराचरे जगत्यस्मिन् सर्वदेहे व्यवस्थितः॥
(—७६। २१-२४)

भविष्यपुराणमें* सूर्य-संदर्भ

[भविष्यपुराणके चार पर्व हैं—(१) ब्राह्मपर्व, (२) मध्यमपर्व, (३) प्रतिसर्गपर्व और (४) उत्तर पर्व। ब्राह्मपर्वके ही ४८वें अध्यायसे सूर्य-संदर्भ प्रारम्भ होता है और १४० अध्यायतक चलता जाता है। अन्तरालमें सूर्य-सम्बन्धी विविध ज्ञातव्य विषय हैं, जिनमें मुख्यतः ये हैं—श्रीसूर्यनारायणके नित्यार्चन, …तिकार्चन और व्रतोद्यापन-विधान, व्रतका फल, माघादि, ज्येष्ठादि, आश्विनादि चार-चार महीनोंमें …पूजनका विधान और रथसप्तमीका फल, सूर्यरथका वर्णन, रथके साथके देवताओंका कथन, गमन-…न, उदय-अस्तका भेद, सूर्यके गुण, ऋतुओंमें उनका पृथक्-पृथक् वर्णन, अभिषेकका वर्णन, रथयात्राके …म दिनका कृत्य, रथके अश्व, सारथि, छत्र, ध्वजा आदिका वर्णन तथा नगरके चार द्वारोंपर रथके …जानेका विधान, रथाङ्गके अङ्गभङ्ग होनेपर शान्त्यर्थ ग्रह-शान्ति, सर्वदेवोंके बलिद्रव्यका कथन, रथ-…त्राका फल, रथसप्तमी-व्रतका विधान और उद्यापन-विधि, राजा शतानीककी सूर्य-स्तुति, सम्बको …र्यका उपदेश, उपवास-विधि, पूजन-फलके कथनपूर्वक फलसप्तमीका विधान, सूर्य भगवान्‌का परब्रह्म-…पमें वर्णन, फल चढ़ाने, मन्दिर-मार्जन करने आदि तथा सिद्धार्थ-सप्तमीका विधान, सूर्यनारायणका स्तोत्र …और उसके पाठका फल, जम्बूद्वीपमें सूर्यनारायणके प्रधान स्थानोंका कथन, साम्बके प्रति दुर्वासा मुनिका …शाप, अपनी रानियों और अपने पुत्र साम्बको श्रीकृष्णका शाप, सूर्यनारायणकी द्वादश मूर्तियोंका …वर्णन, श्रीनारदजीसे साम्बके पूछनेपर उनके द्वारा सूर्यनारायणका प्रभाव-वर्णन, सूर्यकी उत्पत्ति, किरणोंका …वर्णन, उनकी व्यापकताका कथन, सूर्यनारायणकी दो भार्याओं और संतानोंका वर्णन, सूर्यको प्रणाम और …उनकी प्रदक्षिणा करनेका फल, आदित्यवारका कल्प, बारह प्रकारके आदित्यवारोंका कथन, नन्दनामक …आदित्यवारका विधान और फल, आदित्याभिमुख वारका विधान, सूर्यके उपचार और अर्पणका फल, सूर्य-…मन्दिरमें पुराण-वाचनेका महत्त्व, सूर्यके स्नानादि करानेका फल, जया सप्तमी, जयन्ती सप्तमी आदिका …विधान और फल-कथन, सूर्योपासनाकी आवश्यकता, सप्तमी व्रतोद्यापनकी विधि और फल, मार्तण्डसप्तमी …आदिका विधान, मन्दिर बनवानेका फल, सूर्यभक्तोंका प्रभाव, घृत-दुग्धसे सूर्याभिषेकका फल, मन्दिरमें …दीपदानका माहात्म्य, वैवस्वतके लक्षण और सूर्यनारायणकी महिमा, सूर्यनारायणके उत्तम रूप बनानेकी …कथा और उनकी स्तुति, पुनः स्तुति और उनके परिवारका वर्णन, सूर्यायुध एवं व्योमका लक्षण, ग्रह और …लोकोंका वर्णन, साम्बकृत सूर्यके आराधन और स्तुति, सूर्यनारायणका एकविंशति नामात्मक स्तोत्र, …चन्द्रभागा नदीसे साम्बको सूर्यनारायणकी प्रतिमा प्राप्त होनेका वृत्तान्त, प्रतिमाविधान और सूर्यनारायणका …सर्वदेवमयत्व-प्रतिपादन, प्रतिष्ठा-मुहूर्त, मण्डप-विधान, सूर्य-प्रतिष्ठा करनेका विधान एवं फल, सूर्य-…नारायणको अर्घ्य और धूप देनेका विधान, उनके मन्त्र और फल, सूर्य-मण्डलका वर्णन और १७७ श्लोकोंका …प्रसिद्ध आदित्यहृदय अनुस्यूत है।

भविष्य किंवा भविष्योत्तरपुराणमें सूर्य-सम्बन्धी निर्दिष्ट विषयोंका-विशेषतः व्रतादि-माहात्म्यका माधुर्य है, किंतु यहाँ स्थानाभावके कारण कुछ मुख्य विषय ही संचयित किये गये हैं, यथा—सप्तमीकल्प-वर्णनके प्रसङ्गमें कृष्ण साम्ब-संवाद, आदित्यके नित्याराधनकी विधि तथा रथसप्तमी-माहात्म्यका वर्णन, सूर्य-योग माहात्म्यका वर्णन, सूर्यके विराट्‌रूपका वर्णन, आदित्यवारका माहात्म्य, सौरधर्मकी महिमाका वर्णन और ब्रह्मकृत सूर्य-स्तुतिका संक्षिप्त संकलन है।]

*उपलब्ध भविष्यपुराण मिश्रित श्लोकोंसे भरा हुआ-सा है जिसकी नारदीय (१।१००) मत्स्य (५३।३०-३१) और अग्नि (२७२।१२) में दी हुई अनुक्रमणी पूर्णतः संगत नहीं होती। फिर भी आपस्तम्बके इसके उद्धरणसे इसकी प्राचीनता निर्विवाद है। वायुपुराण (१।२६७) और वामनपुराणमें भी भविष्यके अनेक उल्लेख मिलते हैं। साम्ब-पुराणके उल्लेखसे साम्बद्वारा इसके प्रति सत्कार और सूर्य-मूर्तिकी स्थापनाकी बात अनुमोदित होती है।

राजाने पूछा—विप्रवरो ! किस उपायसे मैं भगवान् भास्करको संतुष्ट कर सकूँगा ?

ब्राह्मण बोले—राजन् ! आप अपने राज्यमें ही रहकर सूर्यदेवकी उपासना कीजिये । ऐसा करनेसे आप भयङ्कर पापसे मुक्त होकर स्वर्ग और मोक्ष दोनों प्राप्त कर सकेंगे ।

यह सुनकर सम्राट्ने उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रणाम किया और सूर्यकी उत्तम आराधना आरम्भ की । वे प्रतिदिन मन्त्रपाठ, नैवेद्य, नाना प्रकारके फल, अर्घ्य, अक्षत, जपापुष्प, मदारके पत्ते, लाल चन्दन, कुङ्कुम, सिन्दूर, कदलीपत्र तथा उसके मनोहर फल आदिके द्वारा भगवान् सूर्यकी पूजा करते थे । राजा गूलरके पात्रमें अर्घ्य सजाकर सदा सूर्य देवताको निवेदन किया करते थे । अर्घ्य देते समय वे मन्त्री और पुरोहितोंके साथ सदा सूर्यके सामने खड़े रहते थे । उनके साथ आचार्य, रानियाँ, अन्तःपुरमें रहनेवाले रक्षक तथा उनकी पत्नियाँ, दासवर्ग एवं अन्य लोग भी रहा करते थे । वे सब लोग प्रतिदिन साथ-ही-साथ अर्घ्य देते थे ।

सूर्यदेवताके अङ्गभूत जितने व्रत थे, उनका भी उन्होंने एकाग्रचित्त होकर अनुष्ठान किया । क्रमशः एक वर्ष व्यतीत होनेपर राजाका रोग दूर हो गया । इस प्रकार उस भयङ्कर रोगके नष्ट हो जानेपर राजाने सम्पूर्ण जगत्को अपने वशमें करके सबके द्वारा प्रभातकालमें सूर्यदेवताका पूजन और व्रत कराना आरम्भ किया । सब लोग कभी हविष्यान्न खाकर और कभी निराहार रहकर सूर्यदेवताका पूजन करते थे । इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीन वर्णोंके द्वारा पूजित होकर भगवान् सूर्य बहुत संतुष्ट हुए और पास आकर बोले—'राजन् ! तुम्[illegible] वस्तुकी इच्छा हो, उसे वरदानके [illegible] सेवकों और पुरवासियोंसहित तुम [illegible] करनेके लिये मैं उपस्थित हूँ ।'

राजाने कहा—सबको नेत्र प्र[illegible] भगवन् ! यदि आप मुझे अभीष्ट वरदान [illegible] तो ऐसी कृपा कीजिये कि हम सब [illegible] रहकर ही सुखी हों ।

सूर्य बोले—राजन् ! तुम्हारे म[illegible] ब्राह्मण, स्त्रियाँ तथा अन्य परिवारके लोग [illegible] होकर कल्पपर्यन्त मेरे दिव्य धाममें निवास [illegible]

व्यासजी कहते हैं—यों कहकर सं[illegible] प्रदान करनेवाले भगवान् सूर्य वहीं अन्तर्हि[illegible] तदनन्तर राजा भद्रेश्वर अपने पुरवासियोंसहित [illegible] आनन्दका अनुभव करने लगे । वहाँ जो [illegible] आदि थे, वे भी अपने पुत्र आदिके साथ प्र[illegible] स्वर्गको सिधारे । इसी प्रकार राजा, ब्राह्मण, [illegible] का पालन करनेवाले मुनि तथा क्षत्रिय आदि [illegible] सूर्यदेवताके धाममें चले गये । जो मनुष्य पवि[illegible] इस प्रसङ्गका पाठ करता है, उसके सब पापों[illegible] हो जाता है तथा वह रुद्रकी भाँति इस [illegible] पूजित होता है । जो मानव संयमपूर्वक इसका [illegible] करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है । अत्यन्त गोपनीय रहस्यका भगवान् सूर्यने यम[illegible] उपदेश दिया था । भूमण्डलपर तो व्यासके द्वा[illegible] इसका प्रचार हुआ है ।

सूर्य-पूजाका फल

त्रिसन्ध्यमर्चयेत् सूर्यं स्मरेद् भक्त्या तु यो नरः । न स पश्यति दारिद्र्यं जन्मजन्मनि चार्जुन ॥

(भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—) हे अर्जुन ! जो मनुष्य प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें सूर्यको अर्घ्य देते हु[illegible] और स्मरण करता है, वह जन्म-जन्मान्तरमें कभी दरिद्र नहीं होता—[illegible] धन-धान्यसे सम्पन्न रहता है । (—आदित्य[illegible]

स्नानकालमें हृदयपूत मन्त्रसे उठकर आचमन करे र वस्त्रोंका परिधान करे तथा पुनः दो बार आचमन के सम्प्रोक्षण करे। फिर उठकर आचमन करके ी मन्त्रसे सूर्यको अर्घ्य दे। अर्घ्य देकर उनका र करे और अपने हृदयमें आत्मस्वरूप उनका ान करे और शुभ आर्क-आयतनमें पहुँचकर र्कतनुका यजन करे। फिर अति समाहित होकर क, कुम्भक और रेचक—इन तीनों प्राणायामोंकी याओंको करे। तत्पश्चात् ओंकारद्वारा कामादि सम्भूत मस्त दोषोंका परिहार करे।

इसके बाद आत्माकी शुद्धिके लिये वायव्य, आग्नेय, ेन्द्र (पूर्व) और वारुणी (उत्तर) दिशाओंमें यथाक्रम रुण जलसे अपने किल्बिष (पाप)का नाश करे। ायु, अग्नि, इन्द्र और जल नामवाली धारणाओंके द्वारा थाक्रम शोषण, दहन, स्तम्भन और प्लावन करनेपर ंशुद्ध आत्माका ध्यान करके भगवान् अर्क(सूर्य)को प्रणाम रे और उसीके द्वारा पञ्चभूतमय इस परदेहका ाचिन्तन करे। सूक्ष्म तथा स्थूलको एवं अङ्गोंको पने स्थानोंपर प्रकल्पित करके हृदय आदिमें मशः अङ्गोंका विन्यास करे। जैसे—'ॐ ख स्वाहा हृदये,' 'ॐ अर्काय शिरसि,' ॐ उल्कायै स्वाहा शिखायाम्,' 'ॐ यै कवचाय हुम्,' 'ॐ ग्लां स्त्राय फट्।' इसके अनन्तर मन्त्र-कर्मकी सिद्धिके लये तीन बार जल-मन्त्रका जप करके और उस न्त्रसे स्नानके द्रव्योंका सम्प्रोक्षण करके शुभ गन्ध, अक्षत, पुष्प आदिके द्वारा भगवान् सूर्यका पूजन करना चाहिये।

रथ-सप्तमी-माहात्म्यका वर्णन

इस प्रकरणमें आदित्यके नैमित्तिक आराधनका तथा रथ-सप्तमीके माहात्म्यका वर्णन किया जाता है। भगवान् वासुदेवने कहा—इसके पश्चात् मैं नैमित्तिक आराधनका विषय संक्षेपमें बतलाता हूँ।

माघ मासमें सप्तमी तिथिके दिन वरुणका यजन करे। अपनी शक्तिके अनुसार विप्रोंके लिये खण्डवेष्टकोंका दान तथा यथाशक्ति दक्षिणा भी दे तो वह जो भी फल चाहे, उसे प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार फाल्गुन तथा चैत्र और वैशाखके महीनोंमें सूर्यके यजनका विधान है। वैशाख मासमें धाता इन्द्रका तथा ज्येष्ठमें रविका, आषाढ़ और श्रावण मासमें नभका, भाद्रपदमें यमका, मार्गशीर्षमें मित्र तथा पौषमें विष्णुका, आश्विनमें पर्जन्य और कार्तिकमें त्वष्टाका यजन करे। इस प्रकार एक वर्षतक यजन-अर्चन करनेसे व्रती अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है। आगे माघ शुक्ल सप्तमीमें महा-सप्तमी-व्रतके माहात्म्यका वर्णन किया जाता है।

भगवान् वासुदेवने कहा—हे कुलनायक! माघ मासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी और षष्ठीकी रात्रिमें एक-भुक्त रहना कहा गया है। हे सुव्रत! कुछ लोग सप्तमीमें उपवास चाहते हैं और कुछ विद्वान् षष्ठी और सप्तमी तिथियोंमें उपवासका विधान कहते हैं (इस विषयमें विविध मत हैं)। षष्ठी या सप्तमीमें जिसने उपवास किया है, उसे भास्कर भगवान्‌की पूजा इस प्रकार करनी चाहिये। हे सुव्रत! भास्करका अर्चन रक्त चन्दन तथा करवीरके पुष्पोंसे करना चाहिये। हे महान् बाहुओं-वाले! गुग्गुल और संयावसे देवदेवेश भास्कर—रविका पूजन करे। इसी प्रकार माघ आदि चार मासोंमें रविका पूजन करना चाहिये। अपनी आत्माकी शुद्धिके लिये पञ्चगव्य भी प्राशन करे। आत्माकी शुद्धिके लिये गोमय-(गोबर-) से स्नान करनेका ही विधान है। ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार भोजन भी कराना चाहिये।

ज्येष्ठ आदि मासोंमें श्वेत चन्दन शास्त्रविहित है। उत्तम गन्धवाले पुष्प भी श्वेत होने चाहिये। कृष्ण अगुरुका धूप तथा नैवेद्यके लिये पायस हो। हे महामते! उसी

सप्तमीकल्पवर्णन-प्रसङ्गमें कृष्ण-साम्ब-संवाद

वासुदेवने कहा—साम्ब! समस्त देवता कहीं भी प्रत्यक्ष प्रमाणके द्वारा उपलब्ध नहीं हुआ करते। अनुमान और आगमोंके द्वारा अन्य सहस्रों देवताओंका अस्तित्व सिद्ध होता है। साम्बने कहा—जो देवता नेत्रोंके दृष्टिगत और विशिष्ट अभीष्टका प्रदान करनेवाला हो, उसी देवताके विषयमें पहले मुझे बताइये। इसके बाद अन्य देवताओंके विषयमें आप वर्णन करनेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीवासुदेवने कहा—प्रत्यक्ष देवता तो भगवान् सूर्य हैं, जो इस समस्त जगत्के नेत्र और दिनकी सृष्टि करनेवाले हैं। इससे भी अधिक निरन्तर रहनेवाला कोई भी देवता नहीं है। इन्हींसे यह जगत् उत्पन्न होता और अन्त-समयमें इन्हींमें यह विलीन हो जाता है। कृतादि लक्षणवाला यह काल भी साक्षात् दिवाकर ही कहा गया है। जितने भी ग्रह, नक्षत्र, योग, राशियाँ, करण, आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार, वायु, अनल, शक्र, प्रजापति, समस्त भूः-भुवः-स्वर्लोक, समस्त नग, नाग, नदियाँ, समुद्र और अखिल भूतोंका समुदाय है, इन सभीका हेतु स्वयं एक सविता ही हैं। इन्हींकी इच्छासे सचराचर यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है। इन्हींकी इच्छासे यह जगत् स्थिर रहता तथा अपने अर्थमें प्रवृत्त भी हुआ करता है। इनके प्रसादसे ही यह लोक सचेष्ट होता है। इनके उदय होनेपर सभी उदीयमान तथा अस्त होनेपर अस्त होते हैं; क्योंकि जब ये अदृश्य होते हैं तो कुछ भी यहाँ दिखायी नहीं देता। तात्पर्य यह है कि ... न हुआ है और न आगे कभी भविष्यमें ... जो कोई भी इनकी उपासना प्रातःकाल, ... सायंकालमें करता है, वह परम गतिको प्राप्त ...

जो विद्वान् व्यक्ति मण्डलमें स्थित इन ... बुद्धिके द्वारा अपने देहमें व्यवस्थित देखता है ... देखता है। जो मनुष्य इस प्रकार सूर्यदेवका ध्यान करके पूजा, जप और हवन करता है ... अभीष्ट कामनाओंकी प्राप्ति कर लेता है और ... सांनिध्यको प्राप्त कर लेता है। अतः तुम ... दुःखोंका अन्त करना चाहते हो और ... सुखोपभोग करनेके अभिलाषी हो तथा परलोकमें ... मुक्ति अर्थात् संसारके जन्म-मरणके आवागमनसे ... पाना चाहते हो तो अर्कमण्डलमें स्थित अर्क ... सूर्य भगवान्की आराधना करो। इनकी ... तुमको आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ... कदापि नहीं होंगे। जो पुरुष भगवान् दिवाकरकी ... प्राप्त हो गये हैं, उनको कोई भी भय नहीं होता। सूर्यदेवके उपासक भक्तोंको इस लोकमें और परलोकमें दोनों जगह निर्बाध सुख प्राप्त होता है। इसलिये इससे उत्तम अन्य कोई भी हित प्रदान करने ... उपाय नहीं है।

आदित्यके नित्याराधन-विधिका वर्णन

इस प्रकरणमें आदित्यकी नित्याराधन-विधि ... माहात्म्यका वर्णन किया जाता है। भगवान् ... कहा—'साम्ब! अब हम तुम्हें धर्मकेतुके उत्तम ...

स्नानकालमें हृदयपूत मन्त्रसे उठकर आचमन करे और वस्त्रोंका परिधान करे तथा पुनः दो बार आचमन करके सम्प्रोक्षण करे। फिर उठकर आचमन करके उसी मन्त्रसे सूर्यको अर्घ्य दे। अर्घ्य देकर उनका जप करे और अपने हृदयमें आत्मस्वरूप उनका ध्यान करे और शुभ आर्क-आयतनमें पहुँचकर शर्वातनुका यजन करे। फिर अति समाहित होकर पूरक, कुम्भक और रेचक—इन तीनों प्राणायामोंकी क्रियाओंको करे। तत्पश्चात् ओंकारद्वारा कायादि सम्भूत समस्त दोषोंका परिहार करे।

इसके बाद आत्माकी शुद्धिके लिये वायव्य, आग्नेय, माहेन्द्र (पूर्व) और वारुणी (उत्तर) दिशाओंमें यथाक्रम वारुण जलसे अपने किल्बिष (पाप)का नाश करे। वायु, अग्नि, इन्द्र और जल नामवाली धारणाओंके द्वारा यथाक्रम शोषण, दहन, स्तम्भन और प्लावन करनेपर विशुद्ध आत्माका ध्यान करके भगवान् अर्क(सूर्य)को प्रणाम करे और उसीके द्वारा पञ्चभूतमय इस परदेहका सचिन्तन करे। सूक्ष्म तथा स्थूलको एवं अङ्गोंको अपने स्थानोंपर प्रकल्पित करके हृदय आदिमें सम्यक् अङ्गोंका विन्यास करे। जैसे—'ॐ ख स्वाहा हृदये,' 'ॐ अर्काय शिरसि,' ॐ उल्कायै स्वाहा शिखायाम्,' 'ॐ ये कवचाय हुम्,' 'ॐ खां अस्त्राय फट्।' इसके अनन्तर मन्त्र-कर्मकी सिद्धिके लिये तीन बार जल-मन्त्रका जप करके और उस मन्त्रसे स्नानके द्रव्योंका सम्प्रोक्षण करके शुभ गन्ध, अक्षत, पुष्प आदिके द्वारा भगवान् सूर्यका पूजन करना चाहिये।

रथ-सप्तमी-माहात्म्यका वर्णन

इस प्रकरणमें आदित्यके नैमित्तिक आराधनका तथा रथ-सप्तमीके माहात्म्यका वर्णन किया जाता है।

भगवान् वासुदेवने कहा—इसके पश्चात् मैं नैमित्तिक [illegible]

माघ मासमें सप्तमी तिथिके दिन वरुणका यजन करे। अपनी शक्तिके अनुसार विप्रोंके लिये खण्डवेष्टकोंका दान तथा यथाशक्ति दक्षिणा भी दे तो वह जो भी फल चाहे, उसे प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार फाल्गुन तथा चैत्र और वैशाखके महीनोंमें सूर्यके यजनका विधान है। वैशाख मासमें धाता इन्द्रका तथा ज्येष्ठमें रविका, आषाढ़ और श्रावण मासमें नभका, भाद्रपदमें यमका, मार्गशीर्षमें मित्र तथा पौषमें विष्णुका, आश्विनमें पर्जन्य और कार्तिकमें त्वष्टाका यजन करे। इस प्रकार एक वर्षतक यजन-अर्चन करनेसे व्रती अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है। आगे माघ शुक्ला सप्तमीमें महा-सप्तमी-व्रतके माहात्म्यका वर्णन किया जाता है।

भगवान् वासुदेवने कहा—हे कुलनायक! माघ मासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी और षष्ठीकी रात्रिमें एक-भुक्त रहना कहा गया है। हे सुव्रत! कुछ लोग सप्तमीमें उपवास चाहते हैं और कुछ विद्वान् षष्ठी और सप्तमी तिथियोंमें उपवासका विधान कहते हैं (इस विषयमें विविध मत हैं)। षष्ठी या सप्तमीमें जिसने उपवास किया है, उसे भास्कर भगवान्की पूजा इस प्रकार करनी चाहिये। हे सुव्रत! भास्करका अर्चन रक्त चन्दन तथा करवीरके पुष्पोंसे करना चाहिये। हे महान् बाहुओं-वाले! गुग्गुल और सयावसे देवदेवेश भास्कर—रविका पूजन करे। इसी प्रकार माघ आदि चार मासोंमें रविका पूजन करना चाहिये। अपनी आत्माकी शुद्धिके लिये पञ्चगव्य भी प्राशन करे। आत्माकी शुद्धिके लिये गोमय(गोबर) से स्नान करनेका ही विधान है। ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार भोजन भी कराना चाहिये।

ज्येष्ठ आदि मासोंमें श्वेत चन्दन शास्त्रविहित है। उत्तम गन्धवाले पुष्प भी श्वेत होने चाहिये। कृष्ण अगुरुका धूप तथा नैवेद्यके लिये पायस हो। हे महामते! उसी

सप्तमीकल्पवर्णन-प्रसङ्गमें कृष्ण-साम्ब-संवाद

वासुदेवने कहा—साम्ब! समस्त देवता कहीं भी प्रत्यक्ष प्रमाणके द्वारा उपलब्ध नहीं हुआ करते। अनुमान और आगमोंके द्वारा अन्य सहस्रों देवताओंका अस्तित्व सिद्ध होता है। साम्बने कहा—जो देवता नेत्रोंके दृष्टिगत और विशिष्ट अभीष्टका प्रदान करनेवाला हो, उसी देवताके विषयमें पहले मुझे बताइये। इसके बाद अन्य देवताओंके विषयमें आप वर्णन करनेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीवासुदेवने कहा—प्रत्यक्ष देवता तो भगवान् सूर्य हैं, जो इस समस्त जगत्के नेत्र और दिनकी सृष्टि करनेवाले हैं। इससे भी अधिक निरन्तर रहनेवाला कोई भी देवता नहीं है। इन्हींसे यह जगत् उत्पन्न होता और अन्त-समयमें इन्हींमें यह विलीन हो जाता है। कृतादि कालगणना यह काल भी साक्षात् दिवाकर ही कहा गया है। जितने भी ग्रह, नक्षत्र, योग, राशियाँ, करण, आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार, वायु, अनल, शक्र, प्रजापति, समस्त भूः-भुवः-स्वर्लोक, समस्त नग, नाग, नदियाँ, समुद्र और अखिल भूतोंका समुदाय है, इन सबोंका हेतु भगवान् सूर्य ही हैं। इन्हींकी इच्छासे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है।

न हुआ है और न आगे कभी भविष्यमें [illegible]। जो कोई भी इनकी उपासना प्रातःकाल, [illegible] और सायंकालमें करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है।

जो विद्वान् व्यक्ति मण्डलमें स्थित इन देवको बुद्धिके द्वारा अपने देहमें व्यवस्थित देखता है, [illegible] देखता है। जो मनुष्य इस प्रकार सम्यक् ध्यान करके पूजा, जप और हवन करता है, वह अभीष्ट कामनाओंकी प्राप्ति कर लेता है और [illegible] सांनिध्यको प्राप्त कर लेता है। अतः तुम यदि दुःखोंका अन्त करना चाहते हो और [illegible] सुखोपभोग करनेके अभिलाषी हो तथा परलोकमें मुक्ति अर्थात् संसारके जन्म-मरणके आवागमनसे [illegible] पाना चाहते हो तो अर्कमण्डलमें स्थित [illegible] सूर्य भगवान्की आराधना करो। इनकी [illegible] तुमको आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक [illegible] कदापि नहीं होंगे। जो पुरुष भगवान् दिवाकरकी शरण प्राप्त हो गये हैं, उनको कोई भी भय नहीं होता है। सूर्यदेवके उपासक भक्तोंको इस लोकमें और परलोकमें दोनों जगह निर्बाध सुख प्राप्त होता है। [illegible] इनसे उत्तम अन्य कोई भी दिव्य प्रदान करने[illegible]

नानकालमें हृदयपूत मन्त्रसे उठकर आचमन करे स्त्रोंका परिधान करे तथा पुनः दो बार आचमन सम्प्रोक्षण करे। फिर उठकर आचमन करके मन्त्रसे सूर्यको अर्घ्य दे। अर्घ्य देकर उनका करे और अपने हृदयमें आत्मस्वरूप उनका करे और शुभ आर्क-आयतनमें पहुँचकर तनुका यजन करे। फिर अग्नि समाहित होकर , कुम्भक और रेचक—इन तीनों प्राणायामोंकी ओंको करे। तत्पश्चात् ओंकारद्वारा कायादि सम्भूत त दोषोंका परिहार करे।

इसके बाद आत्माकी शुद्धिके लिये वायव्य, आग्नेय, द्र (पूर्व) और वारुणी (उत्तर) दिशाओंमें यथाक्रम ग जलसे अपने किल्बिष (पाप)का नाश करे। , अग्नि, इन्द्र और जल नामवाली धारणाओंके द्वारा क्रम शोषण, दहन, स्तम्भन और प्लावन करनेपर द्ध आत्माका ध्यान करके भगवान् अर्क(सूर्य)को प्रणाम

माघ मासमें सप्तमी तिथिके दिन वरुणका यजन करे। अपनी शक्तिके अनुसार विप्रोंके लिये वण्डवेष्टकोंका दान तथा यथाशक्ति दक्षिणा भी दे तो वह जो भी फल चाहे, उसे प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार फाल्गुन तथा चैत्र और वैशाखके महीनोंमें सूर्यके यजनका विधान है। वैशाख मासमें धाता इन्द्रका तथा ज्येष्ठमें रविका, आषाढ़ और श्रावण मासमें नभका, भाद्रपदमें यमका, मार्गशीर्षमें मित्र तथा पौषमें विष्णुका, आश्विनमें पर्जन्य और कार्तिकमें त्वष्टाका यजन करे। इस प्रकार एक वर्षतक यजन-अर्चन करनेसे व्रती अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है। आगे माघ शुक्ल सप्तमीमें महा-सप्तमी-व्रतके माहात्म्यका वर्णन किया जाता है।

भगवान् वासुदेवने कहा—हे कुरुनायक! माघ मासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी और षष्ठीकी रात्रिमें एक-भुक्त रहना कहा गया है। हे शुभ! कुछ लोग सप्तमीमें उपवास चाहते हैं और कुछ विद्वान् षष्ठी और

देवसमर्पित नैवेद्यकी वस्तुओंमें जो पायस है, उससे ब्राह्मणोंको पूर्ण तुष्ट करते हुए भोजन कराना चाहिये। हे पुत्र! पञ्चगव्यका प्राशन और उसीसे स्नान भी कराना चाहिये। कार्तिक आदि मासोंमें अगस्त्यके पुष्प तथा अपराजित धूपके द्वारा पूजन करना चाहिये। नैवेद्यके स्थानमें गुड़के बनाये हुए पूए तथा ईखका रस कहा गया है। हे तात! उसी समर्पित नैवेद्यद्वारा अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। कुशोदकका प्राशन करे और शुद्धिके लिये स्नान भी कुशोदकसे ही करे। हे महान् मतिवाले! तृतीय पारणके अन्तमें माघ मासमें भोजन और दान दुगुना कहा गया है। विद्वान् पुरुषोंके द्वारा शक्तिके अनुसार देवदेवकी पूजा करनी चाहिये। हे सुव्रत! रथका दान और रथयात्रा भी करनी चाहिये। हे पुत्र! रथाह्वा अर्थात् रथके नामवाली सप्तमीका यह वर्णन किया गया है। यह महासप्तमी विख्यात है। यह महान् अभ्युदय प्रदान करनेवाली है। इस दिन मनुष्य उपवास करके धन, पुत्र, कीर्ति और विद्याकी प्राप्ति कर समस्त भूमण्डलको प्राप्त कर लेता है और चन्द्रमाके समान अर्चि (कान्ति)-वाला हो जाता है।

सूर्ययोग-माहात्म्यका वर्णन

इस प्रकरणमें सूर्ययोगके माहात्म्यका वर्णन किया गया है। महर्षि सुमन्तुने कहा—हे नृप! उस एक अक्षर, सत् और असत्में भेदाभेदके ...

जानेपर भी अत्यन्त दुर्लभ्य है; क्योंकि ये इन्द्रियोंको हठात् आकृष्ट कर लेती हैं। ... चित्तसे भी अधिक कठिन हैं। ये राग ... सैकड़ों वर्षोंमें भी किस प्रकार जीती जा सकती ...

इन अजेय वृत्तियोंद्वारा मन ... है। हे महान्! इस कृतयुगमें भी ये पुरुष ... होते हैं। त्रेता, द्वापर तथा कलियुगमें तो ... विषयमें कहनेकी बात ही क्या है। हे भ... आप प्रसन्न होकर उपासना करनेवालोंको कोई योग बतानेकी कृपा करें, जिससे व... अनायास ही इस संसाररूपी महान् सागरसे पा... जायँ। बेचारे मनुष्य सांसारिक दुःखरूपी ... हैं, आपके द्वारा बताये हुए महान् प्लव (नाव) ... कर लेनेपर ये पार हो सकते हैं। इस प्रकार ब्रह्माजीसे कहा गया तो उन्होंने मानवोंके हितकी ... कहा—'इस समस्त विश्वके स्वामी दिवाकरकी ... रहित होकर आराधना करो, क्योंकि इन भग... भास्करका माहात्म्य अपरिच्छेद्य है—असीम है।

तन्निष्ठ होकर सूर्यकी आराधना करे। उन्हींमें अपनी बुद्धिको लगाकर तथा भगवान् भास्करका आश्रय ग्रहण करके उनके ही कर्मोंसे एकमात्र उनकी ही दृष्टिवाले और मनवाले होकर अपने समस्त कर्मोंको ... आत्मा उन सूर्यमें ही त्याग कर दे, अर्थात् उन्हें ...

करो और चलते हुए भी उन गोपतिका ही चिन्तन आवश्यक है। भोजन करते हुए और शयन करते हुए भी उन भास्करका चिन्तन करो। इस प्रकार तुम एकाग्रचित्त होकर निरन्तर रविका आश्रय ग्रहण करो। रविका समाश्रय ग्रहण करके जन्म और मृत्यु जिसमें महान् ग्राह हैं, ऐसे इस संसाररूपी सागरको तुम पार कर जाओगे। जो ग्रहोंके स्वामी, वर देनेवाले, पुराणपुरुष, जगत्के विधाता, अजन्मा एवं ईशिता रवि हैं, उनका जिन्होंने समाश्रय ग्रहण किया है, उन भुक्तिके सेवन करनेवालोंके लिये यह संसार कुछ भी नहीं है अर्थात् उन्हें इस संसारसे छुटकारा मिल जाना अत्यन्त साधारण-सी बात है।

सूर्यके विराट्रूपका वर्णन

अब यहाँ सूर्यके विराट्रूपका वर्णन किया जाता है। श्रीनारद ऋषिने कहा—अब सूक्ष्मरूपसे भगवान् विवस्वान्का रूप बतलाऊँगा। सुनो।

विवस्वान् देव अव्यक्त कारण, नित्य, सत् एवं असत्-स्वरूप हैं। जो तत्त्व-चिन्तक पुरुष हैं, वे उनको प्रधान और प्रकृति कहा करते हैं। आदित्य आदिदेव और अजात होनेसे 'अज' नामसे कहे गये हैं। देवोंमें वे सबसे बड़े देव हैं; इसीलिये 'महादेव' नामसे कहे गये हैं। समस्त लोकोंके ईश होनेसे 'सर्वेश' और अधीश होनेके कारणसे उन्हें 'ईश्वर' कहा गया है। महत् होनेसे उनको 'महा' और भवन होनेके कारण 'भव' कहा गया है तथा वे समस्त प्रजाकी रक्षा और पालन करते हैं, इसी कारण वे 'प्रजापति' कहे गये हैं।

उत्पाद न होने और अपूर्व होनेसे 'स्वयम्भू' नामसे प्रसिद्ध हैं। ये हिरण्याण्डमें रहनेवाले और दिवस्पति ग्रहोंके स्वामी हैं। अतः 'हिरण्यगर्भ' तथा देवोंके भी देव 'दिवाकर' कहे गये हैं। तत्त्वदर्शी महर्षियोंने भगवान् सूर्यको विविध नामोंसे स्मरण किया है।

आदित्यवारका माहात्म्य

इस प्रकरणमें आदित्यवारके माहात्म्य तथा नन्दादि आदित्यवारके व्रत-फलके माहात्म्यका वर्णन किया जाता है।

विष्णुने कहा—हे ब्रह्मन्! जो मनुष्य आदित्यवारके दिन दिवाकरका पूजन किया करते हैं और स्नान तथा दान आदिके कर्म करते हैं, उनका क्या फल होता है? आप कृपाकर यह मुझे बतलाइये।

ब्रह्माजीने कहा—हे ब्रह्मन्! जो मानव रविवारके दिन श्राद्ध करते हैं, वे सात जन्मोंतक रोगोंसे रहित होते हैं—नीरोग रहते हैं। जो मानव उस दिन स्थिरताका आश्रय लेकर रात्रिके समयमें दान आदि किया करते तथा परम जाप्य आदित्यहृदयका जप करते हैं, वे इस लोकमें पूर्ण आरोग्य प्राप्त करके अन्तमें सूर्यलोकको चले जाते हैं। जो आदित्यके दिन सदा उपवास किया करते हैं, वे भी सूर्यलोककी प्राप्ति करते हैं।

इस संसारमें महात्मा आदित्यके बारह वार कहे गये हैं, वे ये हैं—नन्द, भद्र, सौम्य, कामद, पुत्रद, जय, जयन्त, विजय, आदित्याभिमुख, हृदय, रोगहा, महाश्वेताप्रिय। हे गरुड़जी! माघ मासमें शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथिमें रात्रिके समय घृतसे रविका स्नान (स्नान) कराना परमपुण्य बताया गया है। जो ऐसा करता है, वह समस्त पापोंसे [illegible] होता है। इसमें आदित्यदेवको अगस्त्य वृक्षके पुष्प, श्वेत चन्दन, गुग्गुलका धूप, नैवेद्यके स्थानमें पूप (पूआ) ही [illegible] है। पूप (पूआ) एक प्रस्थ प्रमाणमें उत्तम गेहूँके (आटेका) बना होना चाहिये। यदि [illegible] हो तो [illegible] पूर्ण [illegible] चाहिये। [illegible] दक्षिणाके सहित [illegible] दान करना चाहिये अथवा

करो और चलते हुए भी उन गोपतिका ही चिन्तन आवश्यक है। भोजन करते हुए और शयन करते हुए भी उन भास्करका चिन्तन करो। इस प्रकार तुम एकाग्रचित्त होकर निरन्तर रविका आश्रय ग्रहण करो। रविका समाश्रय ग्रहण करके जन्म और मृत्यु जिसमें महान् ग्राह हैं, ऐसे इस संसाररूपी सागरको तुम पार कर जाओगे। जो ग्रहोंके स्वामी, वर देनेवाले, पुराणपुरुष, जगत्के विधाता, अजन्मा एवं ईशिता रवि हैं, उनका जिन्होंने समाश्रय ग्रहण किया है, उन विभुक्तिके सेवन करनेवालोंके लिये यह संसार कुछ भी नहीं है अर्थात् उन्हें इस संसारसे छुटकारा मिल जाना अत्यन्त साधारण-सी बात है।

सूर्यके विराट्‌रूपका वर्णन

अब यहाँ सूर्यके विराट्‌रूपका वर्णन किया ... । श्रीनारद ऋषिने कहा—अब सूक्ष्मरूपसे ... रूप बतलाऊँगा। सुनो।

... देव अव्यक्त कारण, नित्य, सत् एवं ... हैं। जो तत्त्व-चिन्तक पुरुष हैं, वे ... और प्रकृति कहा करते हैं। आदित्य ... अजात होनेसे 'अज' नामसे कहे ... वे सबसे बड़े देव हैं; इसीलिये 'महादेव' ... गये हैं। समस्त लोकोंके ईश होनेसे ... अधीश होनेके कारणसे उन्हें 'ईश्वर' ...। महत् होनेसे उनको 'ब्रह्मा' और ... 'भव' कहा गया है तथा ... और पालन करते हैं, इसी कारण ... गये हैं।

... होने और अपूर्व होनेसे 'स्वयम्भू' ... हैं। ये हिरण्याण्डमें रहनेवाले और ...के स्वामी हैं। अतः 'हिरण्यगर्भ' तथा देवोंके ... कहे गये हैं। तत्त्वद्रष्टा महर्षियोंने ... विविध नामोंसे स्मरण किया है।

आदित्यवारका माहात्म्य

इस प्रकरणमें आदित्यवारके माहात्म्य तथा नन्दाख्य आदित्यवारके व्रत-कल्पके माहात्म्यका वर्णन किया जाता है।

दिण्डीने कहा—हे ब्रह्मन्! जो मनुष्य आदित्यवारके दिन दिवाकरका पूजन किया करते हैं और स्नान तथा दान आदिके कर्म करते हैं, उनका क्या फल होता है? आप कृपाकर यह मुझे बतलाइये।

ब्रह्माजीने कहा—हे ब्रह्मन्! जो मानव रविवारके दिन श्राद्ध करते हैं, वे सात जन्मोंतक रोगोंसे रहित होते हैं—नीरोग रहते हैं। जो मानव उस दिन स्थिरताका आश्रय लेकर रात्रिके समयमें दान आदि किया करते तथा परम जाप्य आदित्यहृदयका जप करते हैं, वे इस लोकमें पूर्ण आरोग्य प्राप्त करके अन्तमें सूर्यलोकको चले जाते हैं। जो आदित्यके दिन सदा उपवास किया करते हैं, वे भी सूर्यलोककी प्राप्ति करते हैं।

इस संसारमें महात्मा आदित्यके द्वादश वार कहे गये हैं, वे ये हैं—नन्द, भद्र, सौम्य, कामद, पुत्रद, जय, जयन्त, विजय, आदित्याभिमुख, हृदय, रोगहा, महाश्वेतप्रिय। हे गणाधिप! माघ मासमें शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथिमें रात्रिके समय घृतसे रविका स्नपन (स्नान) कराना परमपुण्य बताया गया है। जो ऐसा करता है, वह समस्त पापोंके भयका अपहरण करनेवाला होता है। इसमें आदित्यदेवको अगस्त्य वृक्षके पुष्प, श्वेत चन्दन, धूपोंमें गुग्गुलका धूप, नैवेद्यके स्थानमें पूप (पूआ) ही विशेष प्रिय हैं। पूप (पूआ) एक प्रस्थ प्रमाणमें उत्तम गोधूम (गेहूँके) चूर्णका होना चाहिये। यदि गेहूँका अभाव हो तो त्रिफलामें जौके चूर्णसे ही गुड़ और घृतसे पूप बना लेने चाहिये। इतिहासके वेत्ता ब्राह्मणको सुवर्णकी दक्षिणाके सहित पूओंका दान करना चाहिये अथवा

करो और चलते हुए भी उन गोपतिका ही चिन्तन आवश्यक है । भोजन करते हुए और शयन करते हुए भी उन भास्करका चिन्तन करो । इस प्रकार तुम एकाग्रचित्त होकर निरन्तर रविका आश्रय ग्रहण करो । रविका समाश्रय ग्रहण करके जन्म और मृत्यु जिसमें महान् ग्राह हैं, ऐसे इस संसाररूपी सागरको तुम पार कर जाओगे । जो ग्रहोंके स्वामी, वर देनेवाले, पुराणपुरुष, जगत्के विधाता, अजन्मा एवं ईशिता रवि हैं, उनका जिन्होंने समाश्रय ग्रहण किया है, उन विमुक्तिके सेवन करनेवालोंके लिये यह संसार कुछ भी नहीं है अर्थात् उन्हें इस संसारसे छुटकारा मिल जाना अत्यन्त साधारण-सी बात है ।

सूर्यके विराट्रूपका वर्णन

अब यहाँ सूर्यके विराट्रूपका वर्णन किया जाता है । श्रीनारद ऋषिने कहा—अब सूक्ष्मरूपसे भगवान् विवस्वान्का रूप बतलाऊँगा । सुनो ।

विवस्वान् देव अव्यक्त कारण, नित्य, सत् एवं असत्-स्वरूप हैं । जो तत्त्व-चिन्तक पुरुष हैं, वे उनको प्रधान और प्रकृति कहा करते हैं । आदित्य आदिदेव और अजात होनेसे 'अज' नामसे कहे गये हैं । देवोंमें वे सबसे बड़े देव हैं; इसीलिये 'महादेव' नामसे कहे गये हैं । समस्त लोकोंके ईश होनेसे 'सर्वेश' और अधीश होनेके कारणसे उन्हें 'ईश्वर' कहा गया है । महत् होनेसे उनको 'ब्रह्मा' और भवत्व होनेके कारण 'भव' कहा गया है तथा वे समस्त प्रजाकी रक्षा और पालन करते हैं, इसी कारण वे 'प्रजापति' कहे गये हैं ।

उत्पाद न होने और अपूर्व होनेसे 'स्वयम्भू' नामसे प्रसिद्ध हैं । ये हिरण्याण्डमें रहनेवाले और दिवस्पति ग्रहोंके स्वामी हैं । अतः 'हिरण्यगर्भ' तथा देवोंके भी देव 'दिवाकर' कहे गये हैं । तत्त्वदर्शी महर्षियोंने भगवान् सूर्यको विविध नामोंसे स्मरण किया है ।

आदित्यवारका माहात्म्य

इस प्रकरणमें आदित्यवारके माहात्म्य तथा नन्दाख्य आदित्यवारके व्रत-कल्पके माहात्म्यका वर्णन किया जाता है ।

दिण्डीने कहा—हे ब्रह्मन् ! जो मनुष्य आदित्यवारके दिन दिवाकरका पूजन किया करते हैं और स्नान तथा दान आदिके कर्म करते हैं, उनका क्या फल होता है ? आप कृपाकर यह मुझे बतलाइये ।

ब्रह्माजीने कहा—हे ब्रह्मन् ! जो मानव रविवारके दिन श्राद्ध करते हैं, वे सात जन्मोंतक रोगोंसे रहित होते हैं—नीरोग रहते हैं । जो मानव उस दिन सिरलोका आश्रय लेकर रात्रिके समयमें दान आदि किया करते तथा परम जाप्य आदित्यहृदयका जप करते हैं, वे इस लोकमें पूर्ण आरोग्य प्राप्त करके अन्तमें सूर्यलोकको चले जाते हैं । जो आदित्यके दिन सदा उपवास किया करते हैं, वे भी सूर्यलोककी प्राप्ति करते हैं ।

इस संसारमें महात्मा आदित्यके द्वादश वार कहे गये हैं, वे ये हैं—नन्द, भद्र, सौम्य, कामद, पुत्रद, जय, जयन्त, विजय, आदित्याभिमुख, हृदय, रोगहा, महादेवप्रिय । हे गणाधिप ! माघ मासमें शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथिमें रात्रिके समय घृतसे रविका स्नपन (स्नान) कराना परम पुण्य बताया गया है । जो ऐसा करता है, वह समस्त पापोंके भयका अपहरण करनेवाला राजा होता है । इसमें आदित्यदेवको अगस्त्य वृक्षके पुष्प, श्वेत चन्दन, धूपोंमें गुग्गुलका धूप, नैवेद्यके स्थानमें पूप (पूआ) ही विशेष प्रिय हैं । पूप (पूआ) एक प्रस्थ प्रमाणमें उत्तम गोधूम (गेहूँके) चूर्णका होना चाहिये । यदि गोधूमका अभाव हो तो [illegible] ... और पूपसे पूर्ण [illegible] पुण्यको [illegible]

देवसमर्पित नैवेद्यकी वस्तुओंमें जो पायस है, उससे ब्राह्मणोंको पूर्ण तुष्ट करते हुए भोजन कराना चाहिये। हे पुत्र! पञ्चगव्यका प्राशन और उसीसे स्नान भी कराना चाहिये। कार्तिक आदि मासोंमें अगस्त्यके पुष्प तथा अपराजित धूपके द्वारा पूजन करना चाहिये। नैवेद्यके स्थानमें गुड़के बनाये हुए पूए तथा ईखका रस कहा गया है। हे तात! उसी समर्पित नैवेद्यद्वारा अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। कुशोदकका प्राशन करे और शुद्धिके लिये स्नान भी कुशोदकसे ही करे। हे महान् मतिवाले! तृतीय पारणके अन्तमें माघ मासमें भोजन और दान दुगुना कहा गया है। विद्वान् पुरुषोंके द्वारा शक्तिके अनुसार देवदेवकी पूजा करनी चाहिये। हे पुत्र! रथका दान और रथयात्रा भी करनी चाहिये। हे पुत्र! रथाङ्गा अर्थात् रथके नामवाली सप्तमीका यह वर्णन किया गया है। यह महासप्तमी विख्यात है। यह महान् अभ्युदय प्रदान करनेवाली है। इस दिन मनुष्य उपवास करके धन, पुत्र, कीर्ति और विद्याकी प्राप्ति कर समस्त भूमण्डलको प्राप्त कर लेता है और चन्द्रमाके समान अर्चि (कान्ति)-वाला हो जाता है।

सूर्ययोग-माहात्म्यका वर्णन

इस प्रकरणमें सूर्यदेवके माहात्म्यका वर्णन किया गया है। महर्षि सुमन्तुने कहा—हे वीर! उस एक अक्षर, सत् और असत्‌में वेदान्तके रूपमें स्थित परम धाम [illegible] करना चाहिये। [illegible] पहले ऋषियोंसे [illegible] वर्णन किया था। हे नराधिप! सविताकी आराधना करनेके लिये महान् [illegible] (ब्रह्म) उन्होंने महर्षियोंसे [illegible] कहा था, यह [illegible] है। ब्रह्माने कहा—हे [illegible]! आपने जो [illegible] निश्चय [illegible] है, वह तो अनेक जन्म और

जानेपर भी अत्यन्त दुर्लभ हैं; क्योंकि ये म[न] इन्द्रियोंको हठात् आकृष्ट कर लेती हैं। वृत्तियाँ चित्तसे भी अधिक कठिन हैं। ये राग आदि सैकड़ों वर्षोंमें भी किस प्रकार जीती जा सकती हैं।

इन अजेय वृत्तियोंद्वारा मन इस योगके योग्य नहीं है। हे महान्! इस कृतयुगमें भी ये पुरुष अल[्प] होते हैं। त्रेता, द्वापर तथा कलियुगमें तो आ[प] विषयमें कहनेकी बात ही क्या है। हे भगवन्! आप प्रसन्न होकर उपासना करनेवालोंको ऐ[सा] कोई योग बतानेकी कृपा करें, जिससे उनका अनायास ही इस संसाररूपी महान् सागरसे पार हो जायँ। बेचारे मनुष्य सांसारिक दुःखरूपी जलमें डूबे हुए हैं, आपके द्वारा बताये हुए महान् प्लव (नाव)की प्राप्ति कर लेनेपर ये पार हो सकते हैं। इस प्रकार जब ब्रह्माजीसे कहा गया तो उन्होंने मानवोंके हितकी कामनासे कहा—'इस समस्त विश्वके स्वामी दिवाकरकी तन्म[य] रहित होकर आराधना करो, क्योंकि इन भगवान् भास्करका माहात्म्य अपरिच्छेद्य है—असीम है।

तन्निष्ठ होकर सूर्यकी आराधना करे। उन्होंने अपनी बुद्धिको लगाकर तथा भगवान् भास्करका आश्रय ग्रहण करके उनके ही कर्मोंसे एकमात्र उनकी ही दृष्टिसे और मनवाले होकर अपने समस्त कर्मोंको उनकी आज्ञा उन सूर्यमें ही त्याग कर दे, अर्थात् उन्हें ही समर्पित कर दे।

सूर्यके अनुष्ठानमें तत्पर रहनेवाले श्रेष्ठ पुरुष उन [illegible] सविता भगवान् मार्तण्डकी आराधना करते हैं। अतः हे कुलनन्दन! इस परम रहस्यका श्रवण करो। जो [illegible] सत्कर्मोंमें निमग्न हैं और जिनके मन [illegible] विषयोंसे आकृष्ट हो रहे हैं, उनके लिये यह दुर्लभ साधन है। इनके (सूर्यके) अतिरिक्त अन्य कोई भी [illegible] नहीं है। अतः

अभिप्राय है, उन्हें सूर्यकी भक्ति करनी चाहिये। अतः तुम सूर्यकी भक्ति अवश्य ही करो। समस्त देवगणोंके द्वारा समर्चित सूर्यदेवका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। भगवान् सूर्यका भक्तिपूर्वक यजन-अर्चन महान् दुर्लभ है। उनके लिये दान देना, होम करना, उनका विज्ञान प्राप्त करना और फिर उसका अभ्यास करना—उनके उत्तम आराधनका विधान जान लेना बहुत कठिन है, हो नहीं पाता। इसका लाभ उन्हीं मनुष्योंको होता है, जिन्होंने भगवान् रविदेवकी शरण ग्रहण कर ली है। इस लोकमें जिसका मन शास्ता भानुदेव (सूर्य) में नित्य लीन हो गया और जिसने दो अक्षरवाले रविको नमस्कार किया, उस पुरुषका जीवन सार्थक है—सफल है।

जो इस प्रकार परम श्रद्धा-भावसे युक्त होकर भगवान् भानुदेवकी पूजा करता है, वह निःसंदेह समस्त पापोंसे मुक्ति पा जाता है। विविध आकारवाली डाकिनियाँ, पिशाच और राक्षस अथवा कोई भी उसको कुछ भी पीड़ा नहीं दे सकता। इनके अतिरिक्त कोई भी जीव उसे नहीं सता सकते। सूर्यकी उपासना करनेवाले मनुष्यके शत्रुगण नष्ट हो जाते हैं और उन्हें संग्राममें विजय प्राप्त होती है। हे वीर! वह नीरोग होता है और आपत्तियाँ उसका स्पर्शतक नहीं कर पातीं। सूर्योपासक मनुष्य धन, आयु, यश, विद्या, अतुल प्रभाव और शुभमें उपचय (वृद्धि) प्राप्त करते हैं तथा सदा उनके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।

ब्रह्मकृत सूर्य-स्तुति

इस प्रकरणमें ब्रह्माके द्वारा की हुई सूर्यकी स्तुतिका वर्णन किया जाता है। अरुणने कहा—'ब्रह्माजीने जिस ब्रह्मतत्त्वकी प्राप्ति की थी, वह भक्तिके साथ रविदेवकी पूजा करके ही की थी। देवोंके ईश भगवान् विष्णुने विष्णुत्व-पदको सूर्यके अर्चनसे ही प्राप्त किया है। भगवान् शंकर भी दिवाकरकी पूजा-अर्चासे ही जगन्नाथ कहे जाते हैं तथा सूर्यदेवके प्रसादसे ही उन्हें महादेवत्व-पद प्राप्त हुआ है। एक सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्रने इन्द्रत्वको प्राप्त किया है।' मातृवर्ग, देवगण, गन्धर्व, पिशाच, उरग, राक्षस और सभी सुरोंके नायक ईशान भानुकी सदा पूजा किया करते हैं। यह समस्त जगत् भगवान् भानुदेवमें ही नित्य प्रतिष्ठित है। इसलिये यदि स्वर्गके अक्षय निवासकी इच्छा रखते हो तो भानुकी भलीभाँति पूजा करो। जो मनुष्य तमोहन्ता भगवान् भास्कर सूर्यकी पूजा नहीं करता, वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका अधिकारी नहीं है। इससे आजीवन सूर्यका ध्यान करना चाहिये। हे खग! आपत्तिग्रस्त होनेपर भी भानुका अर्चन सदा करणीय है। जो मनुष्य सूर्यकी बिना पूजा किये रहता है, उसका जीवन व्यर्थ समझना चाहिये। वस्तुतः प्रत्येक व्यक्तिको देवोंके स्वामी दिवाकर सूर्यकी पूजा करके भोजन करना चाहिये। सूर्यदेवकी अर्चनासे अधिक कोई भी पुण्य नहीं है, सूर्यार्चन धर्मसे संयत एवं सम्पन्न है। जो सूर्यभक्त हैं वे समस्त द्वन्द्वोंके सहन करनेवाले, वीर, नीतिकी विधिसे युक्त चित्तवाले, परोपकारपरायण, तथा गुरुकी सेवामें अनुराग रखनेवाले होते हैं। वे अमानी, बुद्धिमान्, असक्त, अस्पर्धावाले, गतस्पृह, शान्त, स्वात्मानन्द, भद्र और नित्य स्वागतवादी होते हैं। सूर्यभक्त अल्पभाषी, शूर, शास्त्रमर्मज्ञ, प्रसन्नमनस्क, शौचाचारसम्पन्न और दाक्षिण्यसे सम्पन्न होते हैं।

सूर्यके भक्त दम्भ, मत्सरता, तृष्णा एवं लोभसे वर्जित हुआ करते हैं। वे शठ और कुत्सित नहीं होते। जिस प्रकार पद्मिनीके पत्र जलसे निर्लिप्त होते हैं, उसी प्रकार सूर्यभक्त मनुष्य विषयोंमें कभी लिप्त नहीं होते।

ऐसे ही अन्य दिव्य पकान्न श्रीसूर्यको अर्पित करके देना चाहिये । इस विधानमें मण्डक भी ग्राह्य है । पुष्प-निवेदनके समय भक्तिपूर्वक आदित्यको नमस्कार करके आदित्यके समक्ष कहे—'प्रभो ! आप मेरा कल्याण करनेके लिये इन पुष्पोंको ग्रहण करें । मण्डक देनेके समय इस प्रकार कहे—भगवन् ! आप कामनाएँ प्रदान करनेवाले, सुख देनेवाले, धर्मसे समन्वित, धनके दाता और पुत्र प्रदान करते हैं । हे भास्कर देव ! आप इसे ग्रहण करें । भगवन् ! मैं आपको प्रिय मण्डक दे रहा हूँ । हे गणश्रेष्ठ ! ये वस्तुएँ तथा प्रार्थनाएँ आप आदित्यदेवको अत्यन्त प्रिय हैं ।' उपासकके लिये ये कल्याणकारी हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं है । अतः इन्हें निवेदित करना चाहिये । इसके पश्चात् मौनव्रती होकर पुष्पोंसे ब्राह्मणको भोजन कराये ।

जो भक्त मनुष्य इस विधानसे रविका पूजन करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्ति पाकर सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है । उस महान् आत्मावाले पुरुषको न कभी दरिद्रता होती है और न उसके कुलमें कभी कोई रोग ही होता है । जो इस रीतिसे भानुका पूजन करता है, उसकी संततिका कभी क्षय नहीं होता । यदि कभी सूर्यलोकसे भूमण्डलमें आता है तो वह फिर यहाँ राजा होता है और बहुत-से रत्नोंसे संयुक्त होकर तेजस्वी विप्रके तुल्य होता है । त्रिपुरान्तक देव इस विधानको पढ़ने एवं सुननेवालोंको दिव्य और अचल लक्ष्मी देते हैं ।

सौर-धर्मकी महिमाका वर्णन

इस प्रकरणमें सौर-धर्ममें वर्णित गरुड़ और अरुणके संवादका तथा सौर-धर्मके माहात्म्यका वर्णन किया जाता है । राजा शतानीकने कहा—'हे विप्रेन्द्र ! आप जो परमोत्तम सौर-धर्म है, उसे कृपया पुनः बतलाइये ।' सुमन्तु मुनिने कहा—'हे महाराज ! बहुत अच्छा । हे भारत ! इस लोकमें तुम्हारे समान अन्य कोई भी राजा सौर-धर्ममें अनुराग रखनेवाला नहीं है । आज मैं उ पापनाशक संवादको तुमसे कहता हूँ, और अरुणका संवाद है । प्राचीन कालमें किया—हे निष्पाप खगश्रेष्ठ ! धर्ममें स और समस्त पापनाशक सौरधर्मको आप बतानेकी कृपा करें। अरुणने कहा—हे वत्स तुम महान् आत्मावाले हो और परम धन्य हो । हे भाई ! तुम जो इस परम श्रेष्ठ सुननेकी इच्छा कर रहे हो, यह इच्छा धन्यता और निष्पापता प्रकट कर रही है उपायस्वरूप महान् फल देनेवाले अत्युत्तम बतलाता हूँ । अब तुम श्रवण करो ।

यह सौरधर्म अज्ञानके सागरमें निमग्न प्राणियोंको दूसरे तटपर लगा देनेवाला तथा उद्धार कर देनेवाला है । हे खग ! जो लोग भ रविका स्मरण, कीर्तन और भजन किया करते परम पदको चले जाते हैं । हे खगाधिप ! जिस लोकमें जन्मग्रहण करके इन देवेशका अर्चन किया, वह संसारमें पड़ा हुआ चक्कर काटने महान् दुःख भोगनेमें लगा है । यह मनुष्य-ज परम दुर्लभ है; ऐसे मनुष्य-जीवनको पाकर जि भगवान् दिवाकरका पूजन किया, उसीका जन्म ले सफल है । जो लोग भगवान् सूर्यदेवका भक्तिपूर्व स्मरण किया करते हैं, वे कभी किसी प्रकारके दुःखो भागी नहीं होते । अनेक प्रकारके सुन्दर पदार्थों, विविध आभूषणोंसे भूषित स्त्रियों तथा अटूट धनकी प्राप्ति—ये सभी भगवान् सूर्यदेवकी पूजाके फल हैं ।

जिन्हें महान् भोगोंकी उपलब्धिकी कामना है तथा जो धनवान्‌ बनना चाहते हैं अथवा सर्वोच्च ऐश्वर्य-प्राप्तिके इच्छुक हैं एवं जिन्हें अतुल कान्ति, भोग, त्याग, यश, श्री, सौन्दर्य, जगत्‌में ख्याति, कीर्ति और धर्म आदिकी

सूर्य एक देवविशेष हैं—देवताओंमें सूर्यका एक विशिष्ट स्थान है। उनका 'व्यक्ताव्यक्त' नाम यह दिखलाता है कि वे शरीर धारण करके प्रकट हो जाते हैं और तदनुरूप कार्य करते हैं। वे मनुष्योंसे भी सम्बन्ध स्थापित करते हैं। सूर्यका वंश भी इस पृथ्वीपर चला, जिसे इक्ष्वाकुवंश कहते हैं। भगवान्ने सूर्यको और सूर्यने मनुको, मनुने इक्ष्वाकु आदिको कर्मयोग-धर्मका उपदेश भी दिया है, ऐसा गीतामें उल्लेख है[1]। इसीलिये अष्टोत्तरशत सूर्यनामोंमें उनके नाम धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदाङ्ग, वेदवाहन, योगी आदि हैं। सूर्यके 'करुण', 'करुणान्वित' नाम भी उनका देवत्व व्यक्त करते हैं—यह युक्ति-युक्त ही है।

प्रभावती सूर्यकी पत्नी है।[2] प्रभा अर्थात् सूर्यकी ज्योति। आगम-शास्त्रमें प्रभाको सूर्यकी शक्ति कहा गया है। पुरुषकी शक्ति पत्नी होती है। अतः प्रभा सूर्यकी पत्नी है।

मरीचिके पुत्र कश्यपके द्वारा अदितिके बारह पुत्र सूर्यके ही अंश माने जाते हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं[3]—धाता, मित्र, अर्यमा, इन्द्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु। इनमें विष्णु छोटे होनेपर भी गुणोंमें सबसे बढ़कर हैं[4]। सावित्री[5] और तपती[6] ये दो सूर्यकी कन्याएँ हैं। यम सूर्यके पुत्र हैं[7]। सूर्य-पुत्र होनेके कारण यमका तेज सूर्यके समान ही था।

देवरूपमें सूर्यका मनुष्योंसे सम्बन्ध बतानेवाली कुछ पुराण-कथाओंके उल्लेख भी महाभारतमें मिलते हैं। इनमें एक कथा यह है कि त्वष्टादेवताकी पुत्री संज्ञाका विवाह सूर्यसे हुआ था। संज्ञा सूर्यका तेज नहीं सह सकी। इससे वह सूर्यके पास अपनी छाया छोड़कर स्वयं पिताके पास लौट गयी। उस छायासे सूर्यका पुत्र शनैश्चर हुआ[8]। पिताने जब संज्ञाको अपने पतिके पास ही रहनेके लिये कहा तो संज्ञा पिताके यहाँसे तो चली गयी, किंतु सूर्यसे बचनेके लिये उसने अश्वाका रूप बना लिया और अन्यत्र रहने लगी। सूर्यने अश्वरूप धारण करके संज्ञा (अश्वा)का पीछा किया। तब संज्ञा और सूर्यसे अश्विनीकुमारोंका जन्म हुआ। अन्ततः त्वष्टाने सूर्यको अपना तेज कम करवानेके लिये सहमत कर लिया। तब त्वष्टाने खरादपर चढ़ाकर सूर्यको छील दिया। त्वष्टाने सूर्यके द्वादश खण्ड कर दिये। इस प्रकार सूर्यका तेज कम हो गया[9]। पाश्चात्योंने इससे यह कल्पना की है कि सूर्यकी मूर्तिको शकलोग बूट तक पहनाते थे[10]। यही इस कथामें बतलाया गया है। महाभारतकी यह कथा अन्य पुराणोंमें दी हुई कथाका संक्षिप्त रूप है[11]। गोविन्दपुर (जिला गया, बिहार प्रान्त)के शिलालेख (शकाब्द १०५९, सन् ११३७-३८ ई०)में लिखा है कि विश्वकर्माने सूर्यदेवके तनुका तेज शाणयन्त्रपर चढ़ाकर कम किया था। इस पुराण-कथाका मूल स्रोत ऋग्वेद है[12]। ऋग्वेदमें त्वष्टाकी पुत्री शरण्यु और सूर्यके विवाहकी कथा है।

सूर्यदेवकी दूसरी प्रसिद्ध कथा है—'कर्णकी उत्पत्ति'। महाभारतमें सूर्यदेव प्रत्यक्ष पात्रके रूपमें दृष्टिगत होते हैं। पृथापर आनेवाले भावी संकटका विचार करके महर्षि दुर्वासाने पृथाको अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिये

---

१. गीता ४। १; २. महाभारत ५। ११७। ८; ३. वही १। ६५। १४; ४. वही १। ६५। १५-१६; ५. वही १। १७०। ७; ६. वही १। १७०। ७; ७. वही १। ७४। ३०; ८. वही १। २६७। ४१; ९. भागवत ६। ६। ४१—छाया शनैश्चरं लेभे। १०. मिलाइये—विश्वकर्मा ह्यनुज्ञातः शाकद्वीपे विवस्वतः। भ्रमिमारोप्य तत् तेजः शातयामास तस्य वै॥ भविष्यपुराण ब्राह्म० ७९। ४१। ११. उदीच्य वेषं गूढं पादादुरो यावत्। (वराहमिहिर) १२. यह कथा पुराणमें विस्तारसे दी हुई है। १३. ऋग्वेद १। ६४।

जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण नहीं होती, तबतक ही दिवाकरकी अर्चनारूप कर्म सम्पन्न कर लेना चाहिये; क्योंकि मानव असमर्थ होनेपर इसे नहीं कर सकता और यह मानव-जीवन यों ही व्यर्थ निकल जाता है। भगवान् सूर्यदेवकी पूजाके समान इस जगत्‌त्रयमें अन्य कोई भी धर्मका कार्य नहीं है। अतः देवदेवेश दिवाकरका पूजन करो। जो मानव भक्तिपूर्वक शान्त, अज, प्रभु, देवदेवेश सूर्यकी पूजा किया करते हैं, वे इस लोकमें सुख प्राप्त करके परम पदको प्राप्त हो जाते हैं। सर्वप्रथम अपनी परम प्रहृष्ट अन्तरात्मासे गोपतिकी पूजा करके अञ्जलि बाँधकर पहले ब्रह्माजीने यह (आगे कहा जानेवाला) स्तोत्र कहा था।

ब्रह्माजीने कहा—भग अर्थात् षडैश्व[illegible] विचरते पुरुष, देवोंके मार्ग-प्रणेता एवं [illegible] रविदेवको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। शाश्वत, शोभन, शुद्ध, दिवस्पति, चित्र[illegible] और ईशोंके भी ईश हैं, उनको मैं प्रणाम क[illegible] समस्त दुःखोंके हर्ता, प्रसन्नवदन, उत्तमाङ्ग, [illegible] वर प्रदान करनेवाले, वरद तथा वरेण्य भगव[illegible] हैं, उन्हें मैं प्रणाम करता हूँ। अर्क, अर्यमा, [illegible] ईश, दिवाकर, देवेश्वर, देवरत और विभावसु [illegible] भगवान् सूर्यको मैं प्रणाम करता हूँ। इस प्रक[illegible] द्वारा की हुई स्तुतिका जो नित्य श्रवण किया [illegible] वह परम कीर्तिको प्राप्तकर सूर्यलोकमें चला जा[illegible]

महाभारतमें सूर्यदेव

लेखिका—कु० सुषमा सक्सेना, एम्० ए० (संस्कृत) रामायण-विशारद, आयुर्वेदरत्न)

महाभारतमें सूर्यतत्त्वका पृथक् विवेचन नहीं है। सूर्य-सम्बन्धी उल्लेख जहाँ कहीं भी हैं, आनुषङ्गिक ही हैं; तथापि उनसे हम महाभारतकारकी सूर्य-सम्बन्धी विचारणाका व्यवस्थित स्वरूप प्राप्त कर सकते हैं। महाभारतमें सूर्यको ब्रह्म, चराचरका धाता, पाता, संहर्ता, एवं एक देवविशेष, कालाध्यक्ष, ग्रहपति, एक ज्योतिष्कपिण्ड और मोक्षद्वारके रूपमें विहित किया गया है। सूर्यदेवके सम्बन्धमें कुछ पुराण-कथाओंका भी अत्यन्त संक्षिप्त उल्लेख महाभारतमें हुआ है। सूर्योपासनाके विषयमें भी कुछ निर्देश प्राप्त होते हैं।

सूर्यकी ब्रह्मरूपता—सूर्यके अष्टोत्तरशत नामोंमें कुछ नाम ऐसे हैं, जो उनकी परब्रह्मरूपता प्रकट करते हैं। वे नाम—हैं अक्षय, शाश्वतपुरुष, सनातन, सर्वादि, अनन्त, प्रशान्तात्मा, विश्वात्मा, विश्वतोमुख, सर्वतोमुख, चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा। कुछ नामोंसे उनकी त्रिदेवरूपता व्यक्त होती है। ये नाम हैं—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शौरि, वे[illegible] वेदवाहन, स्रष्टा, आदिदेव और पितामह। एक साथ [illegible] देवोंका ऐक्य भी ब्रह्मत्व है। महाभारतके अ[illegible] शतनाम एवं शिवसहस्रनाममें कुछ नाम समान [illegible] जैसे—सूर्य, अज, काल, शौरि, शनैश्वर आदि [illegible] अन्धकारका नाश करनेके कारण भी सूर्यको श[illegible] अर्थात् शूर या पराक्रमी कहा जाता है।

सूर्य चराचरका धाता-पाता-संहर्ता—'सूर्यसे सम[illegible] चराचरका उद्भव हुआ है,' सूर्यसे ही उसका पोषण हो[illegible] है और सूर्यमें ही उसका लय होता है। यह दिखाने[illegible] वाले सूर्यके नाम ये हैं—प्रजाध्यक्ष, विश्वकर्मा, जीवन, भूताश्रय, भूतपति, सर्वधातुनिषेचिता, भूतादि, प्राणधारक, प्रजाद्वार, देहकर्ता, और चराचरात्मा। 'सूर्य आत्मा जगत-स्तस्थुषश्च'—इस श्रुति-वचनका प्रतिशब्द चराचरात्मक है। सृष्टिके आरम्भकालमें जब प्रजा भूखसे व्याकुल हो रही थी, तब सूर्यने ही अन्नकी व्यवस्था की थी।

१. महाभारत ३ । ३ । ३६; २. वही ३ । ३ । ५८ ८ ।

सूर्य एक देवविशेष हैं—देवताओंमें सूर्यका एक विशिष्ट स्थान है। उनका 'व्यक्ताव्यक्त' नाम यह दिखाता है कि वे शरीर धारण करके प्रकट हो जाते हैं और तदनुरूप कार्य करते हैं। वे मनुष्योंसे भी सम्बन्ध स्थापित करते हैं। सूर्यका वंश भी इस पृथ्वीपर चला, जिसे इक्ष्वाकुवंश कहते हैं। भगवान्‌ने सूर्यको और सूर्यने मनुको, मनुने इक्ष्वाकु आदिको कर्मयोग-धर्मका उपदेश भी दिया है, ऐसा गीतामें उल्लेख है[1]। इसीलिये अष्टोत्तरशत सूर्यनामोंमें उनके नाम धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदाङ्ग, वेदवाहन, योगी आदि हैं। सूर्यके 'कामद', 'करुणान्वित' नाम भी उनका देवत्व व्यक्त करते हैं—यह युक्ति-युक्त ही है।

प्रभावती सूर्यकी पत्नी है[2]। प्रभा अर्थात् सूर्यकी ज्योति। आगम-शास्त्रमें प्रभाको सूर्यकी शक्ति कहा गया है। पुरुषकी शक्ति पत्नी होती है। अतः प्रभा सूर्यकी पत्नी है।

मरीचिके पुत्र कश्यपके द्वारा अदितिके बारह पुत्र सूर्यके ही अंश माने जाते हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं[3]—धाता, मित्र, अर्यमा, इन्द्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु। इनमें विष्णु छोटे होनेपर भी गुणोंमें सबसे बढ़कर हैं[4]। सावित्री[5] और तपती[6] ये दो सूर्यकी कन्याएँ हैं। यम सूर्यके पुत्र हैं[7]। सूर्य-पुत्र होनेके कारण यमका तेज सूर्यके समान ही था।

देवरूपमें सूर्यका मनुष्योंसे सम्बन्ध बतानेवाली कुछ पुराण-कथाओंके उल्लेख भी महाभारतमें मिलते हैं। इनमें एक कथा यह है कि त्वष्टादेवताकी पुत्री संज्ञाका विवाह सूर्यसे हुआ था। संज्ञा सूर्यका तेज नहीं सह सकी। इससे वह सूर्यके पास अपनी छाया छोड़कर स्वयं पिताके पास लौट गयी। उस छायासे सूर्यका पुत्र शनैश्चर हुआ[8]। पिताने जब संज्ञाको अपने पतिके पास ही रहनेके लिये कहा तो संज्ञा पिताके यहाँसे तो चली गयी, किंतु सूर्यसे बचनेके लिये उसने अश्वाका रूप बना लिया और अन्यत्र रहने लगी। सूर्यने अश्वरूप धारण करके संज्ञा (अश्वा)का पीछा किया। तब संज्ञा और सूर्यसे अश्विनीकुमारोंका जन्म हुआ। अन्ततः त्वष्टाने सूर्यको अपना तेज कम करवानेके लिये सहमत कर लिया। तब त्वष्टाने खरादपर चढ़ाकर सूर्यको छील दिया। त्वष्टाने सूर्यके द्वादश खण्ड कर दिये। इस प्रकार सूर्यका तेज कम हो गया[9]। पाश्चात्योंने इससे यह कल्पना की है कि सूर्यकी मूर्तिको शकलोग इसे वस्त्र पहनाते थे[10]। वही इस कथामें बतलाया गया है। महाभारतकी यह कथा अन्य पुराणोंमें दी हुई कथाका संक्षिप्त रूप है[11]। गोविन्दपुर (जिला गया, बिहार प्रान्त)के शिलालेख (शकाब्द १०५९, सन् ११३७-३८ ई०)में लिखा है कि विश्वकर्माने सूर्यदेवके तनुका तेज शाणयन्त्रपर चढ़ाकर कम किया था। इस पुराण-कथाका मूल स्रोत ऋग्वेद है[12]। ऋग्वेदमें त्वष्टाकी पुत्री शरण्यु और सूर्यके विवाहकी कथा है।

सूर्यदेवकी दूसरी प्रसिद्ध कथा है—'कर्णकी उत्पत्ति'। महाभारतमें सूर्यदेव प्रत्यक्ष पात्रके रूपमें उपस्थित होते हैं। कुमारर आनेवाले भावी संकटका विचार करके महर्षि दुर्वासाने कुन्तीको अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिये

१. गीता ४ । १; २. महाभारत ५ । ११७ । ८; ३. वही १ । ६५ । १४; ४. वही १ । ६५ । १६-१६; ५. वही १ । १७० । ७; ६. वही १ । १७० । ७; ७. वही १ । ७४ । १०; ८. वही १ । २२० । ४१; ९. भागवत ६ । ६ । ४१—आदि [illegible]। १०. लिखते हैं—विश्वकर्मा अनुज्ञात: शाकद्वीपे विवस्वतः। [illegible] तनु [illegible] [illegible] ॥ भविष्यपुराण ब्राह्म० ७९ । ४१ । ११. [illegible] । ([illegible]) १२. यह कथा पुराणमें विस्तारसे दी हुई है। १३. ऋग्वेद १ । १४ ।

जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण नहीं होती, तबतक ही दिवाकरकी अर्चनाका कर्म सम्पन्न कर लेना चाहिये; क्योंकि मानव असमर्थ होनेपर इसे नहीं कर सकता और यह मानव-जीवन यों ही व्यर्थ निकल जाता है। भगवान् सूर्यदेवकी पूजाके समान इस जगत्त्रयमें अन्य कोई भी धर्मका कार्य नहीं है। अतः देवदेवेश दिवाकरका पूजन करो। जो मानव भक्तिपूर्वक शान्त, अज, प्रभु, देवदेवेश सूर्यकी पूजा किया करते हैं, वे इस लोकमें सुख प्राप्त करके परम पदको प्राप्त हो जाते हैं। उन्होंपर अपनी परम प्रहृष्ट अन्तरात्मासे गोपतिकी पूजा करके अञ्जलि बाँधकर पहले ब्रह्माजीने यह (आगे कहा जानेवाला) स्तोत्र कहा था।

ब्रह्माजीने कहा—भग अर्थात् षडैश्वर्य... चित्तसे युक्त, देवोंके मार्ग-प्रणेता एवं सर्व... रविदेवको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। ज... शाश्वत, शोभन, शुद्ध, दिवस्पति, चित्रभा... और ईशोंके भी ईश हैं, उनको मैं प्रणाम कर... समस्त दुःखोंके हर्ता, प्रसन्नवदन, उत्तमाङ्ग, क... वर प्रदान करनेवाले, वरद तथा वरेण्य भगवान्... हैं, उन्हें मैं प्रणाम करता हूँ। अर्क, अर्यमा, ... ईश, दिवाकर, देवेश्वर, देवरत और विभावसु ... भगवान् सूर्यको मैं प्रणाम करता हूँ। इस प्रकार... द्वारा की हुई स्तुतिका जो नित्य श्रवण किया क... वह परम कीर्तिको प्राप्तकर सूर्यलोकमें चला जा...

सूर्य एक देवविशेष हैं—देवताओंमें सूर्यका एक वैशिष्ट्य स्थान है। उनका 'व्यक्ताव्यक्त' नाम यह दिखाता है कि वे शरीर धारण करके प्रकट हो जाते हैं और तदनुरूप कार्य करते हैं। वे मनुष्योंसे भी सम्बन्ध स्थापित करते हैं। सूर्यका वंश भी इस पृथ्वीपर चला, जिसे इक्ष्वाकुवंश कहते हैं। भगवान्‌ने सूर्यको और सूर्यने मनुको, मनुने इक्ष्वाकु आदिको कर्मयोग-धर्मका उपदेश भी दिया है, ऐसा गीतामें उल्लेख है। इसीलिये अष्टोत्तरशत सूर्यनामोंमें उनके नाम धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदाङ्ग, वेदवाहन, योगी आदि हैं। सूर्यके 'कामद', 'करुणान्वित' नाम भी उनका देवत्व व्यक्त करते हैं—यह युक्ति-युक्त ही है।

प्रभावती सूर्यकी पत्नी हैं। प्रभा अर्थात् सूर्यकी ज्योति। आगम-शास्त्रमें प्रभाको सूर्यकी शक्ति कहा गया है। पुरुषकी शक्ति पत्नी होती है। अतः प्रभा सूर्यकी पत्नी है।

मरीचिके पुत्र कश्यपके द्वारा अदितिके बारह पुत्र सूर्यके ही अंश माने जाते हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—धाता, मित्र, अर्यमा, इन्द्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु। इनमें विष्णु छोटे होनेपर भी गुणोंमें सबसे बढ़कर हैं। सावित्री और तपती ये दो सूर्यकी कन्याएँ हैं। यम सूर्यके पुत्र हैं। सूर्य-पुत्र होनेके कारण यमका तेज सूर्यके समान ही था।

देवरूपमें सूर्यका मनुष्योंसे सम्बन्ध बतानेवाली कुछ पुराण-कथाओंके उल्लेख भी महाभारतमें मिलते हैं। उनमें एक कथा यह है कि त्वष्टादेवकी पुत्री संज्ञाका विवाह सूर्यसे हुआ था। संज्ञा सूर्यका तेज नहीं सह सकी। इससे वह सूर्यके पास अपनी छाया छोड़कर स्वयं पिताके पास लौट गयी। उस छायासे सूर्यका पुत्र शनैश्चर हुआ। पिताने जब संज्ञाको अपने पतिके पास ही रहनेके लिये कहा तो संज्ञा पिताके यहाँसे तो चली गयी, किंतु सूर्यसे बचनेके लिये उसने अश्वाका रूप बना लिया और अन्यत्र रहने लगी। सूर्यने अश्वरूप धारण करके संज्ञा (अश्वा)का पीछा किया। तब संज्ञा और सूर्यसे अश्विनीकुमारोंका जन्म हुआ। अन्ततः त्वष्टाने सूर्यको अपना तेज कम करवानेके लिये सहमत कर लिया। तब त्वष्टाने खरादपर चढ़ाकर सूर्यको छील दिया। त्वष्टाने सूर्यके द्वादश खण्ड कर दिये। इस प्रकार सूर्यका तेज कम हो गया। पाश्चात्योंने इससे यह कल्पना की है कि सूर्यकी मूर्तिको शकलोग कवच पहनाते थे। वही इस कथामें बतलाया गया है। महाभारतकी यह कथा अन्य पुराणोंमें दी हुई कथाका संक्षिप्त रूप है। गोविन्दपुर (जिला गया, बिहार प्रान्त)के शिलालेख (शकाब्द १०५९, सन् ११३७-३८ ई०)में लिखा है कि विश्वकर्माने सूर्यदेवके तनुका तेज शाणयन्त्रपर चढ़ाकर कम किया था। इस पुराण-कथाका मूल स्रोत ऋग्वेद है। ऋग्वेदमें त्वष्टाकी पुत्री शरण्यु और सूर्यके विवाहकी कथा है।

सूर्यदेवकी दूसरी प्रसिद्ध कथा है—'कर्णकी उत्पत्ति'। महाभारतमें सूर्यदेव प्रमुख पात्रके रूपमें दर्शित होते हैं। पृथापर आनेवाले भावी संकटका विचार करके महर्षि दुर्वासाने पृथाको अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिये

१। ५। ११७। ८। २. वही १। १५। १४; ५. वही १। ६६। ३६-३८।
... ७. वही १। ७४। १०; ८. वही १। ३३०। ४१; ९. भागवत ६। ...
... अनुप्रास ... विश्वकर्मा ... वर ...
... चढ़ाकर ... (क्षयदर्शित)

यथोचारण मन्त्र दिया[1]। दुर्वासासे प्राप्त मन्त्रकी परीक्षा लेनेके लिये कुन्तीद्वारा आवाहन किये जानेपर[2] सूर्यदेवका प्रकट[3] होना और कुन्तीको पुत्र (कर्ण) रूप फल प्राप्त होना[4] सूर्यदेवकी प्रत्यक्षता ही है। सूर्य-कुन्तीके पुत्र कर्ण देवमाता अदितिके कुण्डल तथा सूर्यके कवचसहित उत्पन्न हुए थे[5]। सूर्यदेवकी कृपासे कुन्तीका कन्यात्व कर्णको उत्पन्न करनेके बाद भी ज्यों-का-त्यों बना रहा। महाभारतकारने 'कन्या' शब्दकी व्याख्या करते हुए कहा है कि 'कम्' धातुसे कन्या शब्दकी सिद्धि होती है। 'कम्' धातुका अर्थ है 'चाहना'; क्योंकि यह स्वयंवरमें आये हुए किसी व्यक्तिको अपनी कामनाका विषय बना सकती है[6]। मन्त्रकी परीक्षा मात्र करनेके विचारसे ही कुन्तीने सूर्यका आवाहन किया था; किंतु उससे जब सूर्य वास्तवमें प्रत्यक्ष हो गये और उससे प्रणययाचना करने लगे तथा कुन्ती सूर्यको आत्म-समर्पण करनेमें भयका अनुभव करने लगी; तब सूर्यने वरदान दिया कि 'तुम कन्या ही बनी रहोगी और स्वयंवरमें किसीका भी वरण करनेमें समर्थ होगी।' यह आश्वासन प्राप्त करके कुन्तीने पुत्र (कर्ण) को प्राप्त किया। कर्ण सूर्यके समान तेजस्वी थे। वे महाभारत-युद्धके प्रमुख महारथियोंमें थे। दुर्योधनने तो इन्हींके बलपर युद्ध छेड़ा था। समय-समयपर सूर्यदेव पुत्र-स्नेहके कारण कर्णपर विपत्ति आनेके पूर्व उन्हें सावधान कर देते थे। नारायण श्रीकृष्णने महाभारत-युद्धमें अर्जुनकी विजय निश्चित की थी। अतः विधाताके इच्छानुसार अपने पुत्र अर्जुनकी विजयके लिये प्रयत्नशील इन्द्रने कर्णसे कवच-कुण्डल दानमें माँगनेका निश्चय किया। सूर्यके लिये सभी अनावृत हैं; अतः सूर्य इन्द्रके इस निश्चयको जान गये और पुत्रस्नेहके कारण योग-समृद्धिसे सम्पन्न वेदवेत्ता ब्राह्मणका रूप धारणकर उन्होंने उनसे स्वप्नमें दर्शन दिया[7] तथा कर्णसे कहा—'इन्द्र ... वेष धारण करके तुम्हारे पास कवच-कुण्डल ... आयेंगे, तुम देना मत[8]।' परंतु कर्णने अपने ... अनुसार-याचकको प्राणतक देनेका[9] अपना अटल निश्चय बता दिया। इसपर सूर्यने कर्णसे कहा कि यदि तुमने यह निश्चय कर ही लिया है, तो तुम कवच-कुण्डलके बदले इन्द्रसे अमोघ शक्ति ले लेना। यहाँ यह ध्यान देना आवश्यक है कि सूर्यने कर्णको यह नहीं बताया है कि वे कर्णके पिता हैं। कर्ण यही समझते हैं कि मेरे आराध्यदेव होनेके कारण ही सूर्य मेरे प्रति स्नेह रखते[10] हैं। वैसे तो सूर्यसे ही यह समस्त प्रजा उत्पन्न हुई है और वे सभीका पालन करते हैं[11] तथा सूर्यके अष्टोत्तरशत नामोंमें एक नाम 'पिता' भी है; परंतु अपने अंशरूप कर्णसे उन्हें अधिक प्रेम था।

कालाध्यक्ष सूर्य—सूर्यका नाम काल है। अनन्त-असीम कालके विभाजक हैं अर्थात् कालके प्रवर्तक हैं। अतः समयके छोटे-बड़े सभी विभागोंको महाभारतमें सूर्यरूप कहा गया है। सूर्यके नाम हैं—कृत, त्रेता, द्वापर, कलियुग, संवत्सर, दिन, रात्रि, याम, क्षण, कला, काष्ठा—मुहूर्तरूप समय। सूर्यके कारण ही हम समयके इन खण्डोंका अनुभव करते हैं, अन्यथा महाकाल तो अनन्त-अखण्ड इन्द्रियातीतकी अनुभूति है। सूर्यका नाम 'तमोनुद्' यह प्रकट करता है कि आप तमस्‌में प्रकाश करके सूर्य 'समय' की भावना उत्पन्न करते हैं। ब्रह्माजीका दिन सहस्र युगोंका बताया गया है। 'कालमान' के जाननेवाले विद्वानोंने उसका आदि और अन्त सूर्यको ही माना है[12]।

---

१. महाभारत १।११०।८; २. वही १।११०।९; ३. वही १।११०।१६ के बाद दाक्षिणात्य; ५. वही १।११०।२०; ६. वही १।११०।११७-११८; ४. १।३०७।१३; ८. वही ३।३०७।१५; ९. वही ३।३०१।८९; १०. वही ३।३००।१५ से सम्पूर्ण; ११. वही ३।३०१।६–१२; १२. वही ३।३०२।१५; १३. वही ३।३।९; १४. वही ३।३।५५।

महपति सूर्य—विभिन्न ग्रहोंके नाम सूर्यके [?]टरशत नामोंके अन्तर्गत हैं। इसका आशय यह होता है कि महाभारतकार सूर्यको महपति मानते हैं। सूर्यके [एक] सौ आठ नामोंमें—सूर्य, सोम, अङ्गारक (मङ्गल), [?], बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर भी हैं[1]। सूर्यके 'धूमकेतु' [नाम]से केतु शब्द व्यञ्जित होता है और उससे राहु-नाम [व्यञ्जि]त हो जाता है। 'राहु' और 'केतु' नाम महाभारतमें [अन्]यत्र मिलते हैं। आदिपर्वमें अमृत-मन्थनकी कथामें [रा]हुका नाम है, जो चन्द्रग्रहण करता है। उसके [क]बन्धका भी उल्लेख है। यह कबन्ध ही 'केतु' है। [रा]हु-केतु दोनों नाम साथ-साथ कर्णपर्वमें आये हैं, जहाँ [अ]र्जुन और कर्णके ध्वजोंकी उपमा उनसे दी गयी है[2]। [इ]स प्रकार महाभारतमें नवों ग्रहोंके नाम दिये हुए हैं। [अ]तः, प्राच्य विद्याके पाश्चात्य विचारकोंका यह कथन [स]त्य नहीं है कि 'महाभारतमें केवल पाँच ग्रहोंका उल्लेख [है], जिनके नाम भी नहीं दिये गये हैं[3]।'

ज्योतिष्कपिण्ड सूर्य—सूर्य अपने ज्योतिर्मय [पि]ण्डाकाररूपमें प्रतिदिन प्रातः-सायं उदित और अस्त [हो]ते हैं[4]। उस समय सूर्यका वर्ण मधुके समान पिङ्गल [त]था तेजसे समस्त दिशाओंको उद्भासित (प्रकाशित) [क]रनेवाला होता है[5]। कुन्तीका मन इन्हीं ज्योतिर्मय सूर्यको [उ]दित होते हुए देखकर आसक्त हुआ था। इस प्रसङ्गमें [य]ह वर्णन भी आया है कि सूर्य योग-शक्तिसे अपने दो [स्व]रूप बनाकर एकसे कुन्तीके पास आये और दूसरेसे [आ]काशमें तपते रहे[6]। इसका तात्पर्य यह है कि भगवान् सूर्यकी ही शक्ति ज्योतिर्मय पिण्डाकाररूपमें हमें दिखायी देती है। धर्मराज युधिष्ठिर सूर्यकी प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

> तव यद्युदयो न स्यादन्धं जगदिदं भवेत्।
> न च धर्मार्थकामेषु प्रवर्तेरन् मनीषिणः॥
> आधानपशुबन्धेष्टिमन्त्रयज्ञतपःक्रियाः।
> त्वत्प्रसादादवाप्यन्ते ब्रह्मक्षत्रविशां गणैः॥
> (महाभारत ३ । ३ । ५३-५४)

अर्थात् (भगवन्!) यदि आपका उदय न हो तो यह सारा जगत् अन्धा हो जाय और मनीषी पुरुष धर्म, अर्थ एवं काम-सम्बन्धी कर्मोंमें प्रवृत्त ही न हों। गर्भाधान या अग्निकी स्थापना, पशुओंको बाँधना, इष्टि (यज्ञ-पूजा), मन्त्र, यज्ञानुष्ठान और तपश्चर्या आदि समस्त क्रियाएँ आपकी ही कृपासे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यगणोंके द्वारा सम्पन्न की जाती हैं।

महाभारतमें स्थान-स्थानपर शूरवीरों एवं महर्षियोंके तेजकी तुलना सूर्यसे की गयी है, जो सूर्यके ज्योतिष्कपिण्ड-रूपको समझ जाती है। एक बार महर्षि जमदग्नि धनुष चलानेकी क्रीड़ा कर रहे थे[7]। वे धनुष चलाते और उनकी पत्नी रेणुका बाण ला-लाकर देती थीं[8]। क्रीड़ा करते-करते ज्येष्ठ मासके सूर्य दिनके मध्यभागमें आ पहुँचे[9]। इससे रेणुका बाण लानेकी क्रियामें विफल होने लगीं[10]। अतः रुष्ट होकर जमदग्निने कहा—'इस उद्दीप्त किरणोंवाले सूर्यको आज मैं अपने बाणोंके द्वारा अपनी अस्त्राग्निके तेजसे गिरा दूँगा[11]।' जमदग्निको युद्धोद्यत देख सूर्यदेव ब्राह्मणका वेश धारण कर वहाँ आये और कहा—'सूर्यदेवने आपका क्या अपराध किया है? सूर्यदेव तो विश्वकल्याणार्थ कार्यमें लगे हुए हैं। अतः इनकी गति रोकनेसे आपको क्या लाभ होगा[12]?' जमदग्निने सूर्यको शरणागत समझकर कहा—'ठीक है, इस समय तुम्हारे द्वारा जो यह अपराध हुआ है, उसका कोई समाधान सोचो, जिससे तुम्हारी

१. महाभारत ३ । ३ । १७-१८; २. वही ८ । ८७ । ९२; ३. ऐसा श्री जे० एन० बनर्जीने अपने ग्रन्थ 'पौराणिक एण्ड तान्त्रिक रिलीजन'में पृष्ठ १३९ पर लिखा है; ४. महाभारत ३ । ३ । ३०४; ५. वही ३ । ३०४ । ९; ६. वही ३ । ३०४ । ५; ७. वही ३ । ३०४ । १०; ८. वही १३ । ९५ । ६; ९. वही १३ । ९५ । ७; १०. वही १३ । [११. व]ही १३ । ९५ । १६; १२. वही १३ । ९५ । १८; १३. वही १३ । ९५ । २० ।

—२९—

न तेषामापदः सन्ति नाधयो व्याधयस्तथा।
ये तवानन्यमनसः कुर्वन्त्यर्चनवन्दनम्॥
सर्वरोगैर्विरहिताः सर्वपापविवर्जिताः।
त्वद्भावभक्ताः सुखिनो भवन्ति चिरजीविनः॥
(महाभारत ३।३।६५-६६)

इतना कहनेपर भी महाभारतकारको तृप्ति नहीं हुई। वे पुनः कहते हैं—

इमं स्तवं प्रयतमनाः समाधिना
पठेदिहान्योऽपि वरं समर्थयन्।
तत् तस्य दद्याच्च रविर्मनीषितं
तदाप्नुयाद् यद्यपि तत् सुदुर्लभम्॥
(३।३।७०)

अर्थात् जो कोई पुरुष मनको संयममें रखकर चित्त-वृत्तियोंको एकाग्र करके इस स्तोत्रका पाठ करेगा, वह यदि कोई अत्यन्त दुर्लभ वर भी माँगे तो भगवान् सूर्य उसकी उस मनोवाञ्छित वस्तुको दे सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि महाभारतमें विष्णुपुराण आदिकी भाँति व्यापक क्रमबद्धतासे मुख्य संदर्भरूपमें वर्णन नहीं होनेपर भी सूर्यमाहात्म्यके लिये आनुषङ्गिक वर्णन महत्त्वके हैं और उनसे महाभारत-कारकी सूर्यविषयक धारणाएँ विवेचित हो जाती हैं। वस्तुतः महाभारत भगवान् सूर्यकी महत्ताका प्रतिपादन ही नहीं, प्रसंगतः समर्थन भी करता है। सूर्यदेव हैं और सब कुछ करनेमें सर्वथा समर्थ हैं। अतः सूर्यकी अर्चना—उपासना करनी चाहिये—यह महाभारतकार-को इष्ट है।

महाभारतोक्त सूर्यस्तोत्रका चमत्कार

(लेखक—महाकवि श्रीवनमालिदासजी, शास्त्रीजी महाराज)

दुर्योधनेनैव दुरोहरेण
निर्वासितायैव युधिष्ठिराय।
पात्रं प्रदत्तं भुवनोपभोज्यं
तस्मै नमः सूर्यमहोदयाय॥

अपने भक्तमात्रको अतिशय उन्नति देनेवाले उन भगवान् सूर्यको मेरा सादर प्रणाम है, जिन्होंने दुर्योधनके द्वारा दुर्व्यवहारमय दुरोहर (जूआ)के निमित्त वनमें निर्वासित युधिष्ठिरके लिये ऐसा चमत्कारमय पात्र प्रदान किया जो भुवनमात्रको भोजन करा देनेमें समर्थ था।

दुर्दान्त दुर्योधनके दुर्दमनीय दुःशासनात्मक दुर्व्यवहारमय दुर्द्यूतके द्वारा पराजित हुए पाँचों पाण्डव जब द्रौपदीके सहित वनको प्रस्थित हो गये, तब धर्मराज युधिष्ठिरकी राज्यसभामें अपने धर्म-कर्मका सानन्द निर्वाह करनेवाले हजारों वैदिक ब्राह्मण निषेध करनेपर भी उनके साथ ही वनको चल दिये। उस समय कुछ दूर वनमें जाकर युधिष्ठिरने अपने पूज्य पुरोहित श्रीधौम्य ऋषिसे प्रार्थना की—'हे भगवन्! ये ब्राह्मण जब मेरा साथ दे रहे हैं, तब इनके भोजनकी व्यवस्था भी मुझे ही करनी चाहिये। अतः आप कृपया इन सबके भोजनकी व्यवस्थाका कोई उपाय अवश्य बताइये।' तब धौम्य ऋषिने प्रसन्न होकर कहा—'मैं श्रीब्रह्माजीके द्वारा कहा हुआ अष्टोत्तरशतनामात्मक सूर्यका स्तोत्र तुम्हें देता हूँ; तुम उसके द्वारा भगवान् सूर्यकी आराधना करो। तुम्हारा मनोरथ शीघ्र ही पूर्ण हो जायगा।' [वह स्तोत्र महाभारतके वनपर्वमें तीसरे अध्यायमें इस प्रकार है—]

धौम्य उवाच

सूर्योऽर्यमा भगस्त्वष्टा पूषार्कः सविता रविः।
गभस्तिमानजः कालो मृत्युर्धाता प्रभाकरः॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम्।
सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारक एव च॥

इन्द्रो विवस्वान् दीप्तांशुः शुचिः शौरिः शनैश्चरः।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वै वरुणो यमः॥
वैद्युतो जाठरश्चाग्निरैन्धनस्तेजसां पतिः।
धर्मध्वजो वेदकर्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः॥
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वमलाश्रयः।
कला काष्ठा मुहूर्ताश्च क्षपा यामस्तथा क्षणः॥
संवत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः।
पुरुषः शाश्वतो योगी व्यक्ताव्यक्तः सनातनः॥
कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुदः।
वरुणः सागरोऽंशश्च जीमूतो जीवनोऽरिहा॥
भूताश्रयो भूतपतिः सर्वलोकनमस्कृतः।
स्रष्टा संवर्तको वह्निः सर्वस्यादिरलोलुपः॥
अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः।
जयो विशालो वरदः सर्वधातुनिषेचिता॥
मनःसुपर्णो भूतादिः शीघ्रगः प्राणधारकः।
धन्वन्तरिर्धूमकेतुरादिदेवो दितेः सुतः॥
द्वादशात्मारविन्दाक्षः पिता माता पितामहः।
स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम्॥
देहकर्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः।
चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेयः करुणान्वितः॥
एतद् वै कीर्तनीयस्य सूर्यस्यामिततेजसः।
नामाष्टशतकं चेदं प्रोक्तमेतत् स्वयंभुवा॥

सुरगणपितृयक्षसेवितं
ह्यसुरनिशाचरसिद्धवन्दितम्।
वरकनकहुताशनप्रभं
प्रणिपतितोऽस्मि हिताय भास्करम्॥

सूर्योदये यः सुसमाहितः पठेत्
स पुत्रदारान् धनरत्नसंचयान्।
लभेत जातिस्मरतां नरः सदा
धृतिं च मेधां च स विन्दते पुमान्॥

इमं स्तवं देववरस्य यो नरः
प्रकीर्तयेच्छुचिसुमनाः समाहितः।
विमुच्यते शोकदवाग्निसागरा-
ल्लभेत कामान् मनसा यथेप्सितान्॥

प्रतिदिन प्रातःकाल [illegible] ... [illegible] है। [illegible]

लिये उन भगवान् भास्करको साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूँ—जो देवगण, पितृगण एवं यक्षोंके द्वारा सेवित तथा असुर, निशाचर, सिद्ध एवं साध्य आदिके द्वारा वन्दित हैं और जिनकी कान्ति निर्मल सुवर्ण और अग्निके समान है।

जो व्यक्ति सूर्योदयके समय विशेष सावधान होकर इस सूर्य-स्तोत्रका प्रतिदिन पाठ करता है, वह पुत्र, कलत्र, धन, रत्नसमूह, पूर्वजन्मकी स्मृति, धैर्य एवं धारणाशक्तिवाली बुद्धिको अनायास प्राप्त कर लेता है।

जो मनुष्य स्नान आदिसे पवित्र हो विशेष एकाग्र होकर स्वच्छ मनोयोगपूर्वक, देवश्रेष्ठ सूर्यदेवके इस स्तवका पाठ करता है, वह शोकरूपी दावानलके सागरसे अनायास पार हो जाता है तथा वाञ्छित मनोरथोंको भी प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार धौम्य ऋषिके द्वारा प्राप्त इस सूर्यस्तोत्रका विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेवाले युधिष्ठिरके ऊपर शीघ्र ही प्रसन्न होकर अक्षयपात्र देते हुए भगवान् सूर्य बोले—'हे राजन्! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, तुम्हारे अतिथियोंके भोजनकी सुव्यवस्थाके लिये मैं तुम्हें यह अक्षयपात्र देता हूँ; देखो, अनन्त प्राणियोंको भोजन कराकर भी जबतक द्रौपदी भोजन नहीं करेगी, तबतक यह पात्र खाली नहीं होगा और द्रौपदी इस पात्रमें जो भोजन बनायेगी, उसमें छप्पन भोग छत्तीसों व्यञ्जनोंका स्वाद आयेगा।'

इस प्रकार सूर्यदेवके द्वारा प्राप्त उस अक्षय पात्रसे [illegible] युधिष्ठिरने अपने [illegible] ब्राह्मणों, ऋषियों, अभ्यागतों [illegible] [illegible]

...भक भी लगभग चौबीस वर्षोंसे इस स्तोत्रका अनुष्ठान रहा है। इस स्तोत्रके अन्तमें अपनी अभिलाषाका ...क स्वरचित यह श्लोक भी जोड़ देता है—

...यज्जीवं तु नीरोगं कुरु मां च शतायुषम्।
...सीद धौम्यकृतया स्तुत्या मयि विकर्तन॥

'हे समस्त रोग, दुःख, दोष एवं दारिद्र्य आदिका शमन करनेवाले सूर्यदेव! धौम्य ऋषिके द्वारा की हुई इस स्तुतिसे आप मुझपर प्रसन्न हो जाइये और मुझको जीवनभरके लिये नीरोग तथा सौ वर्षकी आयुवाला बना दीजिये, जिससे कि मैं समस्त शास्त्रोंका यथावत् अनुशीलन कर सकूँ।' इस प्रकारका अनुष्ठान कर प्रत्येक व्यक्ति लाभ उठा सकता है।

वाल्मीकि-रामायणमें सूर्यकी वंशावली

(लेखक—विद्यावारिधि श्रीसुधीरनारायणजी ठाकुर (सीतारामशरण) व्या०-वेदान्ताचार्य, साहित्यरत्न)

भगवान् भास्कर एक प्रत्यक्ष शक्तिशाली सत्ता हैं, ...नका प्रभाव सम्पूर्ण सृष्टिमें व्याप्त है। इस विषयमें ...श्वके किसी भी क्षेत्रके विचारकोंमें मतभेद नहीं है; ...थापि भारतीय परम्पराके आधारपर (पाश्चात्य मान्यताके समान) यह सत्ता कोई जड सत्ता नहीं है। यद्यपि चमकनेवाला तेजःपुञ्ज मह मण्डल जड प्रतीत होता है, फिर भी आर्ष ग्रन्थोंकी मान्यतापर विचार करनेसे यही कहा जा सकता है कि यह तेजोमण्डल पृथिव्यादिकी भाँति भले ही जडलोक हो, किंतु उसमें विराजमान कोई अपूर्व चेतनशक्ति अवश्य है जो समस्त सृष्टिकी मङ्गल-कामनासे अनुदिन अपनी कृपावर्षिणी किरणोंद्वारा अमृत-वर्षण कर सभी जीवोंमें शक्ति प्रदान करती रहती है। अतः भारतीय दृष्टिमें ये 'सूर्य' मण्डल-मात्र नहीं, अपितु साक्षात् नारायण ही हैं। इसलिये यहाँके विविध ग्रन्थोंमें इनके माहात्म्यगानके साथ-साथ इनकी स्वस्थ वंशपरम्परा कल्पभेदसे वंशानुक्रमणिकामें कुछ वैषम्यके साथ प्राप्त होती है। फिर भी प्रधान-प्रधान राजाओंका वर्णन प्रायः सभी वंशानुक्रमणिकाओंमें है। सम्प्रति महर्षि वाल्मीकिने अपनी रामायणमें इनकी जो वंशपरम्परा दी है, उसे आगे दिखलाया जा रहा है।

मिथिलामें विवाह-प्रसङ्गमें महर्षि वसिष्ठने जनकसे इक्ष्वाकुवंशकी परम्पराका निरूपण करते हुए कहा है—'सर्वप्रथम सृष्टिके पूर्व ही अव्यक्तसे शाश्वत (नित्य), अव्यय हिरण्य (ब्रह्म) प्रकट हुए। ब्रह्मासे मरीचि एवं मरीचिसे कश्यपकी उत्पत्ति हुई। इसी महात्मा कश्यपसे विवस्वान् (सूर्यदेव) प्रादुर्भूत हुए। भगवान् विवस्वान्ने कृपा करके मनुको जन्म दिया, जो इस सृष्टिके सर्वप्रथम शासक माने जाते हैं। उन्होंने अपनी शासन-व्यवस्थाके स्वरूपको दृढ़ रखनेके लिये एक नियम-(विधि-) ग्रन्थका निर्माण किया जो आज भी मनुस्मृतिके नामसे प्रसिद्ध है। इसी मनुसे इक्ष्वाकु उत्पन्न हुए। इक्ष्वाकुके पुत्र कुक्षि, कुक्षिके पुत्र बाण, बाणके पुत्र अनरण्य, अनरण्यके पुत्र पृथु, पृथुके पुत्र त्रिशङ्कु हुए (जो सशरीर स्वर्ग गये; किंतु ईश्वरीय विधानके विपरीत होनेके कारण उन्हें वहाँ स्थान नहीं मिला, फिर भी विश्वामित्रकी कृपासे वे मर्त्यलोकमें न आकर ऊर्ध्वलोकमें ही लटके रहे)। त्रिशङ्कुके पुत्र धुन्धुमार, धुन्धुमारके पुत्र युवनाश्व, युवनाश्वके पुत्र मान्धाता हुए, जिन्होंने अपने शील-गुणके बलपर एक रात्रिमें सम्पूर्ण वसुन्धरापर आधिपत्य प्राप्त कर लिया था। मान्धाताके पुत्र सुसन्धि हुए। सुसन्धिके दो पुत्र ध्रुवसन्धि एवं प्रसेनजित् थे। ध्रुवसन्धिके पुत्र भरत, भरतके पुत्र असित हुए। असितकी दो पत्नियाँ

थी। असित शत्रुओंसे पराजित होकर वनके लिये हिमालय चले गये एवं कालक्रमसे उन्होंने वहीं शरीर-त्याग किया। वहीं उनकी पत्नियाँ भी थीं। उनमेंसे एक गर्भवती थी। दूसरी पत्नीने अपने सौतको भविष्यमें पुत्रवती होनेकी आशङ्कासे विष दे दिया। ईश्वरानुकम्पासे सगरकी माँको इसका भान हो गया। इसी बीच भाग्यवश महातपा भृगुवंशी च्यवन उस आश्रमके निकट आये। सगरकी माताने सुपुत्र पानेकी लालसासे महात्मा च्यवनकी बहुत अनुनय-विनय प्रार्थना की। उसकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर महर्षिने उसे सुपुत्र-प्राप्तिका वर दिया। उस आशीर्वादके प्रभावसे गर्भस्थ शिशुपर विषका कोई असर नहीं पड़ा। उसे पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। गरलके कारण ही उस कुमारका नाम 'सगर' पड़ा। सगरका पुत्र असमंजस हुआ। असमंजसके पुत्र अंशुमान्, अंशुमान्के पुत्र दिलीप, दिलीपके पुत्र भगीरथ हुए, जिनकी तपस्याके कारण आज भी इस धरापर 'ब्रह्मद्रव' कही जानेवाली सर्वदा गङ्गा प्रवाहित हैं। भगीरथके पुत्र ककुत्स्थ, ककुत्स्थके पुत्र महाप्रतापी रघु थे, जिन्होंने विश्वजित् नामक यज्ञमें सर्वस्व देकर भी द्वारपर आये हुए अतिथि कौत्सको विमुख न होने दिया। रघुके पुत्र कल्माषपाद हुए। कल्माषपादके पुत्र शङ्खण, शङ्खणके पुत्र सुदर्शन, सुदर्शनसे अग्निवर्ण, अग्निवर्णकी संतति शीघ्रग, शीघ्रगका पुत्र मरु, मरुका पुत्र प्रशुश्रुक, प्रशुश्रुकका पुत्र अम्बरीष, अम्बरीषका पुत्र नहुष, नहुषका पुत्र ययाति, ययाति[illegible] नाभागका पुत्र अज, अजके पुत्र दशरथ[illegible] महाराज दशरथसे भगवान्की लीलाके [illegible] हरि राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न हुए। [illegible] भी दो-दो संततियाँ हुईं, जिसका वर्णन [illegible] रामायणके उत्तरकाण्डमें है। उन [illegible] लव और कुश; श्रीभरतसे तक्ष [illegible] श्रीलक्ष्मणसे अङ्गद एवं चित्रकेतु, [illegible] और शत्रुघाती हुए। अन्य पुराणोंमें [illegible] परम्पराका भी वर्णन प्राप्त होता है; [illegible] रामायणका प्रतिपाद्य 'सीतायाश्चरितं म[illegible]' कारण वर्णन-क्रममें उस कालखण्डकी [illegible] दिखलाया गया है। ऋक्ष-वानरोंके [illegible] सुग्रीव भास्करपुत्र ही कहे गये हैं। इन स[illegible] कर्मोंको देखनेसे प्रतीत होता है कि जैसे भास्कर अपने ज्योतिपुञ्जसे जगत्का तिमिर [illegible] हुए सभीके लिये मङ्गल वेला उपस्थित करते हैं, [illegible] प्रकार उन्होंने अपनी वंश-परम्पराक्रममें अपना [illegible] प्रदानकर तमःप्रधान रावण आदि—[illegible] समाप्त कर संसारका सर्वविध कल्याण [illegible]

आदिकाव्य वाल्मीकि रामायणमें सूर्य[illegible] प्रकाश श्रीरामरूपमें हुआ है। तभी तो [illegible] भी लिखा है—

'उदित उदय गिरि मंच पर रघुबर बाल [illegible]

नमो महामतिमान्

(रचयिता—श्रीहनुमानप्रसादजी शुक्ल)

तरणि ! आप निज तेजसे, जगको जीवन देत।
जल फल शस्य प्रकाश औ, सृष्टि-प्रलयके हेत॥
आदि-पुरुष हे ओजनिधि, जग-जीवन-आधार।
सुखदायक त्रय लोकके, नमो किरण-करतार॥
जग-पालक, घालक-तिमिर, जप तप-तेजनिधान!
पूर्वज दिनकर-वंशके, नमो महामतिमान्॥

सूर्यवंशावतंस श्रीराम

वंश-परम्परा और सूर्यवंश

(पृष्ठभूमि)

पुराणोंमें ऋषिवंश या राजवंशका जो वर्णन प्राप्त होता है, उसका आरम्भ वैवस्वत मन्वन्तरके आरम्भसे ही होता है। इतने समयमें सत्ताईस चतुर्युगी व्यतीत हो चुकी है और अट्ठाईसवें चतुर्युगीके भी तीन युग व्यतीत हो गये हैं। इस अवधिमें चौथा कलियुग चल रहा है। इतने लम्बे कालके इतिहासकी रूपरेखा हमारे यहाँ सुरक्षित है। किंतु हमारा दुर्भाग्य है कि इस बातपर हमारे ही देशके अधिकतर आधुनिक विद्वान् विश्वास नहीं करते। वे युग शब्दके भिन्न-भिन्न तथा अनर्गल अर्थ लगाकर समयके संकोचकी प्रक्रियामें लगे हुए हैं। कुछ लोग 'युग' शब्दको अंग्रेजीके 'पीरियड' शब्दका समानार्थक मानते हैं, जैसे आजकल हिंदीमें 'भारतेन्दु-युग', 'द्विवेदी-युग' इत्यादि व्यवहृत होते हैं। कुछ विद्वान् पुराणोंमें वर्णित बारह हजार देववर्षकी चातुर्युगीको ही मानुषवर्ष मानते हैं। बंगीय साहित्य-परिषद्के श्रीगिरीशचन्द्र बसुने अपनी कल्पनाओंके आधारपर पुराने ऋषि, राजा आदिको बहुत अर्वाचीन सिद्ध करनेका प्रयत्न अपनी 'पुराण-प्रवेश' नामक पुस्तकमें किया है। सृष्टिकी वंश-परम्पराको अर्वाचीन सिद्ध करनेके लिये जितना ही अधिक प्रयत्न किया गया तथा कल्पनाएँ की गयीं, पुराणोंमें उन कल्पनाओंके विरुद्ध उतने ही अधिक प्रमाण मिलते गये हैं। इसीलिये विरोधमें जबतक कोई दृढ और सर्वमान्य प्रमाण प्राप्त नहीं हो जाता, तबतक हम वैवस्वत मनुसे ही अपने इतिहासका आरम्भ माननेके लिये विवश हैं।

आधुनिक विद्वानोंका कहना है कि यदि वैवस्वत मनुसे राजाओंकी वंश-परम्परा मानी गयी है, तो पुराणोंमें इतने अल्प नाम क्यों आये हैं? नामोंकी संख्या तो हजारों-लाखोंतक जा सकती थी? इसके अतिरिक्त वे यह भी कहते हैं कि पुराणोंमें प्रत्येक राजाकी हजारों वर्षोंकी आयु लिखी है, जो पुराणकर्ताओंकी कोरी कल्पना तथा अविश्वसनीय बात है।

उदाहरणस्वरूप, वाल्मीकीय रामायणमें वर्णित महाराज दशरथके इस वाक्यको लीजिये कि—

> षष्टिर्वर्षसहस्राणि जातस्य मम कौशिक ॥
> कृच्छ्रेणोत्पादितश्चायं न रामं नेतुमर्हसि।
> (१।२०।१०-११)

'हे कौशिक! मैंने साठ हजार वर्षोंकी आयु बिताकर इस वृद्धावस्थामें बड़ी कठिनतासे रामको पाया है। अतः मैं इन्हें देनेमें असमर्थ हूँ।' इतना ही नहीं, 'राम'के विषयमें भी कहा गया है कि—

> दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
> रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥

'दस हजार, दस सौ वर्ष राज्य करनेके बाद राम ब्रह्मलोकको जायँगे।' पुराणोंमें वर्णित इस तरहके सारे वाक्य अनर्गल हैं।

पर, हमारे ये विद्वान् इन ग्रन्थोंके रचनाकालका ज्ञान ठीकसे नहीं रखते हैं और न यह बात ही जानते हैं कि शब्दोंके अर्थोंमें कब और कितना परिवर्तन हुआ और हो रहा है। प्राचीन मीमांसादर्शनमें 'वर्ष' शब्दका अर्थ 'दिन' आया है। इस विषयपर मीमांसादर्शनमें अनेक विचार हैं और वहाँ यह भी कहा गया है कि '**शतायुर्वै पुरुषः**' अर्थात् मनुष्यकी आयु सौ वर्ष ही श्रुतिमें मानी गयी है। उसके विरुद्ध अधिक आयु मनुष्यकी नहीं मानी जा सकती। श्रुतिमें ऐसे भी वाक्य मिलते हैं, जिनसे पता चलता है कि सौ वर्षसे कुछ ऊपर भी मनुष्योंका जीवन होता है। किंतु ज्योतिषशास्त्रमें अधिक-से-अधिक एक सौ बीस या -

सूर्यकी उत्पत्ति-कथा—पौराणिक दृष्टि

(लेखक—साहित्यमार्तण्ड प्रो० श्रीरंजनसूरिदेवजी, एम्० ए० (द्वय), स्वर्णपदकप्राप्त, साहित्य-आयुर्वेद-पुराण पालि-जैनदर्शनाचार्य, व्याकरणतीर्थ, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

सूर्य आगम-निगम-संस्तुत और ज्ञान-विज्ञान-सम्मत विदेव परम देवता हैं। उन्हें लोकजीवनके साक्षी सांसारिक प्राणियोंकी आँखोंका प्रकाशक कहा है। इसीलिये उनको 'लोकसाक्षी' और 'जगच्चक्षु' ते हैं। निरुक्तके अनुसार आकाशमें परि- ण करनेके कारण उन्हें सूर्यकी संज्ञा प्राप्त है। वे लोकको कर्मकी ओर प्रेरित करते हैं तथा लोकरक्षक से रविके नामसे उद्घोषित हुए हैं।[1]

प्राचीनतम वैदिक ऋषि-मुनिसे आधुनिकतम वैज्ञानिक- सूर्यके भौतिक एवं आध्यात्मिक गुणोंसे भलीभाँति चित होते रहे हैं। अतएव सूर्यसे भावपूर्ण सम्पर्क पित करनेके लिये उन्होंने सूर्योपासनाको विश्वधर्म और तिका अनिवार्य अङ्ग बना दिया। फलतः भगवान् सम्पूर्ण विश्वके लिये अधिष्ठाताके रूपमें अङ्गीकृत ये। रोग-सम्बन्धी जीवाणुओंके शमनके लिये सूर्य- णोंकी उपयोगिता चिकित्साशास्त्रसम्मत है और वनस्पति- र्ममें वनस्पतियोंकी अभिवृद्धिके लिये सूर्यकिरणोंकी देयता स्वीकार की गयी है। कृषि-विज्ञानके अनुसार के हेतु मेघके निर्माणके लिये सूर्यज्योति अनिवार्य है।[2]

आरोग्य-कामना, निर्धनता-निवारण और संतति-प्राप्ति आदिकी दृष्टिसे तो सूर्यकी पूजा एवं उनके स्तोत्रोंके पाठका व्यापक प्रचलन है। कर्मकाण्डमें सूर्यको प्रथम पूज्य देवकी प्रतिष्ठा प्राप्त है। सूर्यको अर्घ्य देनेके बाद ही देवकार्य या पितृकार्यका विधान सर्वसम्मत है। तन्त्रसार या आगमपद्धतिमें तो सूर्यविज्ञानकी अत्यन्त महिमा है।[3] योगासनोंमें भी 'सूर्यनमस्कार'को प्राथमिकता दी गयी है। निस्सन्देह सूर्य जागतिक जीवोंके प्राणपोषक, सर्वसम्प्रदायसम्मत लोकतान्त्रिक अजातशत्रु देवता हैं। शास्त्र एवं पुराणोंमें ऐसा निर्देश है कि जो व्यक्ति प्रतिदिन सूर्यको नमस्कार करता है, वह हजार जन्मोंमें भी दरिद्र नहीं होता।[4] मार्कण्डेयपुराणके अनुसार प्रातःकालीन सूर्य जिस घरमें शय्यापर सोये हुए पुरुषको नहीं देखते, जिस घरमें नित्य अग्नि और जल वर्तमान रहता है और जिस घरमें प्रति- दिन सूर्यको दीपक दिखाया जाता है, वह घर लक्ष्मीपात्र होता है।[5] इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेख है कि आरोग्यकामी मनुष्योंको सूर्यकी प्रार्थना करनी चाहिये।[6] जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंसे सम्पूर्ण संसार प्रकाशित

---

१. (क) सरति आकाशे—इति सूर्यः। (ख) सुवति कर्मणि लोकं प्रेरयति इति सूर्यः। (ग) रूयते इति रविः।
(घ) अवतीमांस्त्रयान् लोकांस्तस्मात् सूर्यः परिभ्रमात्। अचिरात्तु प्रकाशेत अवनात् स रविः स्मृतः॥

२. धूमज्योतिः सलिलमरुतां संनिपातः क्व मेघः। (मेघदूत १।५)

३. सूर्यविज्ञानके चमत्कारीपक्षके विशद विवरणके लिये द्रष्टव्य—'सूर्यविज्ञान' शीर्षक प्रकरण 'भारतीय संस्कृति और ना' (खण्ड २, पृष्ठ १६१), म० म० प० गोपीनाथ कविराज, प्र०विहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना-४।

४. आदित्याय नमस्कारं ये कुर्वन्ति दिने दिने। जन्मान्तरसहस्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते॥
(—आदित्यहृदयस्तोत्र)

५. भास्करदृष्टशय्यानि नित्याग्निसलिलानि च। सूर्यावलोकदीपानि लक्ष्म्या गेहानि भाजनम्॥
(—मा० पु० ५०।८१)

६. आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात्। ज्ञानं च शङ्करादिच्छेन्मुक्तिमिच्छेज्जनार्दनात्॥
(—भागवते व्यास-वचनम्)

अदितिसे देवता, दितिसे दैत्य तथा दनुसे दानव
पन्न हुए। अदिति, दिति और दनुके पुत्र सारे संसारमें
ल गये। देवों और दैत्य-दानवोंमें भयंकर युद्ध होने
गा। इस देवासुर-संग्राममें देवता पराजित हो गये। हारे
र देवोंकी दीनता और ग्लानि देखकर अदिति अपनी
ानोंकी मङ्गलकामनासे सूर्यकी आराधना करने लगीं,
ब भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर अदितिसे कहा—'मैं
हारे गर्भसे सहस्रांशु होकर जन्म लूँगा और तुम्हारे
ोंके शत्रुओंका नाश करूँगा।'[1]

भगवान् सूर्यकी किरणोंके सहस्रांशुने देवमाता
दितिके गर्भमें प्रवेश करके अवताररूपमें अवस्थित
आ। अदिति बड़ी सावधानीके साथ पवित्र रहकर,
च्छ्रचान्द्रायण आदि व्रत करती हुई दिव्य गर्भ धारण
ये रहीं। उनकी कठोर तपश्चर्याको देख पतिदेव
श्यप क्रुद्ध होकर बोले—'नित्य निराहार व्रत करके
गर्भाण्डको क्यों नष्ट कर रही हो?' अदितिके
तरमें आस्था अनुस्यारित हुई—'यह गर्भाण्ड नष्ट नहीं
गा, वरन् शत्रुओंके विनाशका कारण बनेगा।' यह
हकर क्रोधाविष्ट अदितिने देव-रक्षक तेजःपुञ्जस्वरूप
पने गर्भाण्डका परित्याग किया। गर्भाण्डके तेजसे सम्पूर्ण
ाण्ड जलने लगा। तब कश्यप सूर्य-सदृश तेजस्वी
स गर्भको देखकर प्राचीन ऋग्वेदोक्त मन्त्रोंसे उसकी
नम्र प्रार्थना करने लगे। उस गर्भाण्डसे रक्तकमलके
ान कान्तिमान् एक बालक प्रकट हुआ, जिसके तेजसे
ी दिशाएँ समुद्भासित हो उठीं। फिर तो गम्भीर
रमें आकाशवाणी हुई—'कश्यप! तुमने अदितिसे कहा
कि क्यों गर्भाण्डको मार रही हो, इसीलिये इस पुत्रका
नाम 'मार्तण्ड' (मारितण्ड) होगा। यह पूर्ण समर्थ होकर
सूर्यके अधिकारका कार्य करेगा और यज्ञका भाग हरनेवाले
असुरोंका विनाशक होगा।'[2] इस आकाश वाणीको सुन-
कर परम हर्षित देवता आकाशसे उतरे और दैत्य तेजो-
बलसे हीन हो गये। पुनः देवताओं और दानवोंमें भीषण
संग्राम हुआ; किंतु मार्तण्डके तेजसे सभी असुर जलकर
भस्म हो गये।

इसके बाद प्रजापति विश्वकर्माने अपनी पुत्री
संज्ञाका उन परम तेजस्वी मार्तण्डके साथ विवाह कर
दिया। संज्ञासे भगवान् सूर्यके तीन संतानें—दो पुत्र
(वैवस्वत मनु और यम) और एक कन्या (यमुना)
उत्पन्न हुईं। परंतु मार्तण्डके बिम्बका अखिलभुवन सन्ताप-
कारी तेज संज्ञाके लिये असह्य हो गया। तब उसने अपने
स्थानपर अपनी छायाको रख दिया और स्वयं पिता
विश्वकर्माके घर लौट गयी।

छायासे भी सूर्यने तीन सन्तानें—दो पुत्र और एक
कन्या उत्पन्न कीं। वैवस्वत मनुके तुल्य बड़ा पुत्र
सावर्णि नामसे प्रसिद्ध हुआ। दूसरा पुत्र शनैश्चर नामक
ग्रह हुआ और पुत्रीका नाम 'तपती' रखा गया।
'तपती' को महाराज संवरण विवाहके निमित्त अपने साथ
ले गये। छाया अपने औरस बच्चोंसे जैसा प्यार करती
थी, वैसा प्यार सौतेली सन्तानोंको नहीं दे पाती थी।
छायाके इस अपराधको वैवस्वत मनुने तो सहन कर
लिया, किंतु यमराजसे नहीं सहा गया। वह सौतेली
माँपर चरणप्रहार करनेके लिये उद्यत हो गया। फलतः
उसे माँके अभिशापका भागी होना पड़ा। हालाँकि
अन्तमें वह शापमुक्त होकर, 'धर्मराज' नामसे सम्बोधित
होने लगा।

१–सहस्रांशेन ते गर्भे सम्भूयाहमशेषतः। त्वत्पुत्रशत्रूनदिते नाशयाम्याशु निर्वृतः॥
(—मार्कण्डेयपुराण १०५। ९)

२–मारितं ते यतः प्रोक्तमेतदण्डं त्वया मुने। तस्मान्मुने सुतस्तेऽयं मार्तण्डाख्यो भविष्यति॥
सूर्याधिकारं च विभुर्जगत्येष करिष्यति। हनिष्यत्यसुरांश्चायं यज्ञभागहरानरीन्॥
(—मा० पु० १०५। १९-२०)

[illegible] सूर्यके [illegible] किया। [illegible] हो गये। [illegible] विश्वकर्माको [illegible] (खराद) पर चढ़ाकर [illegible] किये उदय हुए। फिर शाणयन्त्रपर एवं आकार भ्रमण घूमने लगे। भगवान् सूर्यके तीव्र गति होनेसे सारे चराचर जगत्में उथल-पुथल मच गयी। पहाड़ फट गये, पर्वतशिखर चूर्ण-विचूर्ण हो गये। आकाश, पाताल और स्वर्ग—तीनों लोक एवं भुवन व्याकुल हो उठे। इस प्रकार विश्व-विप्लवकारी स्थिति उत्पन्न हो गयी। सभी देवी-देवता भयाक्रान्त होकर सूर्यकी स्तुति करने लगे।

विश्वकर्माने सूर्यबिम्बके सोलह भागोंमें पंद्रह भागोंको छेंट डाला। फलतः सूर्यका प्रचण्ड तापकारी शरीर मृदुल मनोरम कान्तिसे कमनीय हो गया। विश्वकर्माने सूर्यतेजके पंद्रह भागोंसे विष्णुके चक्र, महादेवके त्रिशूल, कुबेरकी शिबिका, यमके दण्ड और कार्तिकेयके शक्ति-पाशकी रचना की एवं अन्यान्य देवोंके प्रभाविशिष्ट [illegible] मन [illegible] करने लगे। [illegible] सूर्यके [illegible] देवता हुआ तब प्रसन्न हुए।

इस प्रकार [illegible] है। उपर्युक्त कथा थोड़े-बहुत हेर-फेरके साथ पुराणोंमें वर्णित है। यह कथा [illegible] हरिवंशपुराणमें अंकित है तथा विशेषतः [illegible] ([illegible]), पद्मपुराण ([illegible]), विष्णुपुराण (द्वितीय अंश), स्कन्दपुराण ([illegible] अध्याय), मत्स्यपुराण (अ० १०१) और [illegible] (श्रीकृष्णजन्म) आदिमें वर्णित है। इसीलिये हम सब इन [illegible] भगवान् सूर्यकी प्रार्थना करते हैं।

यस्य सर्वमयस्येदमग्रभूतं जगत्त्रयं।
स नः प्रसीदतां भास्वान् जगतां यश्च जीवन॥
यस्यैकभास्वरं रूपं प्रभामण्डलदुर्दृश
द्वितीयमैन्दवं सौम्यं स नो भास्वान् प्रसीदतु॥
ताभ्यां च यस्य रूपाभ्यामिदं विश्वं विनिर्मितं
अग्नीषोममयं भास्वान् स नो देवः प्रसीदतु॥
(—मा० पु० १०९। ३२-३

जय सूरज

(रचयिता—पं० श्रीसूरजचंदजी शाह 'सत्यप्रेमी' (डाँगीजी)

जय सूरज सबके उजियारे।
आदि नाथ आदित्य प्रभाकर, नारायण प्रत्यक्ष हमारे॥ जय०
तेज स्वरूप, बुद्धिके प्रेरक, सावित्रीके राजदुलारे॥ जय सूरज०॥ १॥
परम प्रचण्ड गुणोंके उद्गम, अग्नि-पिण्ड, ब्रह्माण्ड सहारे॥ जय सूरज०॥ २॥
ज्योति अखण्ड अनन्त तुम्हारी, खण्ड-खण्ड ग्रह-उपग्रह-तारे॥ जय सूरज०॥ ३॥
दिव्य रश्मियोंके दर्शनमें, ऋषि-मुनियोंने तत्त्व विचारे॥ जय सूरज०॥ ४॥
सबके मित्र त्रिकाल विधाता, सभी देव प्रिय प्राण तुम्हारे॥ जय सूरज०॥ ५॥
क्षण-क्षणके अणु-अणुमें व्यापक, तन-मन सबके रोग निवारे॥ जय सूरज०॥ ६॥
रस बरसाते अन्न पकाते सबने पूज्य तुम्हें स्वीकारे॥ जय सूरज०॥ ७॥
निर्गुण सर्वगुणात्मक अद्भुत, सर्वात्मा प्रभु इष्ट हमारे॥ जय सूरज०॥ ८॥
तुम हो निर्मल ज्ञान दान दो, 'सूर्यचंद्र' तन, मन, धन वारे॥ जय सूरज०॥ ९॥

पुराणोंमें सूर्यवंशका विस्तार

(लेखक—डॉ० श्रीभूपसिंहजी राजपूत)

सभी धर्म एवं सभ्य जातियाँ अपने-अपने धर्माचार्यों तथा शासकोंकी वंशावलियाँ सुरक्षित रखती हैं। सेमेटिक धर्मोंकी वंशावलियाँ आदिम आदमी आदमसे शुरू होती हैं। बाइबिलके पूर्वार्ध भागमें आदमसे लेकर जलप्लावन-कालीन नबी नूह तथा बादके अब्राहम, इस्साक और मूसा प्रभृति महापुरुषोंकी वंशावलियाँ सङ्कलित हैं। बाइबिलके उत्तरार्ध भागमें महात्मा ईसाकी वंशावली भी इनमें मिला दी गयी है। मुस्लिम धर्मग्रन्थोंमें ऐसी वंशावलियाँ हैं, जिनके द्वारा हजरत मोहम्मदका सम्बन्ध इस्साकके सौतेले भाई इस्मायलसे जोड़ा जाता है। ईरानके पारसी तथा मुस्लिम नरेशोंकी वंशावलियोंका संकलन महमूद गजनवीने फिरदौसी नामक अपने एक मुस्लिम दरबारी कविसे शाहनामा नामक ग्रन्थमें कराया था। कहनेका अभिप्राय यह कि वंशावलियाँ सभ्य-समाजमें सर्वत्र ही समादृत हैं।

हमारे देशमें इतिहासका प्रमुख स्रोत होनेके कारण वंशावलियोंका संकलन पुराणोंमें बहुत शुद्धता एवं गवेषणात्मक ढंगसे किया गया है। प्राचीन साहित्यमें पुराणोंका सम्बन्ध इतिहाससे इतना घनिष्ठ है कि दोनों सम्मिलितरूपसे इतिहास-पुराण नामसे अनेक स्थानोंपर उल्लिखित हुए हैं। महाभारत भी स्वयंको इतिहासोत्तम कहता है (आदिपर्व २ । ३—५)। इसी प्रकार वायु-पुराण पुराण होनेपर भी अपनेको पुरातन इतिहास बतलाता है (देखिये वा० पु० १०३ । ४८—५१)। इसीलिये पुराणके पञ्च लक्षणोंमें वंशावलियोंके वर्णनका भी विधान है—

> सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
> वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

पुराणोंमें विष्णुपुराणका एक विशिष्ट स्थान है। यह पुराण वैष्णव-दर्शनका मूल आलम्बन है। इसके खण्डोंका नाम अंश है, जिनकी संख्या छः है त[था] अध्यायोंकी संख्या १२६ है। इस पुराणका चतुर्थ अं[श] विशेषतः ऐतिहासिक है। इस अंशमें अनेक क्षत्रिय-वंशों[की] वंशावलियाँ दी गयी हैं, जिनके वंशधर वर्तमा[न] राजपूत हैं।

पुराणोंमें वर्णित इतिहासकी सत्यताकी जाँच अ[ब] प्रामाणिक शिलालेखों तथा मुद्राओंके द्वारा सिद्ध होती है। श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल तथा डॉ० मिराशी-प्रभृ[ति] विद्वानोंने बड़े परिश्रमसे ऐसे अनेक प्रमाण जुटाये [हैं], जिनमें पुराणगत बहुत-से राजचरित्रोंकी सत्यता प्रमाणि[त] हुई है। पश्चिमके प्रसिद्ध विद्वान् पार्जिटर महोदयने [इन] अनुश्रुतियोंकी प्रामाण्य-सिद्धिमें अनेक प्रमाण तथा युक्ति[याँ] दी हैं। आपका महत्त्वपूर्ण मौलिक ग्रन्थ 'एंशिय[न्ट] इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन' पुराणोंके अन्त[र्गत] ऐतिहासिक महत्त्वको विद्वानोंके सामने इस प्रका[र] प्रमाणभूत तथा यथार्थ सिद्ध करता है कि आज पौराणि[क] अनुश्रुतियाँ पूर्ववत् अविश्वासपूर्ण नहीं मानी जाती हैं।

दो-एक उदाहरण यहाँ देना अप्रासङ्गिक न होगा। पुराणोंमें राजा विन्ध्यशक्तिके चार पुत्रोंका उल्ले[ख] मिलता है, जब कि कुछ समय पहलेके इतिहासव[ेत्ता] केवल एक ही गौतमीपुत्रका अस्तित्व मानते थे, किंतु पुनः खुदाईमें प्राप्त हुई मुद्राओंसे इस बात[की] पुष्टि हुई कि उसके एकाधिक पुत्र थे।

इसी प्रकार आन्ध्रोंके विषयमें भी पौराणि[क] अनुश्रुतियोंकी प्रामाणिकता सिद्ध हो चुकी है। शिशुनाग, नन्द, शुङ्ग, कण्व, मित्र, नाग, आन्ध्र त[था] आन्ध्रभृत्य इत्यादि राजवंशोंकी समग्र ऐतिहासि[क] सामग्रीकी उपलब्धि पुराणोंकी देन है।

महाराज त्रिशंकु हुए, जो अपने पुरोहित ऋषि विश्वामित्रके तपोबलसे सदेह स्वर्गारोहण कर गये। इन्हीं महाराज त्रिशंकुकी सन्तान सत्यवादी हरिश्चन्द्र हुए, जिनका नाम दानवीरों तथा सत्यवादियोंमें सर्वप्रथम लिया जाता है।

राजा हरिश्चन्द्रकी बारहवीं पीढ़ीमें महाराज दिलीप हुए, जिन्होंने गुरुकी गायकी रक्षाके लिये अपना शरीर सिंहको देनेका प्रस्ताव किया था। दिलीपके पुत्र भगीरथ हुए, जो पुण्य सलिला गङ्गाजीको धराधामपर लाये। भागीरथी नदी इनका अमर स्मारक है। इन्हीं भगीरथकी पाँचवीं पीढ़ीमें प्रतापी अम्बरीष हुए और आठवीं पीढ़ीके राजा ऋतुपर्ण, दमयन्तीपति नलके समकालीन थे। सत्रहवीं पीढ़ीमें उत्पन्न राजा खट्वाङ्गने देवासुर-संग्राममें देवपक्षकी ओरसे भाग लेकर अपनी वीरता दिखायी। इन्हीं खट्वाङ्गके पौत्र हुए महाराज रघु, जिनके कारण इनके वंशज रघुवंशी कहलाये। इसी रघुकुलके विषयमें रामचरितमानसमें लिखा गया है—'रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई॥' महाराज रघुके पौत्र राजा दशरथ थे, जिनके यहाँ भगवान् विष्णुने श्रीरामचन्द्रजीके रूपमें सातवाँ अवतार लिया था।

श्रीराम सूर्यकी छाछठवीं, ऋषभदेवकी बासठवीं, हरिश्चन्द्रकी तैंतीसवीं तथा भगीरथकी इक्कीसवीं पीढ़ीमें हुए थे। भगवान् रामके परमपवित्र जीवन-चरित्रको कौन ऐसा भारतीय होगा जो न जानता हो। आपका उदात्त चरित्र देशों, धर्मों तथा जातियोंकी सीमाओंको लाँघकर भारतके बाहर भी समानरूपसे लोकप्रसिद्ध है। अनेक पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि विश्वके सबसे बड़े मुस्लिम राष्ट्र इण्डोनेशिया, विश्वके सर्वाधिक जनसंख्यावाले देश चीन, विश्वके एकमात्र हिन्दूराष्ट्र नेपाल, एशियाके इकलौते ईसाई राष्ट्र फिलीपीन्स तथा विश्वके सभी बौद्धराष्ट्रोंकी अपनी-अपनी सम्पत्ति राम-कथाएँ हैं। सभीमें स्थानीय पुटके कुछ एक स्थलोंको छोड़कर मूल कथा वही है, जो वाल्मीकिरामायणकी है। ऐसा लगता है कि इस बातको हजारों वर्ष पूर्व भविष्य-द्रष्टा वाल्मीकिजीने भाँपकर ही यह लिखा था—

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥

भारतीय राजनीतिमें महाराज रामचन्द्रजीका रामराज्य आज भी एक आदर्श बना हुआ है।

श्रीरामचन्द्रजीके दो पुत्र हुए, जिनमें कनिष्ठ लव थे जो श्रावस्तीके शासक बने। इनकी तिरासीवीं पीढ़ीमें राजा कर्ण हुए हैं, जिनके विषयमें प्रचलित धारणा है कि श्राद्धोंका प्रचलन आपके ही द्वारा किया गया और इसीलिये श्राद्ध कर्णागत (कनागत) भी कहे जाते हैं। महाराज लवकी सत्तावनवीं पीढ़ीमें सिद्धार्थ हुए, जिनके कनिष्ठ पुत्र वर्धमान महावीरके नामसे विख्यात हुए। आपने श्रमण-विचारधाराको समुचितरूपसे अवगुण्ठित कर वर्तमान जैनमतका प्रवर्तन किया है। (इसी वंशसे आगे चलकर जोधपुर, बीकानेर तथा ईडर (गुजरात) और किशनगढ़ आदि राजघरानोंका निकास हुआ था)।

श्रीरामचन्द्रजीके ज्येष्ठ पुत्र महाराज कुश अयोध्याके राजा बने। इस वंशमें कुशकी इक्तीसवीं पीढ़ीमें राजा बृहद्बल हुए। उन्होंने महाभारतके युद्धमें कौरवपक्षकी ओरसे लड़ते हुए अभिमन्युके हाथों वीरगति प्राप्त की। राजा बृहद्बलके बाद उनका पुत्र बृहत्क्षण सिंहासनारूढ़ हुआ और पाण्डवोंसे उसकी मैत्री हुई। राजा बृहद्बलकी बाईसवीं पीढ़ीमें राजा संजय हुए। इनके एक राजकुमार अपने परिजनोंके साथ मुनिवर कपिल गौतमके आश्रममें रहने लगे। वहाँ शाक-वृक्षोंका बड़ा भारी वन था। अतः ये राजकुमार तथा इनका परिवार शाक्यनामसे

प्रसिद्ध हुआ । महाकवि अश्वघोष (ईसापूर्व प्रथम शती) ने 'सौन्दरानन्द'में लिखा है—

शाकवृक्षप्रतिच्छन्नं वासं यस्माच्च चक्रिरे ।
तस्मादिक्ष्वाकुवंश्यास्ते भुवि शाक्या इति स्मृताः॥

इक्ष्वाकुवंशी रघुकुलवाले क्षत्रियोंकी यह शाखा शाक्यके साथ-साथ गौतम भी कहलायी, क्योंकि—

तेषां मुनिरुपाध्यायो गौतमः कपिलोऽभवत् ।
गुरुगोत्रादतः कौत्सास्ते भवन्ति स्म गौतमाः ॥

(वही)

इन्हीं राजपुत्रोंने कालान्तरमें गुरु कपिलकी स्मृतिमें एक नगर बसाकर उसका नाम कपिलवस्तु रखा और उसे अपनी राजधानी बनायी । शाक्यराजके वंशमें महाराज शुद्धोदन एवं पट्टमहिषी मायादेवीके यहाँ मानवजातिको जन्म, रोग, बुढ़ापा और मृत्युके भयसे मुक्तिका मार्ग दिखानेके लिये राजकुमार सिद्धार्थके रूपमें भगवान् विष्णुका अवतार हुआ । वे ...

नामसे विख्यात हुए । ... एवं पूर्व एशियाके करोड़ों ... भगवान् मानकर पूजा करते हैं । ... तक राजवैभव एवं गृहस्थाश्रमका ... संन्यासी हो गये ।

आपके पुत्र राजकुमार राहुल हुए । ... यह वंशावली आगे भी चलती है । ... प्रसेनजित, क्षुद्रक, कुण्डल, सुरथ और सु... राजा हुए । इसके बाद इस राजवंशका ... नहीं है । ऐसे तो इस वंशके लोगों ... एवं भारतमें वर्तमान हैं ।

यहाँ हमने बहुत ही संक्षेपमें ... वर्णन किया है । यह वर्णन पुराणों... विस्तारसे दिया हुआ है । जिज्ञासु विद्वान् ... सकते हैं । पुराणोंसे आगेके राजवंशोंका ...

भगवान् भुवनभास्कर और उनकी वंश-परम्पराकी ऐतिहासिकता

(लेखक—डॉ० श्रीरजनजी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

भारतीय देवी-देवताओंके जन्म, उनके माता-पिता, वंश और कर्म आदिका इतिहास हमारे प्राचीन साहित्यमें उपलब्ध होता है। यह सब कुछ आगम और अनुमानके आधारपर ही है। देवताओंके अस्तित्वकी सिद्धि कहीं आगमसे और कहीं अनुमानसे प्राप्त होती है। ये इनके अस्तित्वको सिद्ध करते हैं। कहीं-कहीं प्रत्यक्ष प्रमाणसे भी इनके अस्तित्वको सिद्ध किया जाता है। यह सत्य भी है कि जो समस्त शरीरधारियोंद्वारा देखा जाता है, वह अवश्य ही प्रमाण है। इस प्रकार आगम, अनुमान और प्रत्यक्ष प्रमाणके आधारपर देवी-देवताओंका अस्तित्व भारतीय संस्कृतिमें स्वीकार किया जाता है। शाम्ब और भगवान् वासुदेवके वार्तालापसे यह बात सिद्ध होती है। इस परिप्रेक्ष्यमें शाम्बकी जिज्ञासा बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। अतः उन्होंने भगवान् वासुदेवसे अपनी उत्कण्ठा प्रकट कर दी—

या चाक्षगोचरा काचिद्विशिष्टेष्टफलप्रदा।
तामेवादौ ममाचक्ष्व कथयिष्यस्यथापराम्॥
(भविष्यपुराण प्रथम भाग सप्तमी कल्प अ० ४८। २०)

अर्थात् जो देवता नेत्रोंके गोचर हों और विशिष्ट अभीष्ट प्रदान करनेवाले हों, उन्हींके विषयमें पहले मुझे बताइये। इनके अनन्तर अन्य देवताओंके विषयमें वर्णन करनेकी कृपा करेंगे। फिर तो भगवान् वासुदेवने शाम्बको बतलाया—

प्रत्यक्षं देवता सूर्यो जगच्चक्षुर्दिवाकरः।
तस्मादभ्यधिका काचिद्देवता नास्ति शाश्वती॥
यस्मादिदं जगज्जातं लयं यास्यति यत्र च।
कृतादिलक्षणः कालः स्मृतः साक्षाद्दिवाकरः॥
ग्रहनक्षत्रयोगाश्च राशयः करणानि च।
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ वायवोऽनलः॥
शक्रः प्रजापतिः सर्वे भूर्भुवः स्वस्तथैव च।
लोकाः सर्वे नगा नागाः सरितः सागरास्तथा॥
भूतग्रामस्य सर्वस्य स्वयं हेतुर्दिवाकरः।
अस्येच्छया जगत्सर्वमुत्पन्नं सचराचरम्।
स्थितं प्रवर्तते चैव स्वार्थे चानुप्रवर्तते॥
प्रसादादस्य लोकोऽयं चेष्टमानः प्रदृश्यते।
अस्मिन्नभ्युदिते सर्वमुदेत्यस्तमिते रति॥
तस्मादतः परं नास्ति न भूतं न भविष्यति।
यो वै वेदेषु सर्वेषु परमात्मेति गीयते॥
इतिहासपुराणेषु अन्तरात्मेति गीयते।
बाह्यात्मेति सुषुम्णास्थः स्वप्नस्थो जाग्रतः स्थितः॥

अर्थात् प्रत्यक्ष देवता सूर्य हैं। ये इस समस्त जगत्के नेत्र हैं। इन्हींसे दिनका सृजन होता है। इनसे भी अधिक निरन्तर रहनेवाला कोई भी देवता नहीं है। इन्हींसे यह जगत् उत्पन्न हुआ है और अन्त समयमें इन्हींमें लयको प्राप्त होता है। कृतादि लक्षणवाला यह काल भी दिवाकर ही कहा गया है। जितने भी ग्रह, नक्षत्र, योग, राशियाँ, करण, आदित्य-गण, वसु-गण, रुद्र, अश्विनीकुमार, वायु, अग्नि, शक्र, प्रजापति, समस्त भूर्भुवः-स्वः आदि लोक, सम्पूर्ण नग, नाग, नदियाँ, समुद्र और समस्त भूतोंका समुदाय है—इन सभीके हेतु दिवाकर ही हैं। इन्हींकी इच्छासे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है। इन्हींसे यह जगत् स्थित रहता, अपने अर्थमें प्रवृत्त होता तथा चेष्टाशील होता हुआ दिखलायी पड़ता है। इनके उदय होनेपर सभीका उदय होता है और अस्त होनेपर सब अस्तङ्गत हो जाते हैं। जब ये अदृश्य होते हैं तो फिर कुछ भी यहाँ नहीं दीख पड़ता। तात्पर्य यह है कि इनसे श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है, न हुआ है और न भविष्यमें होगा ही। अतः समस्त वेदोंमें 'परमात्मा' नामसे ये पुकारे जाते हैं। इतिहास और पुराणोंमें इन्हें अन्तरात्मा इस नामसे गाया जाता है। ये बाह्य आत्मा, सुषुम्णास्थ, स्वप्नस्थ और जाग्रत् स्थितिवाले होकर रहते हैं। इस प्रकार ये भगवान् सूर्य आर्यदेवता हैं। ये

अजन्मा हैं, फिर भी एक जिज्ञासा अन्तस्तलको उत्प्रेरित करती रहती है—उनका जन्म कैसे हुआ, कहाँ हुआ और किसके द्वारा हुआ। यह बात ठीक है कि वे परमात्मा हैं तो उनका जन्म कैसा! परन्तु उनका अवतार तो होता ही है। गीताकी पंक्तियाँ साक्षी हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
(४।७)

तो उनका क्या अवतार हुआ! उन्होंने क्या जन्म ग्रहण किया! 'हाँ और नहीं' के ऊहापोहमें हमें प्राचीन साहित्यकी ओर जाना आवश्यक है। अतः आगे चलें। ब्रह्मपुराणमें कहा गया है—

मानसं वाचिकं वापि कायजं यच्च दुष्कृतम्।
सर्वं सूर्यप्रसादेन तदशेषं व्यपोहति॥

अर्थात् मनुष्यके मानसिक, वाचिक अथवा शारीरिक जो भी पाप होते हैं, वे सब भगवान् सूर्यकी कृपासे निःशेष नष्ट हो जाते हैं। भगवान् भुवन-भास्करकी जो आराधना करता है, उसे मनोवाञ्छित फल प्राप्त होते हैं।

इतिहासप्रसिद्ध देवासुरसंग्राममें दैत्य-दानवोंने मिलकर देवताओंको हरा दिया। तबसे देवता मुँह छिपाये अपनी प्रतिष्ठा रखनेके लिये सतत प्रयत्नशील थे। देवताओंकी माँ अदिति प्रजापति दक्षकी कन्या थीं। उनका विवाह महर्षि कश्यपसे हुआ था। इस हारसे अत्यन्त दुःखी होकर उन्होंने सूर्यकी उपासना आरम्भ की। सोचा, भगवान् सूर्य भक्तोंको असीम फल देते हैं। ब्रह्मपुराणमें कहा गया है—

एकाहेनापि यद्भानोः पूजायाः प्राप्यते फलम्।
यथोक्तदक्षिणैर्विप्रैर्न तत् क्रतुशतैरपि॥
(ब्रह्मपुराण २९।६१)

अर्थात् करुणासिन्धु भगवान् सूर्यदेव तो एक दिनके पूजनसे वह फल देते हैं, जो शास्त्रोक्त दक्षिणासे युक्त सैकड़ों यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी नहीं मिल सकता। ...

माता अदिति भगवान् सूर्यकी निरन्तर आराधना करने लगीं—'भगवन्! आप मुझपर प्रसन्न हों। गो(पते! स्वामिन्)! मैं आपको भलीभाँति देख नहीं ... दिवाकर! आप ऐसी कृपा करें, जिससे ... स्वरूपका सम्यक् दर्शन हो सके। भक्तों... करनेवाले प्रभो! मेरे पुत्र आपके भक्त हैं। आप ... कृपा करें। प्रभो! मेरे पुत्रोंका राज्य एवं य... एवं दानवोंने छीन लिया है। आप अपने ... गर्भद्वारा प्रकट होकर पुत्रोंकी रक्षा क...'

भगवान् सूर्य प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा—'... तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। मैं अपने हजारवें ... तुम्हारे उदरसे प्रकट होकर पुत्रोंकी रक्षा क...' इसके पश्चात् भगवान् भास्कर अन्तर्धान हो गये।

माता अदिति विश्वस्त होकर भगवान् ... आराधनामें तल्लीन हो यम-नियमसे रहने लगीं। क... इस समाचारको पाकर अत्यन्त प्रफुल्लित हुए ... समय पाकर भगवान् सूर्यका जन्म अदितिके गर्भसे हुआ। इस अवतारको भारतीय साहित्यमें मार्तण्डके ... पुकारा जाता है। देवतागण भगवान् सूर्यको ... रूपमें प्राप्तकर बहुत ही प्रसन्न हुए। अग्निपुरा... चर्चा है कि भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजी... जन्म हुआ। ब्रह्माजीके पुत्रका नाम मरीचि है। मरीचि... महर्षि कश्यपका जन्म हुआ। ये ही महर्षि कश्यप सूर्य... पिता हैं।

सूर्यके युवासम्पन्न होनेपर उनका विवाह-संस्कार हुआ। उन्होंने क्रमसे तीन विवाह किये। संज्ञा, राज्ञी और प्रभा—उनकी ये तीन धर्मपत्नियाँ हैं। राज्ञी रैवतकी पुत्री है। इनसे रेवन्त नामका पुत्र हुआ। प्रभासे सूर्यको ... पुत्र ... । इसमें संज्ञाकी कहानी ... प्रस्तुत ... सामने

...शिल्पाचार्य विश्वकर्माकी पुत्रीका नाम संज्ञा था। ...का परिणय भगवान् सूर्यसे हुआ। संज्ञाके गर्भसे ...स्वत मनुका जन्म हुआ। उन्हींसे सूर्यको जुड़वी ...—यम और यमुना भी प्राप्त हुई। कहते हैं देवशिल्पी ...कर्माकी पुत्री संज्ञा सूर्यके तेजको सहन करनेमें अपनेको ...समर्थ पा रही थी। अतः वे एक दिन मनके समान ...वाली घोड़ीका रूप धारण कर उत्तरकुरु (हरियाणा)में ...गयीं। जाते समय उसने सूर्यके घरमें अपनी ...तेच्छाया प्रतिष्ठापित कर दी। सूर्यको यह रहस्य ज्ञात ...हीं हो पाया। अतः प्रतिच्छायासे भी सूर्यको पुत्र ...सावर्णिमनु और शनि तथा कन्या तपती और विष्टि ...नामक संतानें प्राप्त हुईं। इन बालकोंपर सूर्यका अगाध प्रेम ...था। किसीको भी यह रहस्य मालूम नहीं हुआ कि इन बच्चोंकी माँ एक नहीं, दो हैं। पर विधाताके विधानको तो देखें; एक दिन छायाके विषमतापूर्ण व्यवहारका भण्डाफोड़ हो गया। संज्ञाके पुत्रोंने शिकायत की। अतः भगवान् भास्कर क्रोधसे तमतमा उठे। उन्होंने कहा—'भामिनि! अपने पुत्रोंके प्रति तुम्हारा यह व्यवहार उचित नहीं है।' पर इससे क्या होता। प्रतिच्छाया संज्ञा पुत्रोंके साथ अपने व्यवहारमें कोई परिवर्तन नहीं कर पायी। तब विवश होकर संज्ञापुत्र यमराजने बात स्पष्ट कर दी, कहा—'तात! यह हम लोगोंकी माता नहीं है। इसका व्यवहार हमलोगोंके साथ विमाताके समान है; क्योंकि यह तपती और शनिके प्रति विशेष प्यार करती है।' फिर तो गृहकलह छिड़ गया। पति-पत्नी दोनोंने क्रुद्ध होकर यमको शाप दे दिया। अपने शापवाक्योंसे जो किया, वह जगत्प्रसिद्ध यमराज और शनिके द्वारा हमें प्राप्त है। तब माता छायाने यमको शाप दे दिया—'तुम शीघ्र ही प्रेतोंके राजा होओगे।' भगवान् सूर्य इस शापसे दुःखित हुए। अतः उन्होंने अपने तेजोबलसे इसका सुधार किया, जिसके बलपर आज यम यमराजके रूपमें पाप-पुण्यका निर्णय करते हैं और स्वर्गमें उनकी प्रतिष्ठा है। साथ ही सूर्यका छायाके प्रति क्रोध भी शान्त नहीं हुआ प्रतिशोधकी भावनासे छायाके पुत्र शनिको उन्होंने शाप दिया—'पुत्र! माताके दोषसे तुम्हारी दृष्टिमें क्रूरता भरी रहेगी।' यही कारण है कि शनिके कोपभाजन होनेसे प्रायः हमारा अहित होता रहता है।

अब भगवान् सूर्य ध्यानावस्थित होकर संज्ञाका पता लगानेका प्रयत्न करने लगे। ध्यानावस्थामें उन्होंने देखा—'संज्ञा उत्तरकुरुदेश (हरियाणा)में घोड़ीका रूप बनाकर विचरण कर रही है।' अतः तत्काल उन्होंने अश्वका रूप धारण कर संज्ञाका साहचर्य प्राप्त किया। कहते हैं—संज्ञाके गर्भमें आत्म-विजयी प्राण और अपान पहलेसे ही विद्यमान थे। फिर तो समय पाकर वे सूर्यदेवके तेजसे मूर्तिमान् हो उठे। इस प्रकार घोड़ी-रूपधारी विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञासे दो पुरुष-रत्नकी उत्पत्ति हुई। यही दो पुरुष-रत्न अश्विनीकुमारके नामसे विख्यात हैं। बात यहीं समाप्त नहीं होती है। संज्ञा सूर्यकी पराशक्ति है, पर सूर्यके तेजको सहन करनेमें वह अपनेको बराबर असमर्थ पाती रही। तदनन्तर पिता विश्वकर्माने सूर्य-देवके तेजका हरण किया, तब वहीं सूर्य और संज्ञा—ये दोनों एक साथ रहने लगे। इस प्रकार सब मिलाकर भगवान् सूर्यके दस पुत्र और तीन पुत्रियाँ हुईं।

अब सूर्य-पुत्रोंके कुटुम्बका वृत्तान्त आगे प्रस्तुत है—

वैवस्वत मनुके दस पुत्र हुए। उनके नाम इस प्रकार हैं—इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नृग दिष्ट, करूष और पृषध्र। ये सभी पिताके समान तेजस्वी और बलशाली थे। मनुकी इला नामकी एक कन्या थी। इलाका विवाह बुधसे हुआ। इन्हींसे पुरूरवाका जन्म हुआ। इसके बाद इलाने अपनेको पुरुष-रूपमें परिणत कर लिया। पुरुषरूपमें इलाका नाम सुद्युम्न हुआ। सुद्युम्नको तीन बलशाली पुत्र हुए—उत्कल, जय और विनताश्व।

नाभागसे परम वैष्णव अम्बरीषका जन्म हुआ। भृगुसे भार्गव वंशका विस्तार हुआ है। शर्यातिको सुकन्या और आनर्त नामकी संतानें प्राप्त हुईं।

इन दस पुत्रोंमें इक्ष्वाकुकी वंशपरम्परा ही पृथ्वीपर विद्यमान है। शेष नौ पुत्रोंकी कहानी एक या दो पीढ़ियोंके बाद समाप्त हो गयी। इक्ष्वाकु वंशको यहाँ संक्षिप्तमें प्रस्तुत किया जा रहा है।

इक्ष्वाकुके पुत्र विकुक्षि थे। ये कुछ समयतक देवताओंके राज्यपर आधिपत्य जमाये रहे। इनके पुत्रका नाम ककुत्स्थ था। ककुत्स्थसे पृथु, पृथुसे युवनाश्व और युवनाश्वसे श्रावन्तक हुए। इसीने श्रावन्तक नामकी नगरी बसायी। श्रावन्तकसे बृहदश्व और बृहदश्वसे कुवलाश्व हुए। इनका दूसरा नाम धुन्धुमार भी है; क्योंकि इन्होंने धुन्धुमार नामके दैत्यका वध किया था। इनके तीन पुत्र हुए—दृढाश्व, दण्ड और कपिल। दृढाश्वसे हर्यश्व और प्रमोदकका जन्म हुआ। हर्यश्वसे निकुम्भ और निकुम्भसे संहताश्वकी उत्पत्ति हुई। संहताश्वके दो पुत्र हुए—अकृशाश्व और रणाश्व। रणाश्वके पुत्रका नाम युवनाश्व था। युवनाश्वके पुत्र राजा मान्धाता थे। मान्धाताके दो पुत्र-रत्न प्राप्त हुए—पुरुकुत्स और मुचुकुन्द।

पुरुकुत्ससे त्रसदस्युका जन्म हुआ। इनका दूसरा नाम सम्भूत था। इनके पुत्रका नाम सुधन्वा था। सुधन्वासे त्रिधन्वा और त्रिधन्वासे तरुण हुए। तरुणसे सत्यव्रत और सत्यव्रतसे दानवीर महापराक्रमशाली हरिश्चन्द्रका जन्म हुआ। हरिश्चन्द्रसे रोहिताश्व, रोहिताश्वसे वृक, वृकसे बाहु और बाहुसे राजा सगरकी उत्पत्ति हुई। राजा सगरकी दो पत्नियाँ थीं। एकका नाम प्रभा और दूसरीका नाम भानुमती था। प्रभाको और्व मुनिकी कृपासे साठ हजार पुत्र हुए और भानुमतीसे राजा सगरके द्वारा असमंजस नामका एक पुत्र हुआ। असमंजसके पुत्र अंशुमान और अंशुमानके राजा दिलीप हुए। राजा दिलीपके पुत्र भगीरथ हुए। ये राजा सगरके साठ हजार पुत्रोंके उद्धारके लिये धरतीपर लाये। कहते हैं, राजा सगरके साठ हजार पुत्र महर्षि कपिलके शापसे पृथ्वी खोदते समय भस्म हो गये थे।

भगीरथसे नाभाग, नाभागसे अम्बरीष और अम्बरीषसे सिंधुद्वीपका जन्म हुआ। सिंधुद्वीपके श्रुतायु, श्रुतायुके ऋतुपर्ण, ऋतुपर्णके कल्माषपाद, कल्माषपादके [illegible] और सर्वकर्माके अनरण्य हुए। अनरण्यके निघ्न, [illegible] दिलीप, दिलीपके रघु, रघुसे अज और अजसे सम्राट् दशरथका जन्म हुआ।

दशरथकी तीन पत्नियाँ थीं। कौसल्या, [illegible] और सुमित्रा। इनके चार पुत्र हुए—राम, भ[illegible] लक्ष्मण और शत्रुघ्न। रामने रावणका वध किया। वे अयोध्याके सर्वश्रेष्ठ राजा हुए। महर्षि वाल्मीकि तथा हिंदीके प्रसिद्ध कवि तुलसीदासजीने इन्हींके चरित्रका वर्णन अपनी-अपनी रामायणमें किया है। श्रीरामका [illegible] जनकनन्दिनी जानकीसे हुआ। इनसे रामको दो [illegible] लव और कुश प्राप्त हुए। भरतको तक्ष और पु[illegible] लक्ष्मणको अंगद और चन्द्रकेतु, शत्रुघ्नको सुबाहु [illegible] शत्रुघाती प्राप्त हुए।

इसके बाद की वंश-परम्परा निम्न प्रकार है—कुश[illegible] अतिथिका जन्म हुआ। अतिथिसे निषध और निषध[illegible] नलकी उत्पत्ति हुई (ये दमयन्तीके पति नहीं हैं)। नलसे नभ, नभसे पुण्डरीक, पुण्डरीकसे सुधन्वा, सुधन्वा-से देवानीक, देवानीकसे अहिनाश्व और अहिनाश्वसे सहस्राश्व हुए। सहस्राश्वके पुत्रका नाम चन्द्रलोक था। चन्द्रलोक-से तारापीड, तारापीडसे चन्द्रगिरि और चन्द्रगिरिसे भानुरथ उत्पन्न हुए। भानुरथके पुत्रका नाम श्रुतायु था। इस प्रकार इस वंशका इतिहास बहुत ही बड़ा है। इसमें आज [illegible] समाप्त हो गये हैं।

(प्रस्तुत वंशावली अग्निपुराण, भविष्यपुराण [illegible] अङ्क,' 'अग्नि-धर्मसंहिता और [illegible] कल्याणके 'हनुमान-[illegible]

सूर्यसे सृष्टिका वैदिक विज्ञान

(लेखक—वेदान्वेषक ऋषि श्रीरणछोड़दासजी 'उद्धव')

स्वयम्भू प्रजापति इस विश्वप्रवृत्तिके कारण ही 'विश्वकर्मा' कहलाये; जिनकी यह पञ्चपर्वा विश्वविद्या 'त्रिधामविद्या' कहलायी है। स्वयम्भू और परमेष्ठी —इन दो पर्वोंकी समष्टि १—'परमधाम' है; २—सूर्य 'मध्यम धाम' और चन्द्रमा एवं भूमिपिण्ड—इन दोनोंका समुच्चय ३—'अवमधाम' है । तीन धामोंमें एवं पाँच पर्वोंसे समन्वित यह विश्वविद्या विश्वकर्मा स्वयम्भू—प्रजापतिकी 'महिमा-विद्या' भी मानी गयी है। वेदमें कहा है—

> या ते धामानि परमाणि यावमा
> या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा।
> शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः
> स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥
> (ऋक्० १० । ८१ । ५)

अपने सर्वस्व आहुतिवाली सुप्रसिद्ध 'सर्वहुतयज्ञ' की स्वरूपसिद्धिके लिये यही अपने आकर्षणसे स्वयं 'यजस्व तन्वं वृधानः' रूपसे सम्पूर्ण प्राणोंका आवाहन करता है।

तीनों धामोंमें मध्यम धाम 'रविधाम' मानवधर्मके बहुत अनुकूल होता है। वेदमहार्णव स्व० श्रीमधुसूदनजी ओझाने 'धर्मपरीक्षा-पञ्जिका'में सिद्ध किया है कि—

'नियत्यानुगृहीतो मध्यमो भावो धर्मो न काष्ठानुगतो भावः।'

'नियतियुक्त मध्यभाव धर्म है, अतिभाव नहीं।'

'सूर्य तो स्थावर-जङ्गम जगत्के आत्मा हैं' इन्हींसे सबकी उत्पत्ति हुई है—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'
(ऋक्० १ । ११५ । १, यजु० ७ । ४२)

रविका सम्बन्ध वैश्वानरसे है। वैश्वानर दस कलावाला होनेके कारण विराट्पुरुष है। सम्पूर्ण 'पुरुषसूक्त' केवल इसी वैश्वानरवाले विराट्पुरुषका निरूपण करता है । इसी वैश्वानरकी त्रैलोक्य-व्यापकता बतलाते हुए वेदमहर्षि पुरुषसूक्तमें कहते हैं—

> सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
> स भूमिं सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥
> (यजु० ३१ । १)

इस पुरुषके हजारों मस्तक हैं, हजारों आँखें हैं, हजारों पैर हैं। यह भूमिका सब ओरसे स्पर्श (व्याप्त) कर (अध्यात्ममें) दशाङ्गुलका अतिक्रमण कर (दस अङ्गुलवाले प्रादेशमात्र) अर्थात् अगूठेसे तर्जनीतककी लम्बाईके स्थानमें स्थित हो गया है।'

सूर्य स्थावर-जङ्गम सृष्टिकी आत्मा है—
यदि ज्ञानप्रधान सूर्यका तेजोमय वीर्य बहुत थोड़ी मात्रामें पृथ्वीके वैश्वानर अग्निमें आहुत होता है, तो अर्थप्रधान 'अचेतनसृष्टि' होती है । इस सृष्टिमें दोनों ही भाग हैं, परंतु विशेषता पृथ्वीके भागकी ही है। इसकी प्रबलताके कारण अल्पमात्रामें आनेवाला सूर्यका तेज दब जाता है। इस सृष्टिमें जैसे सूर्यका ज्ञानभाग दबा हुआ है, उसी प्रकार अन्तरिक्षके वायुका भाग भी दबा हुआ ही है । इसीलिये अचेतनमें अपने स्वरूपकी वृद्धि नहीं है। पहले स्वरूपसे आगे बढ़ना 'व्यापार' है; व्यापार क्रिया है, किया अन्तरिक्षके वायुका धर्म है; उसका इसमें अभाव है, अतः यह आरम्भमें जैसाका तैसा ही रहता है। काँच, अभ्रक (भोडल), मोती, हीरा, नीलम, माणिक्य (लाल), पुखराज, लोहा, ताँबा, चाँदी, सोना, हरताल, गन्धक और हिङ्गुल

...रूपः—अमूल उभयतः परिच्छिन्नोऽन्तरिक्ष-...ति। (शतपथ ब्रा० २।१।११)

...सरी सृष्टिकी प्रथम अवस्था कृमि है। यहाँसे ...वेदकी चेतनाके विकासका प्रारम्भ है। सूर्यका ...अधिक होनेके कारण अन्तःसंज्ञ जीव भूपिण्डके ...से अलग हो गये हैं। आकर्षणसे अलग होकर ...लगे और चलने लगे हैं। पृथ्वीका बल ...की अपेक्षा कम हो गया है। यह ससंज्ञोंमें पहली ...सृष्टि' है।

... सर्वज्ञ इन्द्र (सूर्य) प्रज्ञामय (ज्ञानमय) हैं। ...मयपुरुषका विकास इसी भूमिमें होता है। सूर्य ...ज्ञानघन हैं। ये ही मघवा—इन्द्र हैं। इसी स्थानपर ...स ज्ञानमय पुरुषका विकास है, अतएव ये सूर्यके ...न्द्र 'प्रज्ञात्मक' कहलाते हैं। इसी अभिप्रायसे इनके ...लिये—'*प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा*' कहा जाता है। इसी विज्ञानको लक्ष्यमें रखकर केनोपनिषद्में कहा गया है कि 'अग्निके सामने यक्षने तृण रक्खा, परंतु अग्नि उसे न जला सकी, वायु उड़ा नहीं सकी, किंतु जब इन्द्र आये तो तृण और यक्ष दोनों अन्तर्लीन हो गये।' इसका तात्पर्य यही है कि वह तृण ज्ञानमय था, यक्ष स्वयं ज्ञानब्रह्म था। अर्थप्रधान अग्नि और क्रियाप्रधान वायु—इन दोनोंकी अपेक्षा यक्ष-ज्ञान विजातीय था, इसलिये इन दोनोंका उसमें लय नहीं हुआ, परंतु इन्द्र ज्ञानमय थे, अतएव सजातीयताके कारण यह ज्ञानकला उस महाज्ञानके समुद्रमें विलीन हो गयी।

सारांश यही है कि सूर्यका प्राज्ञ इन्द्र अव्ययके ज्ञानसे युक्त है। इन इन्द्रको आधार बनाकर ही अव्यय आत्मा जीवरूपमें परिणत होता है, अतएव सूर्यको ही स्थावर-जङ्गमकी आत्मा बतलाया जाता है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।
(ऋ० १।११५।१; य० ७।४२)

यह इन्द्रमय अव्यय आत्मा एक प्रकारका सूर्य है। इसका प्रतिबिम्ब केवल अप् (जल), वायु और सोम (विरल जल) पर ही पड़ता है।

वायुरापश्चन्द्रमा इत्येते भृगवः' (गोपथ पू० २।९)—के अनुसार यही परमेष्ठी है। ईश्वरके शरीरका यही परमेष्ठी 'महान्' है। इसीपर उस चेतनमय सर्वज्ञ-का प्रतिबिम्ब पड़ता है, महान् ही उसे अपने गर्भमें धारण करता है, अतएव इसके लिये—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
(गीता १४।३)

—इत्यादि कहा जाता है। महान् उसकी योनि है। वह योनि अप्, वायु और सोमके भेदसे तीन प्रकारकी है, अतएव तीन स्थानोंपर ही चेतनाका प्रतिबिम्ब पड़ता है। यही कारण है कि चैतन्यसृष्टि सम्पूर्ण विश्वमें आप्या, वायव्या एवं सौम्याके भेदसे तीन ही प्रकारकी होती है। जलमें रहनेवाले मत्स्य (मछली) मगर, केंकड़ा, तिमिङ्गल आदि सब जल-जन्तु आप्यजीव हैं। पानी ही इनकी आत्मा है। बिना पानीके इनका चैतन्य कभी स्थित नहीं रह सकता। कृमि, कीट, पशु, पक्षी और मनुष्य—ये पाँचों जीव वायव्य हैं। वायु ही इनकी आत्मा है। चन्द्रमामें रहनेवाले आठ प्रकारके देवता सौम्य हैं। ये ही जीव हमारे इस प्रकरणके मुख्य पात्र हैं।

हमारा मस्तक सौरतेजके आधिक्यसे सीधा खड़ा हुआ है। इस मनुष्य-सृष्टिके मध्यमें एक 'अर्द्धमनुष्य'की सृष्टि और होती है; उसी सृष्टिसे सृष्ट 'वानर' नामसे प्रसिद्ध है। इसमें दोनोंके धर्म हैं। मनुष्य हाथोंसे खाता है और श्रोणिभागसे बैठता है। पशु मुखसे खाता है और पैरोंसे चलता है। वानरमें दोनों धर्म हैं। आप अपने हाथमें चने रखकर बंदरके सामने खड़े हो जाइये, बंदर मनुष्योंकी भाँति हाथसे उठाकर चने खा जायगा

(पारा) आदि सम्पूर्ण जड़ पदार्थ अग्निप्रधान हैं। वैश्वानर— अग्निमय है।

जगत् अग्नीषोमात्मक है। जैसे अङ्गिराप्रधान आग्नेयप्राण प्राण कहा जाता है, वैसे ही भृगुप्रधान सौम्यप्राण 'रयि' कहलाता है। प्राण अग्नि है और रयि सोम है। इसी अग्नीषोमात्मक प्राण-रयिसे विश्वका निर्माण हुआ है। इनमें सोमरूप रयि ही आगे-आगे होनेवाले संकोचसे मूर्च्छित होती हुई मूर्ति (पिण्ड) बनती है। मूर्च्छित सोम ही 'मूर्ति' है। मूर्ति अर्थ-प्रधाना है, द्रव्यप्रधाना है। इसका सम्बन्ध वैश्वानरको गर्भमें रखनेवाले सोमसे है। सोमका सम्बन्ध विष्णुसे है, अतएव इस अर्थमयी सृष्टिको अर्थात् 'धातुसृष्टि'को हम 'विष्णु' देवतासे सम्बद्ध मानते हैं। यही अचेतनसृष्टि, असंज्ञ, एकात्मक आदि नामोंसे प्रसिद्ध है। वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ—इन तीनोंमेंसे इनमें केवल वाक्वाला 'वैश्वानरात्मा' ही प्रधानरूपसे रहता है।

दूसरी अर्द्धचेतनसृष्टि है। सूर्यका तेज कुछ अधिक आया और अन्तरिक्षकी वायुका भाग भी आया, दोनोंके आगमनसे सृष्टिमें कुछ अधिक विकास हुआ। इन दोनोंसे अर्द्धचेतनसृष्टि हुई। स्तम्भ (पुष्कर-पर्ण-पानीका पता शैवाल आदि) कुश, कास, बेलड़ियाँ, दूर्वादि छोटे तृण और केला, सुपारी, नारियल, छुहारा, ताड़ आदि बड़े तृणवर्ग एवं वृक्षादि सब अर्द्धचेतनसृष्टिके अन्तर्भूत हैं। इसमें अचेतनसृष्टिकी अपेक्षा यद्यपि सूर्यके ज्ञानकी अधिक सत्ता बतलायी है, परंतु इसमें आनेवाला सूर्यका भाग अन्तरिक्षकी वायुसे दब जाता है, इसलिये इसमें भी ज्ञानकी मात्राका पूर्ण विकास होने नहीं पाता। इनमें क्रियामय वायु है, इसलिये ये बढ़ते हैं एवं पृथ्वीका आकर्षण भी पूर्ण मात्रामें है, अतएव ये पृथ्वीसे पृथक् नहीं हो सकते। वहीं बँधे रहकर ऊपर बढ़ते हैं। इस प्रकार इनमें वैश्वानर और तैजस [illegible] इन दो भूतात्माओंकी सत्ता सिद्ध है। सुषुप्तावस्थामें हममें जो ज्ञान है, वही इनमें है। इनमें केवल चमड़ीका विकास है। इस [illegible] ही ये अनुभव करते हैं।

तीसरी चेतनसृष्टि है। कृमि, कीट, [illegible] मनुष्य, राक्षस, पिशाच, यक्ष, गन्धर्व आदि [illegible] अन्तर्भाव है। इसमें सूर्यके सर्वज्ञभागका विकास [illegible] है। इस सृष्टिमें वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ—ये तीनों [illegible] हैं। दूसरे शब्दोंमें—इनमें ज्ञान, क्रिया और [illegible] ये तीनों विकसित हैं। ज्ञानमय प्रज्ञात्माके [illegible] चैतन्य जाग्रत् हो जाता है। इसके [illegible] इन्द्रियोंका विकास हो जाता है और [illegible] जाती है। यही जीव-सृष्टि ससंज्ञ, आत्मावाली आदि नामोंसे प्रसिद्ध है। [illegible] धातुसृष्टि है, दूसरी सृष्टि मूलसृष्टि है [illegible] सृष्टि जीवसृष्टि है।

वृक्षादि मूलसृष्टिके पैर नहीं हैं, वे स्वयं [illegible] हैं। पाद ही उनके पालक हैं। उन्हींके द्वारा रसका पानकर वे अपनी स्वरूपकी सत्ता [illegible] 'पादप' नामसे प्रसिद्ध हो रहे हैं। इस मूल [illegible] भूपिण्डको नहीं छोड़ा है, अतएव इसे 'अपाद' कहते हैं। यहाँसे ऊपर (कृमिसे प्रारम्भकर म[illegible] तक) की सृष्टि भूतलके मूलसे अलग हो जाती है। सृष्टिके पैरवाली होनेके कारण हम इसे 'सपाद' कहते हैं। मनुष्योंके ऊपर आठ प्रकारकी देवसृष्टि है, वह भूतलसे पृथक् है, इसलिये इसे हम 'अपाद' कह सकते हैं। प्रारम्भमें अपाद है, मध्यमें सपाद है, अन्तमें अपाद है और [illegible] है, वृक्षादि सृष्टिका मूलभूमिमें बँधा रहता है, अतएव यह सृष्टि 'मूलसृष्टि' कहलाती है। पर [illegible] मध्यकी सृष्टि बन्धनसे अलग [illegible]

—प्रदर्शनद्वारा प्रदर्शितोक्त—इस जगत्में तेजस्तत्त्व सर्वत्र अनुस्यूत है। कहीं उसकी उपलब्धि न्यून है तो कहीं अधिक। सूर्य-मण्डल तो साक्षात् तेजोमय ही है। चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि आदि ग्रह और हमारी यह पृथ्वी भी सूर्यकी परिक्रमामें सतत निरत है।

भास्करालोकन—उदय होते हुए और अस्त होते हुए अरुणवर्ण सूर्यमण्डलका दर्शन सुगमतासे किया जा सकता है। इन दोनों सन्ध्याओंसे अतिरिक्त दशामें सूर्यकी ओर देखते रहनेसे नेत्रोंमें विकारकी आशङ्का रहती है। इसीलिये भास्करालोकन वर्जित है—

भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादि वर्जयेत्।
(याज्ञवल्क्यस्मृति १। २। ३३)

आदित्यमण्डलके अधिष्ठाता चेतन देवता—आदित्य-मण्डलके अभिमानी देवता चेतन हैं। वे ही सूर्य हैं, जिन्हें भक्तजन अपनी प्रणामाञ्जलियाँ समर्पित किया करते हैं। भौतिक विज्ञानके विद्वान्की दृष्टिमें आदित्य-मण्डल केवल तेजःपुञ्ज है, किंतु वेदानुयायी सनातनधर्मकी मान्यताके अनुसार आदित्यके अभिमानी देवता सूर्य चेतन हैं—

ज्योतिरादिविषया अपि आदित्यादयो देवतावचनाः शब्दाश्चेतनावन्तमैश्वर्याद्युपेतं तं तं देवतात्मानं समर्पयन्ति।

अस्ति ह्यैश्वर्ययोगाद् देवतानां ज्योतिराद्यात्मभिश्चावस्थातुं यथेष्टं च तं तं विग्रहं ग्रहीतुं सामर्थ्यम्।
(ब्रह्मसूत्र १। ३। ३३ पर शाङ्करभाष्य)

विग्रहवान् भगवान् सूर्य—श्रीसूर्यदेव कश्यप और अदितिके पुत्र हैं। 'अदिति' माताके पुत्र होनेके कारण ये 'आदित्य' कहलाते हैं। इनके विग्रहका वर्ण बन्धूक (दुपहरिया) पुष्पके समान है। ये द्विभुज हैं और पद्म धारण किये रहते हैं। इनकी पत्नीका नाम विवस्वती है—

विवस्वांस्तु सुरे सूर्ये तत्स्त्रियां विवस्वती।
(अमरकोशकी व्याख्या सुधा टीकामें मेदिनीसे उद्धृत)

इनकी संज्ञा-नामिका पत्नीके पुत्र हैं धर्मराज यम और पुत्री हैं यमुना देवी तथा छाया-नामिका पत्नीके पुत्र हैं शनिदेव। माठर, पिङ्गल और दण्ड इनके सेवक हैं, तथा गरुडजीके भाई अरुण इनके सारथि हैं। इनके रथको सात घोड़े चलाते हैं जिसमें केवल एक पहिया है।

याज्ञवल्क्य-स्मृति (१। १२। २९७-३०२) के अनुसार सूर्यदेवकी प्रतिमा ताँबेकी बनानी चाहिये और इनकी आराधनाका प्रधान मन्त्र 'आ कृष्णेन रजसा वर्तमानः'—इत्यादि है। इनकी प्रसन्नताके लिये किये जानेवाले हवनमें आककी समिधाका विधान है।

माणिक्य धारण करनेसे ये शुभ फल प्रदान करते हैं—'माणिक्यं तरणेः' (—जातकाभरण, स्मृतिकौस्तुभ)।

श्रीसूर्यदेवसे ही महर्षि याज्ञवल्क्यने बृहदारण्यक उपनिषद् (ज्ञान) प्राप्त किया था—

ज्ञेयं चारण्यकमहं यदादित्यादवाप्तवान्॥
(याज्ञवल्क्यस्मृति ३। ४। ११०)

तथा पवननन्दन आञ्जनेय श्रीरामदूत हनुमान्जीने भी इनसे शिक्षा प्राप्त की थी।

सूर्यका उपस्थान—वैदिक मान्यता जनताके लिये विहित सन्ध्योपासनाका एक अपरिहार्य अङ्ग है—सूर्योपस्थान, जैसा कि महर्षि याज्ञवल्क्यने दैनिक कर्मोंमें गिनाया है—

स्नानमब्दैवतैर्मन्त्रैर्मार्जनं प्राणसंयमः।
सूर्यस्य चाप्युपस्थानं गायत्र्याः प्रत्यहं जपः॥
(याज्ञवल्क्यस्मृति १। २। २२)

यजुर्वेदीय माध्यन्दिन शाखाका अनुसरण करनेवाले सन्ध्योपासक प्रतिदिन 'उद्वयं तमसस्परि स्वः' (२०। २१), उदु त्यं जातवेदसम्० (७। ४१), चित्रं देवानामुदगादनीकम्० (७। ४२) तथा तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्तात्० (३६। २४)—इन चार प्रतीकवाले मन्त्रोंसे सूर्यका उपस्थान किया करते हैं। चतुर्थ मन्त्रका उच्चारण करते समय उपस्थानके क्रममें कभी अन्न व्यवस्था भी रहती

रत्नप्रायमौलिः स्फुरदधररुचा रञ्जितश्चारुकेशो
भास्वान् यो दिव्यतेजाः करकमलयुतः स्वर्णवर्णः प्रभाभिः ।
विश्वाकाशावकाशो ग्रहगणसहितो भाति यश्चोदयाद्रौ
सर्वानन्दप्रदाता हरिहरनमितः पातु मां विश्वचक्षुः ॥

अर्थात् 'विश्वके द्रष्टा, सब प्रकारके सुखोंको देनेवाले, ... और हरसे आराधित वे श्रीसूर्यदेवता मेरी रक्षा करें— जिनका मुकुट चमचमाते हुए रत्नोंसे जड़ा हुआ है, जो ...ने अधरकी अरुणिम कान्तिसे संवलित हैं, जिनके केश ...कर्षक हैं, जो प्रकाशरूप हैं, जिनका तेज दिव्य है, ... अपने हाथोंमें कमल लिये हुए हैं, जो अपनी प्रभाके ...रण स्वर्ण वर्णवाले हैं, जो समस्त गगन-मण्डलको ...काशित करनेवाले हैं, जो चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति ...दि ग्रहोंके साथ रहते हैं और जो (प्रतिदिन प्रातःकालमें) उदयाचलपर किरणावलीका प्रसार किया करते हैं ।'

इस ध्यानके पश्चात् एक यन्त्रका और तदनन्तर सूर्य-मन्त्रका उद्धार किया गया है। फिर पूजा-विधि बताकर साम्बपुराणसे एक सौर-स्तोत्र, ब्रह्मयामलसे त्रैलोक्य-मङ्गल नामका कवच, श्रीवाल्मीकीय रामायणसे आदित्य-हृदय, शुक्लयजुर्वेदसे 'विभ्राट्' पदसे प्रारम्भ होनेवाला सूक्त, महाभारतीय वनपर्वसे सूर्याष्टोत्तरशतनाम-स्तोत्र और भविष्यपुराणके सप्तमीकल्पसे सूर्यसहस्रनामस्तोत्र दिये गये हैं। यह ग्रन्थ सौर-सम्प्रदायनिष्ठ भक्तजनोंके लिये परम उपादेय है।

गुणाश्रित नामावली—संस्कृत-साहित्यमें सूर्यदेवके अनेक पर्याय प्राप्त होते हैं। ये नाम देवताके विभिन्न गुणोंको प्रदर्शित करते हैं। अमरसिंहने अपने नाम लिङ्गानुशासन नामक कोष—(१ । ३ । २८—३१)में ऐसे सैंतीस नाम दिये हैं, जो अकारादिक्रमसे लिखे जानेपर ये हैं—अरुण, अर्क, अर्यमा, अहर्पति, अहस्कर, आदित्य, उष्णरश्मि, ग्रहपति, चित्रभानु, तपन, तरणि, त्विषांपति, दिवाकर, द्युमणि, द्वादशात्मा, प्रभाकर, पूषा, भानु, भास्कर, भास्वान्, मार्तण्ड, मित्र, मिहिर, रवि, ब्रध्न, विकर्तन, विभाकर, विभावसु, विरोचन, विवस्वान्, सप्ताश्व, सूर, सूर्य, सविता, सहस्रांशु, हंस और हरिदश्व।

सूर्यदेव प्रणम्य हैं, हम यहाँ उन्हें अपनी प्रणामाञ्जलि समर्पित करते हैं—

अरुण किरणके विकिरणसे जो जगतीके सब जीवोंको
जीवनका मधुर पीयूष पिलाकर जीवित प्रतिदिन रखते हैं।
हय-सप्तकयुत एक चक्रके स्यन्दनपर आसीन हुए
बालखिल्य मुनिगण-संस्तुत हो नभके मध्य विचरते हैं॥
भक्तजनोंके संस्तव सुनकर दया-आर्द्र-मन होकर जो
व्याधि-आधिको, रोग-शोकको संतत हरते रहते हैं।
हम उन सूर्यदेवके अतिशय मङ्गलमय पद-पद्मोंमें
नमन-कमलकी अञ्जलियोंको नित्य समर्पित करते हैं॥

सूर्यसहस्रनामकी फलश्रुति

धन्यं यशस्यमायुष्यं दुःखदुःस्वप्ननाशनम्।
बन्धमोक्षकरं चैव भानोर्नामानुकीर्तनात्॥
(भवि० पु० सप्तमीकल्प १२१)

जो भगवान् भानुके नामों- (सूर्यसहस्रनामस्तोत्र-) का प्रतिदिन अनुकीर्तन (पाठ) करते हैं वे लोकमें यशस्वी होकर धन्य हो जाते हैं और चिरायु प्राप्त करते हैं। सूर्यदेवके नामोंका पाठ करनेसे दुःख और दुःस्वप्न दूर होते हैं तथा बन्धनसे मुक्ति मिलती है।

है; वह कहता है—'हमलोग पूर्व दिशामें उदित होते हुए प्रकाशमान सूर्यदेवका प्रतिदिन सौ वर्षोतक ही नहीं, और भी अधिक वर्षोतक दर्शन करते रहें ।'

सूर्योपासनासे भोग और मोक्षका लाभ—वैदिक संहिताओंमें ऐसे अनेक सूक्त हैं जिनके देवता सूर्य हैं, अर्थात् जिनमें सूर्यदेवके अनुभावकी चर्चा की गयी है । एक मन्त्रमें इस प्रकार प्रार्थना है—

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् ।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥
(ऋग्वेद १ । ५० । ११)

शौनकने अपने बृहद्-देवता नामक ग्रन्थमें इस मन्त्रके विषयमें लिखा है कि—

उद्यन्नद्येति मन्त्रोऽयं सौरः पापप्रणाशनः ।
रोगघ्नश्च विषघ्नश्च भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥

अर्थात् 'उद्यन्नद्य०'—इत्यादि सूर्यदेवताका मन्त्र पापोंको नष्ट करनेवाला है । (इसके द्वारा सूर्यदेवकी प्रार्थना की जाय तो) यह रोगोंका नाश और विषोंका शमन कर देता है तथा सांसारिक भोग एवं मोक्ष प्रदान करता है । सूर्योपासनाके स्वास्थ्यप्रद प्रभावके कारण भागवतमें यह वचन उपलब्ध होता है कि **'आरोग्यं भास्करादिच्छेत् ।'**

सत्राजित्पर कृपा—प्राचीन कालमें इस धराधामके पुण्यात्मा महानुभावोंपर देवताओंका परम अनुग्रहशील व्यवहार होता था । उपस्थापित सूर्यदेवने श्रीकृष्णचन्द्रके श्वशुर सत्राजित्को द्वारकामें सागर-तीरपर स्वयं आकर स्यमन्तकमणि प्रदान की थी—

तस्योपतिष्ठतः सूर्यं विवस्वानग्रतः स्थितः ।
ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श नृपतिस्तदा ॥
प्रीतिमानथ तं दृष्ट्वा मुहूर्तं कृतवान् कथाम् ।
ततः स्यमन्तकमणिं दत्तवांस्तस्य भास्करः ॥
(हरिवंश० १ । ३८ । १६ । २२)

आदित्याभिमानी देवता और परमेश्वर—छान्दोग्योपनिषद्में एक स्थानपर यह कहा गया है कि आदित्य (मण्डल)में एक हिरण्मय पुरुष [illegible] उनके दोनों नेत्र कमलके समान (पुण्ड[illegible]

य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो [illegible] तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी [illegible]

इस आशयको स्पष्ट करनेके लिये [illegible] सूत्र लिखे हैं—

अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्' और [illegible]
(ब्रह्मसूत्र १ । [illegible])

इसपर शाङ्करभाष्यके ये वचन मननीय हैं—

'य एषोऽन्तरादित्ये—इति च श्रूयमाणः परमेश्वर एव, न संसारी ।...... अस्ति च शरीराभिमानिभ्यो जीवेभ्योऽन्य ईश्वरोऽन्तर्यामी आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद यस्यादित्यः शरीरं य आदित्यमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृत इति श्रुत्यन्तरे भेदव्यपदेशात् । तत्र हि आदित्यादन्तरो यमादित्यो न वेदेति वेदितुरादित्याद्विज्ञानात्मनोऽन्योऽन्तर्यामी निर्दिश्यते—।'

इसका भाव यह है कि प्राकृत पाञ्चभौतिक [illegible] आदित्यमण्डलमें जो उसके अभिमानी विज्ञानात्मा [illegible] चेतन देवता हैं, वे भी जिस परमेश्वरको नहीं जानते [illegible] 'य एषोऽन्तरादित्ये०'—आदि श्रुतिके द्वारा [illegible] पुण्डरीकाक्ष परमेश्वर हैं ।

सूर्य-तन्त्र—सूर्यदेवके उपासकोंने अपने उपास्य [illegible] सर्वोच्च माना है । इनका सम्प्रदाय 'सौर-सम्प्रदाय' [illegible] है । इस सम्प्रदायके सिद्धान्तोंका निरूपण पौराणिक [illegible] तान्त्रिक साहित्यके ग्रन्थोंमें उपलब्ध है । उदाहरण [illegible] भविष्यपुराणमें सूर्योपासनाकी प्रचुर चर्चा हुई है । इसी प्रकार श्रीसूर्यदेवकी उपासना-पद्धतिका निर्देशक [illegible] 'सूर्य-तन्त्र' नामक ग्रन्थ है । इसमें सर्वप्रथम उपास्य [illegible] ध्यानकी यह स्रग्धरा है—

सभी आराधनाओंके अन्तमें सूर्य-नमस्कारकी प्रक्रिया सर्वत्र प्रचलित है। ये सूर्यनमस्कार और सूर्यार्घ्य भी उन्हीं सूर्यतत्त्वोंकी व्यापकता प्रकट करते हैं। वस्तुतः सभी शुभाशुभ कर्मोंको सूर्यशक्तिमें समर्पित कर देना ही उपासनाका चरम लक्ष्य है।

सामान्य जलमें सभी तीर्थोंका आवाहन अंकुश-मुद्राद्वारा सूर्यशक्तिसे ही होता है। यथा—

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे।
तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर॥

इससे स्पष्ट है कि सूर्य-किरणें ही सभी तीर्थोंके उद्गमस्थान हैं। यहीं उनका उत्स है जो शतशः भूमण्डलपर व्याप्त है।

सूर्यको विष्णु या विष्णुतेज भी कहा जाता है। सूर्यके प्रणाम-मन्त्रमें यह स्पष्ट देखा जा सकता है। यथा—

'नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे...।'
यहाँ वेवेष्टि—व्याप्नोतीति विष्णुः—(विष्लृ-व्याप्तौ धातुसे निष्पादित है—विष्णु शब्द) व्याप्त अर्थात्—सूर्यः। अखिल ब्रह्माण्डमें जो अखण्डरूपसे व्याप्त हों वे ही 'विष्णु' हैं और वे प्रत्यक्ष विष्णु सूर्य ही हैं। वे ही विष्णुतेज हैं। पूजान्तमें **'अस्मिन् कर्मणि यद्वैगुण्यं जातं तद्दोषप्रशमनाय विष्णोः स्मरणमहं करिष्ये'**—इस वाक्यसे स्मरणपूर्वक सूर्यार्घ्य दिया जाता है। विष्णु और सूर्य एक हैं।

सर्वाधिक महिमा-गरिमा-शालिनी गायत्रीकी उपासना ही भारतीय जन-जीवनकी वह अखण्ड अशेष तेजस्विनी शक्ति है जिसकी उपासनासे मानव देवत्वको प्राप्त करता है एवं असाध्य साधन करता है। अतीत और अनागत कार्य उसके लिये हस्तामलकवत् हो जाते हैं। यही आराधना नवीन सृष्टिनिर्माणक्षम बनाती है। यह गायत्री ही वसिष्ठको महर्षि तथा भगवान् बनानेका कारण है। इसीने विश्वामित्रको ब्रह्मर्षि बना दिया।

ऐसे महामहिमशाली गायत्री-मन्त्रका सीधा सम्बन्ध सूर्य-शक्तिसे ही है। **'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि'**—इसमें उसी सविता (सूर्य)के अमोघ-शक्ति-संचयनकी प्रक्रिया है, जो सर्वसिद्धिदायिका है।

अब 'पितृलोक'की बातपर थोड़ा ध्यान दें। **'पा-रक्षणे'** धातुसे **'पाति—रक्षति यः सः पिता, पान्तीति पितरः—तेषां पितॄणां लोकः पितृलोकः'**—सिद्ध होता है। यह पितृलोक उन्हीं भगवान् सूर्यका लोक है, जो सभीके रक्षक हैं तथा वहाँ सभी पितरोंका समीकरण है। अतएव तर्पण और पिण्ड-दानादि सभी पितृकर्म सूर्य-शक्तिके द्वारा ही यथास्थान पहुँचते हैं। इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि रात्रिमें—सम्बद्ध भूभागके सूर्यादर्शनकालमें कोई पितृकर्म नहीं होते हैं। 'कुतुप' काल—मध्याह्नकालमें ही पिण्डदान आदिका विधान है। श्राद्धमें सपिण्डीकरण भी सूर्यास्तसे बहुत पहले ही करनेका नियम है। दैनिक तर्पण भी रात्रिमें या प्रातः अरुणोदयसे पहले नहीं किये जाते हैं। तात्पर्य यह कि सभी पितृ-कर्मोंका सम्बन्ध सीधे सूर्यतत्त्व—सूर्यशक्तिसे ही है।

कहा जाता है कि आधुनिक वैज्ञानिकोंका हाइड्रोजन-आक्सिजन भी उस वैदिक 'मित्रावरुण'का ही पर्यायवाची शब्द है, जो मित्रावरुण सूर्यशक्ति ही है। मित्रः और सूर्यः—ये पर्यायवाची शब्द हैं तथा वरुण जलतत्त्वके अधिष्ठाता सूर्यतत्त्वाधीन हैं, जो ऊपरकी पंक्तियोंमें स्पष्ट किया गया है।

आधुनिक वैज्ञानिकोंमें तो आज 'सौर-ऊर्जा' ग्रहण करनेकी होड़-सी लगी हुई है। इसपर तो बहुत अधिक कार्य और प्रयोग भी हो चुके हैं और हो रहे हैं।

क्या शस्योत्पादन—सशक्ति अन्नोत्पादन तथा सुन्दर फल-पुष्पोंके विकासमें सर्वाधिक महत्त्व सूर्यशक्तिका नहीं है!

सूर्य-तत्त्व (सूर्योपासना)

(लेखक—पं० श्रीभवनाथजी झा, एम्० ए०, साहित्याचार्य)

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च', 'सूर्यो वै ब्रह्म', 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्' इत्यादि स्पष्टतः वैदिक तथा केवल पौराणिक एवं धर्मशास्त्रीय वचनोंके आधारपर ही नहीं, किंतु सूर्यशक्तिके स्पष्ट वैज्ञानिक विवेचनके आलोकमें भी एक वाक्यमें यह कहना सर्वथा उपयुक्त होगा कि 'सूर्य-तत्त्व'से ही इस समस्त चराचर जगत्की सत्ता तथा उपयोगिता है।

यह कहना न होगा कि ये ही सूर्य अखण्ड प्रकाश-पुञ्जसे मार्तण्डको आलोकित करते हैं; सूर्य-किरणें ही सभी पदार्थोंमें रस तथा शक्ति प्रदान करती हैं। अग्नि-तत्त्व, वायुतत्त्व, जलतत्त्व तथा सूर्य-तत्त्वोंकी ही अशेष, अमित एवं अखण्डशक्ति ऊर्जा प्रदान करनेवाली है। इन तत्त्वोंमें सूर्य-तत्त्व ही सर्वप्रधान है। आकाशमण्डलके सशक्त रहनेपर ही अग्नि, वायु एवं जल अपनी-अपनी शक्ति प्रदर्शित कर सकते हैं; क्योंकि इन तत्त्वोंका आश्रय-स्थान मुख्यतः आकाशमण्डल ही है। आकाश-मण्डलमें सूर्य-किरणें ही समुद्रों तथा नदियोंसे जल ग्रहणकर अग्नि-वायु-जल-तत्त्वोंके मिश्रणसे मेघोंका निर्माण करती हैं तथा वायुतत्त्वके सहयोगसे यथास्थान स्वेच्छानुसार वर्षा करती हैं।

सौरमण्डल ही एक वह महान् केन्द्र है जो अपने चुम्बकीय आकर्षणसे देवलोक, पितृलोक आदिका समन्वित कार्य सँभाल रहा है। सभी देव-कर्म सूर्याराधनसे ही प्रारम्भ होते हैं एवं उसीसे सम्पन्न होते हैं। कोई भी आराधना दिनमें 'सूर्यादि पञ्चदेवता'-पूजनसे प्रारम्भ होती है। रात्रिमें वे ही 'गणपत्यादि पञ्चदेवता'के नामसे पूजित होते हैं—यह मिथिलाकी परम्परा है। कहीं-कहीं दिनमें भी 'गणपत्यादि पञ्चदेवता' कहकर पूजन प्रारम्भ होता है।

यदि जरा सूक्ष्मदृष्टिसे देखें तो स्पष्ट होता है कि 'गणपति' भी यथार्थतः 'सूर्य' ही हैं। 'नक्षत्र-गणानां पतिः गणपतिः—सूर्यः'। सूर्यका प्रकाश जिस भूभागपर रहता है वहाँ वे नक्षत्र अदृश्य रहते हैं। सूर्यके प्रकाशके दूसरे भूभागपर चले जानेसे वे चन्द्रमासहित सभी नक्षत्र दृश्य हो जाते हैं।

सूर्यका उदय-अस्त होना दर्शनमात्र, स्मृतिके अनुसार उनके दर्शन और अदर्शनमात्र हैं, अन्य नहीं—

उदयास्तमनं नास्ति दर्शनादर्शनं रवेः

इस तरह अहर्निश शब्दका व्यवहार भी दर्शनादर्शन ही है। फलतः सूर्य अखण्ड अविनश्वर हैं। वे सदा एक समान हैं।

यही रहस्य है कि शिवके आत्मज होनेसे 'गणपति'का पूजन प्रारम्भमें होता है। वे 'गणपति' 'सूर्य-तत्त्व' हैं जो सभी स्थावर-जङ्गममें संचालक कहा जाता है कि 'शनि'के देखनेसे 'गणपति'के मस्तक गिर गये और महादेवने उसके स्थानपर हाथीका मस्तक लगा दिया, जिससे वे 'गजानन' हो गये। इसके रहस्य यहाँ देखें। 'शुण्ड'को 'कर' कहते हैं, (करम् शुण्डमस्यास्तीति—करी—हस्ती, हाथी,) कर शुण्ड का पर्यायवाची शब्द है। क्या यह कर (शुण्ड सूर्यकी ही तेजःपुञ्ज किरणावली नहीं है, जिसे पार्वती शिवने इस सूर्यके रक्तपिण्डसदृश आरक्त-पृथुल-गणेशके मस्तक—शिरके रूपमें संयुक्त कर दिया ? क्या इस तत्त्व सभी आराधनाओंमें गणेशाराधनका, जो सूर्याराधन ही है गूढ़ रहस्य प्रकट नहीं होता ? क्या इस विवेचनसे गणपतिके जन्म, शिरःपतन, शिरःसंयोजनादि पौराणिक विस्तृत आख्यानकी गम्भीरताका ...

... ज्ञानसाध्य तथा श्रमसाध्य है। यह कठोर तपस्या ...ा है। अस्तु।

वैज्ञानिक-दृष्टिसे सूर्य 'अतीव तेजसः कूटः', ...रिश्मः', 'ज्योतिषां पतिः' हैं, वे विशाल प्रकाशपुञ्ज ... उनका व्यास लगभग १३९२००० कीलोमीटर और ... प्रायः २×१०^{३०} कीलोग्राम है और आभ्यन्तरिक ...मान १३०००००° सेंटीग्रेट है, जिसे कल्पनासे ... कहा जा सकता है। सूर्यके प्रकाशसे सौर-...वारमें जहाँ जो है, सब प्रकाशित होते रहते हैं। ...पूर्ण ब्रह्माण्ड* इनसे दीप्त होता रहता है। सूर्यमें ...तिराकी मुख्यता है। इसलिये चन्द्र (अर्थात् ...ग्रह) दामिनी-द्युति (अन्तरिक्षका प्रकाश) और ...ग्नि सूर्यकी ज्योति ही हैं। इन सबकी रोशनी, ...भा या ऊर्जाका मूल स्रोत सूर्य ही हैं।

भारतीय वाङ्मयमें प्रकाश विभिन्न अर्थोंमें प्रयुक्त ...ता है। इसका सर्वाधिक प्रचलित अर्थ है ज्ञान, ...तन्य, संज्ञा और बोधलक्षणा बुद्धि। इसी प्रकार अन्धकार ...ज्ञानता, अविद्या, मूर्च्छा अथवा संज्ञाहीनताका ...र्याय है। इस कारणसे भी देवीमाहात्म्यमें उत्तर-चरित्रके विनियोगमें महासरस्वती देवता, सूर्य तत्त्व और रुद्र ऋषि हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि विद्या, बुद्धि और ज्ञानकी अधिष्ठात्री देवीके साथ देदीप्यमान भगवान् सूर्यका अचल सम्बन्ध है। ये दोनों उज्ज्वल हैं तथा दोनों जाड्य-नाशमें पूर्ण समर्थ हैं। 'प्राधानिकं रहस्यम्'में स्पष्ट कहा गया है कि सरस्वती शिव (रुद्र) की सहोदरा हैं। एक 'कुन्देन्दुतुषारधवला' हैं तो दूसरे 'कर्पूरगौर' हैं।

देवीमाहात्म्यके उत्तरचरित्रके पञ्चम अध्यायमें देवताओंने देवीकी (सरस्वतीके रूपमें) सर्वव्यापकता-रूपमें स्तुति की है। उसमें उन्होंने कहा है—'या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते' और 'या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता'† अर्थात् जो देवी सब भूतों- (प्राणियों और पदार्थों-)में चेतना और बुद्धिरूपसे विराज रही हैं। मूलतः महासरस्वतीको सूर्यतत्त्व मान लेनेपर सूर्य भी चेतना और बुद्धिरूप सिद्ध हो जाते हैं।

सूर्य (सोम और वैश्वानरका रूप धारण करके) पृथ्वीमें व्याप्त होकर तृण-लता, जीव-जन्तु—प्राणी-प्राणीमें व्याप्त हो इन सबकी उत्पत्ति और पालन-पोषणका कार्य करते रहते हैं।

इस अर्थमें सूर्य सविता (जन्मदाता) और पूषा (पोषण करनेवाले) भी हैं। वह्निपुराण स्पष्ट शब्दोंमें कहता है कि—'सृष्ट्यर्थं भगवान् विष्णुः सविता स तु कीर्तितः' अर्थात् भगवान् श्रीकृष्णके कथनानुसार विष्णु ही सविता कहे जाते हैं। सविता ही विष्णु हैं। विष्णु और सविता—ये दोनों पर्यायवाचक शब्द हैं। सूर्यके कारण ही ओषधियों एवं वनस्पतियोंकी कृषि पृथ्वी-पर सम्भव है। इनके प्रभावसे ही पृथ्वी शस्यश्यामला बनी रहती तथा वसुन्धरा कहलाती है। धनका प्रभव सूर्यके कारण है।

वेद सबकी उत्पत्ति ब्रह्मसे मानते हैं। विज्ञानने ब्रह्मसाक्षात्कार अभीतक नहीं किया है। अतः उसके अनुसार कुछ अणुओंके किसी कारणवश एक साथ संबद्ध हो जानेपर उनके रासायनिक विस्फोटसे अत्यधिक ऊर्जाके उत्पन्न होनेसे धीरे-धीरे एक विशाल वाष्पीय धधकता हुआ पिण्ड बन गया। पौराणिक शब्दमें सूर्य स्वयम्भू (अपने आप प्रकट) हैं। अतएव जन्मके लिये, अपनी ऊष्माके लिये, अपने ईंधनके लिये, अपने प्रकाशके लिये और अपने

---

* जहाँतक सूर्यका प्रकाश जाता है, वहाँतकको एक ब्रह्माण्ड माना जाता है। विश्वमें कोटि ब्रह्माण्ड हैं—ऐसा कहनेका तात्पर्य यह है कि हमारे सूर्यकी भाँति ज्वलन्त प्रकाश-पिण्ड सहस्रों ही नहीं, करोड़ों हैं।

† श्रीदुर्गासप्तशती

... प्रकट हुए। अतएव इनका सर्वप्रमुख कार्य ...खना। देखना ही जानना है। सूर्य वस्तुओंको ...त करते हैं, दृश्य बनाते हैं, दृष्टिपथमें ...ते हैं, ज्ञान प्रदान करते हैं और बुद्धिको ...रित या सक्रिय करते हैं। इस कारण सूर्यको ...तः चक्षु' या 'जगच्चक्षु', 'गुरूणां गुरुः', 'जगद्गुरु' ...अन्धकारनाशक, अज्ञान दूर करनेवाला और ...साक्षी भी कहा जाता है। शायद इसीलिये निभृत-...निभृत स्थानमें गुप्तातिगुप्तरूपसे किया गया कर्म भी ...ट हो जाता है और किसी-न-किसी रूपमें सृष्टिको ...भावित करते हुए कर्त्ताको भी प्रभावित करता है।

जिस प्रकार निष्क्रिय ब्रह्मकी अनन्तानन्त क्रियाएँ ...नी-गिनायी नहीं जा सकती हैं वैसे ही 'शतधा ...तंमान' सूर्यकी सैकड़ों क्रियाएँ एवं उनकी सहस्रमुखी ...मताका विवरण नहीं दिया जा सकता। सूर्यकी ये अनगिनत किरणें प्रतिक्षण अनेकानेक स्थानोंपर—गंदी-से-गंदी जगहपर, रम्य-से-रम्य स्थानपर, पवित्र-से-पवित्र स्थलपर और भयंकर एवं दुर्गन्धपूर्ण स्थानपर भी पड़ती हैं; परंतु इसके कारण उनमें कोई विकार नहीं आता है। इतना ही नहीं, सूर्यकिरणें गंदगियाँ दूर करती हैं तथा गङ्गाकी भाँति सबको पवित्र करती हैं। इसलिये संत श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

समरथ के नहिं दोष गुसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं॥

सारांशतः सूर्यका प्राकट्य शून्य या विराट् पुरुषकी आँखसे है। सूर्यके मुख्य-मुख्य कर्म—प्रकाश एवं उष्मादान, धीको प्रेरित करना, ग्रह-उपग्रहोंकी सृष्टि एवं उनका धारण, उनका संचालन प्रभृति, काल-नियन्त्रण, उनकी निर्लिप्तता तथा पवित्र करनेकी क्रिया आदि है। सूर्य-तत्त्वके विषयमें वैज्ञानिक तर्कके आधारपर यदि विज्ञान अभीतक ऋषियोंके स्वर-में-स्वर मिलाकर 'आदित्यो ब्रह्म' नहीं कह सकता है तो इतना तो अवश्य कह सकता है कि सूर्य सृष्टिसंचालिका किसी अज्ञात सर्वश्रेष्ठ शक्तिकी (जिसे वेद ब्रह्म, परमात्मा या आद्याशक्ति कहता है) अति तेजस्वी प्रत्यक्ष विभूति हैं, जो निष्काम कर्मयोगीका सर्वाधिक ज्वलन्त दृष्टान्त हैं और जो सदैव प्राणियोंका नानाविध कल्याण करनेमें ही लगे रहते हैं। सूर्य वस्तुतः विरञ्चिनारायणशंकरात्मा हैं। 'त्रयीमय' हैं और एक शब्दमें यह 'त्रयीमयत्व' ही सूर्यतत्त्व है। कवि-कुलशिरोमणि संत तुलसीके शब्दोंमें 'तेज-प्रताप-रूप-रस-राशि'* सूर्यका तत्त्व है; तेज, प्रताप, रूप और रसका प्राचुर्य ही सूर्यत्व है। जो 'आदित्यो ब्रह्म' यह नहीं स्वीकार कर सके, उन्हें इतना तो स्वीकार करना ही चाहिये कि सूर्य सौर-परिवारके प्रत्यक्ष अध्यक्ष तथा परमात्माके सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि हैं। अतः वे सभीके लिये परम पूज्य जगत्के श्रेष्ठ देवता हैं।

हम सबका कल्याण करे

परम प्रकाशवान् लखि जिसको स्वतः तमादि प्रयाण करे।
मुक्तिप्रदायक जो भक्तोंका भवबन्धनसे त्राण करे॥
धर्मवृद्धि कर जो जन-मनमें नित-नवनूतन प्राण भरे।
परम प्रकाशक सवितामण्डल हम सबका कल्याण करे॥

—पं० श्रीबाबूलालजी द्विवेदी

* विनयपत्रिका, सूर्यस्तुति २।

नानाविध कार्योंके लिये वे पूर्णतः आत्मनिर्भर हैं। ऐसी धारणामें वैज्ञानिक वेदान्तियोंके साथ इस बातपर सहमत दीख पड़ते हैं कि अद्वैतवादियोंके ब्रह्मकी भाँति सूर्य भी अपने निर्माण, सौर-परिवारके ग्रहों-उपग्रहों तथा पृथ्वीपरकी सारी सृष्टिके निर्माणमें निमित्तकारण हैं, उपादानकारण एवं साथ-साथ कर्ता भी हैं। इस प्रकार पृथ्वी ही नहीं, सम्पूर्ण सौर-परिवारके कर्ता, निमित्तकारण और उपादानकारण होनेसे अनेक ब्रह्मविद् ऋषियोंने अपने ब्रह्मजिज्ञासु शिष्योंको ब्रह्मज्ञानके लिये इन्हीं सूर्यकी उपासनाका आदेश दिया था।

ऊर्णनाभि-(मकड़ी-) द्वारा अपने शरीरसे तन्तु निकालकर स्वयं अपना जाल बना लेना सम्भवतः ब्रह्मतत्त्वको स्पष्ट करनेके लिये उतना प्रभावकारी दृष्टान्त नहीं है, जितना सूर्यका अपने-आप शून्यसे प्रकट हो जाना, अपने अंशसे पृथ्वी तथा अन्य ग्रहोंका सृष्टि-कर्ता बनना और अपनी आकर्षणशक्तिसे सब ग्रहों-उपग्रहोंसे अपने चतुर्दिक् चक्कर लगवाना और पृथ्वीपर लाखों-करोड़ों प्रकारके विभिन्न भूतों, पदार्थों एवं प्राणियोंकी सृष्टिकर उनका भरण-पोषण तथा यथासमय लय करना है। ब्रह्मके सदृश (शून्यमात्रसे विश्व निर्माण होना) आदि गुणोंके कारण सूर्यको भारतके मेधावियोंने ब्रह्मको समझनेका सर्वश्रेष्ठ साधन माना है।

सम्भवतः इसीसे सूर्यको सौर-परिवारका ब्रह्म (प्रभव तथा व्यवस्थान) होनेके कारण ऋषियोंने इतनी भक्तिसे घोषणा की है—'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि'—मैं उस सविता देवके वरेण्य भर्गका ध्यान करता हूँ; इसलिये कि वे 'धियो यो नः प्रचोदयात्' हमारी ब्रह्मज्ञानविषयक बुद्धिको प्रेरित करें, हमें ब्रह्मज्ञान दें—हमें ब्रह्मकी प्राप्ति हो सके। यह निःसंदेह है कि गायत्री (वेदमन्त्र) के सम्यक् अध्ययनसे ब्रह्मसाक्षात्कार हो सकता है। नित्य और नाशवान्‌का, निर्गुण और सगुण-का तथा सत्य और असत्यका ज्ञान है एवं महामायाकी कृपासे मनुष्यको मिल सकती है।

सूर्यका अत्यन्त गहरा सम्बन्ध काल से भी है। कल्प-काष्ठादिरूपसे परिणाम और पृथ्वीपर कालगणनाके मुख्य आधार हैं। विशद विवेचना सूर्यसिद्धान्त-प्रभृति ग्रन्थोंमें है। कालको अत्यधिक शक्तिशाली माना है। ने इसे एकतत्त्व तथा सृष्टिका एक घटक माना है। कृषिविज्ञानकी उतनी भी कुछ शस्य ऐसे हैं, जो पूर्ण प्रसन्न समयसे पूर्व अङ्कुरित नहीं होते एवं समयसे नहीं देते—मानो वे पुष्टि करते हैं इस 'समय पाय तरुवर फलै केतिक सींचो नीर'। वराहमिहिर कालको ही सभी कारणोंका मानते हैं।

'कालं कारणमेके—' (बृहत्संहिता १। अथर्ववेद इससे भी आगे बढ़कर कहता है 'कालो हि सर्वेश्वरः'[1]। सृष्टिके प्रसङ्गमें काली अथवा महाकालकी कल्पना भी प्रलयकारिणी शक्तिकी परिचायिका है। कहनेका संक्षेपमें अभिप्राय यही है कि करनेवाला तथा जिसका जन्म हुआ है उसको कौमार्य, यौवन, वयस्क, प्रौढ़ तथा वार्धक्य मृत्युतक पहुँचानेवाले और पुनः गर्भाधानसे विभिन्न सोपानों एवं जन्मतक पहुँचानेवाले तथा विभिन्न ऋतुओंके निर्माता सूर्य ही हैं। सम्पूर्ण शक्ति सूक्ष्मातिसूक्ष्मरूपसे सूर्यमें ही

अत्यन्त काव्यात्मक तथा विज्ञानात्मक सृष्टिके व्यक्त होनेका वर्णन करती हुई है·······चक्षोः सूर्यो अजायत[2]। सूर्य

1. (अथर्ववेद १९ । ५३ । २८) । 2. (ऋग्वेद, मण्डल १०, सूक्त ९०) ।

लोग सर्वोत्पादक इन भगवान् सूर्यको सबसे क चाहते हैं।

सूर्य जगत्के सृष्टिकर्ता—ब्रह्मा हैं

अमरकोश (स्व० व० १६) में ब्रह्माको हिरण्य-कहा गया है—

ह्यात्मभूः सुरज्येष्ठः परमेष्ठी पितामहः।
हिरण्यगर्भो लोकेशः स्वयम्भूश्चतुराननः॥

वेदोंमें और पुराणादि धर्म-ग्रन्थोंमें भी सूर्यको हिरण्य-, आदित्य तथा विधाताके नामोंसे सृष्टिकर्ता कहा गया है; यथा—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(ऋ० १०। १२१। १; वा यजु० १३। ४; अथर्व० ४। २। ७; तै० सं० ४। १। ८। ३; ताण्ड्य १० ९। ९। १२; नि० १०। २३)

निरुक्तके टीकाकार दुर्गाचार्यके अनुसार उक्त मन्त्रका अर्थ यह है—हिरण्यगर्भ ब्रह्मा (ब्रह्मणो या हिरण्यगर्भावस्था) सकल प्राणियोंकी उत्पत्तिके पूर्व स्वयं शरीर-धारण करते हैं। वे एकमात्र सृष्टिकर्ता हैं जो जगत्के सम्बन्धभूत स्थावर-जङ्गमादिके ईश्वर हैं। वे अन्तरिक्ष-लोक, द्युलोक और भूलोकको धारण करते हैं। इन सभी तत्त्वोंमें वे ओतप्रोत होकर वास करते हैं। उन महान् प्रजापतिके लिये हम हवि प्रदान करते हैं।

ब्रह्मपुराण (अ० ३१) में लिखा है—

आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं मुनिसत्तमाः।
भवत्यस्माज्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥
रुद्रोपेन्द्रमहेन्द्राणां विप्रेन्द्रत्रिदिवौकसाम्।
महाद्युतिमतामेव तेजोऽयं सार्वलौकिकम्॥
सर्वात्मा सर्वलोकेशो देवदेवः प्रजापतिः।
सूर्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदैवतम्॥

'हे मुनिवर ! त्रिलोकके मूल आदित्य हैं। इन्हींसे सम्पूर्ण जगत्, सभी देवता, असुर, मनुष्य, रुद्र, उपेन्द्र, महेन्द्र, विप्रेन्द्र और तीनों लोकोंके तीनों देवता, समस्त लोकोंके महाप्रकाशक तेजवान्, सर्वात्मा एवं सर्वलोकेश, देवाधिदेव, प्रजापति उत्पन्न हैं। ये ही सूर्य तीनों लोकोंके मूल हैं तथा परम देवता हैं। सभी देवता इन सूर्यकी रश्मियोंमें निविष्ट हैं। ये तीन भागोंमें विभक्त हैं।'

सूर्यका त्रिदेवत्व

भविष्योत्तरपुराणके कृष्णार्जुन-संवाद (आदित्य-हृदयस्तोत्र) में भगवान्ने कहा है कि—

उदये ब्रह्मणोपेतं मध्याह्ने तु महेश्वरम्।
अस्तकाले भवेद्विष्णुः त्रिमूर्तिश्च दिवाकरः॥

सूर्य उदयकालमें ब्रह्मा, मध्याह्नकालमें महेश्वर और अस्तके समय विष्णुरूप हैं।

ऋग्वेद (५। ६२। ८) में कहा गया है कि—

'हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयः स्थूणमुदिता सूर्यस्य।'

सूर्यके उदय होनेपर उषाकालमें सूर्य हिरण्यरूप (ब्रह्मस्वरूप) होते हैं।

सूतसंहिता शिवमाहात्म्यखण्ड, १३ अ० में कहा है कि—

हिरण्यगर्भो भगवान्ब्रह्मा विश्वजगत्पतिः।

बृहद्देवता (१। ६१) में शौनकाचार्यने लिखा है कि—

भवद्भूतं भविष्यं च जङ्गमं स्थावरं च यत्।
अस्यैकसूर्यमेवैकं प्रभवं प्रलयं विदुः॥
असतश्च सतश्चैव योनिरेषा प्रजापतिः।
तदक्षरं चाव्ययं च यच्चैतद् ब्रह्म शाश्वतम्॥
कृत्वैव हि त्रिधात्मानमेषु लोकेषु तिष्ठति।
देवान् यथायथं सर्वान् निवेश्य स्वेषु रश्मिषु॥

'भूत, भविष्य, वर्तमान, स्थावर, जङ्गम तथा सत्-असत् इन सबके उत्पादन-स्रोत एकमात्र सूर्यप्रजापति हैं।

सूर्य-तत्त्वकी मीमांसा

(लेखक—श्रीविश्वनाथजी शास्त्री)

सूर्य मानवीय जीवन, प्रज्ञा और विज्ञानके आदि उत्स हैं। सूर्यसे ही ब्रह्माण्ड उत्सर्गित है।

पाश्चात्य भौतिक वैज्ञानिक सूर्यको निम्न भाषामें कहते हैं—Sun the star which was governs illuminates the earth other bodies forming the solar system. By the patient efforts of astronomers and physicists a vast body of knowledge of which her we can, but give the outline, has been gained regarding it. For convenience we condense such of this infromation as admits of the treatment into the subjoined table. —Chambers EncycloPedia, Vol IX (1904 Edi.)

अर्थात् यह जो सूर्य है, वह प्रचण्ड गर्म नक्षत्र है। यह पृथ्वीका नियामक और प्रकाशक है। इसकी गतिके अनुसार ही महीनोंका निर्माण और विभाग हुआ है। ज्योतिष-शास्त्र और चिकित्सा-विज्ञानकी प्रणालियोंके लिये यह बहुत उपयोगी है। देह-रचना और रोगके हटानेमें यह प्रभूत सुविधा प्रदान करता है। भारतीय पुरातत्त्वीय चिकित्सकोंका भी सम्मत है—'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्।' भास्करकी उपासना एवं प्रार्थनासे ही आरोग्य मिलता है। ऋग्वेद (मं० ७, सू० ६२, मं० १) में ठीक इसी तरहका भाव है।

यथा—

उत सूर्यो बृहदर्चींष्य श्रेत् पुरु
विश्वा जनिम मानुषणाम्।
समो दिवा ददृशे रोचमानः
मत्वा स्तः

अर्थात्
तेजोमय

मार्गदर्शकोंको तेजवान् करते हैं। इन्हें [illegible]
कहाँतक कही जाय! वे समानरूपसे [illegible] सभीके, उपयोगि-समूहोंके उत्पादक हैं। [illegible] प्रतिक्षण मनको भानेवाले ये दे[illegible] नियामक हैं, तत्त्वोंके सम्पादक हैं और [illegible] दाता हैं। इसलिये तत्त्वदर्शियों([illegible] ये सर्वदा स्तुत्य हैं। पुण्य-कार्य, म[illegible] कार्यके बनानेवाले हैं। इनका उदय [illegible]

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरु[णस्याग्नेः।]
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा ज[गतस्तस्थुषश्च॥]
(ऋ० १।११५।१; ऐ० आ० ३।[illegible] १३।२।३५; वा० य० ७।४२; तै० स० [illegible] तै० ब्रा० २।८।७।३; तै० आ० [illegible] नि० १२।१६)

सायणभाष्यके अनुसार ये जगत्के [illegible] (परमात्मा) सूर्य स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियोंको तेजोमय प्रकाशसे जाग्रत् करते हैं। किरणसमूह जीवमें जीवन-संचार करते हैं। वरुण, अग्नि, चक्षुः, प्राण, अपान, जठर, वायु औ[र] ये अद्भुत प्रवर्तक हैं। ये चक्षुरूपसे एवं सर्वत्र अन्तर्यामीरूपसे विद्यमान हैं। [illegible] (२।३२।१)में कहा है—

'उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु र[श्मिभिः]'

अर्थात् आदित्य अपनी रश्मियोंसे [illegible] दोषोंसे मुक्त करते हुए, रोगोंके कीटाणुओंको [नष्ट करते] हैं, जीवनको रोगमु[क्त] बनाते हैं। [illegible]
[illegible] २९।१०

सूर्यमण्डल
[illegible]
है। [illegible]

और प्रज्ञाका सार है। ब्रह्म और जीवात्माकी यथार्थ बोधक है। वेद-विहित समस्त उपासना-प्रारम्भमें गायत्री-जप, सूर्यार्घ्य और ॐकारका करनेकी मान्यता है। इसके बिना कोई सफल नहीं हो सकता है। व्यास, भारद्वाज, वसिष्ठ, मार्कण्डेय, योगी याज्ञवल्क्य एवं अन्य महान् महर्षियोंने ऐसा माना है कि गायत्री-जपसे पाप आदि मलोंसे जापककी शुद्धि होती है। का ईशोपनिषद् कहता है—

योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्।

जो वह पुरुष आदित्यमें है, वही पुरुष मैं हूँ। परमात्मपुरुषकी आत्मा भी 'मैं हूँ'। इसीका शुद्ध तेज रश्मियोंके अणुओंद्वारा सूर्यमण्डलसे सम्पर्क है। जगत्में रहकर भी शुद्ध आत्म-धाममें जानेके सूर्य-रश्मि ही प्रधान योगका द्वार है—वाहक है। शियन साधक पिथा गोरसने भी माना है कि यह तेजधारक पदार्थ है। इसीमेंसे होकर आत्म-ज्योति नीपर उतरती है।

सूर्यसाधना और उपासना

सूतसंहिता (य० वैभा० अ० ६) में भगवान् ईश्वर शिवने कहा है कि—

आदित्येन परिज्ञातं वयं धीमह्युपास्महे।
सावित्र्याः कथितो ह्यर्थः संग्रहेण मयादरात्।
नीलग्रीवं विरूपाक्षं साम्बमूर्तिं च लक्षितम्॥

'नीलग्रीव शिवजीका कहना है कि आदरपूर्वक मैं सावित्री-मन्त्रकी, जिसे गायत्री या धीमहि कहते हैं, उपासना करता हूँ।'

भविष्योत्तरपुराणमें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको जो सूर्योपासना बतलायी है, वह आदित्यहृदय है। श्रीकृष्णने कहा है—

रुद्रादिदैवतैः सर्वैः पृष्टेन कथितं मया।
वक्ष्येऽहं सूर्यविन्यासं शृणु पाण्डव यत्नतः॥

अर्थात् अर्जुन! रुद्र आदि देवताओंके पूछनेपर जिस सूर्य-उपासनाको हमने बताया था वही तुमको बताता हूँ, सुनो। श्रीकृष्ण सूर्य (विष्णु)के अंशावतार द्वादशादित्यके अंश थे। इसीसे वे सूर्य (विष्णु) नारायण नामसे भी सम्बोधित हुए। महाभारतके स्वर्गारोहणपर्व-(५। २५)में कहा है कि भगवान् श्रीकृष्ण इहलीला समाप्त कर नारायणमें ही विलीन हो गये।

यः स नारायणो नाम देवदेवः सनातनः।
तस्यांशो वासुदेवस्तु कर्मणोऽन्ते विवेश ह॥

इस प्रकार देवताओंद्वारा आदित्य-उपासनाकी प्राचीनता देखी जाती है।

बृहद्देवता (१५६ अ०)में लिखा है —'विष्णुरादित्यात्मा।' (वायुपुराण अ० ६८। १२)में कहा गया है कि असुरोंके देवता पहले सूर्य और चन्द्रमा थे। इन्होंने ही अपने-अपने सम्प्रदायके अनुसार अलग-अलग राज्य बसाया था। इनमें अधिकांश सौर थे। राम-रावण-युद्ध-(वा० रा०, यु० का०, अ० १०७)में जब भगवान् रामचन्द्रजी विशेष श्रान्त—चिन्तित थे तब ऋषि अगस्त्यने उन्हें सूर्यस्तोत्र बताया था। श्रीरामने अगस्त्य मुनिके उपदेशानुसार पूर्वमुख होकर पवित्र हो तीन बार आचमन किया और सूर्यके स्तोत्रका पाठ किया। इससे उन्हें महाबल प्राप्त हुआ और उन्होंने रावणका शिरश्छेद किया। द्वितीय जीवितगुप्तके दसवीं शताब्दीका एक शिलालेख कलकत्ताके जादूघरमें है। इसका विवरण कनिंघम साहेबने (Cunningham's Archeological reports. Vol XVI, 65 में) लिखा है कि भास्करके अङ्गसे प्रादुर्भूत प्रकाशमान 'मग' ब्राह्मण शाक-द्वीपसे कृष्णभगवान्की अनुमतिसे उनके पुत्र भगवान् साम्बद्वारा लाये गये। उन दिनों विश्वमें ये ही लोग सूर्य-साधनाके विशेषज्ञ थे। यह बात भविष्यपुराण और साम्ब-पुराणमें विस्तृतरूपसे वर्णित है। ब्रह्मयामल ग्रन्थमें भी उक्त बातोंका उल्लेख है। इस बातसे प्रमाणित

सूर्यमें ही सभी तत्त्व, सभी भूत, सभी जीवन, सभी क्षर-अक्षर नाशवान् और अव्ययकी मूल सत्ता व्यवस्थित है—केवल ब्रह्म-सूर्यमें ही सर्वदा संलग्न हैं। सूर्यकी ही रश्मियोंमें लोक, परलोक, देव, पितर, मानव और ब्रह्माण्ड आदि निवेशित हैं।' इसी प्रकार साम्बपुराण (४।१—५) में लिखा है—

अनाद्यो लोकनाथः स विश्वमाली जगत्पतिः।
मित्रत्वेऽवस्थितो देवस्तपस्तेपे नराधिपः।
अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्चाक्षर एव च।
सृष्ट्वा प्रजापतीन् सर्वान् सृष्टाश्च विविधाः प्रजाः।
ततः स च सहस्रांशुरव्यक्तः पुरुषः स्वयम्।

'आदि-अन्तहीन लोकेश्वर ब्रह्माण्डके संरक्षक और जगत्के स्वामी सूर्यने अपने मित्रभावमें अवस्थित होकर तेजतापद्वारा इस चराचर जगत्की रचना की है। विश्व-सृजनके बाद ब्रह्मारूपमें प्रजाकी सृष्टि की है। ये अव्यक्त हैं एवं हजारों किरणवाले विराट् पुरुष हैं। इन्हींमें सारी सृष्टि है।'

सूर्य—विष्णु

वेद, ब्राह्मण, संहिता और पुराणोंमें सूर्य ही विष्णु हैं। विष्णु द्वादशादित्योंमें छोटा अर्थात् बारहवाँ आदित्य हैं। वेदका एक मन्त्र यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्याः सप्त धामभिः॥
(—ऋ० १।२२।१६)

जिस प्रकार सात किरणोंके द्वारा विष्णु पृथिवीकी परिक्रमा करते हैं, उसी प्रकार उन्हीं तत्त्वोंद्वारा वे हम सबकी रक्षा करें।

वैदिक कोश निघण्टुमें कहा गया है—

नामपदिमन्तरेण सर्वत्र हि आविशतीति विष्णुः।
(—२।११)

अपने तेज और तीक्ष्ण रश्मियोंद्वारा सर्वत्र फैलनेके कारण सूर्य विष्णु कहे जाते हैं।

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
समूढमस्य पांसुरे॥ (ऋ० १।२२।...)

विष्णु अपने अदृश्य पादसे पृथ्वी, द्यौ और अन्त... किरणद्वारा धूल-धूसरित विश्वको प्रकाशित करते हैं।

सूर्य और शिव तथा शैव शक्तियाँ

सूर्यः शिवो जगन्नाथः सोमः साक्षादुमा...
आदित्यं भास्करं भानुं रविं देवं ...
उमां प्रभां तथा प्रज्ञां सन्ध्यां ...
(—लिङ्गपु० उ० ...)

'रुद्रो वैवस्वतः साक्षात्' (—वायु० ...)

सूर्य, शिव, जगन्नाथ और सोम स्वयं ... हैं। आदित्य, भास्कर, भानु, रवि तथा दिवाकर ... इनकी शक्तियाँ ये हैं—उमा, प्रभा, प्रज्ञा, ... तथा सावित्री।

इस प्रकार देखा जाता है कि प्राचीन ... त्रैतवाद एक मूलक है। एकेश्वरवाद ही ... परिणत हुआ है। एकेश्वरवादका मूल और ... भारद्वाज स्मृतिका ७९ श्लोक इस सम्बन्धमें प्रामाणिक है; यथा—

'आदित्ये तन्महः साक्षात् परब्रह्म...

इस भूमण्डलपर साक्षात् परब्रह्मरूपमें आदि... प्रकाशित हैं। इसलिये भगवान् ऋग्वेद सर्वत्र सविताको ही देखते हैं—

सविता पश्चातात् सविता ...
सवितोत्तरात्तात् ...
सविता नः सुवतु ...
सविता नो ...
(—ऋ...

सविता देवता मेरे आगे-पीछे, सविता-ही-सविता हैं। सविता ह... देते हैं। हमारी आयुको बढ़ाते हैं

गायत्रीमन्त्र सविता-उपासनाका...

होता है कि भारतमें भी सूर्य-पूजाका प्रचलन था; किंतु विशेषज्ञोंका अभाव था। बेबिलोनके प्राचीन वृत्तग्रन्थ-(Etna Myth)में लिखा है कि इगल (गरुड़-जाति) पक्षीपर बैठकर कोई राजा तृतीय स्वर्ग-(Third heaven of Annu)में जाते हुए जीव-चिकित्सक ओषधि ले गया था। १९७३ ई० के अगस्तमें विख्यात अमेरिकन पत्रिका 'न्यू सायन्टिस्ट' (New Sceintist, August 1973)में प्रख्यात आणविक जीव-विज्ञानी डॉ० फ्रान्सिस्, डॉ० क्रिक और डॉ० लेसलीने कहा है कि इस पृथ्वीपर हजारों वर्षतक कोई जीवन नहीं था। यहाँतक कि जीवनकी सम्भावना भी नहीं थी। महाकाशके सूर्याश्रयमें स्थित जीवन-स्फुलिङ्ग इस युगकी वन्ध्या पृथ्वीपर (सूर्यके आश्रयके प्राणि-सभ्यतासे छँटकर) आया है। मि० क्रिक और मि० उरगेलके हस्ताक्षरयुक्त लम्बे वक्तव्यमें यह भी कहा गया है कि छाया-पथसे अन्यत्र अवश्य ही किसी-किसी सभ्यताका विकास था। छाया-पथ तेरह सौ करोड़ वर्षका है। इस पृथ्वीके प्राणियोंके उद्भवका काल चार सौ करोड़ वर्षका है। इस प्रकार नौ सौ करोड़ वर्षोंका अन्तर है।

अन्तर्देशीय सूर्य-अर्चन

विश्वमें सर्वत्र ही अनुमानतः ईसवी स[illegible] हजार वर्ष पूर्वसे लेकर (नवीन मतसे च[illegible] वर्षसे) १४० ईसवीतक सूर्य-पूजाके प्रमाण मि[illegible] विश्वका प्राचीन दर्शन-(In early philo[illegible] throughout the world the sun wors[illegible] सौरदर्शन ही है। पर्सियन चर्चोंके मित्र (M[illegible] ग्रीकोंके हेलियस (Hlios) एजिप्त(मिश्र-)के रा(तातारियोंका भाग्यवर्धक देवता फ्लोरस (Flours[illegible] प्राचीन पेरु-(दक्षिण अमरिका-)के ऐश्व[illegible] फुल्लेस (Fullest) उत्तरी अमरिकनके रेड इ[illegible] एतना (Atna) और ऐना, अमिकाके विले ([illegible] (white) चीनका उ० ची० (Wu. chi.) प्र[illegible] जापानियोंका इज्ञा-गी (Izna-gi), नवीन [illegible] ईजमका एमिनो, मिनाक, नाची (Ameno-Min[illegible] Nachi) आदि देवता; सूर्य, मित्र, दिवाकर आदिके रू[illegible] पूजित तथा उपासित थे। निष्कर्ष यह कि सूर्यकी शक्ति[illegible] सारी सृष्टि हुई है। इनकी महिमा अनन्त है और इन[illegible] पूजा-अर्चा अनादिकालसे विश्वभरमें प्रचलित हैं। भार[illegible] ये प्राचीन कालसे ही प्रत्यक्ष देवता माने जाते हैं।

सूर्यकी विश्व-मान्यता

आकाशके देवता 'एना' और पृथ्वीके देवता 'इया'में निष्ठा रखनेवाले बेबीलोनिया-निवासियोंने दिनका आरम्भ सूर्योदयसे माना।

मिश्रकी नीलघाटी सभ्यतामें सूर्यपूजा मुख्य थी। वहाँ मन्दिरोंको इस ढंगसे बनाया जाता था कि उनके मध्यमें स्थापित मूर्तिपर उदय लेते सूर्यकी किरणें पड़ सकें।

कैल्डियन लोग भी सूर्यको महत्त्व देते थे और उन्होंने सात ग्रहोंका पता लगाया था —जिनके नामपर दिनोंके नाम रखे। वे तारोंकी अवस्थिति और गतिसे भी अवगत थे।

सुमेरियन सभ्यतामें चन्द्रमाको सूर्यसे बड़ा माना गया। उन्होंने ज्योतिषके द्वारा बारह मासोंका पञ्चाङ्ग बनाया।

फिनीशियन सूर्य-चन्द्रके उपासक थे। असीरियावाले भी अपने ढंगसे सूर्यकी पूजा करते थे। सूर्यपूजा सर्वत्र थी।

ऋग्वेदमें सूर्यकी महिमाके सूचक चौदह सूक्त हैं। सौर-सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय दैनन्दिन उपासनामें सूर्य-पूजा अनिवार्य है।

ब्रह्माण्डात्मा—सूर्यभगवान्

(लेखक—शास्त्रार्थमहारथी पं० श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री)

वेदभगवान्‌का उद्घोष है कि 'सूर्य आत्मा जगततस्थुषश्च' अर्थात् सूर्य न केवल मनुष्य, पशु, पक्षी, ीट, पतंग आदि जङ्गम जीवोंके ही प्राणात्मा हैं, पितु वे वृक्ष, लता, गुल्म, वीरुध, ओषधि आदि चल—अन्तःसंज्ञ जीवधारियोंके भी प्राणात्मा हैं।

जीवनके लिये जिस उश्चिजन (आक्सीजन) त्वकी अनिवार्य आवश्यकता है, वह तत्त्व सूर्यगवान् ही निरन्तर ब्रह्माण्डको प्रदान करते रहते हैं।

श्रीमन्नारायणके दिव्य अङ्ग-प्रत्यङ्गोंका ही अपर पारिाषिक नाम देवता है। निरुक्तकार यास्कने देव शब्दके नेकविध निर्वचन दिखाते हुए 'दानाद् वा', 'द्योतनाद् वा' हकर मुख्यतया इसे दानार्थक ही बताया है। तः भगवान्‌की अनन्त शक्तियोंके भण्डारमेंसे प्राणियोंको, नके जीवन-धारण करनेके लिये तत्तत्-शक्ति प्रदान रनेवाले माध्यमिक दिव्य स्रोतोंको देवता कहते हैं। यपि 'अनन्ता वै देवाः' इस वेद-प्रमाणके अनुसार वे वता अनन्त हैं तथापि उनका वर्गीकरण करके उन्हें तीस कोटियोंमें बाँटा गया है—अष्ट वसु, एकादश रुद्र, ादश आदित्य, मरुत् और इन्द्र। इनमें भी अन्तर्भावक्रियासे केवल तीन रूपोंको अन्तमें प्रधानता दी गयी है। यास्क कहते हैं—'तिस्रो देवताः' अर्थात् तीन वता हैं—पृथ्वी-स्थानीय अग्नि, अन्तरिक्ष-स्थानीय ायु और द्युस्थानीय सूर्य।

सूर्यको केन्द्रबिन्दु मानकर चारों ओर विस्तृत चास कोटि योजनात्मक आकाश-कक्षको एक 'ब्रह्माण्ड' कहते हैं। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौः अपना 'भूः भुवः स्वः' नामक ब्रह्माण्डके तीन कल्पित भाग हैं, जिन्हें त्रिलोकी कहते हैं। इस त्रिलोकीकी आत्मा सूर्यभगवान् हैं।

वेदोंमें सूर्यकी महिमाके द्योतक अनेक सूक्त हैं। आदिसृष्टिके समय श्रीमन्नारायणद्वारा ब्रह्माजीको जो वेद-ज्ञान प्राप्त हुआ वह केवल वेदबीजभूत ओंकार था। वर्णात्मक ओंकार अकार, उकार और मकार—इन तीन मात्राओंके सघातसे निष्पन्न है। इसकी एक-एक मात्रासे गायत्रीके एक-एक चरणका विकास हुआ है। इसलिये त्रिपदा गायत्री ओंकारात्मक बीजका ही प्रस्फुटित अङ्कुर कहा जा सकता है। गायत्रीको 'स्तुता मया वरदा वेदमाता' आदि शब्दोंद्वारा वेदोंकी जननी कहा गया है, जिसका तात्पर्य यह है कि त्रिपदा गायत्रीसे ही वेदत्रयीका प्रादुर्भाव हुआ है।

ओंकारकी नाद और बिन्दु नामक अन्यतम दो मात्राएँ तो प्राणसाधनारत योगिजनोंके ही ध्येय हैं। वे ही पञ्चमात्रात्मक ओंकारके अधिकारी हैं। वर्णात्मक त्रैमात्रिक प्रणव निवृत्तिमार्गी द्विजमात्रका ध्येय है और आगमोक्त मनुष्यमात्रका उपास्य है।

आदिम महर्षिगण तो 'साक्षात्कृतधर्माणः' थे। उन्हें स्वयं पढ़नेकी आवश्यकता न थी। परंतु जब कालक्रमसे यह शक्ति क्षीण हो गयी, तब साक्षात्कृतधर्मा गुरुओंद्वारा असाक्षात्कृतधर्मा शिष्योंको वेदोपदेश देना आरम्भ किया गया। इस युगमें जिसको नारायणने सर्वप्रथम यह उपदेश मिला वह विवस्वान् अपर नामक सूर्यभगवान् ही थे। श्रीमद्भगवद्गीतामें भी श्रीकृष्णभगवान्‌ने 'इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्' (४ । १) यह रहस्य घोषित किया है। शुक्ल यजुर्वेदीय माध्यन्दिनीसंहिता तो महर्षि याज्ञवल्क्यने भगवान् सूर्यभगवान्‌से ही प्राप्त की थी, यह सर्वविदित है। इस प्रकार वैदिक ज्ञान-परम्पराके मूल-संस्थापक आदिप्रवर्तक और सूर्यभगवान्‌को ही है।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च

(लेखक—श्रीशिवकुमारजी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, दर्शनालङ्कार)

देवोपासनामें भगवान् सूर्यका विशिष्ट स्थान है। भगवान् सूर्यका प्रत्यक्ष दर्शन सभी जनोंको प्रतिदिन सुलभ होता है। ये अनुमानके विषय नहीं हैं, ये सम्पूर्ण विश्वको प्रतिदिन प्रकाशदानसे अनुगृहीत करते हैं। हम सबपर उनके असंख्य उपकार हैं। सभी वैदिक-स्मार्त अनुष्ठान एवं संसारके सभी कार्य भगवान् सूर्यकी कृपाके अधीन हैं। उनकी कृपा सब जीवोंपर समान है। सूर्यकी शोधक किरणें कीटाणुओंका नाशकर आरोग्य प्रदान करती हैं। सूर्यकी किरणें जिन घरोंमें नहीं पहुँचती, वहाँ विविध मच्छर आदि जीवों तथा कीटाणुओंका आवास होनेसे विविध रोगोंकी उत्पत्ति होती है। सूर्यकी किरणोंसे बढ़कर आरोग्य-प्रदानकी शक्ति अन्यत्र सुलभ अथवा सुगम नहीं है। सूर्यकिरणोंमें रोगविनाशक शक्तिके साथ परम-पावनता भी है। 'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'—सूर्य-नमस्कारसे मन तथा शरीरमें अद्भुत स्फूर्तिका संचार होता है। सूर्यकी विविध शक्तिसम्पन्न ये किरणें ही विविध रूप पृथिवीको सप्तविधरूप-(शुक्ल-नील-पीत-रक्त-हरित-कपिश-चित्र-) वाली बनाती हैं। इस प्रकार भगवान् सूर्य हमारे प्रत्यक्ष संरक्षक देव हैं। विश्वका एक-एक जीव उनकी कृपाका कृतज्ञ है। स्थावर-जङ्गम सभी उनसे विकासकी शक्ति पाते हैं। इसी दृष्टिको लेकर करोड़ों जन 'आदित्यस्य नमस्कारं ये कुर्वन्ति दिने दिने। जन्मान्तरसहस्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते ॥'—के अनुसार प्रतिदिन प्रातः-साय भगवान् सूर्यनारायणको पुष्पसमन्वित जलसे अर्घ्य देकर उनका शिरसा नमन करते हैं। धर्मशास्त्र हमें सूर्योदयसे पूर्व उठनेका आदेश देते हैं। 'तं चेदभ्युदियात् सूर्यः शयानं कामचारतः' आदि कहकर स्वस्थ पुरुषको सूर्योदयके पश्चात् उठनेपर उपवासका विधान बताया गया है। ये प्रकाशमय देव हमें प्रकाश देकर सत्कर्ममें प्रवृत्त होनेकी प्रेरणा देते हैं। गायत्रीके प्रतिपाद्य ये ही सूर्यदेव हैं। गायत्री-मन्त्रमें इन्हीं सवितादेवके तेजोमय स्वरूपके ध्यानका वर्णन है। 'सूर्यो याति भुवनानि पश्यन्' सूर्य लोकोंको—उनके कर्मोंको देखते हुए चलते हैं। अतः सूर्यका गमन प्रत्यक्ष सिद्ध है। 'मदचलो भूरचला स्वभावतः'—इस उक्तिके अनुसार पृथिवी अचल और सूर्य गतिशील हैं। भगवान् सूर्य दिव्य तेजोमय, ब्रह्मस्वरूप होनेसे कर्मोंके प्रेरक होनेसे 'सविता', 'सर्वोत्पादक', आकाशगामी होनेसे 'सूर्य' कहे जाते हैं। भगवान् सूर्य सम्पूर्ण जगत्के आत्मा हैं। वेदोंमें 'पर-अपर'रूपसे भगवान् सूर्यकी स्तुति है। ये भगवान् सूर्य प्रातः आश्चर्यजनकरूपसे रात्रिके सम्पूर्ण अन्धकारका विनाशकर सम्पूर्ण ज्योतियोंकी ज्योति लेकर उदित होते हैं। ये मित्र, वरुण और अग्नि आदि देवोंके चक्षुःस्वरूप हैं। सारे देव मनुष्यादिके रूपमें सूर्यके उदयमें ही अभिव्यक्त होते हैं। सूर्य उदित होकर आकाश तथा भूमिको अपने तेजसे व्याप्त कर देते हैं। सूर्य चर-अचर सभीके आत्मा हैं। वे सबके अन्तर्यामी हैं। देवोंके द्वारा प्रतिष्ठित तथा देवोंके हितकारक विश्वके शुद्ध निर्मल चक्षुःस्वरूप सूर्य पूर्वदिशामें उगते हैं। उनकी अनुकम्पासे हम सब सौ वर्षपर्यन्त नेत्रशक्तिसम्पन्न होकर उन्हें देखें। स्वाधीन-जीवन होकर सौ वर्षतक जीवित रहें। सौ वर्षपर्यन्त कर्णेन्द्रिय-सम्पन्न होकर सुनें। श्रेष्ठ वाक्-शक्तिसम्पन्न हों और दीनतासे रहित हों। किसीसे दीनता न दिखायें। सौ वर्षोंसे भी अधिक हम सर्वेन्द्रियशक्ति-सम्पन्न रहें—ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षᳪ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। (शु० यजु० ७। ४२) ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छु-

साधक हैं। अतः कर्मोंका कर्ता यह हाथ ही संसारके दुःखोंसे छुड़ानेवाला महान् औषध है, अतएव यही मुक्ति दिलाता है—

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः॥
(ऋ० १०। ६०। १२)

सूर्यकी जड़ता और परायणता भारतीय शास्त्रमें भी वर्णित है। पाश्चात्त्य विचारक तो इसे एक आगका गोला मानते ही हैं; किंतु चिन्तित हैं कि आगमें इन्धन चाहिये। यदि सूर्यरूपी इस आगके गोलेमें इन्धन न पहुँच पायगा और यह शान्त हो जायगा तो दुनियाकी क्या दशा होगी? भारतीय शास्त्रोंके विज्ञाताओंने उपासनाको ही उपास्यका पोषक मानकर इस समस्याका समाधान किया है। अतः सूर्यका जितना अधिक आराधन किया जायगा, उतना ही अधिक सूर्यका पोषण एवं लोकका हित होगा। कोई किसीकी प्रशंसा करता है तो प्रशस्य व्यक्ति प्रफुल्ल एवं प्रमुदित होता है—ऐसा प्रत्यक्ष देखा जाता है। वेद भी कहते हैं—'प्रभो! हमारी ये सुन्दर उक्तियाँ आपके तेज-बल आदिको बढ़ावें—व्यक्त करें—जिससे आप हमारी रक्षा एवं पालन-पोषण करें—

वर्धन्तु त्वां सुष्टुतयो गिरो मे [illegible]
यूयं पात स्वस्तिभिः [illegible]

सूर्यको वेद एवं पुराण आदि शास्त्रोंमें [illegible] समुत्पन्न माना गया है[1], कहीं चक्षुसे उद्[illegible] चक्षुस्वरूप ही माना गया है। कहीं [illegible] समुत्पन्न और कई स्थलोंमें साक्षात् परब्रह्म [illegible] विष्णु और शंकर आदि देवोंका उपास्य [illegible] गया है[3]। इन सभी विभिन्न वाक्योंका सम[illegible] अवश्य है; किंतु असम्भव नहीं।

अध्यात्म, अधिभूत एवं अधिदैव—ये ती[illegible] प्रत्येक दृष्ट-श्रुत वस्तुओंके माने जाते हैं। अधिभू[illegible] अध्यात्म—आत्मा (जीव) और अधिदैव[illegible] अन्तर्यामी कहलाता है। इन्हीं तीनों रूपोंसे [illegible] सूर्यका विभिन्न रूपसे वर्णन किया गया है। [illegible] विधान है—'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'। इसके [illegible] आराधना करनेपर भगवान् सूर्य आराधकके श[illegible] स्वस्थ बनाते हैं। शरीर ही धर्मादि पुरुषार्थचतु[illegible] साधक है। केवल प्राणी ही नहीं, चराचरात्मक [illegible] जगत्का सूर्यद्वारा अपार हित होता है। अतएव [illegible] आस्तिक हो या नास्तिक, चाहे आर्यसनातनी हो [illegible] अन्य धर्मावलम्बी—सभीके लिये जीवनप्रदान करने[illegible] ये सूर्य भगवान् उपास्य एवं पूज्य हैं, वे हमारी रक्षा करें।

सर्वोपकारी सूर्य

देवः किं बान्धवः स्यात्प्रियसुहृदथवाऽऽचार्य आहोस्विदर्यो
रक्षाचक्षुर्नु दीपो गुरुरुत जनको जीवितं बीजमोजः।
एवं निर्णीयते यः क इव न जगतां सर्वथा सर्वदाऽसौ
सर्वाकारोपकारी दिशतु दशशताभीषुरभ्यर्थितं नः॥

जिन भगवान् सूर्यनारायणके विषयमें यह निर्णय हो नहीं पाता कि वे बान्धवमें देवता हैं या बान्धव[illegible] प्रिय मित्र हैं (अथवा वेदके उपज) आचार्य किंवा अर्य स्वामी; वे क्या हैं—रक्षानेत्र हैं अथवा [illegible] दीपक; वे धर्माचार्य गुरु हैं अथवा जन्मदाता पिता; प्राण हैं या जगत्के प्रमुख आदिकारण; बल हैं अथवा ओ[illegible] तेज! किंतु इतना निश्चय है कि सभी कालों, सभी देशों और सभी दशाओंमें वे कल्याण करनेवाले हैं। वे सहस्ररश्मि (भगवान् सूर्य) हम सबका मङ्गल मनोरथ पूर्ण करें। (मयूरशतक १००)

---

1 चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत। (ऋ० १०। ९०। १३) 2. चक्षोः सूर्यो अजायत। (यजुर्वेद ३१। १२) [illegible]
3 [illegible] विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः। (आदित्यहृदय, वा० रा० यु० १०७। ८)

चराचरके आत्मा सूर्यदेव

(लेखक—श्रीजगन्नाथजी वेदालंकार)

[illegible] वेदोंमें सूर्य, सविता और उनकी शक्तियों—मित्र, [illegible]ग, अर्यमा, भग और पूषाके प्रति अनेक सूक्त सम्बोधित [illegible] गये हैं । उनके स्वाध्याय और मननसे विदित [illegible] है कि सूर्य एवं सविता जड़-पिण्ड नहीं, अग्निका [illegible] ही नहीं, अपितु ताप, प्रकाश, जीवनशक्तिके [illegible]ता, प्रजाओंके प्राण 'सूर्य' या 'नारायण' हैं । [illegible]न्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।' [illegible] ऋक्० १० । ९० । १३), 'यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च [illegible]नर्णवः । अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे [illegible]मः' (अथर्व० १० । ७ । ३३) 'यतः सूर्य उदेत्यस्तं [illegible] च गच्छति । तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं-[illegible]न ॥' (अथर्व० १० । ८ । १६) इत्यादि मन्त्रोंमें सूर्यको [illegible]रन पुरुष परमेश्वरके चक्षुसे उत्पन्न, ज्येष्ठ ब्रह्मका चक्षु [illegible]था उन्हींसे उदित और उन्हींमें अस्त होनेवाला कहा [illegible]या है । अतः सूर्यदेव मानव-देहकी भाँति जड़-चेतनात्मक हैं । जैसे हमारी देह जड़ और उसमें विराजमान आत्मा चेतन है वैसे ही सूर्यका बाहरी आकार (पिण्ड) भौतिक या जड़ है, पर उसके भीतर चेतन आत्मा विराजमान है । वे एक देवता हैं—बाह्य और आन्तर प्रकाशके दाता, ताप और जीवनशक्तिके अक्षय भाण्डार, सकल सृष्टिके प्राणस्वरूप । वे आत्मप्रसाद और अप्रसाद—कोप और कृपा, वर और शाप, निग्रह और अनुग्रह करनेमें सर्वथा समर्थ सूर्य-नारायण हैं ।

वैज्ञानिक जगत्को जब यह विदित हुआ कि हिंदू-धर्मके अनुसार सूर्य एक देवता हैं जो प्रसन्न एवं अप्रसन्न भी होते हैं तो एक क्रान्ति उत्पन्न हो गयी । उन्होंने इसकी सत्यता जाँचनेके लिये परीक्षण करना प्रारम्भ कर दिया । मिस्टर जार्ज नामक एक विज्ञानके प्रोफेसरने इस परीक्षणमें सफलता प्राप्त की । ज्येष्ठमासकी कड़कती धूपमें वे केवल पाजामा पहने हुए पाँच मिनट सूर्यके सामने ठहरे । फिर जब कमरेमें जाकर तापमान देखा तो १०२ डिग्री ज्वर चढ़ा पाया । दूसरे दिन पूजाकी सब सामग्री—पत्र, पुष्प, धूप-दीप, नैवेद्य आदि लेकर यथाविधि श्रद्धासे पूजा की, शास्त्रोक्त रीतिसे सूर्य-नमस्कार किया । उसमें ११ मिनट लगे । जब कमरेमें जाकर थर्मामीटरसे तापमान देखा तो ज्वर पूरी तरहसे उतरा पाया । इस परीक्षणसे वे इस निश्चयपर पहुँचे कि सूर्य वैज्ञानिकोंके कथनानुसार अग्निका गोला ही हो, ऐसी बात नहीं है । उसमें चेतन सत्ताकी भाँति कोप-प्रसादका तत्त्व भी विद्यमान है । अतः विज्ञानसे भी सूर्य-नारायणका देवत्व स्पष्ट हो जाता है । वेदोंमें कहा गया है—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (ऋक्० १ । ११५ । १) सूर्यदेव स्थावर और जङ्गम जगत्के जड़ और चेतनके आत्मा हैं । इन्हें मार्तण्ड* भी कहते हैं; क्योंकि ये मृत अण्ड (ब्रह्माण्ड) मेंसे होकर जगत्को अपनी ऊष्मा तथा प्रकाशसे जीवन-दान देते हैं । इनकी दिव्य किरणोंको प्राप्त करके ही यह विश्व चेतन-दशाको प्राप्त हुआ और होता है । इन्हींसे चराचर जगत्में प्राणका सञ्चार होता है—'प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः' (प्रश्न० १ । ८) । अतएव वेद भगवान् सूर्यसे शक्ति और शान्तिकी प्राप्तिके लिये उनकी पूजा और प्रार्थना करनेकी आज्ञा देते हैं—

सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ।
सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।
ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ।

* मृतेऽण्ड एष एतस्मिन् यदभूत ततो मार्तण्ड इति व्यपदेशः ।

सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या ।
जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥
(यजु० ३।१०)

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु
शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नो देवः सविता त्रायमाणः
शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
(—ऋ० ७।३५।८,१०)

तैत्तिरीय आरण्यकमें कहा गया है कि उदय और अस्त होते हुए सूर्यका ध्यान और उपासना करनेसे ज्ञानी ब्राह्मण सब प्रकारकी सुख-सम्पदा और कल्याण प्राप्त करते हैं—उद्यन्तमस्तं यन्तमादित्यमभिध्यायन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते ।

अब यहाँ वेदके कतिपय सूक्तों, मन्त्रोंके भावोंद्वारा सूर्यभगवान्‌के महनीय स्वरूप और कार्य-व्यापारका निरूपण किया जाता है ।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥
(—ऋ० १।५०।१)

'उस सर्वज्ञ सूर्यदेवको उसकी किरणें, उसके ध्वजा-रूपी अश्व (क्षितिजपरसे आकाशमें) ऊपर ले जा रहे हैं ताकि सम्पूर्ण विश्व, सभी प्राणी उनके दर्शन करें।'

आध्यात्मिक अर्थ— अन्तर्ज्ञानकी रश्मियाँ उपासकको सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, स्वयंप्रकाश, सूर्य-परमात्मदेवकी ओर ले जाती हैं जिससे कि वह इस विश्वके रहस्यको साक्षात् देख-समझ सके ।

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।
सूराय विश्वचक्षसे ॥ (—ऋ० १।५०।२)

'ये सब नक्षत्रगण रात्रिके अन्धकारके साथ चोरोंकी भाँति चुपकेसे इस विश्वदर्शी सूर्यके सामनेसे भागे जा रहे हैं।'

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥

'[illegible] अग्नि-जैसे [illegible] मनुष्य आदि सभी जीव-जन्तुओंको [illegible] रही है ।'

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि [illegible]
विश्वमा भासि [illegible]
(—ऋ० १।[illegible])

'हे सूर्यदेव ! आप अन्धकारसे [illegible] सर्वसुन्दर, परम दर्शनीय, ज्योतिके [illegible] सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को [illegible] करते हैं ।'

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि [illegible]
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥ (—ऋ० १।[illegible])

'द्युलोकवासी प्रजाओं, मनुष्यों तथा [illegible] सम्मुख आप उदित हो रहे हैं ताकि वे [illegible] स्वर्गीय ज्योतिके दर्शन करें ।'

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ [illegible]
त्वं वरुण पश्यसि ॥ (—ऋ० १।[illegible])

'हे पवित्रीकारक, पापनाशक वरुणदेव ! [illegible] तुम लोगोंमें कर्मपरायण मनुष्यके सत्य-अनृतका [illegible] करते हो वह यही सूर्यरूपी नेत्र है ।'

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः ।
पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥ (—ऋ० १।५०।[illegible])

'हे सूर्यदेव ! रात्रिके योगसे दिवसोंको [illegible] हुए या अपनी किरणोंसे दिनोंका माप करते हुए [illegible] उत्पन्न प्राणिमात्रका निरीक्षण करते-करते द्युलोक और विशाल अन्तरिक्ष-प्रदेशमें संचरण करते रहते हैं ।'

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।
शोचिष्केशं विचक्षण ॥ (—ऋ० १।५०।८)

'हे सूक्ष्मदर्शिन् निरालदृष्टे सूर्यदेव ! आपके [illegible] रूपी सात अश्व किरणरूपी केशोंसे सुशोभित आपको रथमें ले जा रहे हैं ।'

सप्त युक्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।
[illegible] स्वयुक्तिभिः ॥ (—ऋ० १।५०।९)

...सर्वप्रेरक सूर्यदेवने अपने रथको सात पवित्र और ...कारक कन्याओंको रथमें जोत रखा है। स्वय ही ...युत जानेवाले इन अश्वोंकी सहायतासे वे अपने ...का अनुसरण करते हैं।'

...उद् वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्।
...देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥
(—ऋ० १।५०।१०)

'अन्धकारके उस पार श्रेष्ठ तेजका दर्शन करते-...ते हम देवलोकमें सर्वश्रेष्ठ-ज्योतिःस्वरूप सूर्यदेवके पास ...च गये हैं।'

...आध्यात्मिक अर्थ—अन्तर्यज्ञ करनेवाले हम उपासक ...ज्ञानान्धकारके ऊपर उच्च और फिर उच्चतर ज्योतिका ...क्षात्कार करते हुए अन्तमें उच्चतम-ज्योतिःस्वरूप, देवोंमें ...रमदेव परमात्म-सूर्यतक जा पहुँचे हैं।

...द्रोग, कामला आदि रोगोंके नाशक सूर्यदेव

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥

'हे मित्रकी भाँति उपकारक तेजसे सम्पन्न सूर्यदेव! ...आप आज उदित होकर फिर उच्चतर बृहत् द्यौमें आरोहण ...करते हुए मेरे इस हृद्रोग तथा पीलिया (कामला रोग)-का ...विनाश कर दीजिये।'

...शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि॥
(—ऋ० १।५०।१२)

'अपना पीलिया (पीलापन) हम अपने शरीरसे ...अलग कर उसी रंगके शुक और सारिका-नामक पक्षियोंमें ...तथा हारिद्रव नामक वृक्षोंमें रख देते हैं।'[2]

उद्गादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह।
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं द्विषते रधम्॥
(—ऋ० १।५०।१३)

अदितिके पुत्र ये आदित्यदेव मेरे लिये उपद्रवकारी शत्रु और रोगका नाश करते हुए अपने सम्पूर्ण बलके साथ मेरे समक्ष उदित हुए हैं। (अपना समस्त भार उनपर सौंप चुका हूँ—मैं सूर्यभगवान्‌का उपासक हूँ) अतः अपने अनिष्टकारी मानुष या अमानुष प्राणी या रोगका स्वयं नाश न करूँ, मेरे द्वेषीके विषयमें जो कुछ करना है उसे सूर्य भगवान् ही मेरे लिये करें।

चित्रं देवानामुदगादनीकं
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं
सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥
(—ऋ० १।११५।१)

'देवोंके ये सुन्दर मुख, मित्र-वरुण और अग्निके नेत्र ये सूर्यदेव उदित हुए हैं। स्थावर-जङ्गम-विश्वके आत्मा इन सूर्यदेवने द्यौ, पृथिवी और अन्तरिक्ष—इन तीनों लोकोंको अपने दिव्य प्रकाशसे भर दिया है।'

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां
मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि
वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम्॥
(—ऋ० १।११५।२)

'भगवान् प्रातःकालकी जिस बेलामें सूर्य सौन्दर्यसे दीप्यमान उषादेवीका उसी प्रकार अनुगमन करते हैं जिस प्रकार पति अपनी अनुरक्ता पत्नीका, उस समयमें देवत्वकामी मनुष्य उच्चतर कल्याणकी ओर ले

१. सूर्य किरण चिकित्साके द्वारा सूर्यके भिन्न-भिन्न रंगोंकी किरणोंके यथाविधि सेवनसे देहके विषों और रोगोंका नाशकर बाह्य और आन्तर स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है। इसकी विधियाँ विकसित हो चुकी हैं।

भिन्न भिन्न रंगोंकी बोतलोंमें जल भरकर उसे सूर्यकी धूपमें रखनेसे उसमें नाना रोगोंके नाशकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

२. सूर्यदेवकी यथाविधि उपासनासे प्राप्त उनकी कृपा तथा मन्त्रबलसे अपना पीलापन अपने शरीरसे निकालकर उसे उस रंगके पक्षियों या वृक्षोंमें फेंका जा सकता है जिनके लिये वह स्वाभाविक और शोभावर्धक होता है।

जानेवाले कल्याणकी अभिलाषासे अपने यज्ञायोजनोंका विस्तार करते हैं।'

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य
चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः
परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः॥
(—ऋक्० १। ११५। ३)

'सूर्यके कल्याणकारी, कान्तिमय, नानावर्ण, शीघ्र-गामी, आनन्ददायी एवं स्तुत्य रश्मिरूप अश्व अपने स्वामी सूर्यकी पूजा करते हुए द्युलोकके पृष्ठपर आरूढ़ होकर तत्क्षण ही द्यावापृथिवीको व्याप्त कर लेते हैं।'

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं
मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्था-
दाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै॥
(—ऋक्० १। ११५। ४)

'यह भगवान् सूर्यका देवत्व और महिमा है कि वे अपने कार्यके बीचमें ही अपने फैले हुए रश्मिजालको समेट लेते हैं। जिस समय वह अपने कान्तिमान्, रश्मिरूप अश्वोंको अपने रथसे समेटकर अपनेमें संयुक्त कर लेते हैं, उसी समय रात्रि समस्त जगत्के लिये अपना अन्धकाररूप वस्त्र बुनती है।'

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे
सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः
कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति॥
(—ऋक्० १। ११५। ५)

'सबके प्रेरक भगवान् सविता अपनी प्रेम-साम-ञ्जस्यमयमूर्ति मित्रदेव तथा अपनी पवित्र्य-वैशाल्यमय-मूर्ति वरुणदेवके सम्मुख मर्त्योंकारी गोदमें अपना तेजोमय स्वरूप प्रकट कर रहे हैं। इन[illegible] इनका एक अनन्त, दीप्यमान, दि[illegible] तथा दूसरा निशान्धकाररूपी कृष्[illegible] लाते रहते हैं।'

अद्या देवा उदिता सूर्[illegible]
निरंहसः पिपृता नि[illegible]
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिति[illegible]
सिन्धुः पृथिवी उत[illegible]
(—ऋक्० [illegible]

'हे देवो! आज सूर्योदयके समय ह[illegible] कर्म और अपकीर्तिके गर्तसे निकालकर हम[illegible] मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और [illegible] देव हमारी इस प्रार्थनाका सम्मान कर इसे[illegible] हमारी उन्नति और अभिवृद्धि साधित करें।'

रोग-सङ्कटादिके निवारक सूर्यदे[illegible]

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो
जगच्च विश्वमुदियर्षि भा[illegible]
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामी-
वामप दुष्ष्वप्न्यं [illegible]
(—ऋक्० १०। १[illegible]

'हे सूर्यदेव! जिस ज्योतिसे आप तमस[illegible] करते और सम्पूर्ण जगत्को अपने तेजसे अभ्युद[illegible] कराते हैं, उसीसे आप हमारे समस्त रिक्त-सङ्कट, [illegible] भावना, आधि-व्याधि तथा दुःस्वप्न-जनित अनिष्ट[illegible] निवारण कर दीजिये।'

सर्वश्रेष्ठ ज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं
विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत्।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश
उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम्॥
(—ऋक्० १०। १७०। ३)

● 'उदिता सूर्यस्य' इन पदोंका लाक्षणिक अर्थ यह है कि सूर्यदेव मित्र, वरुण तथा अन्य देवोंके नेता हैं। [illegible] देवोंके कृपाभाजन एवं वात्सल्यके भाजन हैं। अतः ये सूर्य उदित होनेपर सभी देवोंके समक्ष हमारे हित[illegible] [illegible] सकते हैं तथा वे देव भी हमें पापसे बचाते हुए हमारी प्रगति एवं [illegible]

यह सौर-ज्योति-ग्रह-नक्षत्र आदि ज्योतियोंकी भी …, उनकी प्रकाशक सर्वश्रेष्ठ, सर्वोच्च ज्योति है। … वेदाग्र, विश्वविजयी और ऐश्वर्यविजयी कहलाती …

सम्पूर्ण विश्वको प्रकाशित करनेवाले ये महान् … समान सूर्यदेव अपने विस्तृत तमको अभिभव …वाले, अविनाशी ओज-तेजका सबके दर्शनके लिये …प्रकाश करते हैं।'

देवयानके अधिष्ठाता

…ध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽ
…स्मिन्पथि देवयाने भूयात् ॥*(यजु० ५ । ३३)

'हे मङ्गल मार्गोंके स्वामिन् सूर्यदेव ! मुझे पार …इये। इस देवयानमार्गपर मेरा पूर्ण मङ्गल हो !!'

देवोंमें परम तेजस्वी

सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि
भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥ (—यजु० ८। ४०)

'हे परमतेजस्विन् सूर्यदेव ! आप देवोंमें सबसे अधिक देदीप्यमान हैं, मैं भी मनुष्योंमें सबसे अधिक देदीप्यमान परम तेजस्वी हो जाऊँ।'

पाप-तापमोचक

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनाꣳसि चकृमा वयम्।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥
(—यजु० २० । १६)

'जागते या सोते यदि हमने कोई पाप किये हों तो भगवान् सूर्यदेव हमें उन समस्त पापोंसे, कुटिल कर्मोंसे मुक्त कर दें।'

सबके वशीकर्ता

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य।
सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥
(—यजु० ३३ । ३५)

'हे वृत्रघातक, असुरसंहारक सूर्यदेव ! जिस किसी भी पदार्थ एवं प्राणीके सामने आप आज उदित हुए हैं वह सब—वे सभी आपके वशमें हैं।'

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ
शृणुयाम शरदः शतम् ॥
प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं
भूयश्च शरदः शतात्।
(—यजु० ३६ । २४)

'देखो ! वे परमदेवद्वारा स्थापित शुद्ध, पवित्र, देदीप्यमान, सबके द्रष्टा और साक्षी, मार्गदर्शक सूर्यरूप चक्षु हमारे सामने उदित हुए हैं। उनकी कृपासे हम सौ वर्षोंतक देखते रहें, सौ वर्षोंतक जीवित रहें, सौ वर्षोंतक श्रवणशक्तिसे सम्पन्न रहें, सौ वर्षोंतक प्रवचन करते रहें, सौ वर्षोंतक अदीन रहें, किसीके अधीन होकर न रहें, सौ वर्षोंसे भी अधिक देखते, सुनते, बोलते रहें, पराधीन न होते हुए जीवित रहें।'

आवाहन—सूर्योपासनाका मन्त्र

उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि।
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि
तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि
परमे व्योमन् ॥ (—अथर्व० १७ । १ । ७)

'हे भगवान् सूर्यदेव ! आप उदित हों, उदित हों, अध्यात्म तेजके साथ मेरे समक्ष उदित हों। जो मेरे दृष्टिगोचर होते हैं और जो नहीं होते उन सबके प्रति मुझे सुमति दें। हे सर्वव्यापक सूर्यदेव ! आपके ही नानाविध बलवीर्य नाना प्रकारसे कार्य कर रहे हैं। आप हमें सब प्रकारकी दृष्टि-शक्तियोंसे पूर्ण और परितृप्त कीजिये, परम व्योममें अमृतत्वमें प्रतिष्ठित कर दीजिये।'

* कहीं बाहर कार्यके लिये जाते समय पूर्ण श्रद्धाभक्ति और एकाग्रताके साथ इस मन्त्रका जप करके तथा जप करते हुए जानेसे कार्य-सिद्धि होती है।

सूर्य-स्वरूपमें ही अपने आराध्य देवताका ध्यान करते हैं। सूर्यके समक्ष साधुजन शुभ प्रेरणाके निमित्त गायत्री-मन्त्रसे प्रार्थना निवेदित करते हैं। इस विराट् आलोकधाराके साथ एकात्मताकी भावना ही दिव्य भगवदीय प्रेम, परमगति तथा परमशान्ति है। जो प्रेम सूर्यके प्रकाशसे उद्भासित है, वही सच्चा प्रेम है। कवि, ज्ञानी और दार्शनिक—सभी सम्पूर्ण जगत्के साथ प्रेमसम्बन्ध स्थापित करके सच्चे मानव बन सकते हैं।

हम ध्यान करते हैं—'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य' परम आदरणीय ये सविता देवता 'भर्ग' अर्थात् दीप्तिसे समस्त विश्वको आलोकित और नियन्त्रित करते हैं। सूर्य देवताकी यह प्रार्थना भारतीय संस्कृतिकी विशिष्ट प्रार्थना है। वैदिक ऋषियोंने सत्य-दर्शनके लिये किस यन्त्र-तन्त्रके द्वारा इस तेजपुञ्जकी महामहिमाका अवधारण किया था, यह कथा आज हमें ज्ञात नहीं है। किंतु वर्तमान युगके वैज्ञानिक उन यन्त्रोंकी सहायतासे गगन-मण्डलचारी नक्षत्रमण्डलके साथ नाना प्रकारसे परिचय-सम्बन्ध और अनुसन्धानके निमित्त सतत जाग्रत् हैं। कल्याण-प्रदाता परब्रह्मस्वरूप इन्हीं भगवान् सूर्यका हम नित्य स्मरण करते हैं।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ (—ऋक्० १।५०।१)

स्वयंप्रकाश सूर्य समस्त प्राणिसमूहको जानते हैं। उनके अश्वगण (किरणसमूह) उनके दर्शनके लिये उन्हें ऊँचे किये रखते हैं। प्राचीन कालमें लोग जानते थे कि अनन्त आकाशमें बहुत-से ब्रह्माण्ड हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डका पृथक् नियन्त्रण और अपनी-अपनी महिमा तथा विशिष्ट अवस्थिति है। यद्यपि हमारा यह सौर-जगत् ब्रह्माण्डकी गुफामें क्षुद्र है; तथापि इस ब्रह्माण्डके ब्रह्मा चतुर्भुज हैं, बृहत्तरमण्डलोंके ब्रह्मा [illegible] तथा कोई सहस्रमुख हैं। आधुनिक [illegible] प्रकारके बृहत्तर नक्षत्रमण्डलोंमें सौर जगत्के [illegible] सम्बन्धमें निःसंदेह हैं। उनके विज्ञान[illegible] दूर-दूरान्तरके विचित्र नक्षत्रोंके समूहोंका [illegible] कर दिया है। एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विज्ञानीने [illegible] राशिके परिमण्डलके मध्यमें 'एम० ८७' [illegible] अपरिमेय बृहत् उपनक्षत्रका अनुसंधान [illegible] कैलिफोर्नियामें माउंट पैलोमरमें अवस्थित [illegible] एवं आरिजोनामें किटपित्रके राष्ट्रिय मानमन्दिरने [illegible] करके उक्त वक्तव्यका समर्थन किया [illegible] 'एम० ८७' मण्डलकी गुरुत्वाकर्षणशक्ति है। परिमण्डलमें अवस्थित इसी 'एम० ८७'ने के १०० नक्षत्रोंको अपनी आकर्षणशक्तिसे स्थिर बना रखा है। वैज्ञानिकोंका मत है कि [illegible] पर विचार करनेसे लगता है—जैसे कोई [illegible] रहकर ग्रह-मण्डलोंकी गतिविधिको नियन्त्रित [illegible] करता है। वही शक्ति विभिन्न प्रकारसे ५००० प्रकाशवर्षोंकी दूरीतक प्रेरण [illegible] 'सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य'—कहकर मानो वैदिक ऋषिगण इसी अदृश्य तात्त्विक शक्तिके इंगित पर नित्य अभ्यर्थना करनेकी प्रेरणा देते हैं।

प्रतत्ते अद्य शिपिविष्ट नामार्यः
शंसामि वयुनानि विद्वान्।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्
क्षयन्तमस्य रजसः पराके॥
(—ऋग्वेद ७।१००।५)

हे ज्योतिर्मय प्रभो! तुम्हारे नामकी महिमा [illegible] मैं उसीका कीर्तन करता हूँ। हे महामहिमामय [illegible]! क्षुद्र होते हुए भी हम ब्रह्माण्डके उस पार अवस्थित तुम्हारे लिये आदरकी स्तुति करता हूँ। (आप मुझे यह परम कल्याण दें; आप कल्याण मूर्ति हैं।)

सर्वस्वरूप भगवान् सूर्यनारायण

(लेखक—पं० श्रीवैद्यनाथजी अग्निहोत्री)

भुवन-भास्कर भगवान् श्रीसूर्यनारायण प्रत्यक्ष देवता प्रकाशस्वरूप हैं। वेद, इतिहास और पुराण आदिमें अतीव रोचक तथा सारगर्भित वर्णन मिलता है। ज्ञानस्वरूप अपौरुषेय वेदके शीर्षस्थानीय परम उपनिषदोंमें भगवान् सूर्यके स्वरूपका मार्मिक वर्णन है। उपनिषदोंके अनुसार सबका सारतत्त्व एक, अनन्त, अखण्ड, अद्वय, निर्गुण, निराकार, नित्य, सत्-चित्-आनन्द तथा शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप ही परमतत्त्व है। उसका न कोई नाम है न रूप, न क्रिया है न सम्बन्ध और न कोई गुण एवं न जाति ही है। तथापि गुण, सम्बन्ध आदिका आरोप कर कहीं उसे ब्रह्म कहा गया है, कहीं विष्णु, कहीं शिव, कहीं नारायण, कहीं देवी और कहीं भगवान् 'सूर्यनारायण'।

भगवान् सूर्यके तीन रूप हैं—(१) निर्गुण निराकार, (२) सगुण निराकार और (३) सगुण साकार।

प्रथम तथा द्वितीय निराकार-रूपको एक मानकर कहीं दो ही रूपोंका वर्णन मिलता है। जैसे 'मैत्रायण्युपनिषद्'में आया है—

> द्वे वाव ब्रह्मणो रूपं मूर्तं चामूर्तं च। अथ यन्मूर्तं तदसत्यं यदमूर्तं तत्सत्यं तद्ब्रह्म, यद्ब्रह्म तज्ज्योतिर्यज्ज्योतिः स आदित्यः। (५।३)

'ब्रह्मके दो रूप हैं—एक मूर्त—साकार और दूसरा अमूर्त—निराकार। जो मूर्त है, वह असत्य—विनाशी है और जो अमूर्त है, वह सत्य—अविनाशी है। वह ब्रह्म है। जो ब्रह्म है, वह ज्योतिः-प्रकाशस्वरूप है और जो ज्योति है, वह आदित्य—सूर्य है।'

यद्यपि भगवान् सूर्य निर्गुण निराकार हैं तथापि अपनी मायाशक्तिके सम्बन्धसे सगुण कहे जाते हैं। वस्तुतः सामान्य सम्बन्धसे नहीं, तादात्म्याध्यास-सम्बन्धसे ही गुणोंका आरोप, क्रियाका कथन, संसारका सर्जन-पालन तथा संहारका भी आरोप होता है। अघटित-घटना-पटीयसी मायाके कारण ही वे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, उपास्य तथा समस्त प्राणियोंके कर्मफलप्रदाता कहे जाते हैं। भगवान् सूर्यद्वारा ही सृष्टि होती है। वे अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं। अतः चराचर समस्त संसार सूर्यका रूप ही है। सूर्योपनिषद्में इसीका प्रतिपादन कुछ विस्तारसे किया गया है।

कारणसे कार्य भिन्न नहीं होता। सूर्य कारण हैं और अन्य सभी कार्य। इसलिये सभी सूर्यस्वरूप हैं और वे सूर्य ही समस्त प्राणियोंकी आत्मा हैं। यह सूर्यका एकत्व ज्ञान ही परम कल्याण—मोक्षका कारण है। स्वयं भगवान् सूर्यका कथन है—'त्वमेवाहं न भेदोऽस्ति पूर्णत्वात् परमात्मनः' (—मण्डलब्राह्मणोपनिषद् ३।२) 'परम आत्माके पूर्ण होनेके कारण कोई भेद नहीं है। तुम और मैं एक ही हैं।' "ब्रह्माहमस्मीति कृतकृत्यो भवति" (—मण्डलब्रा० ३।२) 'मैं ब्रह्म ही हूँ—यह जानकर पुरुष कृतकृत्य होता है।' इस प्रकार निर्गुण-सगुण निराकार भगवान् सूर्यके अभिन्न ज्ञानसे परमपद—मोक्ष प्राप्त होता है।

सगुण निराकार और सगुण साकारस्वरूपकी उपासना-का वर्णन अनेक उपनिषदोंमें मिलता है। 'य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीत' (छा० १।३।१)। जो ये भगवान् सूर्य आकाशमें तपते हैं, उनकी उद्गीथ-रूपसे उपासना करनी चाहिये। 'आदित्यो ब्रह्मेति' (छा० ३।१९।१)। आदित्य ब्रह्म है—इस रूपमें आदित्यकी उपासना करनी चाहिये— 'आदित्य ओमित्येवं ध्यायंस्तथात्मानं युञ्जीतेति'

भारतीय संस्कृतिमें सूर्य

(लेखक—प्रो० डॉ० श्रीरामजी उपाध्याय एम्० ए०, डी० लिट्०)

तद् बहुधा चकास्ति
यद्येन भावी भविता न जातु ।
तच्चक्षुरर्कात्मकमीश्वरस्य
वन्दे वपुस्तैजससारधाम्नः ॥

भारतीय संस्कृतिमें आरम्भसे ही सूर्यकी महिमा शय रही है। वह भारतीय आध्यात्मिक जीवनका तम आदर्श प्रस्तुत करती है। स्वामी रामतीर्थके तोंमें सूर्य सबसे बड़े संन्यासी हैं; क्योंकि वे सबको श और जीवन-प्रदान करते हैं।* प्रकाश देनेका आचार्यका है। वैदिक कालमें ही सूर्यको आचार्यरूप-तिष्ठा प्राप्त हुई थी। भगवान् सूर्यने याज्ञवल्क्यको वाजस-संहिताका उपदेश दिया था। गायत्रीके 'धियो यो नः दयात्'के द्वारा सूर्यका गुरुत्व ब्रह्मचारी और चार्यके सम्बन्धमें प्रस्फुटित हुआ है। वैदिक युगसे उपनयनमें अपनी और विद्यार्थीकी अञ्जलि जलसे र आचार्यके मन्त्र पढ़नेकी विधि रही है; यथा—

तत् सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् ।
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥
(—ऋग्वेद ५ । ८२ । १)

अर्थात्—'हम सवितादेवके भोजनको प्राप्त कर रहे हैं। यह श्रेष्ठ है, सबका पोषक और रोगनाशक है।' यह मन्त्र पढ़कर आचार्य अपने हाथका जल विद्यार्थीकी अञ्जलिमें डाल देते और उसका हाथ अँगूठेसे पकड़ लेते थे। इसके पश्चात् आचार्य कहते थे—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां
पूष्णो हस्ताभ्यां गृभ्णाम्यसौ ।

'सवितादेवके अनुशासनमें अश्विद्वयकी बाँहोंसे, तथा पूषाके हाथोंसे मैं तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ।'

इस प्रकार शिष्य और आचार्यके सम्बन्धमें सूर्यकी उपस्थिति प्रमाणित होती थी और यह सिद्ध किया जाता था कि जैसे सूर्य प्रकाश देकर जगत्का अन्धकार निरन्तर दूर करते हैं, वैसे ही आचार्य शिष्यका अज्ञानान्धकार दूर करते रहेंगे। इस अवसरपर सूर्यसे प्रार्थना की जाती थी—

मयि सूर्यो भ्राजो दधातु—अर्थात्—'सूर्य मुझमें प्रकाशकी प्रतिष्ठा करें।'

सूर्यसे आजीवन कर्मयोगकी शिक्षा प्राप्त होती है। सूर्य शब्दकी व्युत्पत्ति है—सुवति प्रेरयति कर्मणि लोकम् अर्थात् सूर्य यतः लोकको कर्ममें लगा देते हैं अतः 'सूर्य' हैं।

सूर्यको निष्काम कर्मकी प्रेरणा परमात्म-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णसे मिली जैसा कि गीता (४ । १)में उन्होंने स्वयं कहा है।

सूर्यके सात अश्वोंद्वारा निष्काम कर्मयोगका चारित्रिक आदर्श प्रस्तुत किया गया है। उनके नाम ये हैं—

जयोऽजयश्च विजयो जितप्राणो जितश्रमः ।
मनोजवो जितक्रोधो वाजिनः सप्त कीर्तिताः॥

परम्परा भी सूर्यवंशमें निष्काम कर्मयोग और आत्मज्ञानकी शेवधि (कोष) रही है। सूर्यके पुत्र यमसे नचिकेताने कर्मयोगकी शिक्षा प्राप्त की थी।

सूर्यकी उपर्युक्त विशेषताओंके आधारपर पौराणिक युगमें सौर-सम्प्रदायका प्रवर्तन हुआ। किसी देवताके नामपर सम्प्रदाय बनना तभी सम्भव होता है, जब वह सृष्टिका कर्ता हो, उससे सारी सृष्टिका उद्भव होता हो

* सत्य तातान सूर्यः। (ऋग्वेद १ । १०५ । १२) यह आध्यात्मिक जीवनका प्रतीक वाक्य है।

और अन्तमें उसमें सारी सृष्टि । विलय भी हो जाता है । इसकी पुष्टि सूर्योपनिषद्में प्राप्त होती है । ऋग्वेद (१ । ११५ । १)में भी इस धारणाका परिपाक हुआ है । उसके अनुसार—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।

अथर्ववेदमें सूर्यका नाम विश्वकर्मा मिलता है । इससे उनकी सृष्टि-रचनाकी योग्यता प्रमाणित होती है ।

सूर्योपनिषद्में सूर्यका वह स्वरूप स्पष्टरूपसे वर्णित है, जिससे वे सबका उद्भव और विलयका आश्रय प्रतीत होते हैं । देखिये—

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु ।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च ॥

अर्थात्—'सूर्यसे सभी भूत उत्पन्न होते हैं, सूर्य सबका पालन करते हैं और सूर्यमें सबका विलय भी होता है । जो सूर्य हैं, वही मैं हूँ ।'

उपनिषदोंमें आदित्यको सत्य मानकर उन्हें ब्रह्म बताया गया है । इस प्रकार चाक्षुष पुरुषकी आदित्य पुरुषसे अभिन्नता है; यथा—

तद् यत्तत् सत्यमसौ स आदित्यो य एष एतस्मिन् मण्डले पुरुषो यश्चायं दक्षिणेऽक्षन् पुरुष-स्तावेतावन्योन्यस्मिन् प्रतिष्ठितौ ।

(—बृहदारण्यक० ५ । ५ । २)

'यह सत्य आदित्य है । जो इस आदित्यमण्डलमें पुरुष है और जो दक्षिण नेत्रमें पुरुष है, वे दोनों पुरुष एक दूसरेमें प्रतिष्ठित हैं ।'

इस प्रकार अधिदैव आदित्य पुरुष और अध्यात्म चाक्षुष पुरुषका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध बताकर सूर्यको प्रथम उद्भव बताया गया है । अथर्ववेदके अनुसार सूर्य सबके नेत्र हैं ।

इसके पीछे उपनिषद् दर्शन है— आयुः । ... आपः सत्यमयूत्... यद् यत्तत् सत्यमसौ स आदित्यः ... सूर्यकी उपासनाका प्रथम सोपान है ।

गायत्री आदित्यमें प्रतिष्ठित है । ... गायत्रीमें जगत् प्रतिष्ठित है । ... है । आदित्य-हृदयमें इस विचारधाराको ... हुए कहा गया है—

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे
जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे
विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने ।

... काव्यमें 'सर्वदेवमयो रविः' ... सभी सम्प्रदायोंको परस्पर निकट लाया गया । ... युधिष्ठिरने सूर्यकी स्तुति की है—

त्वामिन्द्रमाहुस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः ।
त्वमग्निस्त्वं मनः सूक्ष्मं प्रभुस्त्वं ब्रह्म शाश्वतम् ॥

अर्थात्—'सूर्य ! आप इन्द्र, रुद्र, विष्णु, प्रजापति, अग्नि, मन, प्रभु और ब्रह्म हैं ।'

सूर्यतापिनी उपनिषद्में उपर्युक्त विचारधारा ... मिलता है; यथा—

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्करः ।
त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो रविः ॥
प्रत्यक्षं दैवतं सूर्यं परोक्षं सर्वदेवताः ।
सूर्यस्योपासनं कार्यं गच्छेद् वै सूर्यसंनिधिम् ॥

आदित्यहृदयके अनुसार एक ही सूर्य तीनों कालोंमें क्रमशः त्रिदेव बनते हैं । यथा—

उदये ब्रह्मणो रूपं मध्याह्ने तु महेश्वरः ।
अस्तमाने स्वयं विष्णुस्त्रिमूर्तिश्च दिवाकरः ॥

१. स आदित्यः सस्मिन् प्रतिष्ठित इति चक्षुषीति । २. सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथ्वी शरीरम् । (—अथर्व० ५ । ७ । १)

३ देव ही नहीं, अपितु त्रिपुरसुन्दरी भगवती-का ध्यान करनेके लिये भी उनका सूर्यमण्डलस्थ-स्वरूप है; यथा—

सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणहस्तां ध्यायेत् साधकः॥

सूर्यके सम्मान उनके आराधनाकी विधियाँ रही हैं। कुछ कष्टकी विधियाँ भी हैं; जैसे—सूर्य-नमस्कार, आदि। सूर्योदयसे सूर्यास्ततक सूर्योन्मुख होकर खड़ा रहना आदित्यव्रत होता है। षष्ठी या सप्तमी तिथिको दिनभर उपवास करके भगवान् भास्करकी पूजा करना धर्म होता है। पौराणिक धारणाके अनुसार पदार्थ सूर्यके लिये अर्पित किये जाते हैं, भगवान् उन्हें सहस्र गुना करके लौटा देते हैं। उस युगमें एक दिनकी पूजा सैकड़ों यज्ञोंके अनुष्ठानसे मानी गयी है।[1]

पुराणोंमें सूर्यको सर्वश्रेष्ठ देव बतलाया गया है और सभी देवताओंको इन्हींका स्वरूप कहा है। इन पुराणोंके अनुसार भगवान् सूर्य बारंबार जीवोंकी सृष्टि और संहार करते हैं। ये पितरोंके और देवताओंके भी देवता हैं। जनक, याज्ञवल्क्य, व्यास तथा अन्य संन्यासी योगका आश्रय लेकर इस सूर्य-मण्डलमें प्रवेश कर चुके हैं। ये भगवान् सूर्य सम्पूर्ण जगत्के माता, पिता और गुरु हैं।[2]

सूर्यके बारह रूप हैं। इनमेंसे इन्द्र देवताओंके राजा हैं, धाता प्रजापति हैं, पर्जन्य जल बरसाते हैं, त्वष्टा वनस्पति और ओषधियोंमें विराजमान हैं, पूषा अन्नमें स्थित हैं और प्रजाजनोंका पोषण करते हैं, अर्यमा वायुके माध्यमसे सभी देवताओंमें स्थित हैं, भग देहधारियोंके शरीरमें स्थित हैं, विवस्वान् अग्निमें स्थित हैं और जीवोंके खाये हुए भोजनको पचाते हैं, विष्णु धर्मकी स्थापनाके लिये अवतार लेते हैं, अंशुमान् वायुमें प्रतिष्ठित होकर प्रजाको आनन्द प्रदान करते हैं, वरुण जलमें स्थित होकर प्रजाकी रक्षा करते हैं तथा मित्र सम्पूर्ण लोकके मित्र हैं। सूर्यका उपर्युक्त वैशिष्ट्य उन्हें अतिशय लोकपूज्य बना देता है।[3]

सूर्यके हजार नामोंकी कल्पना स्तोत्ररूपमें विकसित हुई है। इन्हीं नामोंका एक संक्षिप्त संस्करण बना, जिसमें केवल इक्कीस नाम हैं। इसको स्तोत्रराजकी उपाधि मिली। इसके पाठसे शरीरमें आरोग्यता, धनकी वृद्धि और यशकी प्राप्ति होती है।[4]

सौर-सम्प्रदायके अनुयायी ललाटपर लाल चन्दनसे सूर्यकी आकृति बनाते हैं और लाल फूलोंकी माला धारण करते हैं। वे ब्रह्मरूपमें उदयोन्मुख सूर्यकी, महेश्वर-रूपमें मध्याह्न सूर्यकी तथा विष्णुरूपमें अस्तोन्मुख सूर्यकी पूजा करते हैं। सूर्यके कुछ भक्त उनका दर्शन किये बिना भोजन नहीं करते। कुछ लोग तपाये हुए लोहेसे ललाटपर सूर्यकी मुद्राको अङ्कित करके निरन्तर उनके ध्यानमें मग्न रहनेका विधान अपनाते हैं।

भगवान् सूर्यके कुछ उपासक तीसरी शताब्दीमें बाहरसे भारतमें आये। ऐसी जातियोंमें मगोंका नाम उल्लेखनीय है। राजपूतानेमें मग जातिके ब्राह्मण आजकल भी मिलते हैं। यह जाति मूलतः प्राचीन ईरानकी 'मग' जाति है। वहींसे ये भारतमें आये। कुषाणयुगमें सूर्यकी पूजा-विधि ईरानसे भारतमें आयी। सूर्य-पूजाका प्रसार प्राचीन कालमें एशिया माइनरसे रोम तक था। यूनानका सम्राट् सिकन्दर सूर्यका उपासक था।

भारतमें सूर्यकी पूजासे सम्बद्ध बहुत-से मन्दिर पाँचवीं शतीके आरम्भ कालसे बनते रहे हैं। इनमेंसे सबसे अधिक प्रसिद्ध तेरहवीं शतीका

१. ब्रह्मपुराण, अध्याय २९ से। २. वही अध्याय २९-३० से। ३. वही अध्याय २९-३० से। ४. वही अध्याय ३१। ३१-३३।

कोणार्कमें सूर्यमन्दिर आज भी दर्शनीय है। इसी प्रकार कुछ राजा प्रमुखरूपसे सूर्यके उपासक रहे हैं। इनमें हर्षवर्धन और उनके पूर्वजोंके नाम प्रसिद्ध हैं।

सौर-सम्प्रदायका परिचय भविष्यपुराणके अतिरिक्त सौर-पुराणसे भी मिलता है। भविष्यपुराणमें सूर्योपासनाकी प्रमुखता होनेसे इसका भी नाम सौरपुराण है। सौरपुराणमें शैव-सम्प्रदायोंका परिचय विशिष्टरूपसे मिलता है। इसमें शिवका सूर्यसे तादात्म्य भी दिखाया गया है। स्वयं सूर्यने शिवकी उपासनाको श्रेयस्कर कहा है।

भगवान्ने आदेश दिया था। प्रातः, [illegible] और अर्धरात्रि—चार बार सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। वह स्वयं सूर्यके अभिमुख होकर उनके [illegible] नामका पाठ एवं पूजन करता था। [illegible] कानोंको पकड़कर [illegible] और भुजाओंसे कर्णमूलोंको पकड़ता था। वह अग्निकी भी सूर्यकी पूजा करता था। जहाँगीर भी सूर्यकी [illegible] करता था। उसने अकबरके द्वारा सम्मानित संवत्‌को राजकीय आय-व्ययकी गणनाके लिये प्रचलित रखा था।

भगवान् भास्कर

(लेखक—डॉ० श्रीमोतीलालजी गुप्त, एम० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०)

सृष्टिका वैचित्र्य देखकर बुद्धि भ्रमित हो जाती है, कल्पना कुण्ठित होती है और मनकी मनस्विता भी हार मानकर बैठ जाती है। जिधर भी दृष्टि डालिये—कितना विशाल, विस्तृत, वैचित्र्यपूर्ण, विचित्र प्रसार लक्षित होता है—कलकल ध्वनि करते झरने, पयस्विनी सरिताएँ, स्फटिकमणिसदृश पारदर्शी सरोवर, रत्नगर्भा पृथ्वी, उच्च शिखरोंसे युक्त एवं हिमाच्छादित दीर्घकाय पर्वत-मालाएँ, शीतल-मन्द-सुगन्ध गुणोंका वाहक समीर और उधर प्रकृतिका अत्यन्त भयङ्कर एवं प्रलयकारी रूप जलप्लावन, भूमि-विघटन, भूचाल, विद्युत्-प्रतारण आदि रूपमें देखा जाता है। पर पृथ्वीके इस विस्मयकारी दृश्यसे भी बढ़कर अति विस्तृत, सर्वत्र व्याप्त तथा असीम आकाशमण्डल है, जिसके नक्षत्र अथवा ग्रह-पिण्ड हमें अपनी स्थिति एवं गतिसे ही प्रभावित नहीं करते, अपितु हम आश्चर्यचकित हो विस्फारित नेत्रोंसे उनकी ओर देखते ही रह जाते हैं। डेनमार्कके एकान्त उपवनमें स्थित कुटियाकी वे रातें मुझे स्मरण हैं। उस समय आकाश निर्मल था। वह ऐसा प्रतीत होता था जैसे मोटे-मोटे बृहदाकार तारोंसे परिपूरित आकाश ही बहुत नीचे आ गया हो। इसी प्रकार न्यूजीलैंडका वह स्वच्छ चन्द्र-बिम्ब भी, जो आकाशमें इतना विशाल दिखायी देता था मानो गगन सागरमें जलशायी वह कमल-पत्र, जिसका व्यास लगभग १॥ मीटरका था और उसे हम किनारे कमल-पत्रको एक बड़ी परातका रूप प्रदान कर रहे थे। इतना विशाल चन्द्रबिम्ब और तारोंकी वह अनूठी जगमगाहट केवल वहीं देखी। गगनमण्डलके इन विस्मयकारी तथ्योंका परिचय प्राप्त करनेके लिये वैज्ञानिक सतत प्रयत्नशील हैं—रहस्योद्घाटन तो शब्दमात्रसे ही बोधित है। इस प्रसङ्गमें चन्द्रलोक, मङ्गल और शुक्र आदिके लोकोंकी यात्राओंके अभियान सफलता-असफलताके बीच झूलते चलते हैं। सफलता जो मिली है, वह भी तो कितनी—अगण्य-सी! परंतु भगवान् भास्कर तो हमारे इस आश्चर्यमय अनुभव और सृष्टि-वैचित्र्यकी पराकाष्ठा हैं।

सूर्य और सौर-मण्डल-सम्बन्धी अनेक अन्वेषण, परीक्षण एवं स्पष्टीकरण आदि पढ़ने-सुननेमें आते हैं, पर

* आइन-अकबरी [illegible] १९६५ ई०, पृ० २०९-२१२ से।

ार परिमाण, मेरे अनुमानसे एक अणु-सदृश ही है ।
प्रत्यक्ष देवता हैं । हमारी सृष्टिके महत्त्वपूर्ण आधार
यदि प्रखरता-पुञ्ज हैं तो जीवन-प्रदायिनी ऊष्माके
वे जनक हैं । वन, उपवन, जल, कृषि, गतिके विभिन्न
, फल, फूल तथा वृक्ष-लता आदि—यहाँतक कि
न भी उन्हींके द्वारा प्रदत्त उपहार है । सम्पूर्ण विश्व
से लाभान्वित है । न जाने कितने लोक सौरमण्डलके
धिष्ठानका गुणगान करते हैं । भगवान् सूर्यके
यमें कहा गया है कि उनके प्रकाशमण्डलका
स ८६४००० मील है—पृथ्वीके व्याससे १०९
ना । इनका पुञ्ज २२४ पर २५ शून्य लगाकर अङ्कित
या जाता है, जो पृथ्वी-पुञ्जसे लगभग ३ लाख गुना
। सूर्यसे हमारी पृथ्वीकी दूरी १४९८९१०००
लोमीटर है । वहाँसे प्रकाशके आनेमें ही प्रकाश-
तिसे ८॥ मिनिट लगते हैं । ये संख्याएँ—आँकड़े
र्यकी अति महत्ता, अति विस्तार और अति प्रचण्डताके
नक हैं । ऋतुओंका विभाजन, दिन-रातकी सीमाएँ,
काश-अन्धकारकी गति, वर्षा-अतिवर्षा, अवर्षा—यहाँ-
क कि जीवनके विभिन्न उपक्रम सूर्यपर ही निर्भर हैं ।
ही कारण है कि अनादि कालसे सूर्यकी उपासना
केवल हमारे देशमें, वरन् विश्वके विभिन्न भागोंमें
क्ति एवं श्रद्धाके साथ की जाती रही है । सूर्य एक
सी परम शक्ति हैं, उत्कृष्ट देवता हैं जिसमें उनकी
मित शक्तिका उपयोग नियमानुकूल ही होता है—
नियमोंकी अवहेलना नहीं होती । यही कारण है कि
खगोल-शास्त्रियों एवं ज्योतिषियोंका ज्ञान-विज्ञान दृढ़ताके
ाथ प्रतिफलित होता रहता है । यदि निश्चित नियमों-
का अतिक्रमण केवल गतिके सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंशमें भी
हो जाय तो उसका परिणाम निश्चय ही महाप्रलय है ।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि पृथ्वीके प्रत्येक
खण्डमें तारोंसे जटित आकाश सर्वदासे ही विस्मय
और खोजका विषय रहा है—सभी वर्गके लोग इसकी
ओर आकृष्ट हुए हैं । जिन नौ या सात ग्रहोंकी कल्पना
विश्वके विविध मनीषियोंने की, उनमें सूर्यको सर्वोत्कृष्ट
स्थान दिया जाता रहा है । अनेक लोक-कथाएँ एवं जन-
श्रुतियाँ भी चलती आयी हैं और सूर्यको अनेक रूपोंमें
देखा गया है । एक पाश्चात्त्य लोककथा है—'जब सृष्टिके
आरम्भमें सामोरने नाइगको युद्धमें परास्तकर कारागारमें
डाल दिया, तब पराजित करनेवाली शक्तिको बुलाकर
(गोला बनाकर) शून्यमें डाल दिया । वही शक्ति गोलाकार
होकर इधर-उधर लुढ़कती रही । बहुत समय पश्चात् माउई
नामके वीरने इस लुढ़कनेवाले गोलेका मार्ग नियमित कर
दिया और तभीसे सूर्यका मार्ग निर्धारित हो गया ।'

सूर्य-चन्द्रको किसी दैत्यद्वारा निगलनेकी बात भी
बहुत प्राचीन कालसे चलती आ रही है । अमेरिकाके
रेड-इंडियन भी अनेक प्रकारकी सूर्य-कथाएँ कहते
रहे हैं । ज्योतिषका आधार तो सूर्य ही रहा है ।
चीनके प्राचीन विद्वानोंने सूर्यको आधार मानकर अपने
खगोल-शास्त्र, ज्योतिर्विद्या तथा धर्मका विस्तार किया ।
चीनमें सूर्यका नाम 'यांग' है और चन्द्रका 'यिन' ।
सूर्योपासनाके प्रसङ्ग भी वहाँ मिलते हैं । 'लीकी' की
पुस्तक 'कि आओ तेह सेंग'में नवीं पुस्तकके अन्तर्गत
सूर्यको 'स्वर्ग-पुत्र' कहा गया है और दिनका प्रदाता
कहकर उनकी अभ्यर्थना की गयी है । बौद्ध जातकोंमें
भी सूर्यके प्रसंग आते हैं और उन्हें वाहनके रूपमें मान्यता
मिलती है । इसकी अजवीथि, नागवीथि और गोवीथि
नामके मार्गोंपर तीन गतियाँ मानी गयी हैं । इस्लाममें
सूर्यको 'इल्म अहकाम अन नजूम'का केन्द्र माना गया
है । मुस्लिम विद्वानोंकी मान्यता रही कि सूर्य आदि
चेतन हैं, इच्छाशक्तिका उपयोग करते हैं और उनके
पिण्ड उनमें व्याप्त अन्तरात्मासे प्रेरित होते हैं । ईसाइयोंके
'न्यू टेस्टामेंट'में सूर्यके धार्मिक महत्त्वका कई बार वर्णन
आया है । सेंटपॉलने आदेश दिया है कि—सूर्यके द्वारा

[illegible] अपेक्षा [illegible] है। [illegible] दिन माना गया है और [illegible] उपासना-[illegible] दिन है। [illegible] और [illegible] दिन [illegible] और [illegible] ने तो [illegible] दिन [illegible] और [illegible] निर्णय किया। [illegible] समुद्रके आसपास सूर्यके प्रसङ्गमें अनेक कथाएँ प्रचलित हुईं। [illegible] कविताओंमें सूर्यको [illegible] माना गया है और उनकी पुत्री उषाको [illegible] की प्रेयसी, जिसके दहेजमें सूर्यने अपनी किरणोंके [illegible] दे दिया, जिससे [illegible] प्रतिभासित होते हैं तथा पृथ्वीके ऊपरकी दहनियोंमें शोभा आ जाती है। वर्णन आता है—'अपने रजत पदत्राणोंसे सूर्यदेवी रजतगिरिपर नृत्य करती हुई अपने प्रेमी चन्द्रदेवका आवाहन करती है। वसंत ऋतुकी प्रतीक्षा होती है और तब उनके प्रणयस्वरूप संतति-की सृष्टि है, जो तारोंके रूपमें आकाशको आच्छादित कर लेती है। परंतु दुर्भाग्यसे चन्द्रदेव सोते ही रहते हैं और सूर्यदेवी उतरकर चली जाती है और तबसे इन दोनोंका चिर वियोग ही रहता है............आदि।'

आर्य और अनार्य—सभीने सूर्यको उपासनीय माना है। द्रविड़ोंने सूर्यको 'परमेश्वर' कहकर उन्हें महान् माना और विविध प्रकारकी पूजाका विधान किया। हिन्दुओंमें सूर्यकी त्रिकाल उपासना-विधि चली और उन्हें जीवनका दाता एवं पोषक माना। सूर्यके कहीं सात और कहीं दो घोड़ोंसे वर्णित स्वर्णरथकी बात अनेक स्थलोंपर आती है। 'सौर'-सम्प्रदायका भी वर्णन मिलता है। सूर्य-साहित्य वास्तवमें बहुत विस्तृत तथा सर्वत्र उपलब्ध भी है।

[illegible] है—

(१) आगे देखने [illegible] रहते हैं और सूर्यके [illegible] दर्शन हो जाते हैं; [illegible] बहुत देरसे होता है और [illegible] बना रहता है। [illegible] दिनका अनुभव [illegible] हुआ, जब [illegible] दम्पतिने [illegible] निमन्त्रण [illegible] किया था। हमारे यहाँ [illegible] है। मैंने अपने मित्रसे कहा—'इतनी जल्दी [illegible]!' उन्होंने उत्तर दिया—'यहाँ तो यह समय है, जब आरामसे बैठकर बातें करने [illegible] निमित्तमें सुविधा होती है।' वे भी मेरे साथ थे। हम रातमें नौ बजे निमन्त्रणको सार्थक कर [illegible] और वे स्कॉट-दम्पति ही नहीं, भगवान् [illegible] आकाशमें अपने प्रकाशसे हमारा स्वागत कर रहे [illegible]। तबसे मैंने भगवान् सूर्यके ये चमत्कार विभिन्न भागोंमें देखा।

(२) वायुयानकी यात्रामें घड़ीको [illegible] अवसर तो आता ही रहता है—यदि आप [illegible] यूरोप एवं अमेरिका जा रहे हैं तो निरन्तर संकेत मि[illegible] रहेगा—'अब इतना पीछे, अब और इतना पीछे, और-और।' इस प्रकार निरन्तर आपकी घड़ी पीछे हो जायगी और जब आप वहाँसे लौटेंगे तो आगे, और आगे घड़ीकी सुइयाँ खिसकानी पड़ेंगी। पर यदि आप जापान जा रहे हैं तो यह क्रिया उल्टे रूपमें होगी यानी जापान जाते समय आगे और लौटते समय पीछे। और इन सबके कारण हैं भगवान् भास्कर, जिनकी [illegible]

* वेद-वैदिक एवं भारतीय अन्य विस्तृत साहित्योंमें भगवान् सूर्यको स्वतन्त्र, सर्वशक्ति-सम्पन्न तथा अखिल जगत्‌के पालक मानते हैं। इन्हीं भगवान् सूर्यसे सृष्टि हुई है। अतः हमारी मान्यता उपर्युक्त कहानीसे मेल नहीं खाती। यह अंश अन्यत्रकी जन-श्रुतियोंकी मात्रजानकारी हेतु ही दिया गया है।

होति समयक्रमको एक निश्चित क्रियासे परिचालित करती रहती है ।

(३) पिछले वर्ष मैं स्वीडेन गया । वहाँ लिंचोपिंग तथा ऊमियो-विश्वविद्यालयोंमें मुझे व्याख्यान देने थे। ऊमियोंमें भाषण देनेके पश्चात् जब मैं अपने स्थानपर लौटा तब कहा गया—'कमरेमें खिड़कियोंके पर्दे खींच लें, अन्यथा नींदमें बाधा आयेगी ।' मैं हॉलसे निकला, आकाशमें सूर्य विद्यमान थे—कोई विशेष बात न थी, क्योंकि मैं ९-९॥ बजे रात्रिमें सूर्यको देखनेमें अभ्यस्त हूँ। पर यहाँ तो १०॥ बजे रातमें भी सूर्यभगवान् आकाशमें विराज रहे थे और अब तो ११ बजने जा रहे हैं—अस्तु; सूर्यास्त हुआ; पर अन्धकारका नाम नहीं। मैंने खिड़कीसे देखा प्रकाश-जैसा ही था । पर्दे खींचकर सोनेका उपक्रम किया, पर ११ बजे रात्रिको सूर्यदर्शनकी बात मस्तिष्कमें घूम रही थी, १ बजे फिर देखा—वही प्रकाश; और दोबारा जब ३ बजेके लगभग देखा तब तो सूर्यदेव अपनी सम्पूर्ण आभासहित आकाशमें विद्यमान थे ।

अगले दिन मैंने अपना अनुभव भाषाविद् डॉ० सोडरबर्ग तथा संस्कृत-विदुषी प्रोफेसर ब्रोराको सुनाया तो उन्होंने कहा—'यह तो सामान्य बात है। हम आपको उस स्थानपर ले जानेकी तैयारी कर रहे हैं जहाँ आप अर्द्धरात्रिके समय सूर्यका प्रत्यक्ष दर्शन करेंगे तथा रात्रिका नितान्त अभाव देखेंगे।' यह स्थान लगभग चार-पाँच सौ किलोमीटर दूर था, पर यूरोपकी व्यवस्थित सड़कोंपर यह दूरी अधिक नहीं थी । पूरा कार्यक्रम तैयार हो गया; परंतु मौसम एकदम खराब हो गया और मौसमकी भविष्यवाणीने २-३ दिनोंतक बहुत खराब मौसम रहनेकी घोषणा की। आप समझ सकते हैं कि क्या परिणाम हुआ—मेरी अर्द्धरात्रिमें सूर्यको देखनेकी आशा निराशामें परिवर्तित हो गयी; बादल और वर्षामें यह कैसे सम्भव होता !

हाँ, उसी यात्रामें एक जर्मन मित्रके घरपर उनकी नार्वेपर बनायी एक फिल्म देखी, जिसमें उन्होंने इस अलभ्य दृश्यका सम्यक् रूपसे दर्शन कराया था । उनकी घड़ीमें रातके १२ बजे थे और सूर्य अपनी पूर्ण आभाके साथ आकाशमें शान्तभावसे आसीन प्रतीत हो रहे थे । यह आभास ही नहीं होता था कि अर्द्धरात्रि है—जब सूर्य विद्यमान हैं तब अन्धकार कहाँ, रात्रि कैसी !

(४) मैं टोकियोमें था, हवाई द्वीपके होनो लुल्लूकी यात्राका आरक्षण हो चुका था । मेरी यात्रा सम्भवतः १८ अगस्तको थी । मैंने जापान एयर लाइन्समें यात्राकी पुष्टि कराते हुए होटल-आरक्षणके लिये कहा तो उन्होंने शीघ्र ही बिना कुछ पूछे, १७ अगस्तसे होटल-आरक्षण कर दिया; विचित्र बात । मैंने देखा-समझा, कुछ भूल हुई ! १८की उड़ान और १७से आरक्षण ! मैंने संकेत किया—आपसे कुछ भूल हो रही है, मैं दिनाङ्क १८को उड़ान ले रहा हूँ, १७को होटलका उपयोग किस प्रकार कर सकता हूँ ? कहा गया—भूल नहीं है, ठीक है—क्योंकि मैरिडन रेखा पार की जायगी और उसमें एक दिनका अन्तर पड़ जाता है । मैं चुप हो गया । पर थी आश्चर्यजनक बात। मैरिडन रेखा पार की गयी और उस वायुयानमें ही मुझे एक प्रमाण-पत्र दिया गया, जिसमें इस बातका उल्लेख था कि अमुक व्यक्तिने अमुक उड़ानसे यह रेखा पार की । साथ ही घड़ीका समय और दिनाङ्क बदलनेके लिये भी संकेत दिये गये । दिनाङ्क १८ को मैं उड़ा था और दिनाङ्क १७ को मेरे मित्र होनो लुल्लू हवाईअड्डेपर मेरे स्वागतार्थ उपस्थित थे—सभी स्थानोंमें दिनाङ्क १७ था । कितनी विचित्र है भगवान् भास्करद्वारा विविध स्थानोंपर समय-रचना !

इस प्रकारके मेरे अनेक अनुभव हैं—कहीं रात, रात, रात, कहीं सर्वदा दिन । कहीं ३-४ घंटोंका

क० सं० ३६–३७—

संध्याकाल; कहीं सहसा सूर्यास्तके तत्काल बाद ही रात्रिका आगमन। एक ही सूर्यनारायण इस पृथ्वीको कितने अन्तरालोंमें विभक्त कर देते हैं!

लोग कहीं सूर्यके दर्शनके लिये तरसते हैं; कहीं सूर्यकी प्रखरतासे बचनेके लिये छायाका अन्वेषण करते हैं; कहीं सूर्यकी रश्मियोंका शरीरमें सेवनकर श्वेत वर्णमें कमी करना चाहते हैं; कहीं कालिमाके दोषसे बचनेकी चेष्टा करते हैं। मेरे एक मित्रने अन्धकार, सर्दी, वर्षासे त्रस्त होकर लिखा था—'आप अपने देशसे थोड़ा-सा सूर्यका प्रकाश और उसकी किञ्चित् [illegible] दें, हम आपको कुछ बादल और वर्षा भे[illegible]

एक हास्य-प्रसङ्ग-सा लगता है, पर है यह [illegible] और उनके प्रभाव-वैविध्यका परिचायक। ऐसा अनुमान है कि सृष्टिकी विभिन्न शक्ति[illegible] स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और जीवनका निर[illegible] विघटन, विस्फारण आदि उन्हींकी शक्ति[illegible] है। अतः लोकोपकारी, लोक-नियन्ता, लोको[illegible] भास्करको और उनकी प्रखर, प्रचण्ड, उद्दीप्त, और[illegible] सर्वपरितोषिणी आभाको पुनः-पुनः नमस्[illegible]

सूर्यदेवता, तुम्हें प्रणाम!

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

उषा, उषाकी मधुमय बेला! कैसा अद्भुत सौन्दर्य!! कैसा अद्भुत आनन्द!!!

सूर्यकी अग्रगामिनी उषाके दर्शन करके मानव अनादिकालसे मुग्ध होता आया है। ऋषि लोग उषाके गीत गाते नहीं थकते। ऋग्वेदमें, विश्वके इस प्राचीनतम ग्रन्थमें उषासम्बन्धी अनेक ऋचाएँ हैं। परमेश्वरकी संदेशवाहिका उषाको सम्बोधित करते हुए ऋषि कहते हैं—'तू हिमकिरणोंसे स्नान करके आयी है। तू अमृतत्वकी पताका है। तू परमेश्वरका संदेश लायी है। तेरा दर्शन करके यदि परमेश्वरका रूप न दीखे तो फिर मुझे कौन परमेश्वरका दर्शन करायेगा?'

ऋषि लोग मुग्ध हैं उषाके सौन्दर्यपर, उसकी अनोखी सुषमापर। अनेकानेक विशेषणोंसे उन्होंने उषाको अलङ्कृत किया है; जैसे—

सूनरी (सुन्दरी), सुभगा (सौभाग्यवती), विश्ववारा (सबके द्वारा वरण की जानेवाली), प्रचेता (प्रकृष्ट ज्ञानवाली), मघोनी (दानशीला), रेवती (धनवाली), अश्ववती और गोमती आदि।

ऋषि कहते हैं—

आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभु[illegible]
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षि[illegible]

(—ऋ० १।४[illegible])

'उषा एक सुन्दरी युवतीकी भाँति सबको आ[illegible] करती हुई आती है। वह सारे प्राणिसमूहको ज[illegible] है। पैरवालोंको अपने-अपने कामपर भेजती है [illegible] परवाले पक्षियोंको आकाशमें विचरण करनेके [illegible] प्रेरित करती है।'

नित्य नवीन उषा प्रकाशमय परिधान पहने दर्शक[illegible] समक्ष प्रकट होती है। उसके आगमनसे अन्धक[illegible] विलीन होता है और सर्वत्र प्रकाश फैलता है। [illegible] चमकनेवाले वेगवान् सौ रथोंपर आरूढ है। रात्रि[illegible] बड़ी बहन—तथा द्यौस्की बेटी वह उषा सूर्य[illegible] मार्ग प्रशस्त करती है। भगवान् सूर्यके साथ उसका निकटतम सम्बन्ध है।

ऋषि उषासे कहते हैं—

विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम्॥

(—ऋ० १।४८।१०)

'हे सूनरि ! तू जब प्रकाशित होती है तो सम्पूर्ण प्राणियोंका प्राण तथा जीवन तुझमें विद्यमान रहता है। प्रकाशवति, हे विभावरि ! बड़े रथपर आसीन हमारी ओर आनेवाली चित्रामघे अर्थात् विचित्र धनवाली उषे ! हमारी पुकार सुनो।'

उषा है भगवान् अंशुमालीका पूर्वरूप।

यह लीजिये, आकाशके सुन्दर क्षितिजपर आ विराजे हैं—सविताभगवान्। इन सवितादेवका सब कुछ स्वर्णिम है—केश स्वर्णिम, नेत्र स्वर्णिम, जिह्वा भी स्वर्णिम। हाथ स्वर्णिम, अँगुलियाँ स्वर्णिम और तो और, इनका रथ भी स्वर्णिम है।

सविता है—प्रकाशक देवता।

पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक—सर्वत्र वे ही प्रकाश बिखेरते हैं। स्वर्णिम रथपर आरूढ सवितादेव सभी देवताओंके ही नेता नहीं हैं, अपितु स्थावर और जङ्गम सभीपर उनका आधिपत्य है। सम्पूर्ण जगत्को धारण करनेवाले तथा सबको कर्म-जगत्में प्रेरित करनेवाले उन सविता भगवान्की हम गायत्री-मन्त्रसे वन्दना करते हैं और उनसे सद्बुद्धिकी याचना करते हैं—

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

कितना भव्य होता है बाल-रविका दर्शन !

निरभ्र आकाशमें उनकी झांकी कैसी अद्भुत होती है ! फिर यदि गङ्गा, यमुना और गोदावरी आदिका तट हो, पर्वतराज हिमाचल [illegible] विन्ध्य पर्वतमाला-जैसे कैसी [illegible] सागरका शुभ्र [illegible] क्रीडा करती [illegible] गे,

परमात्माके दर्शन करनेका सुझाव देते हुए आचार्य विनोबा 'गीता-प्रवचन'में कहते हैं—

'सूर्यका दर्शन मानो परमात्माका ही दर्शन है। वे नाना प्रकारके रंग-बिरंगे चित्र आकाशमें खींचते हैं। सुबह उठकर परमेश्वरकी कला देखें तो उस दिव्य कलाके लिये भला क्या उपमा दी जा सकती है ! ऋषियोंने उन्हें 'मित्र' नाम दिया है—

मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो
मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम्।
(—ऋ० ३।५९।१)

ये मित्रसंज्ञक सूर्य लोगोंको सत्कर्ममें प्रवृत्त होनेके लिये पुकारते हैं। उन्हें कामधाममें लगाते हैं। ये स्वर्ग और पृथिवीको धारण किये हुए हैं।

दिनभर सारे जगत्में प्रकाश और आनन्द बिखेरकर सान्ध्य-वेलामें अस्ताचलकी ओर जानेवाले भगवान् भास्करका सौन्दर्य भी अद्भुत है !

वह कौन किसीसे कम है ! प्रसिद्ध अंग्रेज कवि लांगफेलो मुग्ध हैं उनके सौन्दर्यपर—मानो सिनाई पर्वतसे उतर रहे हों पैगम्बर !

'Down Sank the great red sun
And in golden glimmering Vapours
Veiled the light of his face,
Like the Prophet descending from sinai.'
(-Evangeline)

प्रातः एवं सायङ्कालमें भगवान् सूर्यके इस मनोरम रूपको देखकर यदि हम आनन्दविभोर न हो उठें तो हमसे अभागा और कौन होगा ?

इतना ही नहीं। 'वर्षा काल मेघ नभ छाए' हों और उस समय भगवान् भास्कर बादलोंमें आँख-मिचौनी खेलते हों तब यदा-कदा हमें आकाशमें सतरंगा धनुष दीखता है इन्द्रधनुष। कैसी है [illegible] वह छटा !

आज तो विज्ञान भी मुक्तकण्ठसे स्वीकार करता है कि सूर्य पृथ्वीसे नौ करोड़ मील दूर, पर यह सिद्ध हुआ है कि सारी सृष्टि, सारा जगत् जीवित है। सूर्य न हो तो पृथिवी ही न रहे, वनस्पति न रहे और न रहें कोई जीव-जन्तु या प्राणी ही।

सूर्य-प्रकाशकी बदौलत ही धरती सोना उगलती है। सूर्य ही चन्द्रमा और तमाम नक्षत्रोंके परम प्रकाशक हैं। सब उन्हींके प्रकाशसे टिमटिमाते हैं। वही बिजलीघर है, सारा सौरमण्डल है और उनसे प्रकाशवान होनेवाला नक्षत्र-पुञ्ज है।

सूर्य-किरणोंमें क्षय, रिकेट्स, रक्ताल्पता-जैसे परम भयंकर रोगोंको निर्मूल करनेकी तो अद्भुत शक्ति है ही; आरोग्य, बल, जीवन, प्राण, स्वास्थ्य, सौन्दर्य—सब कुछ प्रदान करनेकी भी उनमें जादूभरी शक्ति है। सूर्य-किरणें मानवके, सारे प्राणि-जगत्के सर्वाङ्गीण विकासके अनुपम साधन हैं। ज्ञान और विज्ञान—सभी इस तथ्यको स्वीकार करते हैं।

अभागा होगा वह जो सूर्यदेवताको प्रणाम न करे। सूर्यस्नान, सूर्यनमस्कार आदि विज्ञानसम्मत साधन पुकार-पुकारकर कहते हैं—'उठो! सूर्यदेवताको प्रणाम करो! वे तुम्हें शक्ति देंगे, बल देंगे, बुद्धि और यश देंगे। तुम उन्हें *प्रणाम* करके भी तो देखो!'

जैन-आगमोंमें सूर्य

(लेखक—आचार्य श्रीतुलसी)

जैन-तत्त्व-विद्याका मूलभूत आधार है—जैन-आगम। इन आगमोंकी संरचनामें जैन-तीर्थंकरों और गणधरोंकी ज्ञान-चेतनाका उपयोग हुआ है। तत्त्व-विद्याके मूल स्रोतोंका अवबोध तीर्थंकरोंके पास उपलब्ध होता है और उसके विस्तृत विश्लेषणमें गणधरोंकी मेधा सक्रिय होती है। इस दृष्टिसे यह कहा जा सकता है कि जैन-आगमोंकी आर्षपरम्परा तीर्थंकरोंसे अनुबन्धित है तथा उन्हें शाब्दिक परिवेशमें ढालनेका काम गणधरों और स्थविरोंका है।

जैन-तत्त्व-विद्या बहु-आयामी तत्त्वविद्या है। धर्म, दर्शन, इतिहास, संस्कृति, कला, गणित, भूगोल आदि विविध विषयोंका तलस्पर्शी विवेचन जैन-आगमोंमें प्राप्त होता है। मुख्यरूपसे इनमें चेतन और अचेतन—इन दो तत्त्वोंकी व्याख्या है। संसारके सारे तत्त्व इन दोनों तत्त्वोंमें अन्तर्भुक्त हैं। इसलिये जैन-शास्त्रोंको विश्वके प्रतिनिधि शास्त्रोंकी श्रेणीमें स्थापित किया जा सकता है। प्रस्तुत संदर्भमें जैन-आगमोंके आधारपर सूर्य-सम्बन्धी विवरणकी संक्षिप्त सूचनामात्र दी जा रही है।

जैन-आगमोंमें चार प्रकारके जीव माने गये हैं—नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव। देवोंके सम्बन्धमें वहाँ विस्तारसे चर्चा है। देवोंकी मुख्यरूपसे चार श्रेणियाँ हैं—भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक। असुर, नाग आदि दस प्रकारके देव भवनपति देव कहलाते हैं। पिशाच, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व आदि देव व्यन्तर देवोंकी श्रेणीमें आते हैं। सूर्य, चन्द्रमा आदि ज्योतिष्क देव हैं। लोकके ऊर्ध्वभागमें रहनेवाले देव वैमानिक देवके नामसे पहचाने जाते हैं।

ज्योतिष्क देव पाँच प्रकारके हैं—सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारा। इन पाँचों देवोंमें सूर्य और चन्द्रमाको इन्द्र माना गया है। सूर्य इनमें सबसे अधिक तेजस्वी हैं। प्रकाश और तापके अतिरिक्त भी लोक-जीवनमें सूर्यकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। जैन धर्मके

मुख्य शास्त्रोंमें एक आगम 'सूर्यप्रज्ञप्ति' है । उसमें सूर्य-का विभिन्न दृष्टियोंसे प्रतिपादन किया गया है । इस एक आगममें सूर्य-सम्बन्धी इतनी सूचनाएँ हैं कि उनके आधारपर ज्योतिषके क्षेत्रमें कई विद्वान् अनुसंधान कर सकते हैं ।

जैन-शास्त्रोंके अनुसार यह दृष्ट सूर्य सूर्यदेव नहीं, अपितु उनका विमान है । सूर्य एक पृथ्वी है । उसमें तैजस परमाणु-स्कन्ध प्रचुरमात्रामें उपलब्ध हैं, अतः उससे प्रकाशकी रश्मियाँ विकीर्ण होती रहती हैं । सूर्य आदि देवोंके विमान सहजरूपसे गतिशील रहते हैं । फिर भी उनके स्वामी देवोंकी समृद्धिके अनुरूप हजारों-हजारों देव-विमानोंकी गतिमें अपना योगदान देते हैं । सूर्यका विमान मेरु पर्वतके समतल भूमिभागसे आठ सौ योजनकी ऊँचाईपर अवस्थित है । इन योजनोंका माप जैनागमोंमें वर्णित प्रमाणाङ्गुलके आधारपर किया गया है ।

सूर्यका प्रकाश कितनी दूर फैलता है ? इस प्रश्नके उत्तरमें भगवती-सूत्रमें बताया गया है कि सूर्यका प्रकाश सौ योजन ऊपर पहुँचता है । अठारह सौ योजन नीचे पहुँचता है और सैंतालीस हजार दो सौ तिरसठ (४७२६३) योजनसे कुछ अधिक क्षेत्रफलमें तिरछा पहुँचता है ।

जैन-शास्त्रोंमें सूर्य और चन्द्रमाकी संख्याका पूरा विवरण है । विश्वके समग्र सूर्योंकी संख्याका आकलन किया जाय तो वे हमारे गणितके निश्चित मापकोंको अतिक्रान्त कर असंख्यतक हो जाते हैं । वैसे मनुष्य-लोकमें एक सौ बत्तीस सूर्य हैं । इनके सम्बन्धमें जम्बू-[illegible] तथा प्रज्ञापनासूत्रमें विस्तृत विवेचन है । एक [illegible] बत्तीस सूर्योंकी अवस्थिति इस प्रकार है—

जम्बूद्वीपमें दो सूर्य हैं । लवणसमुद्रमें चार सूर्य [illegible] । धातकीखण्डमें सूर्योंकी संख्या [illegible] कालोदधिमें बयालीस सूर्य हैं और पुष्कर[illegible] बहत्तरकी संख्यातक पहुँच जाते हैं । कुल इनकी संख्या एक सौ बत्तीस हो जाती है ।

ज्योतिष्क देव चर और अचर दोनों [illegible] मनुष्यलोकमें जो सूर्य, चन्द्रमा आदि हैं, वे [illegible] उनसे बाहर जो असंख्य सूर्य और चन्द्रमा हैं, [illegible] हैं । कालका सम्यक् निर्धारण सूर्यकी गतिके [illegible] होता है । मनुष्यलोकसे बहिर्वर्ती क्षेत्रोंमें सूर्यकी [illegible] नहीं है, इसलिये वहाँ व्यावहारिक [illegible] व्यवस्था भी नहीं है । सामान्यतः सूर्य [illegible] गति एक विवादास्पद पहलू है । पर [illegible] दृष्टिकोणसे समय-क्षेत्र (मनुष्यलोक) के [illegible] और उससे बहिर्वर्ती सूर्य स्थिर हैं ।

जैन-मुनियोंकी चर्यामें सूर्यका एक विशेष [illegible] उनके अनेक कार्य सूर्यकी साक्षीसे ही हो स[illegible] सूर्यकी अनुपस्थितिमें जैन मुनि भोजन भी [illegible] सकते । इस तथ्यकी अभिव्यक्ति आगम-वाणी[illegible] प्रकार हुई है—

> अत्थंगयम्मि आइच्चे पुरत्था य अणुग्गए ।
> आहारमइयं सव्वं मणसा वि न पत्थए ॥

सूर्यास्तसे लेकर जबतक सूर्य पुनः पूर्वमें निकल आये, तबतक मुनि सब प्रकारके आहारकी मनसे [illegible] इच्छा न करे ।

> उग्गए सूरे अणत्थमियसंकप्पे

सूर्योदय होनेके बाद जबतक सूर्य फिर अस्त नहीं होते हैं तबतक ही मुनि भोजन, पानी, औषधि आदि ग्रहण करनेका संकल्प कर सकता है ।

जैन-धर्ममें प्रत्याख्यानकी परम्परामें भी सूर्यको साक्षीरूप रखा जाता है । उसका एक निदर्शन इस [illegible] है—

'उग्गए सूरे णमुक्कारसहियं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं वोसिरामि।'

नमस्कारसहिता, पौरिषी आदि प्रत्याख्यानके क्रममें सबकी सीमाका निर्धारण सूर्योदयसे किया जाता है।

जैन-मुनि अपने जीवनमें साधनाके अनेक प्रयोग करते हैं। उन प्रयोगोंके साथ भी सूर्यका सम्बन्ध है। आगमोंके बृहत्तम आगम 'भगवती'में ऐसे अनेक प्रसङ्ग उपस्थित किये गये हैं। उनमें एक प्रसङ्ग है—गृहपति तामलिका। तामलि अपने भावी जीवनको उदात्त बनानेके लिये चिन्तन करता है—'जबतक मुझमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम है तबतक मेरे लिये यही उचित है कि मैं परिवारका दायित्व अपने ज्येष्ठ पुत्रको सौंप दूँ और स्वयं सहस्ररश्मि, दिनकर, तेजसे जाज्वल्यमान सूर्यके कुछ ऊपर आ जानेपर प्रव्रज्या स्वीकार करूँ।'

प्रव्रज्या स्वीकार कर वह एक विशेष संकल्प स्वीकार करता है—'आजसे मैं निरन्तर दो-दो दिनका उपवास करूँगा। उपवासकालमें 'आतापना'-भूमिमें जाकर दोनों बाहोंको ऊपर फैलाकर सूर्याभिमुख हो आतापना लूँगा।'

तपस्याके साथ सूर्यके आतपमें आतापना लेनेकी विधान कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है। तपस्यासे कर्म-शरीर क्षीण होता है और आत्माकी सुषुप्त शक्तियाँ जाग्रत् होती हैं। उसके साथ सूर्यकी आतापना लेनेसे तैजस-शरीर प्रबल होता है। इससे शरीरकी कान्ति और ओज प्रदीप्त होता है। जैन-शास्त्रोंमें एक विशेष लब्धि तैजस-लब्धिकी चर्चा है। यह शक्ति जिस साधकको उपलब्ध हो जाती है वह तैजस-शरीरके प्रयोगसे अनेक चमत्कार दिखा सकता है। यह शक्ति अनुग्रह और निग्रह दोनों स्थितियोंमें काम आती है। इस शक्तिको प्राप्त करनेके लिये लगातार छः मासतक सूर्याभिमुख आताप लेनेका विधान है।

शरीर-शास्त्रीय दृष्टिसे जैन-साधना-पद्धतिमें सूर्यकी रश्मियोंके प्रभावको नकारा नहीं जा सकता। जैन-शास्त्रोंमें रात्रि-भोजनको परिहार्य बताया गया है। इस प्रतिपादनका वैज्ञानिक विश्लेषण न हो तो उक्त पद्धति-मात्र एक परम्परा-सी प्रतीत होती है; किंतु इस परम्पराके पीछे रहे हुए दृष्टिकोणको समझनेसे इसकी वैज्ञानिकता स्वयं प्रमाणित हो जाती है।

यह तथ्य निर्विवाद है कि सूर्यकी रश्मियोंमें तेज है। इस तेजका प्रभाव प्राणि-जगत्के पाचन-संस्थानपर अत्यधिक पड़ता है। जो व्यक्ति सूर्यास्तके बाद भोजन करते हैं, वे भोजनको पचानेके लिये सूर्य-रश्मियोंकी ऊर्जाको उपलब्ध नहीं कर सकते। इसीलिये उनकी पाचनक्षमता क्षीणप्राय हो जाती है और अजीर्णरोग-जैसी बीमारियाँ उन्हें लग जाती हैं। सूर्यास्तके पश्चात् भोजन करनेवालोंकी भाँति सूर्योदयसे पहले या तत्काल बाद भोजन करनेसे भी पाचन-संस्थान सूर्यकी रश्मि-तेजसे अप्रभावित होता है; क्योंकि सूर्यके उदय हो जानेपर भी उनकी रश्मियोंका ताप प्राणि-जगत्को उपलब्ध होनेमें पचास-साठ मिनटका समय लग ही जाता है। यद्यपि बाल-सूर्यकी रश्मियोंमें भी 'विटामिन्स' होते हैं, पर भोजन पचानेमें सहायक तत्त्व कुछ समय बाद ही मिल सकते हैं। सम्भव है, इसी दृष्टिसे जैन-धर्ममें नमस्कार-सहिता-तप और रात्रिमें चतुर्विध आहार-परित्याग तपकी प्रक्रियाको स्वीकृत किया गया है।

जैन-शास्त्रोंमें सूर्यका जो विवेचन है, उसका समीचीन सकलन करनेके लिये वर्षोंतक उनका गम्भीर अध्ययन आवश्यक है। ज्योतिषके क्षेत्रमें अनुसंधान करनेवालोंको इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

न्तरिक्ष—इन तीनों लोकोंको अपने प्रकाशसे पूर्ण त करते हुए आश्चर्यरूपसे उदित हुए हैं। वे 'सूर्य स्थावर-जङ्गमात्मक सम्पूर्ण विश्वकी आत्मा हैं।' यह भी कहा गया है कि—

'सूर्यो वै सर्वेषां देवानामात्मा।'

(—सूर्य-उपनिषद्)

'सूर्य ही समस्त देवताओंके आत्मा हैं।'

इसलिये स्पष्ट है कि भगवान् सूर्य देवताओं, मनुष्यों और स्थावर-जङ्गमात्मक सम्पूर्ण विश्वके आत्मा हैं।

सूर्यकी प्राणरूपता—सूर्यके द्वारा ही संसारके समस्त जड़ और चेतन-जगत्को जीवन-शक्ति और प्राण-शक्ति प्राप्त होती है। अतः सूर्यको प्राणिमात्रका 'प्राण' कहा गया है।

'उद्यन्तु खलु वा आदित्यः सर्वाणि भूतानि प्राणयति तस्मादेनं प्राण इत्याचक्षते।' (—ऐतरेय-ब्राह्मण २५। ६) 'आदित्यो ह वै प्राणः।' (—प्रश्नोपनिषद् १। ५)।

अर्थात् उदित होते हुए सूर्य सम्पूर्ण प्राणियोंको प्राण-दान देते हैं, इसलिये सूर्यको प्राण कहते हैं।

अतः निश्चित है कि सूर्य ही प्राणिमात्रको प्राणदान करते हैं, जिससे समस्त प्राणियोंके प्राणोंका रक्षण और पोषण होता है। इसलिये सूर्य ही प्राणिमात्रके जीवन हैं।

सूर्यकी ब्रह्मरूपता—'आदित्यो ब्रह्म' छान्दोग्योपनिषद् (—३। १९। १)-के और 'असावादित्यो ब्रह्म' सूर्योपनिषद्के अनुसार भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष ब्रह्म ही हैं। सूर्यके 'ब्रह्म' होनेके कारण ही उन्हें कर्ता, भर्ता एवं संहर्ता कहा गया है।

'स य एतमेवं विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेनꣳसाधवो घोषा आ च गच्छेयुरुप च निम्रेडेरन्निम्रेडेरन्।'

(—छान्दोग्योपनिषद् ३। १९। ४)

'इसके अनुसार जो आदित्य (सूर्य) की 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार ब्रह्मरूपसे उपासना करता है, वह आदित्यरूप हो जाता है तथा उसके समीप शीघ्र ही सुन्दर घोष आते हैं और वे सुख देते हैं।'

सूर्यका सर्वप्रसवितृत्व—भुवन-भास्कर भगवान् सूर्य साक्षात् 'नारायण' हैं। ये ही समस्त संसारके उत्पादक हैं। ऋग्वेद (७। ६३। ४) में कहा गया है—'नूनं जनाः सूर्येण प्रसूताः।' 'निश्चय ही मनुष्य सूर्यसे उत्पन्न हुए हैं।' सूर्योपनिषद्में भी कहा गया है—'सूर्यसे ही समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है। सूर्यसे ही पालन होता है और सूर्यमें ही लय होता है और जो सूर्य हैं, वही मैं हूँ।'

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च॥

सूर्य समस्त संसारके प्रसविता (जन्मदाता) हैं। इसीलिये इनका नाम 'सविता' है—'सविता वै प्रसवानामीशे सवितारमेव।' (—कृष्णयजुर्वेद २। १। ६। ३) 'सूर्य ही संसारके प्रसविता हैं और वे ही अपने ऐश्वर्यसे जगत्के प्रकाशक हैं।' तथा 'सविता सर्वस्य प्रसविता।' (निरुक्त, दैवतकाण्ड ४। ३१) 'सविता सबके उत्पादक हैं।'

भगवान् सूर्य संसारके सृष्टिकर्ता हैं। अतः सूर्यसे ही सांसारिक सृष्टिचक्र प्रवर्तित और प्रचलित है। सूर्यसे ही प्राणीकी उत्पत्ति होती है। सूर्यसे ही कृषि (खेती) होती है। सूर्यसे ही पुष्प, फल, फूल,

वनस्पति, ओषधि और अन्न होता है। इसी प्रकार सूर्यसे समस्त सांसारिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। यदि सूर्य न हों तो सांसारिक सृष्टि-चक्र ही नहीं चल सकता। अतः सूर्य ही समस्त सृष्टि-चक्रके मूल हैं।

सूर्यकी सर्वदेवमयता—'सर्वदेवमयो रविः'के अनुसार सूर्य-नारायण सर्वदेवमय हैं—

> एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एव हि भास्करः।
> त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो हरिः॥
> (सूर्यतापिन्युपनिषद् १।६)

'ये सूर्य ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं तथा त्रिमूर्त्यात्मक और त्रिवेदात्मक सर्वदेवमय हरि हैं।'

भगवान् सूर्यका सर्वदेवतात्मरूप प्रसिद्ध है। अतः सूर्यमें समस्त देवताओंका निवास माना गया है। सूर्यके सम्बन्धमें कहा गया है—

> त्वामिन्द्रमाहुस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः।
> त्वमग्निस्त्वं मनः सूक्ष्मं प्रभुस्त्वं ब्रह्म शाश्वतम्॥
> (— महाभारत, युधिष्ठिरस्तोत्र)

'भगवन्! आपको इन्द्र कहा गया है। आप रुद्र, विष्णु, प्रजापति, अग्नि, सूक्ष्म मन, प्रभु और वेद हैं।'

सूर्योपनिषद्में 'त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुः'—इत्यादिद्वारा सूर्यको 'सर्वदेवरूप' कहा गया है।

सूर्यका प्रत्यक्ष देवत्व—'साक्षाद् देवो दिवाकरः' के अनुसार भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। ये प्रतिदिन प्रातःकालमें उदित और सायंकालमें अस्त होकर संसारके समक्ष अपने देवत्वको प्रत्यक्ष प्रकट करते हैं तथा समस्त संसारका सब प्रकारसे कल्याण करते हैं। इसीलिये सूर्यके प्रत्यक्ष देवत्वको आस्तिक और नास्तिक प्रायः सभी प्रकारके मनुष्य सहर्ष स्वीकार करते हैं। अतः भगवान् सूर्य सभीके लिये उपास्य और आराध्य हैं।

देवताओंमें भगवान् सूर्य सबसे श्रेष्ठ और सबसे अधिक उपकारक हैं। ये प्रतिदिन अपनी अमृतमयी किरणोंके द्वारा समस्त संसारको [illegible] ऊष्मा आदि प्रदान करते हैं जिससे [illegible] प्राणी और पेड़-पौधे—वनस्पति आदि [illegible] पुष्ट और सुरक्षित रहते हैं। सूर्यकी किरणोंकी ज्योति प्राणिमात्रके लिये [illegible] और उपयोगी है। अतः स्पष्ट है कि सूर्य समस्त जड और चेतन प्राणियोंके जीवन-स्रोत हैं। इसीलिये सूर्यको समस्त प्राणियोंका जीवन कहा गया है—'जीवनं सर्वभूतानाम्' (— [illegible] ११।९)।

सूर्यकी काल-विभाजकता—भगवान् सूर्य [illegible] नियन्ता और समय-विभाजक हैं। सूर्यसे ही दिन, तिथि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, [illegible] और कल्प आदिके समयका यथार्थ ज्ञान होता है। [illegible] हों तो दिन एवं रात आदिके समयका ज्ञान ही नहीं सकता। समयके ज्ञान न होनेसे सांसारिक [illegible] भी कामका व्यवस्थित रूपमें होना असम्भव हो जाय। [illegible] संसारके समस्त कार्य सूर्यपर ही अवलम्बित हैं।

सूर्यकी अनादि उपासना—भगवान् सूर्य अनादि हैं। अतएव इनकी उपासना अनादिकालसे प्रचलित है। सूर्यवंशी भगवान् राम और चन्द्रवंशी भगवान् कृष्ण, भीष्मपितामह, धर्मराज युधिष्ठिर और राजा जनक आदि गृहस्थ योगी, वालखिल्य आदि ब्रह्मवादी महर्षि, [illegible] आदि वानप्रस्थ ऋषि एवं वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, नारद, कपिल आदि तपस्वी ऋषि-मुनि सूर्यकी उपासना करते थे। इसलिये सूर्योपासना सभीके लिये आवश्यक और नित्यकर्म है। यद्यपि कालचक्रके दुष्प्रभावसे वर्तमान समयमें सूर्योपासनाका बहुत ही ह्रास हो गया है, तथापि धर्मप्रधान भारतवर्षमें सनातनधर्मी जनता किसी-न-किसी रूपमें अब भी सूर्योपासना करती ही है। व्रत, अनुष्ठान और सन्ध्याके रूपमें सूर्योपासना तो चल ही रही है।

साधकोंके कामधेनु—भगवान् सूर्य अत्यन्त
क और दयालु हैं । वे अपने उपासकको सब
दान करते हैं—

ॐ न सविता सूर्य काले सम्यगुपासितः ।
दारोग्यमैश्वर्यं वसूनि स पशूंस्तथा ॥
पुत्रकलत्राणि क्षेत्राणि विविधानि च ।
निर्गविधांश्चापि स्वर्गं चाप्यपवर्गकम् ॥
(—स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ९ । ४७-४८)

जो मनुष्य सूर्यकी यथासमय सम्यक् प्रकारसे
ना करते हैं, उन्हें वे क्या-क्या नहीं देते—वे
उपासकको दीर्घायु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन, पशु,
पुत्र, स्त्री, विविध प्रकारके उन्नतिके व्यापक क्षेत्र,
प्रकारके भोग, स्वर्ग और अपवर्ग (सब कुछ)
करते हैं ।'

भगवान् सूर्य परब्रह्ममय, सर्वदेवमय, सर्वजगन्मय और परम ज्योतिर्मय देवता हैं । ये अपनी दिव्य सहस्र रश्मियोंसे सभीका, विशेषतः अपने उपासकोंका सभी प्रकारसे कल्याण करते हैं । अतः यह समस्त चराचर संसार भगवान् सूर्यका ऋणी है । इनसे उऋण होनेके लिये मनुष्यमात्रको सर्वदा सूर्यकी उपासना करनी चाहिये । जो मनुष्य श्रद्धा-भक्तिसे यथासमय नियमपूर्वक प्रतिदिन सूर्यकी उपासना करते हैं, वे उस ज्ञानमय प्रकाशयुक्त 'सूर्यलोक'को प्राप्त करते हैं, जहाँ पुण्यात्मा मनुष्य जाते हैं । जो मनुष्य सूर्यकी उपासना नहीं करते, वे अज्ञानमय प्रकाशहीन[1] 'असूर्यलोक' (असुरोंके लोक) को प्राप्त करते हैं, जिसको आत्मघाती पापी मनुष्य प्राप्त करते हैं ।

सूर्योपासनाका महत्त्व

(लेखक—आचार्य डॉ० श्रीउमाकान्तजी 'कपिध्वज' एम्० ए०, पी-एच्० डी०, काव्यरत्न)

हिंदूधर्म समस्त सृष्टि और सृष्टिके अतिरिक्त भी जो
है, सभीको एक पूर्णत्वमें समाहितकर आध्यात्मिक
प्रदान करनेकी प्रक्रियाको सदैव महत्त्व
रहा है । वैदिककालके प्रारम्भसे ही 'भूमा वै
सु'[2] की विचारधाराको प्रश्रय मिला है । आर्योंकी
'भूमा'वाली दृष्टि उन्हें सीमितसे असीमितकी ओर
तथा उसके साथ तादात्म्य स्थापित करनेकी
देती रही है । इसी क्रममें एक ओर जहाँ उन्हें
के नियामकरूपमें अनेक देवी-देवताओंके दर्शन
वहीं तीनों लोकोंमें अपनेको समाहित करनेकी एवं
तीनों लोकोंके नियन्ताके साथ तादात्म्य स्थापित करनेकी उत्कट अभिलाषाकी जागृति भी हुई । इसलिये उन्होंने जो प्रयास किये तथा जिस विधिसे अपने उपास्यकी अनुकम्पाके लिये उनकी उपासना की, उसीको आदर्श मानकर हम अपने उपास्यकी उपासना करते हैं । हमारी उपासना-परम्परामें उनकी निर्देश-सरणी ही आदर्श है ।

हिंदूजातिमें प्रचलित इन उपासना-पद्धतियोंमें सूर्योपासनाका एक विशिष्ट स्थान है । इसका प्रमुख कारण यह है कि सौरमण्डलमें सूर्य-चन्द्रादि नवग्रह, त्रिदेव,

1. असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः । तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥
(—शु० यजु० ४० । ३)

2. (क) 'यो वै भूमा तत् सुखं नाल्पे सुखमस्ति' (—छान्दोग्य० ७ । २३ । १)
(ख) 'यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा, यो वै भूमा तदमृतम् ।'
(—छान्दोग्य० ७ । २४ । १)

मरुद्गण, साध्यदेव, सप्तर्षिगण एवं तैंतीस कोटि देवता निवास करते हैं। इन समस्त 'स्वः' लोकीय देवोंका प्रतिनिधित्व सूर्य एवं चन्द्रद्वारा होता है। दूसरे शब्दोंमें तेजोनिधान भगवान् भुवन-भास्कर श्रीसूर्यनारायण ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी अचिन्त्यशक्तियोंके प्रमुख संचालक हैं।

ऋग्वेद (शाकल) संहिता (१।११५।१) में 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' कहकर जङ्गम तथा स्थावर—सभी प्राणियोंकी आत्मा भगवान् सूर्यको ही स्वीकार किया गया है। श्रीमद्भागवतमें सुस्पष्ट वर्णन है कि सूर्यके द्वारा ही दिशा, आकाश, द्युलोक, भूर्लोक, स्वर्ग-मोक्षके प्रदेश, नरक और रसातल तथा अन्य समस्त स्थानोंका विभाग होता है। सूर्यभगवान् ही देवता, तिर्यक्, मनुष्य, सरीसृप और लता-वृक्षादि समस्त जीव-समूहोंके आत्मा एवं नेत्रेन्द्रियके अधिष्ठाता हैं।[1] महाभारतमें भगवान् सूर्यका स्तवन करते हुए महाराज युधिष्ठिर कहते हैं—'सूर्यदेव! आप सम्पूर्ण जगत्के नेत्र तथा समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं। आप ही सब जीवोंके उत्पत्ति-स्थान और कर्मानुष्ठानमें लगे पुरुषोंके सदाचार हैं।'[2] जो ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, प्रजापति, वायु, आकाश, जल, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, ग्रह, नक्षत्र और चन्द्रमा आदि देवता हैं; वनस्पति, वृक्ष तथा ओषधियाँ जिनके स्वरूप हैं, ब्राह्मी, वैष्णवी और माहेश्वरी—ये त्रिधा शक्तियाँ जिनका वपु हैं; भानु [illegible] स्वरूप हैं; वे आप भुवन-भास्कर (हमपर [illegible] इस प्रकार मार्कण्डेयपुराणमें भगवान् सूर्य[illegible] प्रदर्शित की गयी है। फलतः आ[illegible] प्रधान देव स्वीकार करना वैदिक तथ्य है।

सूर्योपासनाका सर्वप्रथम संकेत हमें वे[illegible] उपलब्ध होता है। ऋग्वेद (शाकल [illegible] (—१।३५।२)में—'आ कृष्णेन रजसा [illegible] शुचिषद्०'(—ऋग्०४।४०।५),(कृष्ण[illegible] तथा मैत्रायणीसंहिता-(कृष्णयजुर्वेद) 'त[illegible] विद्महे प्रभाकराय धीमहि। तन्नो भानुः प्र[illegible] (—२।९।१)-में कहकर भगवान् सूर्यकी [illegible] महत्ता प्रदर्शित की गयी है। 'तत्सवितुर्वरेण्यं' इत्यादि प्रसिद्ध गायत्री-मन्त्र सूर्यकी तेज[illegible] उपासनासे सम्बद्ध है और ब्रह्मविद्याके नामसे भी [illegible] है।[5] ऋग्वेद (५।४०।१०; ५।[illegible] अथर्ववेद (५।२४।९, १३।१।४१) स्थानोंमें सूर्यको द्युलोकसे सम्बद्धकर सर्वोत्त[illegible] कहा गया है। विभूति-वर्णनके प्रसङ्गमें भगवान्ने 'ज्योतिषां रविरंशुमान्'[6] कहकर सूर्यकी [illegible] प्रदर्शित की है। उपनिषदोंमें भी स्वीकार किया [illegible] कि ब्रह्म ही प्रतीकरूपसे 'आदित्य' हैं।[7] [illegible] सूर्यके रूपमें परब्रह्म परमेश्वरकी ही उपासना [illegible]

---

१. सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौर्मही भिदा। स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः॥
देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधाम्। सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः॥
(—श्रीमद्भागवत ५।२०।

२. 'त्वं भानो जगतश्चक्षुः' ... 'त्वमाचारः क्रियावताम्॥' (—महा० वन० ३।३६)। ३. (मार्कण्डेयपुराण [illegible]
[illegible] ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एव हि भास्करः। त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो रविः॥ (—[illegible]
४. सूर्यतापिनी-उपनिषद्में इन्हींको सूर्यको 'सर्वदेवमय' स्वीकार किया गया है—
५. शुक्लयजु० (३।३५, २२।९), (ऋग्वेदसंहिता ३।६२।१०)।
६. गीता (१०।२१), श्रीमद्भागवत (११।१६।१४)। ७. (क) 'आदित्यो ब्रह्म' (—छा० उपनिषद् ३।१९।१), (ख) 'असावादित्यो ब्रह्म' (—तैत्ति० आ० [illegible] २।१।६, १४।१।१।६), (ग) '[illegible]' [illegible] (—मैत्र्युपनिषद् २।२)।

है। गायत्री-मन्त्रमें कहे गये 'सवितुः' पदसे
का ही ग्रहण होना है। अतः सूर्य सविताका ही
पर्यायवाची शब्द है।[1] गायत्री और सूर्यका परस्पर जो
अभिन्न सम्बन्ध है, वह वाच्य-वाचकरूपसे निर्दिष्ट है।
अर्थात् सूर्य गायत्रीके साक्षात् वाच्य हैं और गायत्री उन
सविताकी वाचिका है।[3] तभी तो कहा गया है कि
गायत्री-मन्त्रद्वारा जलको अभिमन्त्रित करके जिसने
भगवान् सूर्यको यथासमय तीन अञ्जलियाँ जल अर्पित कीं,
क्या उसने तीनों लोकोंको नहीं दे दिया![4]

कतिपय स्तुतियों और प्रार्थनाओंके माध्यमसे भी
वेदोंमें मानव-समुदायके समक्ष आदर्श प्रस्तुत करते हुए
सूर्यकी महिमामयी गाथाका बखान किया गया है। ऋग्वेदके
एक मन्त्रमें ऋषि कहते हैं कि हम बार-बार देते
हुए, किसीकी धारणा करते हुए, जानते हुए परस्पर मिलते रहें
और सूर्य-चन्द्रमाके समान कल्याण-पथका अनुसरण करते
रहें। अर्थात् जिस प्रकार सूर्य-चन्द्रमा परस्पर आदान-
प्रदानकर स्वार्थों वर्षोंसे नियमित रीतिसे कार्य कर रहे
हैं, कभी अपने काममें प्रमाद नहीं करते, अपने आश्रित-
जनोंको धोखा नहीं देते, प्रत्युत यथोचित समयपर कार्य
करनेमें सहायता देते हैं, ठीक उसी प्रकार हम भी उनका
आदर्श सामने रखकर काम करें। हम भी अपने विलास
(चन्द्रमा-Materialism, wosidly gait)को विवेक
(सूर्य-Spiritual Knowledge)के अधीन मर्यादित
रखें। अवसर देखकर कभी उग्रतासे और कभी शान्तिसे
काम करें।[5] ऋग्वेदमें ऋषि अन्यत्र कहते हैं कि 'हे
सवितादेव! आप सब प्रकारके कष्टों (पापों) को दूर
करें और जो कल्याणकारक हो वही हमारे लिये दें—
उत्पन्न करें।[6] अभिप्राय यह कि सूर्य तभी कल्याण
करते हैं, जब हम उनके समान नियमसे काम
करनेवाले हों। यदि हम प्रातःकाल उठकर सूर्य-सेवन
(खुले मैदानमें सन्ध्योपासन, जीवन-निर्वाहके कार्य)
करते हों तो सब प्रकारसे कल्याण हो सकता है।
स्वास्थ्य बढ़ सकता है,

सूर्यकी आराधना और प्राकृतिक नियमोंके पालनसे
रोग दूर होते हैं तथा स्वास्थ्य स्थिर रहता है,—ऐसी
हमारी वैदिक और पौराणिक मान्यता है। इसी परिप्रेक्ष्यमें
ऋग्वेदके ऋषि भगवान् आदित्यकी स्तुति करते हुए
कहते हैं—'हे अखण्ड नियमोंके पालन-कर्ता परम दे
(आदित्यासो)! आप हमारे रोगोंको दूर करें, हमारी
दुर्मतिका दमन करें और पापोंको दूर हटा दें।[7]
इसी संदर्भमें ब्रह्मपुराणका स्पष्ट उद्घोष है कि मनुष्यके
मानसिक, वाचिक और शारीरिक जो भी पाप हो
हैं, वे सब भगवान् सूर्यकी कृपासे निःशेष नष्ट हो
जाते हैं।[8] इतना ही नहीं सूर्याराधकका अन्धापन

१. यजुर्वेद (३६।३), २. (क) 'असौ वा आदित्यो देवः सविता।' (—शतपथ० ६।३।१।२०),
(ख) 'आदित्योऽपि सवितेवोच्यते।' (—निरुक्त, दैवतकाण्ड ४।३१)
३. 'वाच्यवाचकसम्बन्धो गायत्र्याः सवितुर्द्वयोः। वाच्योऽसौ सविता साक्षाद् गायत्री वाचिका परा
(—स्कन्दपुराण ४।१।९।५४)
४. गायत्रीमन्त्रतोयाढ्यं दत्तं येनाञ्जलित्रयम्। काले सवित्रे किं न स्यात् तेन दत्तं जगत्त्रयम्॥
(—स्कन्दपुराण ४।१।९।४६
५. स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव। पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥
(—ऋक्० ५।५१।१५)
६. 'विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव।' (—ऋक्० ५।८२।५)
७. 'अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिम्। आदित्यासो युयोतना नो अंहसः।' (—ऋक्० ८।१८।१०)
८. मानसं वाचिकं वापि कायजं यच्च दुष्कृतम्। सर्वं सूर्यप्रसादेन तदशेषं व्यपोहति॥'
(२९।१०)

कोढ़, दरिद्रता, रोग, शोक, भय और कलह—ये सभी विश्वेश्वर सूर्यकी कृपासे निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। जो भयंकर कष्टसे दुःखी, गलित अङ्गोंवाला, नेत्रहीन, बड़े-बड़े घावोंसे युक्त, यक्ष्मासे ग्रस्त, महान् शूलरोगसे पीड़ित अथवा नाना प्रकारकी व्याधियोंसे युक्त हैं, उनके भी समस्त रोग सूर्य-कृपासे नष्ट हो जाते हैं—इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। ध्यातव्य है कि पुराणोंमें विशेषतः कुष्ठरोगकी निवृत्तिके लिये ही सूर्यकी उपासनाका प्रारम्भ बतलाया गया है। भविष्यपुराणके ब्राह्मपर्वमें दुर्वासाके शापसे कृष्ण-पुत्र साम्बके कुष्ठरोगसे आक्रान्त होनेकी प्रख्यात कथा है। श्रीकृष्णचन्द्रके आग्रहपर गरुड़ने शाकद्वीपसे वैद्यविद्याके ज्ञाता ब्राह्मणोंको लाकर इस रोगकी निवृत्तिका मार्ग उन्मुक्त किया। इन ब्राह्मणोंने सूर्यमन्दिरकी स्थापना करायी तथा सूर्यकी आराधनासे साम्बको रोगमुक्त कर दिया था।*

पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय ८२में महाराज भद्रेश्वरकी प्रख्यात गाथा भी इसका प्रभूत प्रमाण है। महाराज भद्रेश्वरके बायें हाथमें श्वेत कुष्ठ हो गया था। वैद्योंने बहुत उपचार किया, पर कोढ़का चिह्न मिटनेके बजाय और भी स्पष्ट दिखायी देने लगा। फलतः ब्राह्मणोंकी सम्मतिसे महाराज भद्रेश्वरने सूर्याराधनके द्वारा ही कुष्ठ-रोगसे छुटकारा पाया। प्रसिद्ध 'सूर्यशतक'के रचयिता मयूर कविने भी कुष्ठरोगके निवारणार्थ भगवान् सूर्यकी आराधना करते हुए 'सूर्यशतक'की रचना कर अपनेको कुष्ठरोगसे निर्मुक्त किया था। स्कन्दपुराणके नागरखण्डमें जिन तीन सूर्य-विग्रहोंका वर्णन है, उनमें प्रथमका नाम 'मुण्डीर', दूसरेका 'कालप्रिय' तथा तीसरेका 'मूलस्थान' है। भगवान् सूर्य प्रातःकाल मुण्डीरमें, मध्याह्नके समय कालप्रियमें तथा संध्या-समय मूलस्थानमें जाते हैं। उस समय जो मनुष्य इन तीनों सूर्य-विग्रहोंमेंसे किसी एकका भी भक्तिपूर्वक दर्शन करता है, [illegible] प्रकारके रोगोंसे मुक्त होकर [illegible] समुद्रके निकट चित्रपुर नामक नगरमें ब्राह्मणकी गाथा इसका प्रमाण है। हाटकेश्वर क्षेत्रमें जाकर मुण्डीर [illegible] जिससे उसका कुष्ठरोग जाता रहा [illegible] सुन्दर हो गया।

अब हम भगवान् सूर्यसे सम्बद्ध कुछ वैदिक ऋचाओंके दैनिक पाठसे [illegible] फलका वर्णन करते हैं। [illegible] लिये जान-बूझकर ऋचाओंका [illegible] जा रहा है—

(१) 'उद्वयं तमसः०' (—ऋग्वेद १।[illegible]) तथा 'उदु त्यं जातवेदसम्०' (—ऋग्० १।[illegible]) जो व्यक्ति प्रतिदिन इन ऋचाओंसे उदित हुए सूर्यका उपस्थान करता है तथा उनके [illegible] सात बार जलाञ्जलि देता है, उसके मानसिक दुःख[illegible] विनाश हो जाता है।

(२) 'पुरीष्यासोऽग्नयः०' (—ऋग्वेद ३।२२।[illegible]) इस ऋचाका जप आरोग्यकी कामना करनेवाले [illegible] लिये बहुत ही उपादेय है।

(३) 'अप नः शोशुचदघम्०' (—ऋग्वेद १।९७।१-८)—इत्यादि ऋचाओंके द्वारा मध्याह्नमें सूर्यदेवकी स्तुति करनेवाला व्यक्ति सभी प्रकारके [illegible] मुक्त हो जाता है।

(४) 'चित्रं देवानाम्०' (—ऋग्वेद १।११५।[illegible]) मन्त्रसे हाथमें समिधाएँ लेकर प्रतिदिन तीनों संध्याओंके समय सूर्यका उपस्थान करनेवाला व्यक्ति मनोवाञ्छित [illegible] प्राप्त करता है।

---

* ततः शापाभिभूतेन [illegible] भास्करम्। साम्बेनाप्तं तथाऽऽरोग्यं रूपं च परमं पुनः॥ (—भविष्य०, ब्राह्मपर्व ७२। ४९)

(५) 'हंसः शुचिषत्०' (—ऋग्वेद ४।४०।५)—इस मन्त्रका जप करते हुए सूर्यका दर्शन पवित्रता प्रदान करता है।

(६) 'तच्चक्षुर्देवहितम्०' (—ऋग्वेद ७।६६।१६)—इस ऋचासे उदयकालिक एवं मध्याह्नकालिक सूर्यका उपस्थान करनेवाला दीर्घकालतक जीवित रह सकता है।

(७) 'वसन्तोऽस्यासीद्०' (—यजुर्वेद ३१।१४)—इस मन्त्रसे घृतकी आहुति देनेपर भगवान् सूर्यसे अभीष्ट वरकी प्राप्ति होती है।

(८) 'असौ यस्ताम्रः०' (—यजुर्वेद १६।६) मन्त्रका पाठ करते हुए नित्य प्रातःकाल एवं सायंकाल आलस्यरहित होकर भगवान् सूर्यका उपस्थान अक्षय अन्न एवं दीर्घ आयु प्रदान करनेवाला होता है।

(९) 'अद्य नो देव सवितः०' (—सामवेद १४१)—यह मन्त्र दुःस्वप्नोंका नाश करनेवाला है।

(१०) 'ॐ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो
निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदेवो
याति भुवनानि पश्यन्॥'
(—ऋग्वेद १।३५।२, यजु० ३३।४३)

—यह मन्त्र सभी प्रकारकी कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला है। प्रतिदिन प्रातःकाल इस मन्त्रका कम-से-कम सात हजार जप करना चाहिये।

भगवान् सूर्यसे सम्बद्ध मन्त्रोंमें अधोलिखित मन्त्र सभी प्रकारके नेत्ररोगोंको यथाशीघ्र समाप्त करनेवाला अनुभूत मन्त्र है। (मैंने जीवनमें कई बार इस मन्त्रसे आश्चर्यजनक सफलता अर्जित की है।) यह पाठमात्रसे सिद्ध होनेवाला है। इसे 'चाक्षुषोपनिषद्' के नामसे भी जाना जाता है तथा इसका वर्णन कृष्ण-यजुर्वेदमें मिलता है।

'अस्याश्चाक्षुषीविद्याया अहिर्बुध्न्य ऋषिः गायत्री छन्दः सूर्यो देवता चक्षूरोगनिवृत्तये जपे विनियोगः।'

ॐ चक्षुः चक्षुः चक्षुः तेजः स्थिरो भव। मां पाहि पाहि। त्वरितं चक्षूरोगान् शमय शमय। मम जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय। यथाहं अन्धो न स्यां तथा कल्पय कल्पय। कल्याणं कुरु कुरु। यानि मम पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुःप्रतिरोधकदुष्कृतानि तानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय। ॐ नमः चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्याय भास्कराय। ॐ नमः करुणाकरायामृताय। ॐ नमः सूर्याय। ॐ नमो भगवते सूर्यायाक्षि-तेजसे नमः। खेचराय नमः। महते नमः। रजसे नमः। तमसे नमः। असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय। उष्णो भगवाञ्छुचिरूपः। हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरूपः। य इमां चाक्षुष्मतीविद्यां ब्राह्मणो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति। न तस्य कुले अन्धो भवति। अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा विद्या-सिद्धिर्भवति।

१. ॐ इस चाक्षुषी विद्याके ऋषि अहिर्बुध्न्य हैं, गायत्री छन्द है, सूर्यनारायण देवता हैं तथा नेत्ररोगकी निवृत्तिके लिये इसका जप होता है—यह विनियोग है। (भावानुवाद नाम [illegible]) हे चक्षुके अभिमानी सूर्यदेव! आप मेरे चक्षुमें चक्षुके तेजरूपसे स्थिर हो जायँ। मेरी रक्षा करें, रक्षा करें। मेरे आँखके रोगका शीघ्र शमन करें, शमन करें। मुझे अपना सुवर्ण-जैसा तेज दिखला दें, दिखला दें। जिससे मैं अन्धा न होऊँ (कृपया) वैसा ही उपाय करें, उपाय करें। मेरा कल्याण करें, कल्याण करें। दर्शनशक्तिका अवरोध करनेवाले मेरे पूर्वजन्मार्जित जितने भी पाप हैं, उन सबको जड़से उखाड़ दें, जड़से उखाड़ दें। ॐ (सच्चिदानन्दस्वरूप) नेत्रोंको तेज प्रदान करनेवाले दिव्यस्वरूप भगवान् भास्करको नमस्कार है। ॐ करुणाकर अमृतस्वरूपको नमस्कार है। ॐ सूर्य भगवान्‌को नमस्कार

* ... मनःपरमोमितः पातु नो विश्वचक्षुः ॥

इस प्रकार उपरिनिर्दिष्ट सम्पूर्ण विवेचनके आकलनसे यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि भगवान् सूर्यकी उपासना मानवमात्रके लिये नितान्त वाञ्छनीय है । सूर्योपासनासे दिव्य आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन, पशु, मित्र, पुत्र, स्त्री, अनेक इच्छित भोग तथा स्वर्ग ही नहीं, मोक्षतक भी अनायास सुलभ हो जाता है । अतः प्रत्येक नैतिक, सामाजिक अभ्युत्थानके इच्छुक व्यक्तिको विशेषतः व्यक्तिको—सद्यःफलप्रदाता भगवान् भास्कर ... करके अपना जीवन सफल बनाना चाहिये । ... भी है कि 'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्' ।

वैदिक धर्ममें सूर्योपासना

(लेखक—डॉ० श्रीनीरजाकान्तदेव चौधरी विद्यार्णव, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, पी-एच्० डी०)

सनातन (वैदिक) धर्ममें भगवान् सूर्यकी उपासनाका एक मुख्य स्थान है । हिंदूमात्र महाभाग सूर्यके उपासक हैं ।

वेदमें भगवान् सूर्यके असंख्य मन्त्र हैं । स्थानाभावके कारण केवल दो-चार मन्त्रोंपर ही यहाँ आलोचन किया जाता है ।

(१) ब्रह्मगायत्री

'ॐ भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

भगवान् सूर्यका एक नाम सविता है । यह मन्त्र वेदोंका मूल स्वरूप है । प्रति द्विजको त्रिवर्ण—अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको तीनों सन्ध्याओंमें इस महामन्त्रका जप करना आवश्यक है ।

वेदमाता जगत्प्रसविणी आद्याशक्ति सावित्री परब्रह्मस्वरूपिणी हैं ।

भाष्य—

तिसृणां महाव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिः ... वायुसूर्या देवताः, गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री छन्दः, सविता देवता महा... शान्तिकरणे विनियोगः ।

अस्यार्थः—भूः पृथिवी, भुवः आकाशं, स्वः स... एतान् त्रीन् लोकानिति परिणय्य धीमहीति ... पदं योज्यम् । तथा तत्सवितुरादित्यस्य भर्गः तेजो वा धीमहि ध्यायेम चिन्तयामेति याव... किम्भूतं वरेण्यं वर्येभ्यः श्रेष्ठम् । किम्भूतस्य सवि... देवस्य दानादिगुणयुक्तस्य । पुनः किम्भूतस्य यः सविता नोऽस्माकं धियो बुद्धीः प्रचोदया... प्रेरयति—सकलपुरुषार्थेषु प्रवर्तयतीत्यर्थः ।

भाष्यका भावार्थ—तीन महाव्याहृतियों—भूः भुवः स्वः के ऋषि स्वयं प्रजापति ब्रह्मा हैं तथा अग्नि, वायु और सूर्य देवता हैं । छन्द नहीं है । इस गायत्रीके ऋषि विश्वामित्र (ये गाधिपुत्र नहीं हैं), गायत्री छन्द है और

है । ॐ नेत्रोंके प्रकाशक भगवान् सूर्यदेवको नमस्कार है । ॐ आकाशविहारीको नमस्कार है । परमश्रेष्ठ ... नमस्कार है । ॐ (सबमें क्रियाशक्ति उत्पन्न करनेवाले) रजोगुणरूप सूर्यभगवान्को नमस्कार है । (अन्धकारको सर्वथा अपने अंदर समा लेनेवाले) तमोगुणके आश्रयभूत भगवान् सूर्यको नमस्कार है । भगवन् ! आप मुझको असत्से सत्की ओर ले चलिये । अन्धकारसे प्रकाशकी ओर ले चलिये । मृत्युसे अमृतकी ओर ले चलिये । उष्णस्वरूप भगवान् सूर्य शुचिरूप हैं । हंसस्वरूप भगवान् सूर्य शुचि तथा अप्रतिरूप हैं—उनके तेजःस्वरूपकी समता करनेवाला कोई नहीं है । जो ब्राह्मण इस चाक्षुष्मती विद्याका नित्य पाठ करता है, उसके नेत्रसम्बन्धी कोई रोग नहीं होता । उसके कुलमें कोई अंधा नहीं होता । आठ ब्राह्मणोंको इस विद्याका ... ग्रहण करा देनेपर इस विद्याकी सिद्धि होती है ।'

...ा देवता हैं। महावीररूप कर्ममें अर्थात् यज्ञमें ...शान्त शान्तिके लिये विनियोग है।

...भूका अर्थात् पृथ्वीके चैतन्यपुरुषका हम सब ...कर ध्यान करें। आकाशके पुरुषका हम ...न करें। स्वर्गलोकके चैतन्य पुरुषका ध्यान करें और ...सविताकी अर्थात् आदित्य या सूर्यके भर्गकी, पाप-...र्जनकारी तेजकी तथा वीर्यकी हम चिन्ता करें। ...किस प्रकारका भर्ग है? श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ है। वे ...विता कैसे हैं? जगत्के जन्मदाता हैं—उन्हींसे ...गत्की सृष्टि हुई है। ये सविता हमें सब कुछ दे ...हे हैं। हमें एवं पृथ्वीके समस्त प्राणियोंको प्राण दे रहे ...हैं, अन्न दे रहे हैं, हमारा पालन-पोषण कर रहे हैं। यही ...है सविताका तेज। सविता भगवान् सूर्यके शरीराभिमानी देवता हैं। हम सबकी बुद्धिको तथा सब प्रकारके परम पुरुषार्थको, जिसमें धर्म, अर्थ एवं काम गौण हैं और मोक्ष मुख्य है, प्रदान करते हैं।

अतः भगवान् सूर्यके इस प्रसवणी शक्ति सावित्रीकी उपासना ही ब्रह्मविद्याकी साधना है। यही मनुष्यको जन्म और मृत्युसे छुड़ाकर मोक्षरूप फल प्रदान करती है।

(२) आदित्य ब्रह्मस्वरूप

'ॐ असावादित्यो ब्रह्म॥' 'ये सूर्य ही ब्रह्मके साकारस्वरूप हैं।'

(यह मन्त्र अथर्ववेदीय सूर्योपनिषद्में है। सूर्योपनिषद्का उल्लेख मुक्तिकोपनिषद्में है।)

(३) हिरण्यवर्ण श्रीसूर्यनारायण

'सप्ताश्वरूढेन बीजेन चतुष्कं रक्ताम्बुजसंस्थितं सप्ताश्वरथिनं हिरण्यवर्णं चतुर्भुजं पद्मद्वयाभयवरद-हस्तं कालचक्रप्रणेतारं श्रीसूर्यनारायणं य एवं वेद स वै ब्राह्मणः।' (—सूर्योपनिषद्)

'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात् सर्व एव सुवर्णः।' (—छान्दोग्य उ० १।६।६)

भावार्थ—सूर्यमण्डलमें हिरण्यवर्ण श्रीसूर्यनारायण अवस्थित हैं। वे सप्ताश्वरथमें सवार, रक्तकमलस्थित कालचक्रप्रणेता चतुर्भुज हैं, जिनके दो हाथोंमें कमल और अन्य दो हाथोंमें अभय वर मुद्रा है। ये हिरण्यश्मश्रु एवं हिरण्यकेश हैं। इनके नखसे लेकर सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुवर्ण वर्णके हैं। इस प्रकार इन आदित्य देवका दर्शन होता है। जो इनको जानते हैं, वे ही ब्रह्मवित् अर्थात् ब्राह्मण हैं।

(४) सूर्य ही स्थावर-जङ्गम—सम्पूर्ण भूतोंकी आत्मा हैं

वेदके अनेक मन्त्रोंमें सूर्यको चक्षु कहा गया है। नीचे केवल परिचय-हेतु कुछ मन्त्र दिये जाते हैं—

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं
सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥

भाष्य

(असौ) सूर्य उदगात् (उदितोऽभवत्)। कीदृशः? मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः (देवानां त्रयाणां तदुपलक्षितानां त्रयाणां जगताम्) चक्षुः (प्रकाशकः)। तत्र सूर्यदेवताकः स्वर्लोकः, वरुणदेवताकः महर्लोकः, अग्निदेवताकः भूर्लोकश्च। पुनः कीदृशः? देवानामनीकम् (समष्टिस्वरूपः)। कथमुदगात्? चित्रम् (आश्चर्यं यथा भवति तथा)। (उदयानन्तरं) द्यावा पृथिवी (दिवं पृथिवीं च) अन्तरिक्षम् (आकाशम्) आप्राः (आप्रात् पूरितवान् स्वेन रश्मिणा जालेनेति शेषः)। पुनः किम्भूतः? जगतः (जङ्गमस्य) तस्थुषः (स्थावरस्य) च आत्मा (स्थावरजङ्गमात्मकसंकलसंसारमयोऽयमेव सूर्य इत्यर्थः)।

भाष्यार्थ—मित्र, वरुण एवं अग्निके द्वारा अधिष्ठित, त्रिलोकके प्रकाशक, सभी देवताओंके समष्टिस्वरूप तथा स्थावर-जङ्गमके अन्तर्यामी आत्मस्वरूप भगवान् सूर्य आश्चर्य-

रूपसे उदित हुए हैं। स्वर्ग, मर्त्य और आकाशको अपने रश्मिजालसे परिपूर्ण किये हैं।

इस वेदमन्त्रके अन्तर्निहित गम्भीर रहस्यको आधुनिक जड़ विज्ञान तथा पाश्चात्य जगत् भी क्रमशः हृदयङ्गम कर स्वीकार करने लगे हैं। सूर्यसे ही इस दृश्यमान पृथ्वी तथा अन्य लोक एवं समस्त भूतगणोंकी सृष्टि, स्थिति तथा लय होती है। सूर्यके नहीं रहनेसे समस्त प्राणी और उद्भिज—दोनोंका ही जीना असम्भव है।

'आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।

(मनुस्मृति)

सूर्यसे वर्षा, वर्षासे अन्न और अन्नसे प्रजा अर्थात् प्राणीका अस्तित्व होता है।

नीचेके मन्त्रमें सूर्यनारायणको त्रिलोकीमें स्थित समस्त देवगणोंका 'चक्षुः' कहा गया है।

(५) विष्णुगायत्री

'ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः, दिवीव चक्षुराततम्।'

:भावार्थ—उस सर्वव्यापी विष्णुके परमपदको, जो कि तुरीयस्थान है, ज्ञानीजन सर्वदा आकाशस्थित सूर्यके समान सभी ओर दर्शन करते हैं।

अतः हे साधक! तुम निराश मत हो, तुम भी क्रमशः साधन-पथसे चेष्टा करनेपर इसकी उपलब्धि कर सकोगे।

(६) जगत्के नेत्रस्वरूप भगवान् सूर्यकी कृपासे दीर्घ स्वास्थ्यमय जीवन-लाभ होता है

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम्, शृणुयाम शरदः शतम्। प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम्, भूयश्च शरदः शतात्॥

*

भाष्य

तत् चक्षुः जगतां [illegible] पूर्वस्यां दिशि उच्चरत्, उद्गच्छति [illegible]। देवहितं देवानां हितं प्रियम्। शुक्रम् शुक्लम् भास्वरं शुद्धं शोचिष्मद् वा। [illegible] शतं शरदः वर्षाणि वयं पश्येम [illegible] व्याहतचक्षुरिन्द्रिया भवेम। शतं शरद [illegible] पराधीनजीविनो भवेम। शतं शरदः स्पष्टश्रोत्रेन्द्रिया भवेम। शतं शरदः अस्खलितवागिन्द्रिया भवेम। न [illegible] कुर्याम। शतवर्षोपर्यपि बहुकालम् इत्यादि।'

भाष्यार्थ—हम जिनकी स्तुति कर रहे [illegible] जगत्के नेत्रस्वरूप भगवान् आदित्य पूर्व दिशामें [illegible] हो रहे हैं। ये देवगणके हितकारी हैं। वे [illegible] अर्थात् निष्पाप और दीप्तिवाले हैं। इनके [illegible] हम सौ वर्षोंतक चक्षुहीन न होकर सब कुछ देख [illegible] हम सौ वर्षोंतक पराधीन न होकर जीवित रह [illegible] हम सौ वर्षोंतक श्रवणहीन न होकर स्पष्ट सुन सकें। [illegible] सौ वर्षोंतक वाक्-शक्तिहीन न होकर उत्तमरूपसे [illegible] सकें। किसीके भी समक्ष मैं दीन न बनूँ। सौ [illegible] वर्षोंतक ऐसा ही हो।

इस प्रकार अनेक वेद-मन्त्रोंमें आदित्यको परमब्रह्मके चक्षुके समान बताया गया है एवं उनका स्तवन किया गया है। वे जगत्के साक्षी हैं।

(७) पञ्चमहाभूत, पञ्चदेवता एवं पञ्चोपासना

आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये पञ्च महाभूत—क्रमशः सूक्ष्मसे स्थूल हैं। पहले अपञ्चीकृत सूक्ष्म महाभूत थे। ईश्वरकी इच्छासे सृष्टिद्वारा परस्पर मिलित होकर पञ्चीकरणद्वारा स्थूल महाभूत हुए हैं। प्रत्येक महाभूतके पाँच-पाँच तत्त्व और हैं। कुल मिलाकर पचीस तत्त्व हैं। प्रत्येक प्राणीकी स्थूल देहमें ये पाँचों महाभूत पञ्चीकृत होकर पचीस भागोंमें वर्तमान हैं।

इन सब महाभूतोंके अधिपति पाँच देवता हैं—गणेश, शक्ति, शिव, विष्णु और सूर्य। सनातन-धर्मके उपासक

पञ्चदेवोंमें सूर्य

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्।
पञ्चदैवत मित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्॥

रूपसे उदित हुए हैं। स्वर्ग, मर्त्य और आकाशको अपने रश्मिजालसे परिपूर्ण किये हैं।

इस वेदमन्त्रके अन्तर्निहित गम्भीर रहस्यको आधुनिक जड़ विज्ञान तथा पाश्चात्य जाति आज भी क्रमशः हृदयङ्गम कर स्वीकार करने लगे हैं। सूर्यसे ही इस ब्रह्माण्ड पृथ्वी तथा अन्य लोक एवं समस्त भूतगणोंकी सृष्टि, स्थिति तथा लय होती है। सूर्यके नहीं रहनेसे समस्त प्राणी और उद्भिज—दोनोंका ही जीना असम्भव है।

'आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।

(मनुस्मृति)

सूर्यसे वर्षा, वर्षासे अन्न और अन्नसे प्रजा अर्थात् प्राणीका अस्तित्व होता है।

नीचेके मन्त्रमें सूर्यनारायणको त्रिलोकीमें स्थित समस्त देवगणोंका 'चक्षुः' कहा गया है।

(५) विष्णुगायत्री

'ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्।'

भावार्थ—उस सर्वव्यापी विष्णुके परमपदको, जो कि तुरीयस्थान है, ज्ञानीजन सर्वदा आकाशस्थित सूर्यके समान सभी ओर दर्शन करते हैं।

अतः हे साधक! तुम निराश मत हो, तुम भी क्रमशः साधन-पथसे चेष्टा करनेपर इसकी उपलब्धि कर सकोगे।

(६) जगत्के नेत्रस्वरूप भगवान् सूर्यकी कृपासे दीर्घ स्वास्थ्यमय जीवन-लाभ होता है

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम्,
[illegible] शतम्। प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः
स्याम शरदः शतम्, भूयश्च शरदः शतात्॥

भाष्य

तत् चक्षुः जगतां नेत्रभूतम् [illegible] पूर्वस्यां दिशि उच्चरत् उद्गच्छति [illegible] देवहितं देवानां हितं प्रियम्। पुनः शुक्रम् भास्वरं शुभ्रं शोचिष्मद् वा। शतं शरदः वर्षाणि वयं पश्येम [illegible] स्यादनचक्षुरिन्द्रिया भवेम। शतं शरदः अपराधीनजीविनो भवेम। शतं शरदः स्पष्टश्रोत्रेन्द्रिया भवेम। शतं शरदः अस्खलितवागिन्द्रिया भवेम। न [illegible] स्याम। शतवर्षोपर्यपि बहुकालम् इत्यादि।'

भाष्यार्थ—हम जिनकी स्तुति कर रहे [illegible] जगत्के नेत्रस्वरूप भगवान् आदित्य पूर्व दिशा [illegible] हो रहे हैं। ये देवगणके हितकारी हैं। वे [illegible] अर्थात् निष्पाप और दीप्तिशाली हैं। इनके [illegible] हम सौ वर्षोंतक चक्षुहीन न होकर सब कुछ देख [illegible] हम सौ वर्षोंतक पराधीन न होकर जीवित रह [illegible] हम सौ वर्षोंतक श्रवणहीन न होकर स्पष्ट सुन [illegible] सौ वर्षोंतक वाक्-शक्तिहीन न होकर उच्चारण [illegible] सकें। किसीके भी समक्ष में दीन न बनूँ। [illegible] वर्षोंतक ऐसा ही हो।

इस प्रकार अनेक वेदमन्त्रोंमें [illegible] परमब्रह्मके चक्षुके समान बताया गया है एवं [illegible] स्तवन किया गया है। वे जगत्के साक्षी हैं।

(७) पञ्चमहाभूत, पञ्चदेवता एवं पञ्चोपासना

आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये [illegible] महाभूत—क्रमशः सूक्ष्मसे स्थूल हैं। पहले [illegible] सूक्ष्म महाभूत थे। ईश्वरकी इच्छासे [illegible] मिलित होकर पञ्चीकरणद्वारा स्थूल महाभूत हुए। प्रत्येक महाभूतके पाँच-पाँच तत्त्व और हैं। कुल [illegible] पचीस तत्त्व हैं। प्रत्येक प्राणीकी स्थूल देहमें [illegible] महाभूत पञ्चीकृत होकर पचीस भागोंमें वर्तमान हैं।

इन सब महाभूतोंके अधिपति पाँच देवता हैं—[illegible] शक्ति, शिव, विष्णु और सूर्य। सनातन-धर्मके [illegible]

३ मन्दिरसे कर वसूल करते रहे। अब वहाँ सभी कुछ स्त है।

२—कश्मीरमें पर्वतके ऊपर मार्तण्ड-मन्दिरका विशाल ग्नखण्ड (खण्डहर) आज भी है। इस मन्दिरको तोड़नेके लिये अत्यधिक गोले-बारूदकी आवश्यकता पड़ी थी। वे इसे साधारण औजारोंसे नहीं तोड़ सके।

३—चित्तौड़गढ़में सूर्य-मन्दिर कालिकाजीके मन्दिरके नामसे प्रसिद्ध है; इस समय वहाँ सूर्यदेवकी कोई मूर्ति नहीं है।

४—मोधेरा (गुजरात) में कुण्डके किनारे एक विशाल भव्य सूर्यमन्दिर था। अब उसका एक टुकड़ामात्र ही शेष बचा है। इस मन्दिरकी शिल्पकला अपूर्व एवं विस्मयकर है।

५—कोणार्क (उड़ीसा-) का सूर्य-मन्दिर तेरहवीं शताब्दीमें निर्मित हुआ था। मूल मन्दिर (विमान) कम-से-कम २२५ फुट ऊँचा था। १५७० ई०में उड़ीसा-जयके बाद काला पहाड़ और दूसरे मुस्लिम शासकोंने इसे नष्ट कर दिया। अब भी नाट-मन्दिर और जगमोहन, जो खण्डहरके रूपमें बचा है, वह पृथ्वीभरमें एक आश्चर्यजनक कृति है। मराठोंके शासनकालमें यहाँके अरुणस्तम्भको पुरीमें जगन्नाथ-मन्दिरके सामने स्थापित किया गया। सूर्यकी महिमा अक्षुण्ण है, उन्हें प्रणाम है—

जवाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
ध्वान्तारिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ॥

भगवान् सूर्यका दिव्य स्वरूप और उनकी उपासना

(लेखक—महामहोपाध्याय आचार्य श्रीहरिशंकर वेणीरामजी शास्त्री, कर्मकाण्ड विशारद, विद्याभूषण, संस्कृतरत्न, विद्यालंकार)

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'

श्रीसूर्यनारायण स्थावर-जङ्गमात्मक सम्पूर्ण जगत्‌की आत्मा हैं।

सूर्य शब्दकी व्युत्पत्ति—

रश्मीनां प्राणानां रसानां च स्वीकरणात् सूर्यः। सरति आकाशे इति सूर्यः। सुवति लोकं कर्मणा प्रेरयति इति वा सूते सर्वं जगत् इति सूर्यः।

अर्थात्—रश्मियोंका, प्राणोंका और रसोंका स्वीकार करनेसे, आकाशमें गमन करनेसे, उदयकालमें लोगोंको कर्म करनेमें प्रेरणा करनेसे अथवा सर्वजगत्‌को उत्पन्न करनेवाला होनेसे भुवन-भास्करको सूर्य कहा जाता है। सूर्यनारायण परब्रह्म परमात्मा—ईश्वरके अवतार हैं। अव्याकृत परमात्मरूप, सर्वप्राणियोंके जीवनके हेतुरूप, प्राणस्वरूप, सबको सुख देनेवाले तथा सचराचर जगत्‌के उत्पादक सूर्य ईश्वररूप हैं। अतः ये ईश्वरावतार भगवान् सूर्य ही सबके उपास्यदेव हैं। जगत्‌के व्यवहारमें काल, देश, क्रिया, कर्ता, करण, कार्य, आगम, द्रव्य और फल—ये सब भगवान् सूर्य हैं। समस्त जगत्‌के कल्याण और देवता आदिको तृप्तिके आधार सूर्यभगवान् हैं। अतएव श्रीसूर्यनारायण सर्वजगत्‌की आत्मा हैं।

सगुण-साकार पञ्चदेवोपासनामें विष्णु, शिव, देवी, सूर्य और गणपति—ये पाँचों देवता सगुण परब्रह्मके प्रचलित रूप हैं—इनमें श्रीसूर्यनारायण अन्यतम हैं। सूर्यमण्डलमें सूर्यनारायणकी उपासना करनेके लिये वेद, उपनिषद्, दर्शनशास्त्र एवं मनु आदि स्मृतियोंमें तथा पुराण, आगम (तन्त्रशास्त्र) आदि ग्रन्थोंमें विस्तृत वर्णन किया गया है।

श्रीपरमात्मा सूर्यात्मारूपसे सूर्यमण्डलमें विराजमान हैं और उनकी परमज्योतिका स्थूल दृश्य सूर्य हैं। भगवान् सूर्यनारायणकी उदयास्त-समय उपासना करनेसे

दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे आजन्म ब्रह्मचारी थे। उन्होंने सात बार गायत्री-पुरश्चरण किया था। पञ्चम पुरश्चरणके अन्तमें आपको नर्मदाके वक्षमें एक निर्जन द्वीपमें 'साक्षसूत्रकमण्डलु' बालिकाके वेशमें गायत्रीदेवीका प्रत्यक्ष दर्शन मिला। आप गद्गद होकर गिड़गिड़ाने लगे। माता,—'करते जा'—ऐसा आदेश देकर अन्तर्हित हो गयीं।

उन्होंने लेखकको और भी बताया कि देवप्रयाग नामक स्थानमें एक वेदमन्त्रके सात हजार बार जप करनेसे उन्हें सप्ताश्ववाहित रथपर सवार हुए सूर्यदेवका भी दर्शन हुआ था।

(११) सूर्यमें त्राटकयोग

लेखकको एक बार नादसिद्ध परमहंस योगीका परिचय हुआ था। 'पातञ्जलयोगदर्शन' में है कि सूर्यपर संयम करनेसे भुवनज्ञान होता है। उस योगीने सूर्योदयसे सूर्यास्ततक सूर्यपर एकटक त्राटक कर सिद्धि प्राप्त की थी। किसीको देखकर उसका प्रकृत स्वरूप और सारा वृत्तान्त उनके आँखोंके सामने आ जाता था।

(१२) रघुवंशमें जगन्माता सीतादेवीका सूर्यपर त्राटकयोगका उल्लेख

महाकवि कालिदास (प्रथम ई० पू० श०) सिद्ध तान्त्रिकाचार्य और महायोगी थे। उन्होंने रघुवंशमें जगन्माता सीतादेवीका सूर्यपर त्राटकयोगका उल्लेख किया है।

> साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टि-
> रूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।
> भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि
> त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः॥
> (रघु० १४।६६)

महासती सीतादेवीने वनवासका आदेश पाकर लक्ष्मणके पास सूर्यवंशके दीपक श्रीरामके नाम एक संदेश भेजा था। उसमें उन्होंने लिखा था कि 'गर्भ-स्थित सूर्यवंशधर संतानका जन्म हो जानेके बाद सूर्यपर दृष्टि निबद्ध कर अनन्यहृदयसे तपस्या करूँगी, जिससे जन्मान्तरमें भी आपको ही पतिरूपमें पाऊँ, कभी भी आपके साथ विच्छेद न हो।'

मुस्लिम यात्री इब्न् बतूताने अपनी भ्रमण-कहानीमें लिखा है कि उन्होंने एक हिंदू योगीको सूर्यपर त्राटक करते हुए देखा। कुछ सालोंके बाद जब वे अपनी यात्रासे वापस लौट रहे थे, तब उन्होंने फिरसे उसी योगीको सूर्यपर त्राटक लगाये हुए देखा।

(१३) 'क्व सूर्यप्रभवो वंशः'

सूर्यवंशके प्रवर्तक मनुको श्रीभगवान्‌ने स्वयं कर्मयोगका उपदेश दिया था। गीतामें श्रीकृष्णने इसका उल्लेख किया है। सूर्यवंशके क्षत्रिय राजागण आरम्भ-कालसे वर्णाश्रम-धर्मके सेतु रहे एवं वे ही जातीय स्वतन्त्रताकी रक्षा करते रहे हैं।

उदयपुर (चित्तौड़)के महाराणा लवके वंशज हैं। सूर्य ही उनके ध्वजके प्रतीक हैं। कुशवाह अर्थात् कुशके वंशज राजागण भी और कई राज्योंमें यवनोंके साथ युद्धकर आधुनिक कालतक शासन करते आये हैं। सूर्यवंशी क्षत्रिय इतिहासके गौरव हैं।

(१४) सूर्य-मन्दिर

भारतमें सूर्यकी उपासना बहुत कालपूर्वसे प्रचलित थी। दुःखका विषय है कि अधिकतर सूर्य-मन्दिर मुस्लिम शासनकालमें नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये। जिनमेंसे : मन्दिरोंके विषयमें उल्लेख किया जा रहा है—

१—मुल्तान (मूलस्थानपुर) सूर्य-मन्दिरके [illegible] विख्यात था। [illegible] पराधीन होनेके बहुत दि[illegible] बादतक भी यह मन्दिर था। मुस्लिम [illegible]

... सूर्योपासना—

... र्वेद अध्याय ३३, मन्त्र ४३में भगवान् सूर्य- ... हिरण्मय रथमें आरूढ होकर समस्त भुवनोंको ... ए गमन करते हैं—

... ष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
... ण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

... सबके प्रेरक सवितादेव सुवर्णमय रथमें आरूढ ... र कृष्णवर्णकी रात्रि-लक्षणवाले अन्तरिक्षपथमें पुनरा- ... क्रमसे भ्रमण करते, देवादिको और मनुष्यादिको ... ने-अपने व्यापारमें स्थापन करते एवं सम्पूर्ण भुवनोंको ... ते हुए गमन करते हैं—अर्थात् कौन साधु और ... न असाधु कर्म करते हैं, इसका निरीक्षण करते ... ए निरन्तर गमन करते रहते हैं। इसलिये भगवान् सूर्यनारायण मनुष्योंके शुभ और अशुभ कर्मोंके साक्षी हैं।

अभि त्यं देवꣳ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि
सत्यसवꣳ रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम्।
ऊर्ध्वा यस्याऽमतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः॥
(शुक्लयजु० ४। २५)

'उस द्यावा-पृथ्वीके मध्यमें वर्तमान दिव्यगुणयुक्त, सर्वतो दीप्तिमान्, बुद्धिप्रदाता, कान्तकर्मा, अप्रतिहतक्रियायुक्त, सिद्धिकी प्रेरणा करनेवाले, रमणीय रत्नोंके धारक एवं पोषक, दाता, रत्नरूप, ब्रह्मविद्याके धाम, समस्त चराचरके प्रियतम, मननयोग्य, अनुपम कल्पनाशक्ति-सम्पन्न, क्रान्त-दर्शी, वेदविद्याके उपदेष्टा, भगवान् सविता—सूर्य-देवता अर्थात् सबके उत्पादक परमात्माका सब प्रकारसे मैं पूजन करता हूँ, जिनकी अपरिमेय दीप्ति गगनमण्डलमें सबके ऊपर विराजती है तथा आकाशमण्डलमें अनन्त नक्षत्रमण्डल जिनकी दीप्तिसे दीप्तिमान् हैं और जिनकी आत्मप्रकाश-रूप मति सर्वत्र विराजमान है, जो सबको कर्मकी अनुज्ञा करते हैं, जो ज्योतिरूप हाथ (किरण) तथा प्रकाशात्मक व्यवहारवाले हैं एवं सिद्ध-सङ्कल्प हैं और जिनकी कृपासे स्वर्ग निर्मित हुआ है, उन सूर्यदेवकी मैं पूजा करता हूँ।'

भगवान् सूर्य सबके आत्मा—

सूर्यनारायण स्थावर-जङ्गमके आत्मा—अन्तर्यामी हैं—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'। इसलिये सूर्यकी आराधना करनेकी वेदमें आज्ञा है—

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳसूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। (शुक्लयजु० ७। ४२)

'यह कैसा आश्चर्य है कि किरणोंके पुञ्ज तथा मित्र, वरुण और अग्निके नेत्र, समस्त जगत्के प्रकाशक, जङ्गम और स्थावर सम्पूर्ण जगत्की आत्मा—अन्तर्यामी सूर्यभगवान् उदय होते हुए, भूलोकसे द्युलोकपर्यन्त अन्तरिक्ष अर्थात् लोकत्रयको अपने तेजसे पूर्ण करते हैं।'

भगवान् सूर्यकी उपासनासे धनकी प्राप्ति—

चित्रमित्युपतिष्ठेत त्रिसंध्यं भास्करं यथा।
समित्पाणिर्नरो नित्यमीप्सितं धनमाप्नुयात्॥

हाथमें समिधा लेकर 'चित्रं देवानाम्'—इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यकी त्रिकाल प्रार्थना करनेवाला पुरुष इच्छित धनको प्राप्त करता है।

सूर्यकी महत्ता—

बण्महाꣳ असि सूर्य बडादित्य महाꣳ असि।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाꣳ असि॥
(शुक्लयजु० ३३। ३९)

'हे जगत्को अपने-अपने कार्यमें प्रेरित करनेवाले सूर्यरूप परमात्मन्! सच ही आप सबसे अधिक श्रेष्ठ हैं। सबको ग्रहण करनेवाले हे आदित्य! सच ही आप बड़े महान् हैं। बड़े महान् होनेसे आपकी महिमा लोगोंसे स्तुत की जाती है। हे दीप्तिमान् सूर्यदेव! सच ही आप सबसे श्रेष्ठ हैं।'

ज्ञान-विज्ञानकी प्राप्ति होती है और परम कल्याण होता है। शास्त्रमें कहा है—

'उद्यन्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् कर्म कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते।'

भगवान् श्रीसूर्यके स्वरूपका ध्यान

'भास्वद्रत्नाढ्यमौलिः स्फुरदधररुचा रञ्जितश्चारुकेशो
भास्वान् यो दिव्यतेजाः करकमलयुतः स्वर्णवर्णः प्रभाभिः।
विश्वाकाशावकाशे ग्रहगणसहितो भाति यश्चोदयाद्रौ
सर्वानन्दप्रदाता हरिहरनमितः पातु मां विश्वचक्षुः॥

'उत्तम रत्नोंसे जटित मुकुट जिनके मस्तककी शोभा बढ़ा रहे हैं, जो चमकते हुए अधर-ओष्ठकी कान्तिसे शोभित हैं, जिनके सुन्दर केश हैं, जो भास्वान् अलौकिक तेजसे युक्त हैं, जिनके हाथोंमें कमल हैं, जो प्रभाके द्वारा स्वर्णवर्ण हैं एवं ग्रहवृन्दके सहित आकाशदेशमें उदयगिरि—उदयाचल पर्वतपर शोभा पाते हैं, जिनसे समस्त जीवलोक आनन्द प्राप्त करते हैं, हरि और हरके द्वारा जो नमित हैं, ऐसे विश्वचक्षु भगवान् सूर्यनारायण मेरी रक्षा करें।'

इस ध्यानमें सारे रूपोंके द्वारा ब्रह्मके ज्योतिर्मय प्रभावका वर्णन किया गया है। श्रीपरमात्मा सूर्यात्मा-रूपसे सूर्यमण्डलमें विराजमान हैं और उनकी परम ज्योतिका स्थूल दृश्य सूर्य हैं। इसी भावको प्रकट करनेके लिये सूर्य-ध्यानमें इस प्रकार ज्योतिर्मय रूपका वर्णन किया गया है। सूर्यकिरणोंमें हरित, पीत, लाल, नील आदि सप्तवर्णके समन्वयके कारण ही सूर्यकिरण श्वेतवर्ण हैं। इसलिये सप्तवर्णोंके रूपसे सप्ताश्वको सूर्यका वाहन कहा गया है। क्योंकि ज्योतिर्मय कारण-ब्रह्मसे जब कार्य-ब्रह्मका आविर्भाव होता है, उस समय सप्तरंग ही प्रथम परिलक्षित होता है। इसी कारण व्यक्तावस्थाका द्योतक वाहन और अव्यक्तरूपी ज्योतिर्मय सगुण ब्रह्मका द्योतक सूर्यका ध्यान है। हाथका कमल मुक्तिका प्रकाशक है, अर्थात् जीवको मुक्ति देना सूर्यके हाथमें है। अरुणका उदय सूर्योदयसे पूर्व होता है, अ[...] सप्ताश्ववाही रथके सारथि सूर्यके सम्मुख स्थि[त] अरुण हैं। इसी प्रकार सूर्यभगवान्‌का ध्यान [...] भावोंके अनुसार वर्णित किया गया है।

परमात्मा एक, अद्वितीय, निराकार एवं सर्व[...] होनेपर भी पञ्चदेवतारूप सगुणरूपमें प्रकट होते हैं-

विष्णुश्चिता यस्तु सता शिवः सन्
स्वतेजसार्कः स्वधिया गणेशः।
देवी स्वशक्त्या कुशलं विधत्ते
कस्मैचिदस्मै प्रणतिः सदास्तम्॥

'जो परमात्मा चित्-भावसे विष्णुरूप होकर, सद्-भावसे शिवरूप होकर, तेजरूपसे सूर्यरूप होकर, बुद्धिरूपसे गणेशरूप होकर और शक्तिरूपसे देवीरूप होकर जगत्‌का कल्याण करते हैं, ऐसे परब्रह्मको नमस्कार है।'

तात्पर्य यह है कि सच्चिदानन्दमय, मन-वाणी-बुद्धिसे अतीत, निराकार, निष्क्रिय, तत्त्वातीत, निर्गुण-पद कुछ और ही है। वह निर्गुण परब्रह्म-भाव जब सगुण-साकाररूपसे उपासकके सम्मुख ध्याता-ध्यान-ध्येयरूपी त्रिपुटीके सम्बन्धसे आविर्भूत होता है, तब सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवलम्बन या तो चित्-भावमय होगा अन्यथा सद्भावमय होगा अथवा तेजोमय होगा, नहीं तो बुद्धिमय या शक्तिमय होगा।

चिद्भावका अवलम्बन करके जो भावना चलेगी वह विष्णुरूपमें, जो सद्भावका अवलम्बन करके चलेगी वह शिवरूपमें, जो दिव्य तेजोमय भावका अवलम्बन करके चलेगी वह सूर्यरूपमें, जो विशुद्ध बुद्धि-भावका अवलम्बन करके अग्रसर होगी वह गणपतिरूपमें और जो अलौकिक अनन्त शक्तिका अवलम्बन करके अग्रसर होगी वह देवीके रूपमें परिणत होगी। पाँचों रूप ही सगुण ब्रह्मके परिचायक होते हुए पाँचों भावोंके अवलम्बनसे पञ्चधा बन गये [...]

लोकोंके नाम हैं। इनका उच्चारण कर प्रजापतिने लोकोंकी रचना की है। अतः इनका उच्चारण त्रिलोकीका स्मरण कर गायत्री-मन्त्रका जप करे। ॐकारका उच्चारण करे, तत्पश्चात् तीनों तेयोंका उच्चारणकर गायत्री-मन्त्रका जप करे। गायत्री-मन्त्रका अर्थ—(तत्) उस (देवस्य) ात्मक (सवितुः) प्रेरक—अन्तर्यामी विज्ञानानन्द- र हिरण्यगर्भोपाध्यवच्छिन्न आदित्यके अन्तः- पुरुष—'योऽसावादित्ये पुरुषः (यजु० ४०) मकके (वरेण्यम्) सबसे प्रार्थना किये हुए ः) सम्पूर्ण पापके तथा संसारके आवागमन दूर में समर्थ सत्य, ज्ञान तथा आनन्दादिमय तेजका हम महि) ध्यान करते हैं, (यः) जो सवितादेव ः) हमारी (धियः) बुद्धियोंको सत्कर्ममें चोदयात्) प्रेरित करें।

अथवा 'सवितादेवके उस वरणीय तेजका हम करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करता है'— सविता ही है।

भगवान् शंकराचार्यने संध्याभाष्यमें गायत्री-मन्त्रके में भगवान् सूर्यके माहात्म्यका वर्णन किया है। यथा—

'सूर्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्चेति श्रवणात्, ईश्वरस्यैवायमवताराकारः सूर्य इति। अर्थात्—अव्याकृतस्वरूपस्य परमात्मनः सर्वेषां जीवनप्राणस्वरूपिणः सर्वसुखदायकस्य च सचराचरजगदुत्पादकस्य प्रकाशमानस्य सूर्यरूपेश्वरस्य तत्प्रसिद्धं सर्वश्रेष्ठं सर्वाभिलषणीयं पापभर्जकं तेजो वयं ध्यायेमहि, वा यः सूर्योऽस्माकं बुद्धीरसन्मार्गान्निवृत्य सन्मार्गे प्रेरयति।'

'स्थावर-जङ्गम सम्पूर्ण जगत्के आत्मा सूर्य ही हैं' इस प्रकार भगवान् सूर्य ईश्वरावतार ही हैं, अर्थात् अव्याकृतस्वरूप, परमात्मरूप, सर्वप्राणियोंके जीवनका हेतुरूप और प्राणस्वरूप एवं सबको सुख देनेवाले, सचराचर जगत्के उत्पादक सूर्यरूप ईश्वरका सबसे श्रेष्ठ और पापका नाश करनेवाले तेजका हम ध्यान करते हैं। वे भगवान् सूर्य हमारी बुद्धियोंको असन्मार्गसे निवृत्त करके सन्मार्गमें प्रेरणा करते हैं।'

निष्कर्ष यह कि परमात्मस्वरूप सबका जीवनरूप और सर्वजगत्का उत्पादक ईश्वरावतार भगवान् सूर्य ही सबके उपास्य देव हैं। उनकी शास्त्रविधिसे नित्य उपासना करनी चाहिये।

सूर्य-दर्शनका तान्त्रिक अनुभूत प्रयोग

(लेखक—पं० श्रीकैलासचन्द्रजी शर्मा)

सभी तन्त्र-रसिकजन तन्त्रग्रन्थोंमें शिरोमणि दत्तात्रेय-तन्त्रके महत्त्व तथा उपयोगितासे परिचित हैं। योगिराजने ग्रन्थरत्नमें तन्त्रविद्याके अत्युत्तम एवं लाभदायक योग बताये हैं। तन्त्र-प्रयोग यद्यपि केवलमात्र अधिकारी तान्त्रिकोंको ही प्रदातव्य होते हैं, अतः इनसे सम्बद्ध ग्रन्थोंको सामान्यतः गुप्त रखनेका ही प्रयत्न किया जाता है, तथापि भगवान् सूर्यके दर्शनका यह तान्त्रिक प्रयोग पाठकोंके लाभार्थ यहाँ दिया जा रहा है। उक्त प्रयोग दत्तात्रेय-तन्त्रके एकादश पटलमें निम्न प्रकारसे बताया है—

> मातुलुङ्गस्य बीजेन तैलं ग्राह्यं प्रयत्नतः।
> लेपयेत्ताम्रपात्रे च तन्मध्याह्ने विलोकयेत्॥
> रथेन सह साकारो दृश्यते भास्करो ध्रुवम्।
> विना मन्त्रेण सिद्धिः स्यात् सिद्धयोग उदाहृतः॥

'बिजौरा नींबूके तेलको यत्नसे निकालकर ताम्रपत्र-पर लेप करके मध्याह्न-समय उस ताम्रपत्रको सूर्यके सम्मुख रखकर देखे। इससे रथसहित सूर्यका पूर्ण आकार निश्चय ही दीख पड़ेगा। यह बिना मन्त्रका सिद्ध प्रयोग कहा गया है।'

सूर्यके उदयसे सब जगत् अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्त होते हैं। सूर्यके उदयसे जाड्यादिका नाश होकर अङ्कुरादिकी उत्पत्ति होती है। भक्तका हृदयमें प्रकाशरूप उदय होनेसे अज्ञानका नाश—मुक्तिकी प्राप्ति होती है। जैसा कि शुक्लयजुर्वेद ३३। ४०से स्पष्ट है—

बट्सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम्॥

'हे सूर्य! सत्य ही धन और यशसे तथा अन्नके प्रकट करनेसे आप श्रेष्ठ हैं। हे दीप्यमान! प्राणियोंके हितकारी! देवताओंके मध्यमें—आप सब कार्योंमें प्रथम पूज्य हैं। इसीलिये देवताओंकी पूजामें आपको अर्घ्य प्रदान करनेके बाद ही दूसरे देवताका अधिकार है। आप व्यापक, उपमारहित, किसीसे न रुकनेवाले तेजयुक्त, महत्त्वसे अधिक श्रेष्ठ हैं अर्थात् माहात्म्यके प्रभावसे एक कालमें सर्वदेशव्यापी अप्रतिद्वन्द्वी ज्योतिका विस्तार करते हुए प्राणिमात्रके हितकारीस्वरूपसे प्रथम पूजनीय हैं।'

गायत्री-मन्त्रमें उपास्य सूर्यनारायण—

प्रातःकालसे ही भगवान् सूर्यकी उपासनाका आरम्भ होता है। प्रातःकालमें प्रातः-संध्योपासनासे आरम्भ होकर सायंकालमें सायं संध्योपासना-पर्यन्त त्रिकाल संध्योपासनामें भगवान् सूर्यनारायणकी उपासना की जाती है।

श्रुतिने 'अहरहः संध्यामुपासीत' कहा गया है। सन्ध्योपासनाके मन्त्रोंमें सूर्यकी उपासना है। सूर्यो-पस्थानमें भगवान् सूर्यकी आराधना है। यथा—

ॐ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥
(शुक्लयजु० २०।२१)

'हम [illegible] से ऊपर—श्रेष्ठ स्वर्गको देखते हुए सब भगवान् सूर्यको देखते-देखते हुए श्रेष्ठ प्रकाशको प्राप्त हुए हैं।'

उदु त्यं जातवेदसं देवं [illegible]
दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ (शुक्ल[illegible]

'किरणें उन प्रसिद्ध, सब पदार्थों[illegible] रूपी धनवाले, प्रकाशात्मक सूर्यदेवको प्रकाश करनेके निमित्त, विश्वके साथ वहन करती हैं।'

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्च[illegible] शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृ[illegible] शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः [illegible] शतम्भूयश्च शरदः शतात्।
(शुक्लयजु[illegible]

वे (सूर्य) देवताओंद्वारा स्थापित अथवा हितकारी जगत्के नेत्रभूत, शुक्ल—मलसे [illegible] प्रकाशरूप पूर्वदिशामें उदित होते हैं। उ[illegible] (सूर्यनारायण) के प्रसादसे हम सौ शरद्पर्यन्त सौ वर्षपर्यन्त हमारे नेत्र-इन्द्रियकी गति [illegible] हो। सौ शरद् ऋतुओंतक अपराधीन होक[illegible] सौ शरद्पर्यन्त स्पष्ट श्रोत्र-इन्द्रियवाले हों। [illegible] पर्यन्त अस्खलित वाणीयुक्त रहें। सौ श[illegible] दीनतारहित हों। सौ शरद्ऋतुओंसे अधिक पर्यन्त भी देखें, सुनें और जीवित रहें। आ[illegible] कि शत-शत वर्षात्मक, अनेक निष्पाप जीवन अतिपावन जीवन प्राप्त करें।

संध्योपासनामें सूर्योपस्थानके अनन्तर गायत्री-म[illegible] जप करनेका विधान है। गायत्री-मन्त्रमें उपास्य सूर्य[illegible] इसलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य गायत्री-मन्त्रद्वारा [illegible] भगवान्की उपासना करते हैं—

गायत्री मन्त्र—ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवि[illegible] वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्[illegible]
(शुक्लयजु० ३६।[illegible]

'भूः' यह प्रथम व्याहृति, 'भुवः' दूसरी व्याहृति और 'स्वः' तीसरी व्याहृति है। ये ही तीनों व्याहृतियाँ सूर्य[illegible]

आदित्यगण देवपदको प्राप्तकर सूर्यके सहचर तथा
ही नहीं रहे, अपितु आगे चलकर उनका
य भी सूर्यसे स्थापित हो गया ।

सूर्यकी उपासनाके अनेक प्रकार हैं । प्रथम
प्राप्त अङ्गके रूपमें और द्वितीय साक्षात् प्रधानके
वे पूजित होते हैं । स्मार्त देव-उपासनामें पञ्चदेव
देवता) पूजित होकर शिव, विष्णु, देवी, गणेश तथा
मान्यता प्रदान करते हैं। इनमेंसे प्रत्येक अपनेको
एक अवशिष्ट चारोंको दिगन्तरालोंमें स्थापित करवा कर
नाके स्वरोंको उदात्त करते हैं । साधनाके क्षेत्रमें
, शक्ति एवं विष्णुका अधिकतर प्राधान्य है ।
भी विष्णु पालनकर्ताके रूपमें अधिक व्यापक हैं ।
दित्य भी इस दृष्टिसे विष्णुकी कोटिमें समाविष्ट होते
क्योंकि उनका क्षेत्र अखिल विश्व है । वे प्रतिदिन
का भ्रमण कर अखिल ब्रह्माण्डमें व्याप्त रहते हैं[1] । इस
र सूर्यके दैवी तत्त्वका परिचिन्तन भारतीय पूजा-
तिमें विशेष विधा रही है । सूर्यके दैवी तत्त्वके साथ
उसके उपासना-तत्त्वका सूत्रपात हुआ है ।

आदित्योपासनाका वैदिक स्वरूप स्वाभाविक एवं सरल
। इसका आभास अब भी प्रातः उठते ही उदयोन्मुख
र्यको नमस्कार करना एवं स्नानसे निवृत्त हो अर्घ्य-प्रदान
दि क्रिया-कलापमें प्रवृत्त होना उसकी स्वाभाविकता-
स्मरण दिलाते हैं । भक्तिका यह प्रकार श्रीसम्पन्न एवं
न—दोनोंके लिये समान है । आगे चलकर सौर-
जामें प्रतिमा-प्रतिष्ठा तथा देवालयनिर्माणका सन्निवेश
न परिस्थितियोंमें हुआ—यह विचारणीय विषय रहा है ।
रकी पङ्क्तियोंमें यह संकेत किया जा चुका है कि
ष्णव, शैव तथा शाक्त—इन सबकी उपासनामें अन्य देवता
इनके अङ्ग थे । ऐसी परिस्थितिमें सूर्योपासकोंमें सूर्यकी
पूजाका माध्यम सूर्यकी दृश्यमान आकृतिसे साम्य
रखनेवाला चिह्न चक्र (मण्डल) स्वीकार किया गया तो
इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । इस चक्रके
स्वरूपकी प्रेरणा पुराणोंमें निरूपित सत्राजित्‌के आख्यान-
से मिलती है । तदनुसार सत्राजित्‌की उपासनासे संतुष्ट
होकर सूर्य अग्निज्वालासे परिवेष्टित वृत्तकी आकृतिमें
प्रकट हुए थे । सत्राजित्‌ने सूर्यसे वास्तविक स्वरूपको
प्रकट करनेका आग्रह किया । तत्पश्चात् सूर्यने
स्यमन्तक मणि हटाकर अपना दर्शनीय कलेवर
दिखाया । वह रूप लोहित-ताम्रवर्णात्मक था तथा
नेत्र भी लाल थे । साम्बपुराणके अनुसार सूर्यके
प्रचण्ड रूपको न सह सकनेके कारण उनकी पत्नी संज्ञाके
तथा ब्रह्माके निवेदन करनेपर विश्वकर्माने सूर्यकी तेजोमय
आकृतिमें काट-छाँट कर दिया । पर चरणोंका तेज वैसे
ही रहने दिया । अतएव पुराणोंमें यह निर्देश मिलता है
कि सूर्यकी प्रतिमा बनाते समय उनके चरणोंका अनावृत
प्रदर्शन नहीं करना चाहिये । इस प्रकारकी कल्पनाका
सामञ्जस्य शतपथ ब्राह्मणमें वर्णित सूर्यके 'पराक्रम' को
स्पष्ट करते हुए चरणोंके अभावमें भी गतिशील रहने-
की विशेषताद्वारा प्रकट करना है[2] । इस परिप्रेक्ष्यमें
सूर्यके विग्रह अधिकतर मण्डलात्मक अथवा अष्टदल-
कमलके मध्यस्थित चक्रके रूपमें ही दृष्टिगोचर होते
हैं । आकृति-विशेषसहित विग्रह विरले ही हैं । यदि जो हैं,
वे भी अनावृत-चरणोंके प्रदर्शनसे रहित ही हैं । रथारूढ़
सूर्यकी कल्पनामें भी उनका स्वरूप मण्डलाकृति-प्रधान
ही अङ्कित मिलता है । पूजा-पद्धतिमें सूर्यका ध्यान
भी इसी रूपमें वर्णित है ।

१. आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च । हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदेवो याति भुवनानि पश्यन् ॥
(ऋ० १।३५।२)

२. यदिह वा अप्यपादकमिव आत्मेव प्रतिक्रमणाय भवत्यु-पापवका ह्रदसविश्वमिदिति तदेनं सर्वस्मात् ह्रपाप्मनः
पाप्मना मुञ्चति ॥ (श० ब्रा० ४।४।५।५)

काशीकी आदित्योपासना

(लेखक—प्रो० श्रीगोपालदत्तजी पाण्डेय, एम्० ए०, एल्० टी०, व्याकरणाचार्य)

भारतीय उपासना-पद्धतिमें सूर्यका स्थान अतीव प्रभावकारी है। वैदिक वाङ्मयसे लेकर पुराणोंतक आदित्यकी श्रेष्ठता एवं उनके स्वरूपका विवेचन विशद-रूपमें उपलब्ध होता है। सूर्यका एकमात्र प्रत्यक्षरूप उनके वैशिष्ट्यका प्रतिपादक है। उनके ही प्रकाशसे सारा भौतिक जगत् प्रकाशमान होता है। वे ही प्राणिमात्रके उद्बुद्ध होनेमें कारण हैं। उनके उदित होते ही सभी प्राणी क्रियाशील हो जाते हैं। वे ही स्थावर और जङ्गम प्राणियोंको जीवन्त बनाते हैं—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (—ऋ० १।११५।१)। प्रत्यक्ष रूपमें यह जगत् सूर्यके आश्रित है। इसका कारण यह है कि सूर्य आठ महीनोंतक अपनी किरणोंसे छहों रसोंसे विशिष्ट जलको ग्रहणकर उसे सहस्र-गुणित करके चार महीनोंमें वर्षाके द्वारा संसारको ही अर्पित कर स्वयंको ऋणमुक्त कर लेते हैं। वर्षाका यह जल जन-जीवनके लिये अमृततुल्य है। इसी दृष्टिसे वायु और ब्रह्माण्डपुराणोंमें सूर्यको भी 'जीवन' नाम दिया गया है। ऋग्वेदमें भी सूर्यको[1] जगत्का आधार माना गया है। उनकी तेजस्विता ही जगत्को आलोकित कर अहर्निश एकरूपता प्राप्त करती हुई जीव और जगत्के नेत्रोंका रूप धारण कर लेती है।[2]

सूर्यके अनेक पर्यायवाची नाम हैं। नाम 'आदित्य' भी है। सामान्यतया 'आदित्य' [illegible] प्रकारके अर्थोंका बोध होता है—एक अदि[illegible] और दूसरा आदित्यकी संतति। इस प्रकार 'आ[illegible] अपत्यवाचक है। अदिति (कश्यप-पत्नी) हैं। सब देवता उन्हींकी संतति माने जाते हैं। से एक आदित्य भी हुए[3]। लोक और वेदमें सू[illegible] उन्हींका प्रतिपादन होता है। वेदमें सात आदित्यों[illegible] मिलता है। वे क्रमशः—मित्र, अर्यमा, भग, वरु[illegible] अंश तथा मार्तण्ड हैं। शतपथ ब्राह्मणमें एक [illegible] मार्तण्डको सम्मिलित कर उनकी संख्या आठ बताय[illegible] हैं[4]। साथ ही दूसरी जगह वहीं द्वादश आदि[illegible] भी उल्लेख मिलता है; किंतु उनके नामोंका उल्लेख [illegible] किया गया है[5]। आगे चलकर विष्णु, वायु, ब्रह्माण्ड[illegible] मत्स्यपुराणोंमें द्वादशादित्योंको विष्णु, इन्द्र, अ[illegible] धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, [illegible] तथा भग नामोंसे अभिहित किया गया है। इन नामोंमें मत्स्यपुराणके यम और अंशुमान्—ये दो विशिष्ट नाम[illegible] भिन्न दिखायी देते हैं। सूर्यके पर्यायवाची 'आदि[illegible] शब्दका अर्थ पुराणोंमें विष्णुकी शक्तिसे समन्वित [illegible] आदित्यगणके रूपमें परिवर्तित हो गया है। तदनुसार [illegible] आदि प्रथम सूर्यके मण्डलको तेजोयुक्त बनाते हैं[6]। [illegible]

---

१. [illegible] विश्व। (ऋ० १।१६४।१४)

२. उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ (ऋ० १।५०।१)

३. [illegible] (ऋ० १।११४।१)

४. [illegible] (श० ब्रा० ३।१।३।३)

५. [illegible] (श० ब्रा० ६।१।२।८)

६. [illegible] (मत्स्यपुराण [illegible])

लाशय, कुण्ड और ह्रद आदि भौम-तीर्थोंकी कोटिमें हैं। इस कारण तत्सम्बद्ध जलाशय और उसके स देवस्थान एक-दूसरेके पूरक हो जाते हैं। र्ककुण्डकी प्रख्यातिसे प्रभावित हो महाराज गोविन्द- यहाँ स्नानकर ग्राम-दान किया था।*

लोलार्क' नामकरणके सम्बन्धमें वामनपुराणमें सुकेशिचरितका उपाख्यान अविस्मरणीय है। सार 'सब दानव सुकेशीके उपदेशसे आचारसम्पन्न, न्य एवं संततियुक्त हो सुख प्राप्त करने लगे। वर्चससे सूर्य, चन्द्रमा एवं नक्षत्र भी श्रीहत हो यहाँतक कि लोक निशाचरोंसे प्रभावित हो गया। निशाचर-नगरी दिनमें सूर्यके समान तथा रात्रिमें माके सदृश प्रतीत होने लगी। इन राक्षसोंके इस ल्से क्रोधाविष्ट हो भगवान् सूर्यने उस नगरीको । सूर्यकी प्रखर किरणोंके प्रभावसे वह नगरी इस र ध्वस्त हुई, जैसे आकाशसे गिरता हुआ भ्रष्ट हो। नगरको गिरता हुआ देखकर सुकेशी सने शिवका स्मरण किया। सब राक्षसोंके हा-हा- दन (आर्त्तनाद) तथा आकाश-विहारी चारणोंके— रमक्तका नाश होने जा रहा है'—इस वाक्यको सुनकर भगवान् शंकर विचारमग्न हो गये। इस राक्षस-पुरीको सूर्यने नीचे गिरा दिया है—यह जानकर भगवान् शंकरने क्रुद्ध हो सूर्यको आकाशसे नीचे गिरा दिया। सूर्यके वाराणसीमें नीचे गिरते ही स्वयं ब्रह्मा और इन्द्र अन्य देवताओंके साथ मन्दराचल पर्वतपर गये। वहाँ भगवान् शंकरको प्रसन्न करके पुनः वाराणसीमें सूर्य-को ले आये†। इस प्रकार शिवने प्रसन्न होकर अन्तरिक्षसे विचलित हुए सूर्यको अपने हाथसे उठाकर उनका नाम 'लोलार्क' रख उन्हें रथपर बैठाया।' काशीखण्डमें यह उपाख्यान दूसरी तरह वर्णित हुआ है। उसके अनुसार राजा दिवोदासको धर्मच्युत कर वाराणसी नगर उनके हाथसे छीन लेनेके लिये भगवान् शंकरने योगिनियोंको भेजा था। वे इस कार्यमें असफल रहीं। अन्तमें शिवने सूर्यको भेजा। उन्हें भी कठिनाइयाँ हुईं। अनेक रूप धारण करने पड़े। प्रथम रूप उन्होंने लोलार्कका धारण किया। काशीकी विशालता या मतान्तर-से शिवके कोपसे उनका मन चञ्चल हो उठा; अतः वे लोलार्क कहलाये। इसीके साथ वह स्थान भी लोलार्क कहलाया एवं कुण्ड भी उसी नामसे प्रसिद्ध हुआ।

* द्रष्टव्य—पं० श्रीकुबेरनाथ सुकुलकृत—'वाराणसी-वैभव' पृ० ७३।

† ततः सुकेशिवचनात् सर्व एव निशाचराः। तेनोदितं तु ते धर्मं चक्रुर्मुदितमानसाः ॥
ततः प्रवृद्धिं सुतरामगच्छन्त निशाचराः। पुत्रपौत्रार्थसंयुक्ताः सदाचारसमन्विताः ॥
तत्त्रिभुवनं ब्रह्मन् निशाचरपुरोऽभवत्। दिवा सूर्यस्य सदृशः क्षणदायां च चन्द्रवत् ॥
तद् भानुना तदा दृष्टं क्रोधाध्मातेन चक्षुषा। निपपाताम्बराद् दृष्टः क्षीणपुण्य इव ग्रहः ॥
पतमानं समालोक्य पुरं शालंकटंकटः। नमो भवाय शर्वाय इदमुच्चैरधीयत ॥
तच्चारणवचः शर्वः श्रुतवान् सर्वतोऽव्ययः। श्रुत्वा स चिन्तयामास केनासौ पात्यते भुवि ॥
ज्ञातवान् देवपतिना सहस्रकिरणेन तत्। पातितं राक्षसपुरं ततः क्रुद्धस्त्रिलोचनः ॥
क्रुद्धस्तु भगवान् दृग्भिर्भानुमन्तमपश्यत। दृष्टमात्रस्त्रिनेत्रेण निपपात ततोऽम्बरात् ॥
ततो ब्रह्मा सुरपतिः सुरैः सार्धं समभ्ययात्। रम्यं महेश्वरावासं मन्दरं रविकारणात् ॥
गत्वा दृष्ट्वा च देवेशं शंकरं शूलपाणिनम्। प्रसाद्य भास्करार्थाय वाराणस्यामुपानयत् ॥
ततो दिवाकरं भूयः पाणिनादाय शंकरः। कृत्वा नामास्य लोलेति रथमारोपयत् पुनः ॥
आरोपिते दिनकरे ब्रह्माभ्येत्य सुकेशिनम्। सबान्धवं सनगरं रथमारोपयद्दिवि ॥
(वामनपु० अ० १५)

काशीमें प्रधानतया शिवकी उपासना की जाती है। यह अविमुक्त क्षेत्र है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमेंसे एक 'विश्वेश्वर' नामक शिवका यह पूजा-स्थल है। कहा जाता है कि भगवान् शंकरके त्रिशूलपर बसी यह नगरी कभी ध्वस्त नहीं होती। शैव-धर्मके अतिरिक्त यहाँ शक्ति तथा विष्णुकी उपासना भी उसी तरह होती है। काशीकी उपासनाके विषयमें 'काशीखण्ड'से विशेषरूपमें संकेत प्राप्त होते हैं। तदनुसार काशीमें शिवपीठ, देवीपीठ, विष्णुपीठ, विनायकपीठ, भैरवपीठ, षडाननपीठ और आदित्यपीठ आदि अनेक देवस्थान हैं, जहाँ भक्तगण प्रतिदिन पूजा-अर्चामें संलग्न रहते हैं। काशीके आदित्य-पीठ भी अपनी ऐतिह्य विशेषता लिये आज भी लोकमानसमें प्रतिष्ठित हैं। इनमेंसे कुछ तो अब अपना अस्तित्व खो बैठे हैं—केवल उनके स्थानकी पूजा होती है। कुछ अपने स्थानको परिवर्तित कर केवल महत्त्व बनाये हुए हैं। काशीखण्डमें बारह आदित्यपीठोंका उल्लेख मिलता है। इसके अनुसार जगत्‌के नेत्र सूर्य स्वयं बारह रूपोंमें विभक्त होकर काशीपुरीमें व्यवस्थित हुए*। इनका उद्देश्य अपने तेजसे नगरकी रक्षा करना है। जिस प्रकार नगरके परिरक्षण करनेमें गणेश और भैरव प्रत्येक दिशामें स्थापित किये जाते हैं, उसी प्रकार आदित्यकी द्वादश मूर्तियाँ काशी-क्षेत्रमें दुष्टोंके दमन करनेमें अग्रसर रही हैं। इन द्वादशपीठोंके अतिरिक्त पुन्नादित्य तथा कर्णादित्यके अन्य विग्रह भी उपलब्ध होते हैं। आदित्योपासनाका प्रमुख उद्देश्य स्वास्थ्यकी रक्षा करना है। उसमें भी विशेषतया रक्तदोष-जनित रोगोंको शमन करना है। अतः रविवारके व्रतमें नमक, उष्ण जल एवं दूध वर्जित हैं। सूर्योदयसे पूर्व शीतल जलसे स्नान करनेका विधान है। पौष मासके रविवार उपासनाके लिये विशेषरूपमें ग्राह्य हैं। वैसे रविवारको सूर्यकी पूजा होती ही है। काशीके उपासनाके द्वादश पीठोंमें प्रमुख लोलार्कका 'कृत्यकल्पतरु'में प्राप्त होता है। उसमें अन्य उल्लेख नहीं है। ऐसा विदित होता है कि लोलार्ककी मान्यता काशीके आदित्यपीठोंमें सर्वाधिक रही। तदनुसार आदित्यपीठोंमें लोलार्कका स्थान सर्वप्रमुख है; इस बातकी पुष्टि वामनपुराणके इस कथनसे होती है कि वाराणसीमें तीन देवता हैं—अविमुक्त, केशव तथा लोलार्क।' लोलार्कका स्थान वर्तमान मुहल्लेमें स्थित है। यहीं तुलसीघाट भी है। लोलार्क प्रभृति आदित्यपीठोंका वर्णन क्रमशः इस प्रकार है—

(१) लोलार्क—यह आदित्यपीठ वाराणसीके आदित्यपीठोंमें मूर्धन्य है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इससे सम्बद्ध एक कुण्ड भी है, जिसे 'लोलार्क-कुण्ड' कहा जाता है। इस कारण लोलार्कको तीर्थकी महत्ता भी प्राप्त है। असि-संगमके समीप होनेके कारण लोलार्क कुण्डका जल गङ्गामें मिल जानेके बाद उत्तरवाहिनी गङ्गाके सदृश अन्य तीर्थोंमें पहुँचता है।† प्राचीनकालमें लोलार्क-कुण्डका संगम गङ्गासे होता था। वर्तमान समयमें यह कुण्ड ऊँचे धरातलपर है और इसका जल केवल वर्षा-ऋतुमें एक सुरंगके द्वारा गङ्गामें पहुँचता है। लोलार्क-षष्ठीको इस कुण्डमें स्नान करनेके बाद अधिक पुण्यजनक माना गया है।

---

* [illegible]
लोलार्क उत्तरार्कश्च साम्बादित्यस्तथैव च। चतुर्थो द्रुपदादित्यो मयूखादित्य एव च॥
खखोल्कश्चारुणादित्यो वृद्धकेशवसंज्ञकौ। दशमो विमलादित्यो गङ्गादित्यस्तथैव च॥
द्वादशश्च यमादित्यः काशिपुर्यां घटोद्भव। तमोऽधिकेभ्यो दुष्टेभ्यः क्षेत्रं रक्षन्त्यमी सदा॥

† [illegible]

…देवताओंने सूर्यकी प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना …कर सूर्यने कहा—'मैं दानवोंका संहार करनेके लिये … एवं अजेय शस्त्रोंको उत्पन्न करूँगा।' ध्यानमग्न सूर्यने स्वकीय तेजसे पूरित शिलाको उत्पन्न कर …माओंसे उसे वाराणसीके उत्तर भागमें ले जानेको कहा। …के साथ ही वरुणाके दक्षिण तटपर विश्वकर्माने उस …से सर्वलक्षणसम्पन्न उत्तरार्ककी दिव्य प्रतिमा बनायी। …शिलाके गढ़े जानेपर पत्थरोंके टुकड़ों (शस्त्रों) द्वारा देवसेनाको सुसज्जितकर दैत्योंपर विजय प्राप्त की। वहाँ शिलाके अवघट्टन (रगड़)से जो गड्ढा बना, वह जलाशय 'उत्तमानस' के नामसे प्रख्यात हुआ। उसमें स्नानकर देवताओंने रक्त चन्दनयुक्त करवीर (कनेल) के पुष्प तथा अक्षत आदिसे उत्तरार्ककी पूजा की। इस पूजनके फलस्वरूप उत्तरार्कने देवोंको अजेय होनेका वर दिया तथा अपनी उत्पत्तिके विषयमें यह कहा कि पौष मासकी सप्तमी तिथि, रविवार, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें मेरा जन्म हुआ है[2]। सूर्यकी कृपाके फलस्वरूप देवोंने उत्तरार्कके पूर्वमें गणेश, दक्षिणमें क्षेत्रपाल तथा भैरव और पश्चिममें 'उत्तर-मानसरोवर' स्थापित किये। यह 'मानसरोवर' जल-रूपमें सूर्यकी शक्ति 'छाया' मानी गयी[3]। इसके उत्तरमें स्वयं उत्तरार्क विराजमान हैं। उनकी बायीं ओर 'धर्मकूप' बनवाया गया।

आदित्यपुराणमें वर्णित उत्तरार्क तथा उसके समीपवर्ती पूजा-स्थलोंका विशद परिचय प्राप्त होता है। इस कथानकसे यह अभिव्यञ्जित होता है कि एक बार तो इस स्थलके विध्वंसक पराजित हो गये हैं। यहाँके आक्रमणोंके सम्बन्धमें इतिहास इस बातका साक्षी है कि सन् १०३४-३५ ई०के आसपास सालार मसऊद गाजी (जो गाजीमियाँके नामसे प्रसिद्ध रहे) के आदेशसे उनके सेनापति मलिक अफजल अलवीकी सेना वाराणसीमें प्रथम बार पराजित हो गयी थी। ११९४ ई० के बादसे जब कुतुबुद्दीन ऐबककी सेनाने वाराणसीकी सेनापर विजय प्राप्त कर राजघाटका किला ढहा दिया, तभी अनेक मठ-मन्दिरोंका भी विध्वंस हुआ। उस समयके विध्वस्त मन्दिरोंमें 'उत्तरार्क' (बकरियाकुण्ड) का मन्दिर भी है। इस क्षेत्रके आसपासकी विध्वस्त मूर्तियोंमेंसे बकरियाकुण्डसे प्राप्त गोवर्धनधारी कृष्णकी गुप्तकालीन विशाल मूर्ति 'कला-भवन'में सुरक्षित है[4]। इस वर्णनसे आदित्यपुराणमें वर्णित यहाँपर अनेक देवस्थानोंके होनेका प्रमाण परिपुष्ट होता है। (क्रमशः)

आदित्यके प्रातःस्मरणीय द्वादश नाम

आदित्यः प्रथमं नाम द्वितीयं तु दिवाकरः। तृतीयं भास्करः प्रोक्तं चतुर्थं तु प्रभाकरः ॥
पञ्चमं तु सहस्रांशुः षष्ठं त्रैलोक्यलोचनः। सप्तमं हरिदश्वश्च अष्टमं च विभावसुः ॥
नवमं दिनकरः प्रोक्तो दशमं द्वादशात्मकः। एकादशं त्रयोमूर्तिः द्वादशं सूर्य एव च ॥
(—आदित्यहृदयस्तो०)

१. घटनाट्टङ्कघातेन या खनिः समपद्यत। सरः समभवत् तत्र नाम्ना चोत्तरमानसम् ॥
शिलाकणाणुभिः शुद्धं व्याधिनाशनहेतुभिः। पूर्णं स्वच्छमगाध्यं भास्करस्येव मानसम् ॥
२. अथ पौषस्य सप्तम्यामर्कवारे ममोद्भवः। अभूदुत्तरफाल्गुन्यां नक्षत्रे भगदैवते ॥
(आदित्यपुराण)
३. ज्योत्स्ना छायेति तामाहुः सूर्यशक्तिं महाप्रभाम्। अपां रूपेण सा तत्र स्थिता सरसि मानसे ॥
(आदित्यपुराण)
४. द्रष्टव्य—पं० कुबेरनाथ सुकुलकृत 'वाराणसी-वैभव' पृष्ठ २०८-२८१।

मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठी अथवा सप्तमीको रविवारका योग होनेपर लोलार्क-दर्शनका विशेष माहात्म्य है।[1] आजकल यहाँकी वार्षिक यात्रा भाद्रपद शुक्ला षष्ठीको सम्पन्न होती है। व्याधिग्रस्त स्त्री-पुरुष एवं निःसंतान स्त्रियाँ लोलार्क-षष्ठीके दिन लोलार्ककुण्डमें स्नान कर गीले वस्त्र वहीं छोड़ देतीं और लोलार्ककी अर्चना-वन्दना कर इच्छित वरदान माँगती हैं। सूर्यपीठ होनेके कारण प्रति रविवारको भी यहाँ पूजन करनेका माहात्म्य है।[2] लोलार्क-तीर्थको काशीका नेत्र माना गया है। यह तीर्थ नगरके दक्षिणभागमें स्थित होनेके कारण दक्षिणी भागका रक्षक कहा गया है। दक्षिणसे प्रवेश करनेवाले समस्त पापोंका यह तीर्थ अवरोध करता है। नगरके दक्षिण भागकी विशेषता गङ्गा-असि-संगमके साथ लोलार्ककी स्थितिके कारण अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

२-उत्तरार्क—वाराणसीकी उत्तरी सीमाका सूर्यपीठ उत्तरार्क है। इससे सम्बद्ध जलाशय उत्तरार्क-कुण्डके नामसे विख्यात था। वर्तमान समयमें यह बकरिया-कुण्ड कहलाता है। कदाचित् यह वार्कार्क-कुण्डका ही अपभ्रंश है। इसकी वर्तमान स्थिति पूर्वोत्तर रेलवे स्टेशन अलईपुर (वाराणसी नगर) के समीप ही है। मुसल्मानोंके आधिपत्यके प्रारम्भमें ही यह सूर्यपीठ नष्ट हो गया था, उसका पुनः निर्माण अबतक नहीं हुआ। उत्तरार्ककी मूर्ति लुप्त है। केवल उसके स्थानकी पूजा [illegible] अब इसपर मस्जिद-मजार बने हुए हैं। [illegible] प्रयुक्त पत्थरोंपर अङ्कित चित्रोंको देखकर [illegible] होता है कि प्राचीन कालमें यहाँ विहार [illegible] विद्यमान रहे हों।

पौष मासके रविवार यहाँकी यात्राके लिये [illegible] माने गये हैं।[3] यह क्रम अब समाप्त हो [illegible] इसके विपरीत अब यहाँ ज्येष्ठके रविवारोंको [illegible] मेला लगता है।

काशीखण्डके अतिरिक्त 'आदित्यपुराण'में उत्त[illegible] माहात्म्य बड़े विस्तारके साथ वर्णित है। इस उत्त[illegible] अनुसार जाम्बवतीके पुत्र साम्बने अपने पि[illegible] यह निवेदन किया कि आप सूर्योपासनाका ऐसा [illegible] बतलायें कि लोग व्याधिनिर्मुक्त हो सुखी जीवन [illegible] करें; क्योंकि मैंने सूर्यकी अर्चना कर महारोग (क[illegible] से मुक्ति पायी है। इसके उत्तरमें श्रीकृष्णने कहा कि [illegible] भेदसे भगवान् सूर्य विशेष फलदायक होते हैं।[4] इसी प्रकार वाराणसीमें उत्तरार्क विशेषरूपमें प्रतिष्ठि[illegible] हैं। दैत्योंद्वारा देवताओंके पराजित किये जानेपर अदिति के गर्भसे मार्तण्ड उत्पन्न हुए। सब देवोंके मित्र होनेके कारण उन्हें मित्र भी कहा गया। वे ही सूर्य, [illegible] रवि और जगच्चक्षु आदि नामोंसे सम्बोधित किये गये।

---

1. मार्गशीर्षस्य सप्तम्यां षष्ठ्यां वा रविवासरे। [illegible] यात्रां नरः पापैः प्रमुच्यते॥
2. [illegible] लोलार्के यः करोति [illegible] । [illegible] ॥ (का० ख० अ० ४६)
3. [illegible] (वही ४६।५६)
4. [illegible]
5. [illegible]

-अंशु, ११—भग और १२—विष्णु[1] । महाभारतमें इन्हीं बारह सूर्योंकी मान्यता है[2] । तदनुसार इन्द्र ३ बड़े हैं और विष्णु सबसे छोटे । भगवान् सूर्यकी सना बारह महीनोंमें इन्हीं बारह नामोंसे होती है; —मधु (चैत्र) में धाता, माधव (वैशाख) में अर्यमा, (ज्येष्ठ) में मित्र, शुचि (आषाढ) में वरुण, नभ ावण) में इन्द्र, नभस्य (भाद्रपद) में विवस्वान्, (आश्विन) में पूषा, तपस्य (कार्तिक) में क्रतु पर्जन्य, सह (मार्गशीर्ष) में अंशु, पुष्य (पौष) भग, इष (माघ) में त्वष्टा और ऊर्ज (फाल्गुन) में णु[3] । यही भगवान् सूर्यका उपासनाक्रम है । रकोषमें सूर्यके एतद्‌तिरिक्त ३१नामोंका उल्लेख यथा—१—सूर, २—आदित्य, ३—द्वादशात्मा, -दिवाकर, ५—भास्कर, ६—अहस्कर, ७—ब्रध्न, -प्रभाकर, ९—विभाकर, १०—भास्वान्, ११—सप्ताश्व, २—हरिदश्व, १३—उष्णरश्मि, १४—विकर्तन, ५—अर्क, १६—मार्तण्ड, १७—मिहिर, १८—अरुण, ९—द्युमणि, २०—तरणि, २१—चित्रभानु, २२—विरोचन, ३—विभावसु, २४—ग्रहपति, २५—त्विषां पति, ६—अहर्पति, २७—भानु, २८—हंस, २९—सहस्रांशु, ०—तपन और ३१—रवि । इन नामोंके अतिरिक्त ६ नाम और उल्लिखित हैं—

१—पद्माक्ष, २—तेजसां राशि, ३—छायानाथ, ४—तमिस्रहा, ५—कर्मसाक्षी, ६—जगच्चक्षु, ७—लोकबन्धु, ८—त्रयीतनु, ९—प्रद्योतन, १०—दिनमणि, ११—खद्योत, १२—लोकबान्धव, १३—इन, १४—धामनिधि, १५—अंशुमाली और १६—अब्जिनीपति[4] । ऋग्वेदमें १—मित्र, २—अर्यमा, ३—भग, ४—(बहुव्यापक) वरुण, ५—दक्ष और ६—अंश—इन छः नामोंकी चर्चा है[5] ।

उपरिसंख्यक सूर्यनामोंका उल्लेख तो औपचारिकमात्र है, यथार्थतया तो सूर्यके नाम अनन्त—असंख्य हैं; क्योंकि सूर्य और विष्णु दोनों अभिन्न तत्त्व हैं । जो विष्णु हैं, वे ही सूर्य और जो सूर्य हैं, वे ही विष्णु; वस्तुतः सूर्य एक ही हैं; किंतु कर्म, काल और परिस्थितिके अनुसार सूर्यके विविध नाम रखे गये हैं—नामी एक, नाम अनेक ।

वैदिक साहित्य और सूर्योपासना

पाश्चात्त्य सभ्यताके अनुरागी आधुनिक इतिहासके समर्थक अधिकांश भारतीय विद्वानोंके मतानुसार सूर्योपासना आधुनिक है । उनके मतमें प्राचीन कालमें सूर्य-पूजाका प्रचलन नहीं था । किंतु उन विद्वानोंकी यह धारणा भ्रान्तिपूर्ण है; क्योंकि भारतीय प्राचीन परम्परामें सूर्यके आराधनापरक प्रमाण प्रचुरमात्रामें प्राप्त होते हैं । वेद विश्वके साहित्यमें प्राचीनतम हैं । इस मान्यतामें कदाचित् दो मत नहीं हो सकते हैं । लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलकके मतानुसार ऋग्वेद-संहिताका निर्माण-काल ९,००० वर्षोंसे कमका नहीं है । ऋग्वेदमें सूर्योपासनाके अनेक प्रसङ्ग मिलते हैं[6] । कतिपय प्रसंगोंका उल्लेख करना उपयोगितापूर्ण है; यथा—मण्डल १ सूक्त ५० ऋचा १—१३ अनुष्टुप् छन्दोबद्ध है । इसके ऋषि कण्वके पुत्र प्रस्कण्व हैं । इसमें महिमा-गानके द्वारा रोगनिवारणके लिये प्रार्थना की गयी है । पुनः सूक्त ११५, १६४ और १९१ में, जिनके ऋषि अंगिराके पुत्र कुत्स, उतथ्यके पुत्र दीर्घतमा और अगस्त्य हैं, सूर्य-महिमाका गान है ।

मण्डल ५ सूक्त ४० में ऋषि अत्रि हैं । मण्डल ७ सूक्त ६० में ऋषि वसिष्ठ हैं । इसकी एक ही ऋचाके द्वारा सूर्यके अनुष्ठानमें यजमानने पापमुक्तिके

१. विष्णुपुराण १ । १५ । १३१—१३३; २. महाभारत १ । ६६ । ३६; ३. वि० पु० २ । १० । ३—१८ । ४. अमरकोष १ । ३ २८—३०१/२ तथा (२८—४१) ५. ऋग्वेद ४ । २७ । १; ६. पं० रामगोविन्द त्रिवेदी, हिन्दी ऋग्वेदकी भूमिका, पृ० १५ ।

भगवान् सूर्यदेव और उनकी पूजा-परम्पराएँ

(लेखक—डॉ० श्रीसर्वानन्दजी पाठक, एम्०ए०, पी-एच्० डी०(द्वय), डी० लिट्०, शास्त्री, काव्यतीर्थ, पुर

किसी भी राष्ट्रका अस्तित्व उसकी अपनी संस्कृतिपर ही मुख्यतया आधारित रहता है। संस्कृतिके ही अस्तित्व और अनस्तित्वसे राष्ट्र उत्थान-पतनकी अवस्थामें रहता है। जहाँ संस्कृतिकी अपेक्षा रहती है, वहाँ राष्ट्र सार्वत्रिक रूपसे उन्नतिकी ओर निरन्तर प्रगतिशील रहता है और तद्विपरीत जहाँके प्रशासनमें अपनी संस्कृतिकी उपेक्षा होने लगती है, वहाँ उस राष्ट्रका पतन भी अवस्यम्भावी है—चाहे वह क्रमिक हो या आकस्मिक, पर उसका ऐसा होना निश्चित है। भारतका राष्ट्रिय उत्थान तो एकमात्र सांस्कृतिक अनुष्ठानपर ही आधारित रहता आ रहा है। आजसे ही नहीं, सनातनकालसे इतिहास ही इसका मुख्य साक्षी है। भारतीय संस्कृतिकी आधारशिला है वर्णाश्रम-धर्मका पालन। ब्राह्मणादि वर्णचतुष्टय एवं ब्रह्मचर्यादि आश्रमचतुष्टयका अभिप्रेत है ऐहिक अभ्युदयकी प्राप्ति तथा आमुष्मिक निःश्रेयस्की उपलब्धि—आत्माकी परमात्मामें एकाकारता और इन दोनों उपलब्धियोंका एकमात्र साधन है—भगवदुपासना। भगवदुपासनाके दो प्रकार हैं—सगुण-साकाररूपात्मक तथा निर्गुण-निराकाररूपात्मक; पर इस उपलब्धिद्वयके लिये तदुपासना है परम अनिवार्य—'नान्यः पन्था विद्यते अयनाय'। अनुभवी एवं सिद्ध उपासकोंके मतसे निर्गुण-निराकारोपासनाकी अपेक्षा सगुण-साकारोपासना सरलतर है और यह अभ्युदय तथा निःश्रेयस् दोनों उपलब्धियोंके लिये प्रथम सोपान है। प्रथम सोपानपर दृढमूल हो जानेपर अग्रिम पथ सुगम हो जाता है। निष्ठा एवं श्रद्धापूर्ण आचरणसे लक्ष्यकी प्राप्तिमें विलम्ब नहीं होता। एतन्निमित्त विश्वासपूर्वक निरन्तर नि[illegible] अनुष्ठानकी परम आवश्यकता है।

साकारोपासनामें पञ्चदेवार्चन मुख्यतया कर्त[illegible] पञ्चदेवोंमें सूर्य, गणेश, शक्ति, शिव और विष्णु [illegible]

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशव[म्]
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूज[येत्]
(संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ, पृ० [illegible])

सूर्य इन पाँच देवताओंसे अन्य [illegible] नवग्रहदेवोंमें इनका प्रथम स्थान है।

आधुनिक कोशकारोंके मतानुसार सूर्य सौरम[ण्डल]का एक प्रधान पिण्ड या जाज्वल्यमान तारा है, [जि]से पृथ्वी, सौर-मण्डलके अन्यान्य ग्रह एवं उपग्रह प्रदक्षिणा [करते] रहते हैं। साथ ही जो पृथ्वीको प्रकाश और उ[ष्णता] मिलनेका साधन तथा उसके ऋतुक्रमका कारण है।*

शब्दशास्त्रीय निरुक्तिके अनुसार सूर्यका व्युत्प[त्त्यर्थ] होता है—वह एक ऐसा महान् तत्त्व, जो आकाशमण्ड[लमें] अनवरत गतिसे परिभ्रमण करता रहता है—'सर[ति] सातत्येन परिभ्रमत्याकाशे इति सूर्यः'। यह [illegible] भ्वादिगणीय 'सृ गतौ' धातुके आगे 'क्यप्' के योगसे निष्प[न्न] हुआ है†। पौराणिक विवृतिके अनुसार मरीचिपुत्र कश्य[प] ऋषिकी पत्नी दक्षकन्या अदितिके गर्भसे उत्पन्न होने[के] कारण सूर्यका एक नाम आदित्य है और यह आदित्य (सूर्य) संख्यामें बारह हैं। यथा—१—श[क्र] (इन्द्र), २—अर्यमा, ३—धाता, ४—त्वष्टा, ५—पूषा, ६—विवस्वान्, ७—सविता, ८—मित्र, [illegible]

* बृहत् हिन्दीकोश, १२९२ तथा सं० श० कौ०, पृ० १२२४। वस्तुतः ग्रह सूर्यकी परिक्रमा करते हैं और ग्रहकी परिक्रमा करते हैं; परंतु दोनोंकी परिक्रमा सूर्यकी परिक्रमा हो जाती है—यही यहाँ अभिप्राय है।

† राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः (पा० अ० सू० ३। १। ११४)

...लोक और अन्तिम सत्यलोक है; सात अधोलोक हैं—महातल, रसातल, अतल, सुतल, वितल, तलातल तथा अन्तिम पाताल। यौगिक साधना करनेवाला उपासक जब सूर्यमें एकान्त ध्यानकी सिद्धि पा जाता है, तब सम्पूर्ण चतुर्दश लोकोंमें क्या घटना हो रही है, इसका टेलिविजनके समान उसे प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है।[1]

सूर्यसे अनेक पौराणिक आख्यायिकाओंका मूल वैदिक है। सूर्यकी उपासनाका इतिहास भी वैदिक ही है। उत्तर वैदिक साहित्य तथा रामायण-महाभारतमें भी सूर्योपासनासम्बन्धी चर्चाका बाहुल्य दृष्टिगोचर होता है। गुप्तकालके पूर्वसे ही सूर्योपासकोंका एक सम्प्रदाय बन चुका था, जो सौर नामसे प्रसिद्ध था। सौर-सम्प्रदायके उपासक अपने उपास्यदेव सूर्यके प्रति अनन्य आस्थाके कारण उन्हें आदिदेवके रूपमें मानते थे। भौगोलिक दृष्टिसे भी भारतमें सूर्योपासना व्यापक थी। मथुरा, मुल्तान, कश्मीर, कोणार्क और उज्जयिनी आदि स्थान सूर्योपासकोंके प्रधान केन्द्र थे।[2]

सूर्योपासनाका आरम्भिक स्वरूप प्रतीकात्मक था। सूर्यकी प्रतिमा चक्र एवं कमल आदिसे व्यक्त की जाती थी। मूर्तरूपमें सूर्य-प्रतिमाका प्रथम प्रमाण बोधगयाकी रूपमें है। बौद्ध-सम्प्रदायमें भी सूर्योपासना होती थी। भाजाकी बौद्ध-गुफामें भी सूर्यकी प्रतिमा बोधगयाकी रूपमें ही निर्मित हुई है। इन दोनों प्रतिमाओंका काल ईसासे पूर्व प्रथम शती है। बौद्ध-परम्पराके ही समान जैन-गुफामें भी सूर्यकी प्रतिमा मिली है। खण्डगिरि—उदयगिरिकी अनन्त गुफामें सूर्यकी जो प्रतिमा है (ईसवीकी दूसरी शतीकी) वह भी भाजा और बोधगयाकी ही परम्परामें है। चार अश्वोंसे युक्त एकचक्र-रथारूढ सूर्यकी प्रतिमा मिली है। गंधारसे प्राप्त सूर्य-प्रतिमाकी एक विचित्रता यह है कि सूर्यके चरणोंको जूतोंसे युक्त बनाया गया है। इस परम्पराका परिपालन मथुराकी सूर्य-मूर्तियोंमें भी किया गया है।[3] मथुरामें निर्मित सूर्य-प्रतिमाओंको उदीच्य वेशमें बनाया गया है।

गुप्तकालीन सूर्य-प्रतिमाओंमें ईरानी प्रभाव कम था—बिलकुल नहीं। निदायतपुर, कुमारपुर (राजशाही बंगाल) और भूमराकी गुप्तकालीन सूर्यप्रतिमाएँ शैली, भावविन्यास और आकृतिमें भारतीय हैं। सूर्यके मुख्य आयुध कमल दोनों हाथोंमें ही विशेषतया प्रदर्शित हैं। मध्यकालीन उपलब्ध सूर्यप्रतिमाएँ दो प्रकारकी—स्थानक सूर्य-प्रतिमाएँ और पद्मस्थ प्रतिमाएँ हैं।[4]

सूर्यकी स्थिति

विश्वाकाश अनन्त एवं असीम है। इसकी सीमाको नापना मानव-मस्तिष्कके लिये सर्वथा तथा सर्वदा असम्भव है। वह इसकी सीमाके परीक्षणमें शत-प्रतिशत असफल होता है। पञ्चभूतों (पृथिवी आदि) में आकाश विशालतम है और सूक्ष्मतम भी। इस विश्वाकाशमें सूर्यकी अपेक्षा असंख्य गुना विशाल तथा अनन्त प्रकाशपिण्ड सृष्टिके आदिकालसे निरन्तर गतिशील हैं। उनके प्रति सेकण्ड लाख-लाख योजनकी रफ्तार—गतिसे चलनेपर भी आजतक उनका प्रकाश इस पृथ्वीपर नहीं पहुँच सका है—वेदादि शास्त्रीय विद्वानोंके अतिरिक्त आधुनिक विज्ञानाचार्योंका भी विचारपूर्ण यही योजना है। सूर्य आकाशमण्डलके लगभग दस्सहस्र ग्रह-नक्षत्रादि प्रकाश-पिण्डोंमें विशालतम हैं। इनके एकका विस्तार नौ लाख योजनोंमें है और इनसे दूना एकका ईशदण्ड (मूल और दर्प मध्यका भाग) है।

---

१. भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्। पातञ्जल-योगदर्शन, विभूतिपाद, सूत्र २६। २. दुष्पर्दिकावर्ष पृ० ४९९।
३. वही पृ० ५००। ४. वही पृ० ५०१।

उसका धुरा डेढ़ करोड़ सात लाख योजन लम्बा है, जिससे एसका पहिया लगा हुआ है। सूर्यकी उदयास्त गतिसे काल अर्थात् निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त, रात्रि-दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर और चतुर्युग (कलि, द्वापर, त्रेता, सत्ययुग) आदिका निर्णय होता है।

पुराण-वाङ्मयमें सूर्यका परिचय पार्थिव जगत्के एक आदर्श राजाके रूपमें भी मिलता है। राजा अपनी प्रजाओंसे राज्य-कर (टैक्स) बहुत कम—नाममात्रका ही लेते हैं, पर उसके बदलेमें प्रजाओंको अनेक गुना अधिक दे देते हैं और उनके स्वास्थ्य आदि समग्र सुख-सुविधाओंका समुचित प्रबन्ध कर देते हैं। इस सम्बन्धमें बड़ा सुन्दर चित्रण किया गया है। सूर्य अपनी किरणोंके द्वारा पृथ्वीसे जितना रस खींचते हैं, उन सबको प्राणियोंकी पुष्टि और अन्नकी वृद्धिके लिये (वर्षा ऋतुमें) बरसा देते हैं। उससे भगवान् सूर्य समस्त प्राणियोंको आनन्दित कर देते हैं और इस प्रकार वे देव, मनुष्य और पितृगण आदि सभीका पोषण करते हैं। इस रीतिसे सूर्यदेव देवताओंकी पाक्षिक, पितृगणकी मासिक तथा मनुष्योंकी नित्य तृप्ति करते रहते हैं। सूर्यके ही कारण होनेवाली वृष्टिसे पृथ्वीके वृक्ष-वनस्पति, कन्द-मूल और जड़ी-बूटियाँ प्रभृति भैषज्य-पदार्थ पोषित और ओषधि गुणोंसे सम्पन्न होते हैं और ओषधिरूप इन्हीं पदार्थोंके उपयोगसे प्रजा रोगमुक्त होती है। कालिदासने अपने महाकाव्यमें सूर्यके सम्बन्धमें ऐसा ही सुन्दर चित्रण उपस्थित करते हुए

कहा है—सूर्यदेव ग्रीष्मकालमें पृथ्वीके [illegible] खींचते हैं—ग्रहण करते हैं, उसे चतुर्[illegible] गुना अधिक करके दे देते हैं। [illegible] निसर्गवृत्तिसे परहितके लिये त्याग करनेकी [illegible] करनी चाहिये। भारतने उनकी इस [illegible] परहितार्थ त्याग करनेकी शिक्षा ली थी। [illegible] अपनानेसे प्रजावर्गके लिये आध्यात्मिक उ[illegible] निश्चय ही सम्भव है। भारतमें भगवान् [illegible] एकमात्र आरोग्यदाता देवताके रूपमें [illegible] उपासना करनेपर अग्निदेव जिस प्रकार धन दे[illegible] भगवान् शंकर ऐश्वर्य देते हैं और महायोगेश्वर [illegible] ज्ञान देते हैं, उसी प्रकार उपासित भगवान् [illegible] शारीरिक, मानसिक आदि सर्वविध आरोग्य प्र[illegible] करते हैं। अतः उन-उनकी पूर्ति हेतु उन-उन देवता[illegible] प्रार्थना करनी चाहिये—

आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात्।
ऐश्वर्यमीश्वरादिच्छेज्ज्ञानमिच्छेज्जनार्दनात्॥

भारतीय मान्यतामें संयम-नियमपूर्वक सूर्यकी आराधना करनेसे असाध्य और भयंकर गलित कुष्ठरोगसे पीड़ित व्यक्ति भी नीरोग्य लाभ करते हैं।

समस्त पुराणों और उप-पुराणोंमें सूर्योपासना आदिके सम्बन्धमें विविध विवृतियाँ निहित हैं, पर संक्षिप्त रूपमें इतना ही वर्णन पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त पुराणेतर समस्त भारतीय साहित्य भगवान् सूर्यका विविध चित्रण देता है। सबका सार है—भगवान् सूर्यकी उपासना, पूजा एवं अर्चना। सूर्य हमारे [illegible] है।

सूर्योपासनाकी परम्परा

(लेखक—डॉ० पं० श्रीरमाकान्तजी त्रिपाठी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

सूर्यका वर्णन वैदिक कालसे ही देवताके रूपमें रहा है, किंतु वैदिक कालमें सूर्यका स्थान गौण समझा जा सकता है; क्योंकि वैदिक कालमें इन्द्र तथा अग्नि इनकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली देवता माने गये हैं। पौराणिक गाथाओंके आधारपर सूर्यको देवमाता अदिति तथा महर्षि कश्यपका पुत्र माना जाता है। अदिति-पुत्र होनेके कारण ही इन्हें आदित्यकी संज्ञा प्रदान की गयी है। वेदोंमें सबसे प्राचीन ऋग्वेद (मण्डल २, सूक्त २७, मन्त्र १) में छः आदित्य माने गये हैं—मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष तथा अंश। किंतु ऋग्वेदमें ही आगे (मण्डल ९, सूत्र, ११४ मन्त्र ३ में) आदित्यकी संख्या सात बतलायी गयी है। पुनः आगे चलकर हमें अदितिके आठ पुत्रोंका नाम मिलता है। वे निम्न हैं—मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, भग, अंश, विवस्वान् तथा आदित्य। इनमेंसे सातको लेकर अदिति चली गयी और आठवें आदित्य- (सूर्य-) को आकाशमें छोड़ दिया। वेदोंके पश्चात् शतपथ-ब्राह्मणमें द्वादश आदित्योंका उल्लेख मिलता है। महाभारत- (आदिपर्व, अध्याय १२१) में इन आदित्योंका नाम धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, सविता तथा विष्णु बताया गया है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानोंपर भिन्न-भिन्न उल्लेख मिलनेसे यह निश्चित करना कठिन है कि वास्तवमें कौन-से अदिति-पुत्र सूर्य हैं। आदित्य तथा सूर्य कहीं-कहीं अभिन्न माने जाते हैं। किन्हीं-किन्हीं विद्वानोंका मत है कि वस्तुतः ये द्वादश आदित्य एक ही सूर्यके कर्म, काल और परिस्थितिके अनुसार रखे गये भिन्न-भिन्न नाम हैं। कुछ विद्वान् तो यह भी कहते हैं कि ये द्वादश आदित्य (सूर्य)के द्वादश मासोंमें उदित होनेके भिन्न-भिन्न नाम हैं। यही कारण है कि पूषा, सविता, मित्र, वरुण तथा सूर्यको लोग अभिन्न मानते हैं। किंतु इतना तो निश्चित है कि इन देवताओंमें कुछ-न-कुछ स्वरूपभेद अवश्य रहा होगा, जिसके कारण इन्हें पृथक्-पृथक् नामोंसे निर्दिष्ट किया गया है। यह भेद समयके साथ लुप्त हो गया और अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण अब हमें कोई भेद दृष्टिगोचर नहीं होता है।

सूर्यके विषयमें यह भी प्रसिद्ध है कि वे आकाशके पुत्र हैं। यह तथ्य ऋग्वेदसे भी वहाँ प्रमाणित होता है, जहाँ आकाश-पुत्र सूर्यके लिये गीत गानेका वर्णन मिलता है।[2] कहीं-कहीं उषाको सूर्यकी माता बतलाया गया है, जो चमकते हुए बालकको अपने साथ लाती है तथा उसका मातृत्व सूर्यसे प्रथम उदय होनेके कारण माना गया है। ऋग्वेदमें ही सूर्य तथा उषा दोनोंको इन्द्रसे उत्पन्न बताया गया है।[3] उषाको ऋग्वेदमें ही एक स्थानपर सूर्यकी पत्नी[4] तथा एक अन्य स्थानपर सूर्य-पुत्री माना गया है।[5] इस प्रकार वेदोंके आधारपर यह निश्चित करना कठिन है कि सूर्य किसके पुत्र थे; क्योंकि स्थान-स्थानपर भिन्न-भिन्न वर्णन मिलते हैं।

सूर्यके जन्मके विषयमें इन सबसे विचित्र कथानक विष्णुपुराणमें मिलता है, जहाँ सूर्यको विश्वकर्माकी शक्तिके आठवें अंशसे उत्पन्न कहा गया है। विष्णुपुराणकी कथा निम्न प्रकार है—'विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञाके

१. हिंदी ऋग्वेद—इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) लिमिटेड, प्रयाग, पृ० १३२६, मन्त्र ८-९। २. ऋग्वेद १०। ३७। १ 'दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत'। ३. ऋग्वेद (२। १२। ७) 'यः सूर्यं य उषसं जजान'। ४. ऋग्वेद (७। ७५। ५)। ५. ऋग्वेद (४। ४३। २) सूर्यस्य दुहिता।

साथ सूर्यका विवाह हुआ तथा तीन पुत्रोंको जन्म देनेके पश्चात् उसने अपने पतिकी शक्तिको असहनीय समझा तथा स्वनिर्मित छायासे अपना स्थान ग्रहण करनेको कहकर वह वनको चली गयी। छायाने अपनी भिन्नता सूर्यसे नहीं बतायी। सूर्यने कुछ वर्षोंतक इसपर ध्यान भी नहीं दिया। एक दिन संज्ञाके एक पुत्र यमने छायाके साथ कुछ दुर्व्यवहार कर दिया और छायाने उसे शाप दे दिया। सूर्यने (जिन्हें यह ज्ञात था कि माताका शाप पुत्रपर कोई प्रभाव नहीं डालता) इस विषयमें खोज की। उन्हें ज्ञात हो गया कि उनकी कल्पित पत्नी कौन है। सूर्यके क्रुद्ध तेजसे छाया नष्ट हो गयी। तदनन्तर वे संज्ञाकी खोजमें गये, जो उन्हें घोड़ीके रूपमें वनमें भ्रमण करती हुई दिखायी दी। सूर्यने इस बार अपनेको अश्वरूपमें परिवर्तित कर दिया और वहाँपर उन दोनोंने कुछ समयतक जीवन व्यतीत किया। कुछ समयके अनन्तर वे अपने पशु-जीवनसे ऊबकर वास्तविक रूप धारण करके घर लौट आये। विश्वकर्माने इस प्रकारकी घटनाकी पुनरावृत्तिसे बचनेके लिये सूर्यको एक शाणयन्त्रपर स्थित कर दिया तथा उनके आठवें अंशका अपहरण करके उससे विष्णुके चक्र, शिवके त्रिशूल तथा कार्तिकेयकी शक्तिका निर्माण किया।[1]

इस प्रकार सूर्यके जन्मके विषयमें भिन्न-भिन्न कथाएँ होनेके कारण यह निश्चित करना सम्भव नहीं है कि वे वास्तवमें किस देवताके पुत्र थे। सम्भव है कि वे अदितिके ही पुत्र हों; क्योंकि अदितिको प्रायः सभी देवताओंकी माता माना गया है।

मित्र, सविता, सूर्य तथा पूषा—ये चारों ही नाम वस्तुतः सूर्यके ही द्योतक हैं, [illegible] कहीं-कहीं सूर्यसे भिन्न-सा प्रतीत होता है। तथा सूर्य शब्द वेदोंमें सूर्यके लिये ही प्रयु[illegible] मित्र सूर्यके सञ्चारके नियामक हैं तथा वे अभिन्न माने जाते हैं। वैदिक 'मित्र' [illegible] 'मिथ्र'से स्वरूपतः अभिन्न है। मित्रका अ[illegible] अथवा सहायक है और निश्चय ही यह सूर्य[illegible] शक्तिका द्योतक है। सविता 'हिरण्यपाणि' हैं, हाथ, नेत्र और जिह्वा सब हिरण्मय हैं। सविता अपने हिरण्मय नेत्रोंसे देखते हुए गमन करते हैं। सविताका अर्थ है 'प्रसव करनेवाला', 'प्रेरणा करनेवाला' देवता। निश्चय ही वे विश्वमें जीवन करनेवाले तथा प्रेरणा देनेवाले सूर्यके प्रतिनिधि हैं।

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके ३५वें सूक्तके मन्त्र सूर्यकी स्तुतिमें कहे गये हैं। यहाँ सूर्यके [illegible] भ्रमण, प्रातःसे सायंतक उदय-नियम, रश्मि[illegible] सूर्यके कारण चन्द्रमाकी स्थिति आदिका वर्णन कि[illegible] है। प्रथम मण्डलके ५०वें सूक्तके आठवें मन्त्रमें [illegible] है—'सूर्य! हरित नामक सात अश्व रथसे आपको ले जाते हैं। किरणें तथा ज्योति ही आपके केश हैं।' इसके आगे कहा गया है—'सूर्यके एकचक्र रथमें सात अ[illegible] जोते गये हैं। एक ही अश्व सात नामोंसे रथको [illegible] करता है।'[2] वे सभी प्राणियोंके, शोभन [illegible] अशोभन कार्योंके द्रष्टा हैं तथा मनुष्योंके कर्मोंके प्रेरक देव हैं। सूर्य आकाशमें चमकते हुए अन्धकारको दूर भगाते हैं। अपने गौरव तथा महत्त्वके कारण ये देवोंके पुरोहित कहे गये हैं। सूर्यको मित्र और वरुणका नेत्र बताया गया है।[3]

सूर्यके [illegible] वर्णन वेदोंमें [illegible] है। [illegible]

1. Thomas—Epics, myths and legends of India, P. 110—111.
2. [illegible]
3. हिन्दी ऋग्वेद (इण्डियन प्रेस [illegible], प्रयाग [illegible])
4. [illegible]

करते हैं—उत्, उत् + तर—उत्तर, ...—उत्तम, जो क्रमशः माहात्म्यमें बढ़कर ... उस ज्योतिका नाम उत् है जो इस भुवनके ...प्रकारके अपहरणमें समर्थ होती है। देवोंके ...त्व-रूपसे निवास करती है, वह 'उत्तर' है; ...तीनोंसे बढ़कर एक विशिष्ट ज्योति है, जिसे ...ते हैं।* ये तीनों शब्द सूर्यके कार्यात्मक, ... तथा कार्यकारणसे अतीत अवस्थाके द्योतक ...एक ही मन्त्रमें सूर्यके आधिभौतिक, आधिदैविक ...त्मिक स्वरूपोंका संकेत किया गया है। (वेद ... तीनों स्वरूपोंका प्रतिपादन करते हैं।)

...में सूर्यका महत्त्व अन्य देवताओंकी अपेक्षा गौण ...। तथ्य उनके महत्त्वको अनेकशः सूचित करते ...चार धार्मिक सम्प्रदायोंमेंसे सूर्यकी आराधना ...ला एक सौर-सम्प्रदाय भी है। एक विशेष ...व धार्मिक सम्प्रदाय सूर्यकी आराधना करता है। ... स्पष्ट होता है कि अन्य देवताओंकी अपेक्षा ... अधिक महत्त्व है।

...वेदका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मन्त्र गायत्री है, ...वेदोंकी माता भी कहा जाता है। यह मन्त्र सविता ...या सूर्यके महत्त्वका ही वर्णन करता है। पौराणिक ...क्षर 'ॐ' भी सूर्यसे ही सम्बद्ध है। यह सूर्यसम्बन्धी ...मि तथा त्रिदेवोंका प्रतीक है। यह एक चक्रमें ...ला हुआ सूर्य-मण्डलका द्योतक है। छान्दोग्य-...पनिषद्में 'ॐ'का महत्त्व इस प्रकार कहा गया है— ...सभी प्राणियोंका सार पृथ्वी है, पृथ्वीका सार जल है, ...जलका सार वनस्पति है, वनस्पतियोंका सार मनुष्य है, मनुष्यका सार वाणी है, वाणीका सार ऋग्वेद है, ऋग्वेदका सार सामवेद है, सामवेदका सार उद्गीथ है और उसीको 'ॐ' कहते हैं।'

'स्वस्तिक' हिन्दू मात्रका एक सौर चिह्न है। इस शब्दका अर्थ है 'भलीभाँति रहना'। यह तेज अथवा महिमाका द्योतक है तथा इस बातका संकेत करता है कि जीवनका मार्ग कुटिल है तथा वह मनुष्यको व्याकुल कर सकता है; किंतु प्रकाशका मार्ग उसके साथ-ही-साथ चलता है।

ग्रीक-पौराणिक गाथाओंमें सूर्य

ग्रीक-पौराणिक गाथाओंमें सूर्यका वर्णन लगभग वैसा ही मिलता है, जैसा कि भारतीय धर्मप्रधान वेदोंमें। वास्तवमें यदि देखा जाय तो हम इस निष्कर्षपर सफलतासे पहुँच सकते हैं कि ग्रीक-धर्म वैदिक धर्मका अनुकरणमात्र है। ग्रीककी पौराणिक गाथाओंके अनुसार देवी गाला (Gala) पृथ्वीकी देवी हैं। इन्होंने Chaos के पश्चात् जन्म लिया एवं आकाश, पर्वत तथा समुद्रका निर्माण स्वयं किया। उरानस (Uranus) इनके पति तथा पुत्र दोनों ही हैं। इन दोनोंके संयोगसे Cronus (Saturn) उत्पन्न हुए जो इनके सबसे छोटे पुत्र हैं वे देवताओंके सम्राट् माने गये हैं। Cronusकी पत्नीका नाम Rttea है तथा इन दोनोंके संयोगसे जेउस (Zeus) उत्पन्न हुए। ग्रीककी पौराणिक गाथाओंमें सूर्यको इन्हीं Zeus का पुत्र माना गया है। सूर्यको ग्रीककी पौराणिक गाथाओंमें Pboebs Apollo (फोएबस अपोलो) तथा Helios नामोंसे सम्बद्ध किया गया है। पौराणिक गाथाओंमें सूर्यके प्रासाद आदिका भी वर्णन मिलता है। एक पौराणिक गाथाके अनुसार सूर्य-पुत्र Phaethon उनके प्रासादमें

* उद् वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ (—ऋ० १।५०।१०)

पहुँचा जो कान्तियुक्त स्तम्भोंपर आश्रित था' तथा स्वर्ण एवं लाल मणियोंसे दीप्तिमान् हो रहा था। इसकी कारनिस चमकीले हाथी-दाँतोंसे बनी थी और चौड़े चाँदीके द्वारोंपर उपाख्यान एवं अद्भुत कथाएँ लिखी थीं।

फोएबस (Phoebus) लोहित वर्णका जामा पहने हुए अनुपम मरकतमणियोंसे शोभायमान सिंहासनपर वे आरूढ़ थे। उनके भृत्य दायीं तथा बायीं ओर क्रमसे खड़े थे। उनमें दिवस, मास, वर्ष, शताब्दियाँ तथा ऋतुएँ भी थीं। वसन्त ऋतु अपने फूलोंके गुच्छसोंके साथ, ग्रीष्म ऋतु अपने पीत वर्णके अन्नोंसहित तथा शरद् ऋतु, जिसके केश ओलोंकी भाँति श्वेत थे, उनके चारों ओर नम्रभावसे स्थित थे। उनके मस्तकके चारों ओर जाज्वल्यमान किरणें बिखर रही थीं।

सूर्यके प्रासादमें पहुँचनेके पश्चात् Phaethon ने उनसे कहा कि वे अपना रथ एक दिवसके लिये उसको दे दें। उस स्थानपर, जब सूर्य उसको रथ न माँगनेके लिये समझाते हैं, तब वे स्वयं रथका वर्णन अपने मुखसे करते हैं, जो निम्न है—

केवल मैं ही रथके प्रज्वलित धुरेपर, जिससे चिनगारियाँ बिखरती रहती हैं एवं जो वायुके मध्य घूमता है, खड़ा रह सकता हूँ। रथको एक निर्दिष्ट मार्गसे जाना चाहिये। यह अश्वोंके लिये एक कठिन कार्य होता है, जब कि प्रातःकाल सत्त्व भी रहते हैं। मध्याह्नमें (मैं) आकाशके मध्यमें [illegible] ऊँचाईपर भी मैं स्वयं भी घबरा जाता हूँ [illegible] भूमि और समुद्रको देखता हूँ।[2] [illegible] हाथ ही रस्सियोंसे [illegible] करते हैं। (समुद्रोंकी देवी) भी, जो मुझे अपने [illegible] लेनेकी प्रतीक्षा करती रहती है, [illegible] रहती है, जबतक मैं आकाशसे फेंक नहीं [illegible] यह भी एक समस्या है कि स्वर्ग निरन्तर [illegible] है तथा रथकी गति चक्रके सन्तत [illegible] होती है।[3]

इस प्रकार रथका जो वर्णन हमें यहाँ [illegible] लगभग वैसा ही वर्णन भारतीय वैदिक [illegible] भी मिलता है। सूर्यके रथमें वहाँ तो अश्विन [illegible] ही माना गया है, फिर यदि उसके [illegible] निकलती है तो कोई विशेष बात नहीं। सूर्यके आकाशसे फेंके जानेका वर्णन अवश्य नहीं यह ग्रीकधर्मकी अपनी परिकल्पना है।

इसके पश्चात् Apollo अपने पुत्रसे कहते यदि मैं तुम्हें अपना रथ दे भी दूँ तो [illegible] बाधाओंका निराकरण नहीं कर सकते, किंतु Pha[illegible] के विशेष आग्रहपर सूर्य उसको रथ दिखलाने ले जाते हैं। वहाँ पुनः रथका वर्णन आया है और तो भारतीय धर्मका अनुकृतिमात्र प्रतीत होता है।

1. 'Borne by Illuminous Pillars, the Palace of the Sun God rose lustrous [illegible] gold and flamered rubies. The Cornice was of dazzling ivory, and carved in relief the wide silver doors were legends and miracle tales.'
—Gods and Heroes—Gustav sehwab—Translated in English—Olgamarx [illegible] Ernst Morwitz, (Page. 49.)

2. "I myself am often shaken with dread when, at a such height. I sta[nd] upright in my chariot. My head spins when I look down to the land and sea [so] far beneath me."—Gods and Heroes, (P. 49, Eng. Trans.)

3. "Heaven turns incessantly and that the driving is against the sweep of its [rapid] rotations." (Gods and Heroes, P. 49, Eng. Trans.)

…र है—'रथ-धुरा तथा चक्र-ढाल स्वर्णनिर्मित थे। …पहियोंकी धुरियाँ चाँदीकी थीं तथा जुआ चन्द्रकान्तामणि …अन्य बहुमूल्य मणियोंसे चमक रहा था।'

…इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय पौराणिक …तथा ग्रीक पौराणिक गाथाओंमें पर्याप्त साम्य है …सूर्यका जो महत्त्व भारतीय धर्ममें हैं, वही महत्त्व …धर्ममें भी प्रतिपादित किया गया है। लगभग सभी …पौराणिक गाथाओंमें सूर्यका स्थान महत्त्वपूर्ण है तथा ये …एक ऐसे देवता हैं, जिनकी आराधना प्रायः सभी …समान रूपसे होती है।

ऐतिहासिक युगमें सूर्योपासना

…वैदिक कालमें अन्य देवताओंकी अपेक्षा सूर्यका स्थान …था, किंतु आगे चलकर सूर्यका महत्त्व अन्य …देवताओंकी अपेक्षा अधिक हो गया। महाभारतके …समयसे ही समाजमें सूर्य-पूजाका प्रचलन हो गया था। …कुषाण-कालमें तो सूर्य-पूजाका प्रचलन ही नहीं था, वरन् …कुषाण-सम्राट् स्वयं सूर्योपासक थे। कनिष्क (७८ ई०) …पूर्वज शिव तथा सूर्यके उपासक थे।[1] इसके पश्चात् …तीसरी शताब्दी ई० के गुप्त-सम्राटोंके समयमें भी …, विष्णु तथा शिवकी उपासनाका उल्लेख मिलता …। कुमारगुप्त-(४१४—५५ ई०)के समयमें ब्राह्मण- …धर्मका विशेष अभ्युत्थान हुआ तथा उस समयमें विष्णु, …शिव तथा सूर्यकी उपासना विशेषरूपसे होती थी— …यद्यपि स्वयं कुमारगुप्त कार्तिकेयका उपासक था। स्कन्दगुप्त (४५५–६७ ई०) के समयमें तो बुलन्दशहर जिलेके

इन्द्रपुर नामक स्थानपर दो क्षत्रियोंने एक सूर्य-मन्दिर भी बनवाया था।[3] गुप्त-सम्राटोंके कालतक सूर्य-आराधनाका विशेष प्रचलन हो गया था और उनके समयमें मालवाके मन्दसौर नामक स्थानमें, ग्वालियरमें, इन्दौरमें तथा बघेलखण्डके आश्रमक नामक स्थानमें निर्मित चार श्रेष्ठ सूर्य-मन्दिरोंका उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त उनके समयकी बनी हुई सूर्यदेवकी कुछ मूर्तियाँ भी बंगालमें मिलती हैं[4] जिनसे यह प्रतीत होता है कि गुप्त-सम्राटोंके समयमें सूर्यभगवान्‌की आराधना अधिक प्रचलित थी।

सातवीं ईसवीमें हर्षके समयमें सूर्योपासना अपनी चरम सीमापर पहुँच गयी। हर्षके पिता तथा उनके कुछ और पूर्वज न केवल सूर्योपासक थे, अपितु 'आदित्य-भक्त' भी थे। हर्षके पिताके विषयमें तो बाणने अपने 'हर्षचरित'में लिखा है कि वे स्वभावसे ही सूर्यके भक्त थे तथा प्रतिदिन सूर्योदयके समय स्नान करके 'आदित्य-हृदय' मन्त्रका नियमित जप किया करते थे।[5] हर्षचरितके अतिरिक्त अन्य कई प्रमाणोंसे भी इस तथ्यकी पुष्टि होती है कि सौर-सम्प्रदाय अन्य धार्मिक सम्प्रदायोंकी अपेक्षा अधिक उत्कर्षपर था। हर्षके समयमें प्रयागमें तीन दिनका अधिवेशन हुआ था। इस अधिवेशनमें पहले दिन बुद्धकी मूर्ति प्रतिष्ठित की गयी तथा दूसरे और तीसरे दिन क्रमशः सूर्य तथा शिवकी पूजा की गयी थी।[6] इससे भी ज्ञात होता है कि उस कालमें सूर्य-पूजाका पर्याप्त महत्त्व था। सूर्योपासनाका वह चरमोत्कर्ष हर्षके समयतक ही सीमित नहीं रहा, अपितु

१. डा० भगवतशरण उपाध्याय—प्राचीन भारतका इतिहास (संस्करण १९५७) पृष्ठ २१७।

२. वही पृष्ठ २५८।

३. श्रीनेत्र पाण्डेय—भारतका बृहत् इतिहास (सं० १९५०) पृ० २६८।

४. वही पृ० २८०।

५. हर्षचरित—चौखम्बा प्रकाशन, पृ०२०२।

६. प्राचीन भारतका इतिहास—डा० भगवतशरण उपाध्याय, पृ०३०६, सं० १९५७।

पासनासे हो जाता है । अयोध्याके निकट
ड नामक एक जलाशय है । जनश्रुति है कि उस
स्नान करनेसे सभी प्रकारके चर्मरोगोंका विनाश
ता है । मिथिलामें भी ऐसी धारणा है कि
शुक्लपक्षकी षष्ठीके दिन सूर्योपासना करनेसे
को किसी प्रकारका चर्मरोग नहीं हो सकता है ।
सके अतिरिक्त अन्य सभी पौराणिक कथाओंको
वास कहनेवाले वैज्ञानिक भी इस तथ्यको स्वीकार करते हैं कि सूर्य-किरणें सभी प्रकारके चर्मरोगोंके विनाशके लिये अत्यन्त लाभदायक हैं । आजकल तो अनेक चिकित्सालयोंमें सूर्यकी किरणोंसे ही कुष्ठरोग-ग्रस्त लोगोंका उपचार किया जाता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर्य ही एक ऐसे देवता हैं, जिनकी उपासना समस्त जाति करती है । सूर्योपासनाकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और आज भी प्रायः सर्वत्र प्रचलित है ।

सूर्याराधना-रहस्य

(लेखक—श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी)

भगवान् सूर्यनारायण ही संसारके समस्त ओज, दीप्ति और कान्तिके निर्माता हैं । वे आत्मशक्तिके यदाता तथा प्रकाश-तत्त्वके विधाता हैं । वे -व्याधिका अपहरण करते और कष्ट तथा क्लेशका न करते हैं और रोगोंको आमूल-चूल हनन कर रे जीवनको निर्मल, विमल, स्वस्थ एवं सशक्त देते हैं ।

यदि हम असत्से सत्की ओर, मृत्युसे अमरत्वकी र तथा अन्धकारसे प्रकाश-पथकी ओर जाना चाहते तो जगत्-प्रकाश-प्रकाशक भगवान् सूर्यकी सत्ता-चारो समझकर हमें उनकी आराधना और उपासना योगसे करनी चाहिये ।

वेदोंमें सूर्यको चराचर जगत्की आत्मा कहा गया और इसी आत्मप्रकाशको बृहदारण्यक उपनिषद्में देखनेयोग्य, सुननेयोग्य तथा मनन करनेयोग्य बताया या है—आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः । (बृ० उ० २ । ४ । ५) ।

सौर-सम्प्रदायवाले सूर्यको विश्वका स्रष्टा मानकर एकचित्तसे उनकी आराधना करते हैं । पहले सौर-सम्प्रदायवालोंकी छः शाखाएँ थीं । सभी अष्टाक्षर-मन्त्रका जप करते, लाल चन्दनका तिलक लगाते, माला धारण करते और सूर्यकी भिन्न-भिन्न देवोंके रूपमें आराधना करते थे । कोई सूर्यकी ब्रह्माके रूपमें, दूसरे विष्णुरूपमें, तीसरे शिवके रूपमें, चौथे त्रिमूर्तिके रूपमें आराधना करते थे । पाँचवें सम्प्रदायवाले सूर्यको ब्रह्म मानकर सूर्यबिम्बके नित्य दर्शनकर षोडश उपचारोंद्वारा उनकी पूजा करते थे और सूर्यके दर्शन किये बिना जल भी नहीं पीते थे । छठे सम्प्रदायवाले सूर्यका चित्र अपने मस्तक तथा भुजाओंपर अङ्कित कराके सतत सूर्यका ध्यान करते थे । श्रुतियों, भविष्यत्, ब्रह्म आदि पुराणों, बृहत्संहिता तथा सूर्यशतक आदिमें सूर्यके महत्त्वका वर्णन किया गया है ।

वेदोंमें कहा गया है कि—

'उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते ।

(तै० आ० प्र० २, अ० २)

अर्थात्—'उदय और अस्त होते हुए सूर्यकी आराधना ध्यानादि, करनेवाला विद्वान् ब्राह्मण सब प्रकारके कल्याणको प्राप्त करता है ।'

सौरमण्डलमें सूर्य, चन्द्र आदि नवग्रह, त्रिदेव, साध्यदेव, मरुद्गण और सप्तर्षिगणोंका निवास है। इन सबका प्रतिनिधित्व सूर्य ही करते हैं। तात्पर्य यह कि विश्व-ब्रह्माण्डमें इस अचिन्त्य-शक्तिके नियामक तेजोराशि भगवान् भास्कर ही हैं। देहधारी प्राणीकी संक्षेपतः तीन ही मुख्य अपेक्षाएँ हैं—तेज, भुक्ति और मुक्ति। इन तीनोंकी प्राप्तिके लिये वेद संध्योपासनाको ही श्रेष्ठ बतलाते हैं। वर्ण-श्रेष्ठ द्विजातियोंके लिये शास्त्रके शासन—'अहरहः सन्ध्यामुपासीत'के अनुसार यह सन्ध्योपासना ही सूर्यकी उपासना है। इसके द्वारा चतुर्वर्गका फल प्राप्त होता है; यथा—

मन्देहदेहनाशार्थमुदयास्तमये रविः।
समीहते द्विजोत्सृष्टं मन्त्रतोयाञ्जलित्रयम्॥
गायत्रीमन्त्रतोयाढ्यं दत्तं येनाञ्जलित्रयम्।
काले सवित्रे किं न स्यात् तेन दत्तं जगत्त्रयम्॥
किं किं न सविता सूते काले सम्यगुपासितः।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं वसूनि च पशूनि च॥
मित्रपुत्रकलत्राणि क्षेत्राणि विविधानि च।
भोगानष्टविधांश्चापि स्वर्गं चाप्यपवर्गकम्॥
(स्कन्दपु० काशीखण्ड ९। ४५—४८)

जगत्‌में पञ्चभूतोंके साथ प्राणिमात्रका सम्बन्ध अभेद्य है। इन पञ्चभूतोंके अधिनायक पाँच देवता हैं। अतः प्राणिमात्र इन पञ्चदेवताओंके द्वारा निवृत्त हैं। इसीलिये कहा गया है कि—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

विष्णु आकाशके स्वामी हैं, अग्निकी महेश्वरी, वायुके सूर्य, पृथ्वीके शिव एवं जलके गणेश अधिदेवता हैं। अतएव इनके अस्तित्वके बिना पाञ्चभौतिक देहका अस्तित्व ही नहीं रह जाता। इसी कारण इन्हें पञ्चदेव पूज्य कहे गये [illegible] हैं।

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्॥

आयुर्वेदशास्त्रमें स्पष्ट उल्लेख है कि इन [illegible] तत्त्वोंमेंसे किसी एकके कुपित होनेपर [illegible] रोग होते हैं। इस विषयमें चरक एवं सुश्रुत [illegible] ग्रन्थ हैं। इन पञ्चतत्त्वोंके बीच वायु प्रधान [illegible] वायु-विकृति ही अस्वस्थताका प्रमुख कारण है। [illegible] अधिदेवता भी सूर्य हैं, अतएव सूर्यकी उपासना करनी चाहिये।

पुराण-ग्रन्थोंमें कुष्ठरोगके निवारणार्थ सूर्य[illegible] उपासनाकी प्रधानता स्वीकार की गयी है। [illegible] पुराणके ब्रह्मपर्वमें पाया जाता है कि कृष्णपुत्र [illegible] दुर्वासाके शापसे कुष्ठरोगग्रस्त हो गये। [illegible] श्रीकृष्णको दुःखी देखकर गरुड़ने शाकद्वीपसे [illegible] दर्शी पण्डित—ब्राह्मणादिको लाकर उस रोगकी नि[illegible] के लिये प्रार्थना की। उन ब्राह्मणोंने सूर्य[illegible] स्थापना करायी और साम्बने सूर्यकी उपासना[illegible] रोगसे मुक्ति पायी।

ततः शापाभिभूतेन सम्यगाराध्य भास्कर[म्]।
साम्बेनाप्तं तथारोग्यं रूपं च परमं पु[नः]॥

मयूर कवि भी सूर्य-शतककी रचना [illegible] रोगसे मुक्त हुए थे। प्राकृतिक [illegible] प्राणिमात्रके लिये सूर्य-पूजा [illegible] अवश्य करणीय है। इस प्रकार सूर्यकी उपासना [illegible] पृथक् मासमें पृथक्-पृथक् नामोंसे [illegible] चाहिये, शास्त्रोंमें निर्देश है—

चैत्रमें धाता, वैशाखमें अर्यमा, [illegible] आषाढ़में वरुण, श्रावणमें इन्द्र, भाद्रपदमें [illegible] आश्विनमें पूषा, कार्तिकमें अंशु, मार्गशीर्षमें [illegible] भग, माघमें त्वष्टा, फाल्गुनमें विष्णु [illegible]।

भारतमें हिंदू-जातिमें आदिकालसे ही [illegible] और उपासनाका प्रचलन है, इसके [illegible] नहीं है। केवल भारतमें ही नहीं, [illegible]

देवालके इतिहासपर दृष्टिपात करनेसे इसका भूरि-भूरि प्रमाण पाया जाता है कि मानवजातिकी चिन्तन-धाराके साथ-साथ सूर्यपूजा आदिकालसे ही सम्बद्ध है। प्रसिद्ध सस्कृतितत्त्ववेत्ता प्रो० ए० बी० कीथने कहा है कि अत्यन्त प्राचीनकालसे ही ग्रीक दर्शनमें सूर्यपूजाका प्रमाण मिलता है। Ghales भी जिनका जन्म एशिया माइनरमें ६४० खीष्ट पूर्वार्द्ध (ईसापूर्व)में हुआ था। उनका भी ऐसा ही मत है।

ग्रीक दार्शनिक Empedoeles ने सूर्यको अग्निके मूल स्रोतके रूपमें वर्णित किया है। और उन्होंने यह भी मत स्वीकार किया है कि सूर्य ही विश्वस्रष्टा हैं। हमारी उषा देवीकी सूर्य-परिक्रमाकी कथा और ग्रीक देशकी अपोलो और डियनाकी कहानी इसी तथ्यकी पोषक प्रतीत होती है। ग्रीक देशके भी विवाहमन्त्रमें आज भी सूर्य-मन्त्र पढ़ा जाता है।

मैक्सिकोमें आदिकालसे ही प्रचलित मत यही है कि विश्वब्रह्माण्डकी सृष्टिकी जड़में सूर्य ही विद्यमान हैं।

हमारे देशमें अति प्राचीनकालसे ही सूर्यमूर्ति (बुद्धगयाके स्तूपकी) एवं तात्कालीन शिलालेख और इलोराकी गुफाओंकी सूर्यप्रतिमा इस तथ्यका उद्घाटन करती है कि अति प्राचीनकालसे ही सूर्यपूजाका प्रचार एवं प्रसार इस देशमें चला आ रहा है; यहाँतक कि जैन-धर्ममें भी देवतागणोंके समूहमें सर्वोच्च स्थान सूर्यका ही है अर्थात् वे देवाधीश हैं।

निदान, सूर्यनारायणकी स्तुति-प्रार्थना एवं उपासना आदिकालसे ही प्रचलित है और चलती रहेगी। इस विषयमें संदेहके लिये कोई स्थान नहीं है।

भगवान् भुवन-भास्कर और गायत्री-मन्त्र

(लेखक—श्रीगङ्गारामजी शास्त्री)

सूर्यका एक नाम सविता भी है। सविताकी शक्तिको ही सावित्री कहते हैं। 'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्'—यह सविताका मन्त्र है। इसमें गायत्री-छन्दका प्रयोग होनेके कारण इसीको गायत्री-मन्त्र कहने लगे हैं। संक्षेपमें इस मन्त्रका अर्थ है—देदीप्यमान भगवान् सविता (सूर्य) के उस तेजका हम ध्यान करते हैं। वह (तेज) हमारी बुद्धिका प्रेरक बने। इस मन्त्रमें प्रणव और तीन व्याहृतियाँ जोड़कर 'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्'—इस मन्त्रका साधक अनुष्ठान-कर्ता जप करते हैं। इसी मन्त्रके द्वारा वेदपाठ प्रारम्भ करनेके पूर्व यज्ञोपवीत पहनाकर ब्रह्मचारीका उपनयनसंस्कार सम्पन्न कराया जाता है। किसी भी मन्त्रको सिद्ध करनेके लिये पुरश्चरण प्रारम्भ करनेके पूर्व दस सहस्र गायत्री-मन्त्र-जपका विधान है। इतना ही नहीं, गायत्रीकी महत्ता तो यहाँतक है कि किसी भी कार्यसिद्धिके लिये जहाँ शास्त्रमें अनुष्ठान-विशेष कथित न हो, वहाँ गायत्री-मन्त्रका जप और तिलका हवन करना चाहिये; यथा—

यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः।
तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्याश्च जपस्तथा॥

किसी भी मन्त्रको सिद्ध करनेके लिये सामान्य नियम यह है कि मन्त्रमें जितने अक्षर हों, उतने ही लक्ष मन्त्रका जप करके जपसंख्याका दशांश हवन, हवनका दशांश तर्पण, तर्पणका दशांश मार्जन और मार्जनका दशांश ब्राह्मण-भोजन करानेसे उस मन्त्रका पुरश्चरण पूरा होता है। पुरश्चरणके द्वारा मन्त्रके सिद्ध हो जानेपर कार्यविशेषके लिये उसका जप और कामनापरत्वसे विशेष द्रव्यका हवन करनेपर सिद्धि

सम्भव होती है। कभी-कभी इतना करनेपर भी सिद्धि प्राप्त नहीं होती। उस समय आचार्य कह देते हैं कि अमुक त्रुटि रह जानेके कारण अनुष्ठान सफल नहीं हुआ। पर गायत्री-मन्त्रके सम्बन्धमें यह बात नहीं है। एक बार गायत्री-मन्त्रका चौबीस लाख जप और तदनुसार हवन, तर्पण, मार्जन और ब्राह्मण-भोजनके द्वारा पुरश्चरण सम्पन्न हो जानेपर स्वयं गायत्री-माता साधकका योगक्षेम-वहन करती हैं। वैसे गायत्री-मन्त्रके द्वारा भी कामनापरक अनुष्ठान किये जा सकते हैं।

त्रिकाल-सन्ध्या—जिस प्रकार किसी भी मन्त्रको सिद्ध करनेके पूर्व अयुत गायत्री-जप करना होता है, उसी प्रकार प्रतिदिनके कार्यमें शरीर और आत्माकी पवित्रता और शक्तिसंचयके लिये त्रिकाल-सन्ध्या आवश्यक है। प्रतिदिनके कार्योंमें हमारे शरीरकी ऊर्जाका जो व्यय होता है उसकी पूर्ति सूर्योपस्थानके द्वारा भगवान् भुवन-भास्करसे होती है। इससे आध्यात्मिक शक्तिमें वृद्धि होती है। इसके साथ प्रतिदिन कम-से-कम एक माला गायत्री-जपका विधान है। त्रिकाल-सन्ध्याके लिये गायत्री-माताके तीन अलग-अलग रूपोंका ध्यान किया जाता है जो इस प्रकार है—

प्रातःकालीन ध्यान—

हंसारूढां सिताब्जे व्यरुणमणिलसद्भूषणां साष्टनेत्रां
वेदाख्यामक्षमालां स्रजमथ कमलं दण्डमप्यादधानाम्।
ध्याये दोर्भिश्चतुर्भिस्त्रिभुवन-
जननीं पूर्वसन्ध्यादिवन्द्याम्।
गायत्रीमृक्सवित्रीमभिनव-
वयसं मण्डले चण्डरश्मेः॥
विश्वमातः सुराभ्यर्च्ये पुण्ये गायत्रि वेधसि।
आवाहयाम्युपास्त्यर्थमेह्येनोघ्नि पुनीहि माम्॥

'प्रातःसंध्याके समय सूर्यमण्डलमें श्वेत कमलपर स्थित, हंसपर आरूढ़, लालमणिके भूषणोंसे अलंकृत, आठ नेत्रों तथा चार हाथोंवाली और उनमें क्रमशः वेद, रुद्राक्षमाला, कमल एवं दण्डको धारण करनेवाली ऋग्वेदरूपा जननी, त्रिलोकी, त्रिभुवनकी जननी [illegible] मैं ध्यान करता हूँ।'

'जगत्की माता देवताओंद्वारा पूजित, पुण्यमयी भगवती गायत्री! मैं उपासनाके लिये आवाहन करता हूँ।'

मध्याह्नकालीन ध्यान—

वृषेन्द्रवाहना देवी ज्वलत्त्रिशिखधारिणी।
श्वेताम्बरधरा श्वेतनागाभरणभूषिता॥
श्वेतस्रगक्षमालालंकृता रक्ता च शंकरा।
जटाधराधराधात्री धरेन्द्राङ्गभवाम्बया।
मातर्भवानि विश्वेशि आहुतेहि पुनीहि माम्॥

मैं वृषभवाहना, प्रज्वलित त्रिशूल एवं श्वेत वस्त्रधारिणी, श्वेतस्रग, रुद्राक्षमाला एवं श्वेत सर्पसे विभूषित, लाल वर्णवाली, जटाधारिणी, पार्वतीरूपा शिवरूपा, भवानी (संध्यादेवी) का आवाहन करता हूँ। आप आयें तथा मुझे पवित्र करें।'

सन्ध्याकालीन ध्यान—

सन्ध्या सायन्तनी कृष्णा विष्णुदेवा सरस्वती।
खगगा कृष्णवक्त्रा तु शङ्खचक्रधरापरा॥
कृष्णस्रग्भूषणैर्युक्ता सर्वज्ञानमयी परा।
वीणाक्षमालिका चारुहस्ता सितवराननना॥
मातर्वाग्देवते स्तुत्ये आहुतेहि पुनीहि माम्॥

'मैं कृष्णवर्णा, कृष्णमुखी, कृष्णवर्णके माल्याभूषणोंसे युक्त, गरुडवाहना विष्णुदैवत्या, शङ्खचक्रधारिणी, वीणा-रुद्राक्ष लिये, सुन्दर मुस्कानवाली, सर्वज्ञानमयी सायंकालीन सन्ध्या रूपिणी सरस्वतीका आवाहन करता हूँ। स्तुति करनेयोग्य माँ वाग्देवी आप यहाँ आयें तथा मुझे पवित्र करें।'

त्रिकाल-सन्ध्यामें हम अङ्गन्यास, करन्यासके द्वारा प्रतिदिन सूर्योपस्थान-मन्त्रोंसे सूर्यकी दिव्य शक्ति और दिव्य तेजका भौतिक शरीर और अन्तरात्मामें आवाहन करते हैं। इस प्रकार त्रिकाल-सन्ध्यामात्र धार्मिक

गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी। गायत्र्यास्तु परं नास्ति दिवि चेह न पावनम् ॥

[कु]शल न होकर व्यस्त जीवनमें भौतिक और आध्यात्मिक [उन्न]तिको प्राप्त करनेका सरलतम साधन है।

आरोग्यं भास्करादिच्छेत्—

सूर्य आरोग्य प्रदान करनेवाले देवता हैं। वे जीवमात्रके [प्र]राणके स्रोत हैं। सूर्योदय होते ही मनुष्य कर्ममार्गमें [प्रवृ]त्त होता है। इसीलिये कहा है—'सूर्य आत्मा [ज]गतस्तस्थुषश्च'—सूर्य ही इस चराचर-सृष्टिके प्रेरक [है]। मनुष्यमें चेतनता अथच पेड़-पौधोंमें हरीतिमा सूर्यसे [ह]ी है। यदि उन्हें पर्याप्त प्रकाश न मिले तो पत्तियोंका [रं]ग पीला पड़ने लगता है; पेड़-पौधे मुरझाने लगते हैं। [प्रा]तःकालीन सूर्यकी किरणोंसे अनेक रोग दूर होते [ह]ैं। रिकेट्स और क्षयरोग-जैसी बीमारियाँ प्रातःकालीन [ध]ूपके सेवनसे दूर होती हैं। सूर्यकी किरणोंके सात [रं]ग ही सूर्यके सात अश्व हैं। इसलिये सूर्यका एक नाम सप्ताश्व भी है। विभिन्न रंगोंकी बोतलोंमें जल भरकर सूर्यके प्रकाशमें रखनेसे उस जलमें रोगोंको नष्ट करनेकी शक्ति आ जाती है। इस प्रकार चिकित्सा करनेकी प्रणालीको सूर्य-किरण-चिकित्साका नाम दिया गया है। यह प्रणाली एलोपैथी, होम्योपैथी, एक्यूपंक्चर आदि चिकित्सा-प्रणालियोंसे कम सफल नहीं है। हिंदी भाषामें इस विषयपर अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। प्रातःकाल सूर्याभिमुख होकर एक विशेष प्रकारसे जो व्यायाम किया जाता है, उसे सूर्य-नमस्कार कहते हैं। इस व्यायामसे शरीर स्वस्थ रहनेके साथ ही रोगोंके आक्रमणकी सम्भावना नहीं रहती। मध्यप्रदेश तथा अन्य कुछ राज्योंमें बालकोंसे पी० टी०के स्थानपर सूर्य-नमस्कारका अभ्यास कराया जाता है। यह अच्छी योजना है; अन्य प्रदेशोंमें भी इसका अनुसरण होना चाहिये।

कुष्ठ-जैसे भयंकर रोगकी सफल चिकित्सा विज्ञान अबतक नहीं खोज सका है। सूर्य भगवान्‌की आराधनासे अनेक कुष्ठरोगी स्वस्थ होते देखे गये हैं। भारतमें बहुत-से स्थानोंपर सूर्योपासनाके लिये बालार्क (बालादित्य)के मन्दिर बने हैं, जहाँ प्रतिवर्ष हजारों चर्मरोगी स्वास्थ्य-लाभके लिये जाते हैं। दतिया जिलेके उनाव नामक स्थानपर बालाजीका भारत-प्रसिद्ध मन्दिर है, जहाँ असाध्य कुष्ठके रोगियोंको चामत्कारिकरूपसे स्वास्थ्य-लाभ होता है।

प्रातःकाल स्नानकर सूर्यभगवान्‌को अर्घ्य देनेका विधान है। यदि आप किसी जलाशयमें स्नान करते हैं तो जलमें खड़े होकर ही अर्घ्य देते हैं। सूर्यके सम्मुख खड़े होकर अर्घ्य देनेसे जलकी धाराके अन्तरालसे सूर्यकी किरणोंका जो प्रभाव शरीरपर पड़ता है, उससे शरीरमें स्थित रोगके कीटाणु नष्ट होते हैं और शरीरमें अज्ञानरूपसे ऊर्जाका संचार होता है। प्राकृतिक चिकित्साके साथ रंगीन काचके द्वारा सूर्यकिरणोंकी प्रभासे रोगीका उपचार किया जाता है, जिसमें उक्त सिद्धान्त ही कार्य करता है। इसीलिये कहा है—

अर्घ्यदानमिदं पुण्यं पुंसामारोग्यवर्धनम्।

भगवती गायत्रीके ध्यानमें भी जो पाँच मुख और उनके पाँच रंगोंका वर्णन है, वह सूर्य-मण्डल-मध्यस्थ शक्तिके पाँच दृश्य रंग ही हैं। यथा—

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै-
र्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वात्मवर्णात्मिकाम्।
सावित्रीं वरदाभयाङ्कुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं
शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे॥
(—शारदाति० २१। १५)

गायत्री और सूर्यके अभिन्न होनेका एक प्रमाण इस निम्नलिखित ध्यानसे भी मिलता है—

हेमाम्भोजप्रवालप्रतिमनिजरुचिं चारुखट्वाङ्गपद्मौ
चक्रं शक्तिं सपाशं सृणिमतिरुचिरामक्षमालां कपालम्।
हस्ताम्भोजैर्दधानं त्रिनयनविलसद्वेदवक्त्राभिरामं
मार्तण्डं वल्लभार्धं मणिमयमुकुटं हारदीप्तं भजामः॥
(—शारदाति० १४। ७१)

उक्त दोनों ध्यानोंमें स्वरूप और आयुधकी कितनी समानता है। इसीलिये सूर्यके साथ सौरपीठमें ही

अक्ष्युपनिषद्

(नेत्ररोगहारी विद्या)

हरिः ॐ। अथ ह सांकृतिर्भगवानादित्यलोकं जगाम। स आदित्यं नत्वा चाक्षुष्मतीविद्यया तमस्तुवत्। ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायाक्षितेजसे नमः। ॐ खेचराय नमः। ॐ महासेनाय नमः। ॐ तमसे नमः। ॐ रजसे नमः। ॐ सत्त्वाय नमः। ॐ असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय। हंसो भगवाञ्छुचिरूपः अप्रतिरूपः। विश्वरूपं घृणिनं जातवेदसं हिरण्मयं ज्योतीरूपं तपन्तम्। सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः पुरः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः। ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायादित्यायाक्षितेजसेऽहोऽवाहिनि वाहिनि स्वाहेति।

एवं चाक्षुष्मतीविद्यया स्तुतः श्रीसूर्यनारायणः सुप्रीतोऽब्रवीच्चाक्षुष्मतीविद्यां ब्राह्मणो यो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति। न तस्य कुलेऽन्धो भवति। अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वाथ विद्यासिद्धिर्भवति। य एवं वेद स महान् भवति।

× × × ×

कथा है कि एक समय भगवान् सांकृति आदित्य-लोकमें गये। वहाँ सूर्यनारायणको प्रणाम करके उन्होंने चाक्षुष्मती विद्याके द्वारा उनकी स्तुति की। चक्षुरिन्द्रियके प्रकाशक भगवान् श्रीसूर्यनारायणको नमस्कार है। आकाशमें विचरण करनेवाले सूर्यनारायणको नमस्कार है। महासेन (सहस्रों किरणोंकी भारी सेनावाले) भगवान् श्रीसूर्यनारायणको नमस्कार है। तमोगुणरूपमें भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार है। रजोगुणरूपमें भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार है। सत्त्वगुणरूपमें भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार है। भगवन्! आप मुझे असत्से सत्की ओर ले चलिये, मुझे अन्धकारसे प्रकाशकी ओर ले चलिये, मुझे मृत्युसे अमृतकी ओर ले चलिये। भगवान् सूर्य शुचिरूप हैं और वे अप्रतिरूप भी हैं उनके रूपकी कहीं भी तुलना नहीं है। जो अखिल रूपोंको धारण कर रहे हैं तथा रश्मिमालाओंसे मण्डित हैं, उन जातवेदा (सर्वज्ञ, अग्नि स्वरूप) स्वर्णसदृश प्रकाश-वाले ज्योतिःस्वरूप और तपनेवाले (भगवान् भास्करको हम स्मरण करते हैं।) ये सहस्रों किरणोंवाले और शत-शत प्रकारसे सुशोभित भगवान् सूर्यनारायण समस्त प्राणियोंके समक्ष (उनकी भलाईके लिये) उदित हो रहे हैं। जो हमारे नेत्रोंके प्रकाश हैं, उन अदितिनन्दन भगवान् श्रीसूर्यको नमस्कार है। दिनका भार वहन करनेवाले विश्व-वाहक सूर्यदेवके प्रति हमारा सब कुछ सादर समर्पित है।

इस प्रकार चाक्षुष्मती विद्याके द्वारा स्तुत किये जानेपर भगवान् सूर्यनारायण अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—जो ब्राह्मण इस चाक्षुष्मतीविद्याका नित्य पाठ करता है, उसे आँखका रोग नहीं होता, उसके कुलमें कोई अंधा नहीं होता। आठ ब्राह्मणोंको इसका ग्रहण करा देनेपर इस विद्याकी सिद्धि होती है। जो इस प्रकार जानता है, वह महान् हो जाता है।

कृष्णयजुर्वेदीय चाक्षुषोपनिषद्

अब नेत्र-रोगका हरण करनेवाली तथा पाठमात्रसे सिद्ध होनेवाली चाक्षुषीविद्याकी व्याख्या करते हैं, जिससे समस्त नेत्ररोगोंका सम्पूर्णतया नाश हो जाता है और नेत्र तेजयुक्त हो जाते हैं। उस चाक्षुषी विद्याके अहिर्बुध्न्य ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, भगवान् सूर्य देवता हैं, नेत्ररोगकी निवृत्तिके लिये इसका जप होता है—यह विनियोग है*।

चाक्षुषीविद्या

ॐ चक्षुः चक्षुः चक्षुः तेजः स्थिरो भव। मां पाहि पाहि। त्वरितं चक्षूरोगान् शमय शमय। मम जात-

* ॐ अस्याश्चाक्षुषीविद्याया अहिर्बुध्न्य ऋषिः, गायत्री छन्दः, सूर्यो देवता, चक्षूरोगनिवृत्तये जपे विनियोगः।

रूपं तेजो दर्शय दर्शय । यथाहम् अन्धो न स्यां तथा कल्पय कल्पय । कल्याणं कुरु कुरु । यानि मम पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुःप्रतिरोधकदुष्कृतानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय । ॐ नमः चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्याय भास्कराय । ॐ नमः करुणाकरायामृताय । ॐ नमः सूर्याय । ॐ नमो भगवते सूर्यायाक्षितेजसे नमः । खेचराय नमः । महते नमः । रजसे नमः । तमसे नमः । असतो मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्मा अमृतं गमय । उष्णो भगवाञ्छुचिरूपः । हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरूपः । य इमां चक्षुष्मतीविद्यां ब्राह्मणो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति । न तस्य कुले अन्धो भवति । अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा विद्यासिद्धिर्भवति ॥

ॐ (भगवान्‌का नाम लेकर कहे), हे चक्षुके अभिमानी सूर्यदेव ! आप चक्षुमें चक्षुके तेजरूपसे स्थिर हो जायँ । मेरी रक्षा करें, रक्षा करें । मेरी आँखके रोगोंका शीघ्र शमन करें, शमन करें । मुझे अपना सुवर्ण-जैसा तेज दिखला दें, दिखला दें । जिससे मैं अन्धा न होऊँ, कृपया वैसे ही उपाय करें, उपाय करें । मेरा कल्याण करें, कल्याण करें । दर्शन-शक्तिका अवरोध करनेवाले मेरे पूर्वजन्मार्जित जितने भी पाप हैं, सबको जड़से उखाड़ दें, जड़से उखाड़ दें । ॐ (सच्चिदानन्दस्वरूप) नेत्रोंको तेज प्रदान करनेवाले दिव्यस्वरूप भगवान् भास्करको नमस्कार है । ॐ करुणाकर अमृतस्वरूपको नमस्कार है । ॐ भगवान् सूर्यको नमस्कार है । ॐ नेत्रोंके प्रकाश भगवान् सूर्यदेवको नमस्कार है । ॐ आकाश-विहारीको नमस्कार है । परम श्रेष्ठस्वरूपको नमस्कार है । ॐ (सबमें क्रिया-शक्ति उत्पन्न करनेवाले) रजोगुणरूप भगवान् सूर्यको नमस्कार है । (अन्धकारको सर्वथा अपने भीतर लीन करनेवाले) तमोगुणके आश्रयभूत भगवान् सूर्यको नमस्कार है । हे भगवन् ! आप मुझको असत्‌से सत्‌की ओर ले चलिये । अन्धकारसे प्रकाशकी ओर ले चलिये । मृत्युसे अमृतकी ओर ले चलिये । उष्णस्वरूप भगवान् सूर्य शुचिरूप हैं । हंसस्वरूप भगवान् सूर्य शुचि तथा अप्रतिरूप हैं—उनके तेजोमय स्वरूपकी समता करनेवाला कोई भी नहीं है । जो ब्राह्मण इस चक्षुष्मतीविद्याका नित्य पाठ करता है, उसे नेत्र-सम्बन्धी कोई रोग नहीं होता । उसके कुलमें कोई अंधा नहीं होता । आठ ब्राह्मणोंको इस विद्याका दान करनेपर—इसका ग्रहण करा देनेपर इस विद्याकी सिद्धि होती है ।*

---

* चाक्षुषी–(नेत्र–) उपनिषद्‌की शीघ्र फल देनेवाली विधि—नेत्ररोगसे पीड़ित श्रद्धालु साधकको चाहिये कि प्रतिदिन प्रातःकाल हल्दीके घोलसे अनारकी शाखाकी कलमसे काँसेके पात्रमें निम्नलिखित बत्तीसा यन्त्रको लिखे—

८	१५	२	७
६	३	१२	११
१४	९	८	१
[illegible]	[illegible]	[illegible]	१३

फिर उसी यन्त्रपर ताँबेकी कटोरीमें चतुर्मुख (चारों ओर चार बत्तियोंका) घीका दीपक जलाकर रख दे । तदनन्तर गन्ध-पुष्पादिसे यन्त्रका पूजन करे । फिर पूर्वकी ओर मुख करके बैठे और हरिद्रा (हल्दी)की मालासे "ॐ ह्रीं हंसः" इस बीजमन्त्रकी छः मालाएँ जपकर चाक्षुषोपनिषद्‌के कम-से-कम बारह पाठ करे । पाठके पश्चात् फिर उपर्युक्त बीजमन्त्रकी पाँच मालाएँ जपे । इसके बाद भगवान् सूर्यको श्रद्धापूर्वक अर्घ्य देकर प्रणाम करे और मनमें यह निश्चय करे कि मेरा नेत्र[illegible]

भगवान् सूर्यका सर्वनेत्ररोगहर चाक्षुषोपनिषद्

(एक अनुभूत प्रयोग)

अक्षि-उपनिषद् भगवान् सूर्यकी नेत्र-रोगोंके लिये एक रामबाण उपासना है। रविवारको किसी शुभ तिथि और नक्षत्रमें प्रातः सूर्यके सम्मुख नेत्र बंद करके खड़े हो या बैठकर—'मेरे समस्त नेत्ररोग दूर हो रहे हैं' इस भावनासे रविवारसे बारह पाठ नित्य किये जाते हैं। यह प्रयोग बारह रविवारतकका होता है। यदि पुष्य नक्षत्रके साथ रविवारका योग मिल जाय तो अति उत्तम है। हस्त नक्षत्रयुक्त रविवारसे भी यह पाठ प्रारम्भ किया जाता है। लाल कनेर, लाल चन्दन मिले जलसे ताम्र-पात्रसे सूर्यनारायणको अर्घ्य देकर नमस्कार करके पाठ प्रारम्भ करना चाहिये। यह सैकड़ों बारका अनुभूत प्रयोग है। रविवारके दिन सूर्य रहते बिना नमकका एक बार भोजन करना चाहिये।

—पं० श्रीमथुरानाथजी शुक्ल

चक्षुदृष्टि एवं सूर्योपासना

(चक्षुष्मतीविद्या)

(लेखक—श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव शास्त्री, एम्० ए०, एम्० ओ० एल्०)

मनुष्यको सुख-दुःख आदिकी प्राप्ति उसके द्वारा किये गये अपने कर्म, आचार एवं आहार-विहार आदिके अनुसार होती है। रोगजन्य क्लेशोंके मूल कारण भी उसके पूर्वजन्मकृत कर्म तथा मिथ्या आहार-विहारजन्य दोषके प्रकोप हैं। धर्मानुष्ठान, पुण्यकर्माचरण एवं सुविहित औषधसेवनसे भी जो रोग शान्त नहीं होते हैं, उन्हें पूर्वजन्मकृत पापसे उत्पन्न समझना चाहिये। जबतक यह पूर्वजन्मका किया हुआ पाप-दोष निर्मूल नहीं होता, तबतक वह व्याधिरूपमें पीड़ा देता रहता है। ऐसे पाप-दोषकी शान्तिके लिये प्रायश्चित्त, देवाराधन, देवाभिषेक, जप, होम, मार्जन, दान, दिव्य मणि एवं यन्त्रका धारण, अभिमन्त्रित उत्तम ओषधिका सेवन आदिके रूपमें दैवव्यपाश्रय चिकित्साका विधान मिलता है। चरक (सूत्र० अ० ११, चिकित्सा० अ० ३), अष्टाङ्गहृदय (चिकित्सा० अ० १९) एवं वीरसिंहावलोक आदि कई ग्रन्थोंमें अनेक स्थानोंपर दैवव्यपाश्रय चिकित्सा करनेका विधान मिलता है।

भारतीय दर्शन पिण्ड एवं ब्रह्माण्डमें अभेद मानता है। ...: एवं बृहदारण्यकोपनिषद्में अक्षिपुरुषविद्या —(उपकोसलविद्या—) प्रकरणमें चक्षुर्मण्डल तथा सूर्य-मण्डलमें अभेददृष्टि रखकर उपासना करनेका वर्णन मिलता है। वस्तुतः सृष्टि-व्यवस्थामें अध्यात्म और अधिदैवत जगत् परस्पर उपकार्योपकारकरूपमें अवस्थित हैं। सर्वलोकचक्षु भगवान् सूर्य ही पिण्डमें चक्षुःशक्तिके रूपमें प्रविष्ट हुए हैं। अतः वे ही प्राणियोंकी दृष्टिशक्तिके अधिष्ठाता देव हैं। इसलिये दिव्यदृष्टिकी प्राप्ति एवं नेत्रगत रोगोंको दूर करनेके लिये भगवान् सूर्यकी आराधना की जाती है।

परशुरामकल्पसूत्रके परिशिष्ट एवं श्रीउमानन्दनाथ-कृत नित्योत्सवमें दूरदृष्टिकी सिद्धि प्रदान करनेवाली चक्षुष्मतीविद्याका वर्णन मिलता है। सोलह मन्त्रोंसे समन्वित समष्टिरूपिणी यह विद्या है। मूलाधारमें ध्यान केन्द्रित करके इसका जप किया जाता है। इस विद्याके सिद्ध होनेपर साधक अन्य देश या द्वीपमें स्थित धन एवं अन्य पदार्थोंको भी यथावत्‌रूपमें देख एवं जान सकता है। इस विद्याका विनियोग, ध्यान एवं पाठ निम्नलिखित-रूपमें मिलता है—

ोदयानन्तरहोरैकमात्रमस्ताच्च प्राक् तावदेवेति (योगीगुरुः)।

त्रोपनिषद् (चाक्षुषीविद्याका पाठ पृष्ठ में है।)

ष्णयजुर्वेदीय चाक्षुषोपनिषद्के अन्तिम भागमें नेत्रो- की अपेक्षा कुछ मन्त्र अधिक मिलते हैं। इस द्के पाठके आरम्भ एवं अन्तमें—'सह नाववतु॰' ान्तिमन्त्रका पाठ करना चाहिये। इस चाक्षुषो- की प्रयोगविधि 'कल्याण'के २३वें वर्षके उपनिषद्- प्रकाशित हुई थी।

र्युक्त दोनों उपनिषदोंकी विद्यासिद्धिका उपाय ह बताया गया है कि ये विद्याएँ आठ ब्राह्मणोंको हण करवा देनेपर सिद्ध हो जाती हैं। इन्हें लिखकर आठ शुचि सुसंस्कृत ब्राह्मणोंको दे तथा उन्हें द्ध उच्चारणसहित पाठविधि सिखा दे—ऐसा करनेपर की सिद्धि हो जाती है। उसके बाद इन्हें अपने या यके हितके लिये प्रयोगमें लाना चाहिये।

बत्तीसायन्त्र* सूर्योपासनासे सम्बद्ध है तथा ः दुःखनिवारण एवं अभीष्टकार्यकी सिद्धिके लिये इसके अन्य प्रयोग कर्मठगुरुमें मिलते हैं—

(१) रविवारके दिन इस यन्त्रको भोजपत्र या कागज- हरिद्राके रससे अनारकी लेखनीके द्वारा लिखे एवं इस के नीचे अपना मनोरथ लिख दे। पुनः इसपर विछाकर यन्त्रलिखित कागजको लपेट दे और बत्ती- में बनाकर इससे ज्योति प्रज्वलित करे। इसके बाद ाक्षकी मालासे—'ॐ ह्रीं हंसः'—इस भास्करबीज- का एक हजार एक सौ बार जप करे। इस र लगातार सात रविवारको निर्दिष्ट विधिसे अनुष्ठान कर मनुष्य सभी दुःखोंसे मुक्त होकर अत्यन्त सुख पाता है।

(२) रविवारके दिन प्रातःकाल उठकर स्नान कर हरिद्रारससे कांस्यपात्रमें बत्तीसायन्त्र लिखे और उस ऊपर चतुर्मुख दीपककी स्थापना करके सूर्योदय होने मन्त्रका पञ्चोपचार पूजन करे। दोनों हाथोंसे इ यन्त्रपात्रको उठा ले और सूर्यके सम्मुख स्थित होकर— 'ॐ ह्रीं हंसः'—इस मन्त्रका जप करे। सूर्य दिनमें जैसे जैसे परिवर्तित होते जायँ, वैसे-वैसे साधक भी घूमत जाय। सूर्यके अस्त होनेपर उन्हें अर्घ्य देकर प्रणा करे; इस प्रकार अनुष्ठानको सम्पन्न करके मिष्टान्न भोजन कर भूमिपर शयन एवं ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करे इस प्रकार कार्यकी गुरुताके अनुसार प्रति रविवारको सवा मास, तीन मास, छः मास अथवा एक वर्षतक इसका अनुष्ठान करनेसे भगवान् श्रीसूर्यकी कृपासे सभी दुरूह कार्य सिद्ध होते हैं। अस्तु।

चक्षुष्मतीविद्याके चमत्कारका एक अनुभवपूर्ण प्रयोग, पाठकोंके लाभार्थ दिया जा रहा है। यह प्रयोग कुछ दिन पूर्व 'स्वास्थ्य' पत्रिकाके अनुभवाङ्क (फरवरी, १९७८)में छपा था। लेखकके विवरणके अनुसार राजपीपला-(गुजरात-)के प्रसिद्ध डाक्टर श्रीनरहरि भाईको सन् [illegible] 'at- chment of Retina नामक भयं[illegible] इस रोगमें आँखका पर्दा फट जाता है [illegible] रूपमें या सर्वांशमें चली जाती है। [illegible] असफल रहनेपर डाक्टर साहब अत्यन्त [illegible] गये। उक्त डाक्टर साहबके घरपर प्रातः[illegible] महात्मा पुरुष श्रीमद् अवधूत महाराज आया [illegible] ये महात्मा ईश्वरका दर्शन किये हुए पवित्र सिद्ध पुरुष माने जाते हैं। डाक्टर साहबकी [illegible]

* द्रष्टव्य-पृष्ठ ३१२ की टिप्पणी जहाँ यह विधि पूर्ववत् दी गयी है।

[illegible] महाराजने उन्हें [illegible] 'चक्षुष्मतीविद्या' प्रदान की। इस विद्याका विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेसे [illegible] नेत्रज्योति प्राप्त हुई। उसके बाद उन्होंने कई [illegible] अनुष्ठान किये तथा उनकी दृष्टि-शक्ति अब भी बनी हुई है। [illegible] कहते हैं कि इस चक्षुष्मतीविद्याके प्रभावसे आज मेरी नेत्रज्योति है, अन्यथा मैं कबका अन्धा हो गया था। उन्होंने इस विद्याकी प्रतियाँ छपवाकर निःशुल्क [illegible] जनसमुदायको वितरित की है। श्रद्धा एवं धैर्यके साथ विधिपूर्वक इस विद्याका प्रयोग करनेसे नेत्रके अनेकविध रोग सर्वांशमें दूर हो सकते हैं।

पूज्य श्रीअरुणजीद्वारा बतायी गयी चक्षुष्मतीविद्याका पाठ एवं इसके प्रयोगकी विधि नीचे दी जा रही है।

प्रयोगविधि—प्रातः शौच आदिसे निवृत्त होकर स्नान-सन्ध्या-वन्दनके बाद पूजास्थानपर बैठिये और आचमन, प्राणायाम करनेके बाद नेत्ररोगकी निवृत्तिके लिये चक्षुष्मतीविद्याके जपका संकल्प कीजिये। फिर गन्ध-पुष्पादिसे सूर्यदेवका पूजन कीजिये। पूजा-द्रव्यके अभावमें मानसोपचारसे पूजन कीजिये। इस प्रकार भगवान् सूर्यकी पूजा करनेके बाद एक कांस्यधातुकी थाली या अन्य किसी चौड़े मुखवाले कांस्यपात्रमें शुद्ध जल भरकर उसे ऐसी जगहपर रखिये, जिससे उस पात्रके जलमें सूर्य देवताका प्रतिबिम्ब दीखता रहे। नेत्ररोगी साधकको उस पात्रके सामने पूर्वाभिमुख बैठकर पात्रके जलके भीतर सूर्य-प्रतिबिम्बकी ओर दृष्टि रखकर भावनायुक्त अर्थानुसन्धानके साथ दस, अट्ठाईस या एक सौ आठ पाठ करना चाहिये। यदि नित्य इतने पाठके लिये [illegible] न मिले तो प्रतिदिन भले ही दस बार पाठ किया जाय, परन्तु रविवारके दिन अट्ठाईस या एक सौ आठ पाठ करनेका प्रयत्न अवश्य किया जाय। साधकके नेत्र सूर्य-प्रतिबिम्बकी ओर देखना सहन न कर सकें तो पुस्तककी ओर देखते हुए पाठ कर सकते हैं। (नेत्रोंके अच्छा होनेपर क्रमसे प्रतिदिन सूर्य-बिम्बकी ओर देखते हुए ही पाठ करना चाहिये।) पाठ पूर्ण होनेपर [illegible] श्रीसूर्यनारायणको [illegible] नमस्कार कीजिये। फिर उस कांस्यपात्रस्थित शुद्ध जलको अंगुलीसे नेत्रमें धीरे-धीरे छिड़कना कीजिये। जल छिड़कनेके बाद दोनों आँखें पाँच मिनटतक बंद रखिये। तत्पश्चात् सभी विधियाँ पूर्ण कर अपने दैनिक कर्म कीजिये।

पाठके उपरान्त नित्य—'ॐ वर्चोदा असि वर्चो मे देहि स्वाहा'—इस मन्त्रको बोलते हुए गोघृतकी दस आहुतियाँ अग्निमें देनी चाहिये। रविवारके दिन बीस आहुतियाँ आवश्यक हैं। यदि आहुति न दे सकें तो कोई आपत्ति नहीं, परन्तु यदि पाठके साथ नित्य यज्ञाहुति भी दी जा सके तो उत्तम है।

चक्षुष्मतीविद्याका पाठ—

अस्याश्चक्षुष्मतीविद्याया ब्रह्मा ऋषिः। गायत्री च्छन्दः। श्रीसूर्यनारायणो देवता। ॐ बीजम्। नमः शक्तिः। स्वाहा कीलकम्। चक्षूरोगनिवृत्तये जपे विनियोगः।

ॐ चक्षुश्चक्षुश्चक्षुः तेजः स्थिरो भव। मां पाहि पाहि। त्वरितं चक्षूरोगान् प्रशमय प्रशमय। मम जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय, यथाहमन्धो न स्यां तथा कल्पय कल्पय, कृपया कल्याणं कुरु कुरु। मम यानि यानि पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुःप्रतिरोधकदुष्कृतानि तानि सर्वाणि

निर्मूलय। ॐ नमश्चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्य-य। ॐ नमः करुणाकरायामृताय। भगवते श्रीसूर्यायाक्षितेजसे नमः। ॐ नमः। ॐ महासेनाय नमः। ॐ नमः। ॐ रजसे नमः। ॐ सत्याय गय !) नमः। ॐ असतो मा य। ॐ तमसो मा ज्योतिर्गमय। ॐ मृत्यो-र्मा गमय। उष्णो भगवाञ्छुचिरूपः। हंसो शुचिरप्रतिरूपः।*

विश्वरूपं घृणिनं जातवेदसं
हिरण्मयं ज्योतीरूपं तपन्तम्।
रश्मिः शतधा वर्तमानः
पुरः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः॥

ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायादित्याया-तेजसेऽहोवाहिनि वाहिनि स्वाहा॥

वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं
प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः।
ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि-
चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान्॥

पुण्डरीकाक्षाय नमः। ॐ पुष्करेक्षणाय नमः। कमलेक्षणाय नमः। ॐ विश्वरूपाय नमः। श्रीमहाविष्णवे नमः। ॐ सूर्यनारायणाय नमः॥ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

जो सच्चिदानन्दस्वरूप हैं, सम्पूर्ण विश्व जिनका है, जो किरणोंमें सुशोभित एवं जातवेदा (भूत आदि तीनों कालोंकी बातको जाननेवाले) हैं, जो ज्योतिः-स्वरूप, हिरण्मय (सुवर्णके समान कान्तिमान्) पुरुषके रूपमें तप रहे हैं, इस सम्पूर्ण विश्वके जो एकमात्र उत्पत्ति-स्थान हैं, उन प्रचण्ड प्रतापवाले भगवान् सूर्यको हम नमस्कार करते हैं। वे सूर्यदेव समस्त प्रजाओं (प्राणियों) के समक्ष (उनके कल्याणार्थ) उदित हो रहे हैं।

ॐ नमो भगवते आदित्याय अहोवाहिनी
अहोवाहिनी स्वाहा।

षड्विध ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान् आदित्यको नमस्कार है। उनकी प्रभा दिनका भार वहन करनेवाली है, हम उन भगवान्‌के लिये उत्तम आहुति देते हैं। जिन्हें मेधा अत्यन्त प्रिय है, वे ऋषिगण उत्तम पंखोंवाले पक्षीके रूपमें भगवान् सूर्यके पास गये और इस प्रकार प्रार्थना करने लगे—'भगवन्! इस अन्धकारको छिपा दीजिये, हमारे नेत्रोंको प्रकाशसे पूर्ण कीजिये तथा तमोमय बन्धनमें बँधे हुए-से हम सब प्राणियोंको अपना दिव्य प्रकाश देकर मुक्त कीजिये। पुण्डरीकाक्षको† नमस्कार है। पुष्करेक्षणको नमस्कार है। निर्मल नेत्रोंवाले अमलेक्षण-को नमस्कार है। कमलेक्षणको नमस्कार है। विश्वरूपको नमस्कार है। महाविष्णुको नमस्कार है।'

इस (ऊपर वर्णित) चक्षुष्मतीविद्याके द्वारा आराधना किये जानेपर प्रसन्न होकर भगवान् श्रीसूर्य-नारायण संसारके सभी नेत्र-पीड़ितोंके कष्टको दूर करके उन्हें पूर्ण दृष्टि प्रदान करें—यही प्रार्थना है।

---

* उपर्युक्त अंशका अर्थ पृष्ठ ३३२ के मूलके साथ देखें।

† पुण्डरीकाक्ष, पुष्करेक्षण और कमलेक्षण—इन तीनों नामोंका एक ही अर्थ है—कमलके समान नेत्रोंवाले भगवान्। कमलके इन नेत्रों तथा उपमादिकी सूक्ष्मताओंको समझनेके लिये समस्योंकी धीमयों, भनुर जिनको दी आदि देखनी चाहिये। साहित्यलहरी प्रपञ्चगारके अनुसार समानार्थक शब्दोंमें भी भक्तके नमस्कार अभिव्यक्त किये हैं।

लाल रंग शरीरके लिये अत्यधिक लाभदायक है, इसीलिये उदय होते हुए सूर्यका सेवन विशेष हितकर माना गया है और लाल गायका दूध पीना भी महत्त्वपूर्ण प्रतिपादित किया गया है –

या रोहिणीर्देवत्या गावो या उत रोहिणीः ।
रूपंरूपं वयो वयस्ताभिष्ट्वा परिदध्मसि ॥
(—अथर्व० १ । २२)

अर्थात् या देवत्याः–जो चमकीली, रोहिणीः–रक्तिम सूर्य-रश्मियाँ हैं, उत–और, या रोहिणीः गावः–जो रक्तिम गौएँ (सूर्यकी किरणें) हैं, उनसे रूप और वयः–आयु प्राप्त होती

अर्थात् विश्वरूपम्—नानारूप-रंगवाले, चतुरक्षम्—चार नेत्रोंवाले, सारङ्गम्—सारंग वर्णवाले, अर्जुनम्—श्वेत रंगवाले कृमिको मैं शृणामि—मारता हूँ। अस्य—इस कृमिकी पृष्टीः—पसलियोंको तथा शिरः—सिरको भी वृश्चामि—तोड़ता हूँ।

रोगोत्पादक कृमि नाना वर्ण और आकृतिके होते हैं। सूर्यके सेवनद्वारा इन्हें नष्ट कर व्यक्तिको स्वास्थ्य लाभ करना चाहिये।

सूर्य स्वास्थ्य और जीवनीय शक्तिके भण्डार हैं। जो

यहा अँधेरे स्थानमें रहते हैं और सूर्यकी शक्तिसे लाभ न उठाकर सदा रोगी बने रहते हैं।

डॉ० ह्वोनगने लिखा है—'रक्तका पीलापन, पतलापन, लोहेकी कमी और नसोंकी दुर्बलता आदि रोगोंमें सूर्य-चिकित्सा लाभदायक पायी गयी है।'

सुप्रसिद्ध दार्शनिक "योची" का मत है कि 'जबतक ससारमें सूर्य विद्यमान हैं तबतक लोग व्यर्थ ही दवाओंकी अपेक्षामें भटकते हैं। उन्हें चाहिये कि शक्ति, सौन्दर्य और स्वास्थ्यके केन्द्र इन (सूर्यदेव) की ओर देखें और उनकी सहायतासे वास्तविक अवस्थाको प्राप्त करें।'

हमारे ऋषि सूर्य-चिकित्साके रहस्यसे अपरिचित नहीं थे। प्राचीनकालमें पाठ याद न करनेपर अथवा किसी प्रकारकी अविनय करनेपर धूपमें खड़े रहनेका दण्ड दिया जाता था। योगी धूपमें तप करते थे। सूर्य-सेवनसे कुष्ठनाशकी तो अनेकों कथाएँ प्रसिद्ध हैं।

रोगका कारण—सूर्यचिकित्साके सिद्धान्तके अनुसार रोगोत्पत्तिका कारण शरीरमें रंगोंका घटना-बढ़ना है। रंग एक रासायनिक मिश्रण है। हमारा शरीर भी रासायनिक तत्त्वोंसे बना हुआ है। जिसके जिस अङ्गमें जिस प्रकारके तत्त्वकी अधिकता होती है, उसके उसी अङ्गमें उसके अनुरूप उस अङ्गका रंग हो जाता है।

शरीरके विभिन्न अङ्गोंमें विभिन्न रंग होते हैं; जैसे चर्मका गेहुआँ, केशोंका काला एवं नेत्रगोलकका श्वेत आदि। शरीरमें किस तत्त्वकी कमी है, यह अङ्ग-परीक्षा-द्वारा जाना जा सकता है; जैसे—चेहरेकी निस्तेजताका कारण रक्ताल्पता है। शरीरमें रंग एक विशेष तत्त्व है। इसमें घट-बढ़ होना रोगका कारण माना जाता है। सूर्यमें सातों रंग विद्यमान रहते हैं, इसीलिये विभिन्न [illegible] बोतलोंमें जल भरकर उन्हें धूपमें रखकर उन

किया जाता है और फिर वह जल ओषधिके [illegible] रोगियोंको इस दृष्टिसे दिया जाता है कि जिससे रोगि[illegible] शरीरसे तत्तद् रंगोंकी कमी दूर हो और वे पूर्ण स्वा[illegible] लाभ करें।

अथर्ववेद—(१ । २२)में वर्णचिकित्साके सम्ब[illegible] यह उल्लेख मिलता है—

> अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते।
> गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परिदध्मसि॥

अर्थात्—**ते हरिमा**—तुम्हारा पीलापन (पाण्[illegible] कामला आदि) तथा **हृद् द्योतः**—हृदयकी जलन (हृद[illegible] रोग), **सूर्यमनु**—सूर्यकी अनुकूलतासे, **उत् अयताम्**—उ[illegible] जायँ, **गोः**—रश्मियोंके तथा प्रकाशके उस, **रोहितस्य** लाल, **वर्णेन**—रंगसे, **त्वा**—तुझे, **परि**—सब ओर, **दध्मसि** धारण करता है।

भाव यह है कि पाण्डु-रोग और हृद्रोगोंमें सूर्योदयके समय सूर्यकी लालरश्मियोंके प्रकाशमें खुले शरीर बैठना तथा लाल रंगकी गौके दूधका सेवन करना बहुत ही लाभदायक होता है।

रोगनिवृत्ति ही नहीं अपितु दीर्घायुकी प्राप्तिके लिये भी प्रातःकाल सूर्योदयके समय उनके रक्तवर्णवाले प्रकाशका सेवन करना चाहिये। अथर्ववेदमें रक्तवर्णसे दीर्घायु-प्राप्तिका उपाय लिखा है—

> परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्[illegible] दध्मसि।
> यथायमरपा असदथो [illegible]॥

अर्था[illegible]

चारों [illegible]

लाल रंग शरीरके लिये अत्यधिक लाभदायक है, इसीलिये उदय होते हुए सूर्यका सेवन विशेष हितकर माना गया है और लाल गायका दूध पीना भी महत्त्वपूर्ण प्रतिपादित किया गया है--

या रोहिणीर्देवत्या गावो या उत रोहिणीः।
रूपंरूपं वयो वयस्ताभिष्ट्वा परिदध्मसि॥
(-अथर्व० १। २२)

अर्थात् या देवत्याः-जो चमकीली, रोहिणीः-रक्तिम सूर्य-रश्मियाँ हैं, उत-और, या रोहिणीः गावः-जो रक्तिम गौएँ (सूर्यकी किरणें) हैं, उनसे रूप और वयः-आयु प्राप्त होती है, ताभिः-उनके साथ, त्वा-तुझे, परि--चारों ओर, दध्मसि-धारण करते हैं। भाव यह है रक्तिम सूर्य-रश्मियोंके सेवन तथा रक्तिम गौओंका दूध पीनेसे रोग निवृत्त होकर आरोग्यरूप और दीर्घायुकी प्राप्ति होती है।

इतना ही नहीं, सूर्यरश्मियोंसे रोगोत्पादक कृमियोंका भी नाश हो जाता है---

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः। ये अन्तः क्रिमयो गवि॥
(अथर्व० २। ३२। १)

अर्थात् उद्यन्नादित्यः---उदय होता हुआ सूर्य, क्रमीन् हन्तु---कीटाणुओंका नाश करे तथा निम्रोचन् अस्त होता हुआ सूर्य अपनी---रश्मिभिः---किरणोंसे, उन कृमियोंको नष्ट करे, जो---गवि अन्तः---पृथ्वीपर हैं।

सूर्य पृथ्वीपर स्थित रोगाणुओं (कृमियों) को नष्ट कर निज रश्मियोंका सेवन करनेवाले व्यक्तिको दीर्घायु प्रदान करते हैं। सूर्यद्वारा विनष्ट किये जानेवाले रोगोत्पादक कृमि निम्नलिखित हैं---

विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम्।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः॥
(-अथर्व २। ३२। २)

अर्थात् विश्वरूपम्---नानारूप-रंगवाले, चतुरक्षम्---चार नेत्रोंवाले, सारङ्गम्---सारंग वर्णवाले, अर्जुनम्---श्वेत रंगवाले कृमिको मैं शृणामि---मारता हूँ। अस्य---इस कृमिकी पृष्टीः---पसलियोंको तथा शिरः---सिरको भी वृश्चामि---तोड़ता हूँ।

रोगोत्पादक कृमि नाना वर्ण और आकृतिके होते हैं। सूर्यके सेवनद्वारा इन्हें नष्ट कर व्यक्तिको स्वास्थ्य लाभ करना चाहिये।

सूर्य स्वास्थ्य और जीवनीय शक्तिके भण्डार हैं। जो व्यक्ति सूर्यके जितने अधिक सम्पर्कमें रहते हैं, उतने ही स्वस्थ पाये जाते हैं और सूर्यसे बचकर रहनेवाले सर्वथा निस्तेज और भयंकर रोगोंसे ग्रस्त मिलते हैं।

स्वास्थ्य स्थिर रखने और रोगोंसे बचनेके लिये आवश्यक है कि हम धूप और सूर्यके प्रकाशसे सदा बचकर न रहें और इनके अधिक सम्पर्कमें रहें---विशेषकर प्रातःकालीन आतप अधिक हितकर होता है, वही रुग्ण और स्वस्थ दोनोंको समान लाभ पहुँचाता है। केवल मध्याह्नकी धूपको छोड़कर शेष समय यथासम्भव उसके न्यूनाधिक सम्पर्कमें रहना चाहिये। सूर्य-स्नान करते समय यथासम्भव निर्वस्त्र रहे या बिल्कुल हल्के-पतले (झीने) वस्त्रोंका प्रयोग करना चाहिये, जिससे सूर्यकी किरणें सरलताके साथ प्रत्येक अङ्ग-उपाङ्गतक पहुँच सकें।

आजका प्रबुद्ध मानव इस तथ्यसे भलीभाँति परिचित हो चुका है कि संक्रामक रोगोंका विशेष प्रकोप ऐसे स्थानोंपर ही प्रमुखतः होता है, जहाँ सूर्यकी रश्मियाँ नहीं पहुँच पातीं। इस स्थितिमें हमें मकान सदा ऐसे बनवाने चाहिये, जहाँ धूप और वायुका उचित मात्रामें अबाध प्रवेश हो सके।

विटामिन (खाद्योज)की उत्पत्तिका कारण भी सूर्यकी रश्मियाँ हैं। सूर्यके बिना जीवनीय शक्ति सर्वथा नहींके बराबर ही रहती है।

सूर्यकी उपयोगिता परिलक्षित कर आयुर्वेदमें भी सूर्य-स्नानका प्रतिपादन किया गया है, अष्टाङ्गहृदयमें इसके महत्त्व-पर विशेष बल दिया गया है, भले ही आज (Natureo Pathy) नेचुरोपैथीके लिये इसका प्रयोग किया जाता हो, पर है यह आयुर्वेदकी ही देन, और साथ ही हमारे महर्षियोंकी बुद्धिमत्ताका, विशेष ज्ञानका तथा मानव-कल्याणकी भावनाका जीता-जागता उदाहरण भी।

स्वास्थ्यकामी प्रत्येक व्यक्तिको सूर्यकी महत्ता पहचानकर, उसका सेवनकर अपने स्वास्थ्य और आयु वृद्धिके लिये प्रयत्न करना चाहिये। अतः मत्स्य पुराणका वचन है—

'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'।

श्रीसूर्यसे स्वास्थ्य-लाभ

(लेखक—डॉ० श्रीसुरेन्द्रप्रसादजी गर्ग, एम्०ए०, एल्-एल्० बी०, एन्० डी०)

सूर्यनारायण प्रत्यक्ष भगवान् हैं। हमें उनका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। उनके दर्शनके लिये भावनाकी वैसी कोई आवश्यकता नहीं है, जैसी अन्य देवोंके लिये अपेक्षित होती है। अतः सूर्यदेवकी प्रत्यक्ष आराधना की जा सकती है।

सौरपुराणोंमें भगवान् सूर्यकी अलौकिक सम्पदाओं, शक्तियों आदिका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। सूर्य-मण्डलमें प्रवेश करके ही जीव ब्रह्मलोक अर्थात् भगवान्का सांनिध्य प्राप्त कर सकता है। वस्तुतः सूर्य-नारायणकी आराधना किये बिना बुद्धि शुद्ध नहीं होती। सूर्यनारायण और श्रीकृष्ण एक ही हैं। श्रीकृष्णने स्वयं गीतामें 'ज्योतिषां रविरंशुमान्' कहा है। धर्मराज युधिष्ठिर सूर्यकी उपासना करते थे और सूर्यदेवने उन्हें एक अक्षय पात्र दिया था। भगवान् राम भी सूर्योपासक थे। ऋग्वेदमें सूर्यकी उपासनाके कई मन्त्र हैं और भगवान् आदित्यसे अनेक प्रकारसे प्रार्थना की गयी है। लिखा है—'आरोग्यं भास्करादिच्छेन्मोक्षमिच्छे-ज्जनार्दनात्।' आधुनिक चिकित्सा-शास्त्रियोंने सूर्यकी स्वास्थ्यदायिनी शक्तिको भलीभाँति समझा और अनुभव किया है। सूर्य-किरण-चिकित्सापर देशी-विदेशी चिकित्सकोंने कई ग्रन्थ लिखे हैं। एक अंग्रेजी कहावत (... is life and darkness is death) अर्थात्—प्रकाश ही जीवन है और अन्धकार ही मृत्यु है। जहाँ सूर्यकी किरणें अथवा प्रकाश पहुँचता है, वहाँ रोगके कीटाणु स्वतः मर जाते हैं और रोगोंका जन्म नहीं होता। सूर्य अपनी किरणोंद्वारा अनेक प्रकारके आवश्यक तत्त्वोंकी वर्षा करते हैं और उन तत्त्वोंको शरीरद्वारा ग्रहण करनेसे असाध्य रोग भी दूर हो जाते हैं। वैज्ञानिकोंने चिकित्साकी दृष्टिसे सूर्य-का अनेक प्रकारसे प्रयोग किया है। शास्त्र कहते हैं कि सूर्यके प्रकाशमें सप्तरश्मियाँ—लाल, हरी, पीली, नीली, नारंगी, आसमानी और कासमी रंग—विद्यमान हैं एवं सूर्य-प्रकाशके साथ इन रंगों तथा तत्त्वोंकी भी हमारे ऊपर वर्षा होती है। उनके द्वारा प्राणी तथा वानस्पतिक वर्गको नवजीवन एवं नवचैतन्य प्राप्त होता रहता है। यह कहनेमें कि यदि सूर्य न होते तो हम जीवित नहीं रह सकते थे—कोई अत्युक्ति नहीं है। यही कारण है कि वेदोंमें सूर्य-पूजाका विधान तथा महत्त्व है और हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंने सूर्यसे शक्ति प्राप्तकर प्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेका आदेश किया है। आदिकालके ग्रीक और यूनानी लोगोंने भी सूर्य-चिकित्सालय बनवानेके साथ-साथ सूर्यकी पूजा की है। पाश्चात्त्य चिकित्सा-विज्ञानका प्रथम उपासक हिप्पोक्रेटस भी सूर्यद्वारा रोगियोंको ठीक

धीरे-धीरे अवनतिके गर्तमें पड़ते हुए संसारने सूर्यके महत्त्वको अपने मस्तिष्कसे भुला दिया। फलस्वरूप सैकड़ों रोगोंको, जिनका पहले नामोनिशानतक न था, जन्म दे दिया। वैज्ञानिकोंके निरन्तर प्रयत्नशील रहने तथा अनुसंधान और अन्वेषण करते रहनेपर भी वे संसारको रोगोंसे मुक्त न कर सके और अन्तमें विवश हो प्रकृतिकी ओर लौटे। कुछेकने सूर्यके महत्त्वको समझा और सूर्य-ऊर्जा आदिका पता लगाया। सर्वप्रथम डेनमार्कके निवासी डॉ० नाईस फिसेनने १२९२ ई०में सूर्य-प्रकाशके महत्त्वको प्रकटकर १२९५में सूर्यद्वारा एक क्षयके रोगीको स्वस्थ किया। किंतु आपकी तैंतालीस वर्षकी अवस्थामें ही असामयिक मृत्यु हो गयी। दूसरे वैज्ञानिकोंको इतनेसे संतोष न हुआ। उन्होंने नयी-नयी खोजें आरम्भ कीं। इसके फलस्वरूप चिकित्सा-संसारमें सूर्यचिकित्सा अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखने लगी है। डॉ० ए० जी० हार्वे, डॉ० एल्फ्रेड व रोलियर आदिने बड़े-बड़े सैनेटोरियम स्थापित किये। सन् १९०३से डॉ० रोलियर अपनी पद्धतियों (systems) द्वारा आल्पस्पर्वतपर लेसीन नामक प्राकृतिक सौन्दर्यसे सुसज्जित स्थानमें रोगियोंकी चिकित्सा करते हैं और नैसर्गिक सूर्य-प्रकाशको काममें लाते हैं। (श्रीमती कमलानेहरू शायद यहीं अपनी चिकित्साके लिये गयी थीं।) डॉ० रोलियरका तरीका अपने ढंगका अकेला है और ये सहिष्णुता तथा पृथक्ता (एक्लीमेटीसेशन तथा आइसोलेशन) आदि विधियोंद्वारा चिकित्सा करते हैं। इसका पूर्ण उल्लेख यहाँ नहीं किया जा सकता। इसके बाद 'क्रोमोपैथी' (chromopathy) का जन्म हुआ और वैज्ञानिकोंने बतलाया कि शरीरमें किसी विशेष रंगकी कमीके कारण भी विशेष रोग उत्पन्न हो सकते हैं और उसी रंगकी बोतलमें तैयार किया जल पिलाने
वे ...

ज्ञाता हुए हैं। यह चिकित्सा-पद्धति बड़ी उपयोगी और भारत-जैसे गरीब देशके लिये अत्यावश्यक है। पर इसमें कठिनाई केवल इतनी ही है कि 'क्रोमोपैथी' (chromopathy) द्वारा एक सद्वैद्य ही, जो रोगनिदानमें निपुण है, रोगियोंको लाभ पहुँचा सकता है। ठीक निदान न होनेपर हानि हो सकती है।

जटिल एवं तथोक्त असाध्य रोगों—जैसे क्षय, लकवा, पोलियो, कैन्सर आदिमें भी विधिवत् सूर्य-स्नान करनेसे अद्भुत लाभ होता है और रोगको दूर भगानेमें बड़ी सहायता मिलती है। पर इस सम्बन्धमें विशेषज्ञोंसे परामर्श कर लेना वाञ्छनीय है। कई बार स्थानीय रूपमें भी सूर्यकी किरणोंका प्रयोग किया जाता है, अर्थात् शरीरके किसी एक अङ्गविशेषको कुछ समयके लिये धूपमें रखा जाता है।

सूर्य-किरण-चिकित्सा-प्रणालीके अनुसार अलग-अलग रंगोंके अलग-अलग गुण होते हैं; उदाहरणार्थ लाल रंग उत्तेजना और नीला रंग शान्ति पैदा करता है। इन रंगोंसे लाभ उठानेके लिये रंगीन बोतलोंमें छः या आठ घंटेतक धूपमें लकड़ीके पाटोंपर सफेद काँचकी बोतलोंमें आधा-आधा कुएँ या नदीका शुद्ध जल भरकर रखा जाता है। फलस्वरूप इस जलमें रंगके गुण उत्पन्न हो जाते हैं और फिर उस जलकी दो-दो तोलेकी खुराक दिनमें तीन-चार बार ली जाती है। पर बोतलको जमीनपर अथवा अन्य प्रकारके किसी प्रकाशमें नहीं रखना चाहिये। एक दिनका तैयार किया जल तीन दिनतक काम दे सकता है। जलकी भाँति तैल भी लगभग एक महीनेतक धूपमें रखकर तैयार किया जाता है। यह तैल पर्याप्त गुणकारी होता है।

सूर्य-रश्मियोंसे लाभ उठानेकी एक निरापद् एवं ... विधि यह है कि रवेतकाँचकी बोतलमें ... रखके उसका सेवन किया जाय।'

दैनिक सूर्यस्नान—स्वास्थ्य-इच्छुकोंको प्रतिदिन सूर्यस्नान करना चाहिये। इसकी विधि यह है कि सुहाती-सुहाती धूपमें अपने सम्पूर्ण शरीरको शक्ति, रुचि एवं ऋतुके अनुसार नगा रखा जाय। शरीरके प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्गपर सूर्यकी किरणें पड़ें। यदि असहनीय हो तो सिरको श्वेत गीले वस्त्रसे तथा शरीरके अन्य भागोंको सात्त्विक वृक्षों—जैसे केले, जामुन, आमके पत्तोंसे ढका जा सकता है। शरीरको धूपमें रखनेसे पसीना आता है। यद्यपि यह एक प्रकारका विष है, तथापि पसीनेमें ही ठंडे जलसे रगड़-रगड़कर स्नान करना अत्यन्त गुणदायक एवं लाभकारी होता है। इस प्रकार पसीनेमें स्नान करना कभी कोई हानि नहीं करता। जर्मनके प्रसिद्ध जल-चिकित्सक डॉ० लुई कूनेने वाष्प-स्नानके ठीक पश्चात् ठंडे जलसे स्नान करनेकी परिपाटी डाली थी। इस पद्धतिके द्वारा हजारों रोगी स्वास्थ्य-लाभ कर चुके हैं और कर रहे हैं।

सूर्यस्नान करनेमें ऋतुके अनुसार समय एवं अवधिका भी ध्यान रखना चाहिये। ग्रीष्मकालमें प्रातः ८ बजेतक और सायं ४ बजेके पश्चात् एवं शरदृऋतुमें किसी भी समय सूर्यस्नान किया जा सकता है। इसकी अवधि १५ से ३० मिनटतक रखी जानी चाहिये।

सूर्यनमस्कार-व्यायाम—स्वास्थ्यकी दृष्टिसे दैनिक त्रिकाल संध्याओंका अत्यन्त महत्त्व है। प्राणायाम भी संध्योपासनाका अङ्ग है। प्राणायामसे शरीरका दूषित रक्त शुद्ध होकर अनेक रोगोंसे शरीरकी रक्षा होती है। इसके अतिरिक्त सूर्यकी प्रार्थना एवं उनके ध्यानसे बुद्धिका परिमार्जन होकर सद्विवेक जागृत होता है और मनुष्य पाप-कर्मोंसे सहज ही बच जाता है।

आधुनिक विद्वानोंने सूर्यनमस्कार-व्यायाम-पद्धतिका भी उद्भव किया है। इस सम्बन्धमें 'लीडरप्रेस' इलाहाबाद-द्वारा प्रकाशित 'सूर्य-नमस्कार' नामक पुस्तक अत्यन्त प्रामाणिक, अनुभवपूर्ण, असंगतियोंसे शून्य एवं ज्ञानवर्धक है। विद्वान् एवं अनुभवी लेखकने विषयका विश्लेषण वैज्ञानिक रीतिसे करके 'सूर्य-नमस्कार-व्यायाम'-पद्धतिका प्रचार किया है। इस पद्धतिमें शरीरके विभिन्न अङ्गोंको दस अवस्थाओं (पाजों)में रखने, साथमें श्वास-प्रश्वासकी प्रक्रिया करते हुए मन-ही-मन मुखको बिना खोले मन्त्रोच्चारण करनेका विधान है। इनमें चौबीस मन्त्र हैं। इन्हें पढ़ते हुए प्रतिदिन प्रातःस्नान करके सूर्याभिमुख होकर विधिपूर्वक नमस्कार करना चाहिये। यह नमस्कार एकसे आरम्भ करके कम-से-कम चौबीस बारतक किया जाय। इनके अभ्याससे शरीर स्वस्थ, बलिष्ठ, नीरोग तथा दीर्घजीवी होता है। साथ-ही-साथ आहार-विहारके अन्य सामान्य नियमोंका भी पालन उचित है।

भ्रान्तियाँ—धूप अथवा सूर्यके सम्बन्धमें कुछ भ्रान्तियाँ भी फैली हैं। वस्तुतः धूप कभी कोई हानि नहीं करती, तथापि भरपेट भोजनके पश्चात् कड़ी धूपमें जाना वर्जित है। खाली पेट धूपमें घूमनेसे कभी कोई हानि नहीं होती। हमारे ग्रामोंमें आज भी वहाँके निवासी चिलचिलाती धूप एवं गर्म लूमें रहते हैं और वे नगरके कृत्रिम जीवनके आदी नागरिकोंकी भाँति धूप एवं लूके शिकार नहीं बनते।

सूर्यकी किरणोंद्वारा पके फलों, सब्जियों तथा खाद्यान्नोंमें एक विशेष प्रकारका रस पैदा होता है और वे अनेक प्रकारके खाद्योंसे भरपूर हो जाते हैं। जिन पेड़-पौधोंको सूर्य-किरणें नहीं मिलतीं, वे मर जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि सूर्यकी किरणें प्राणका संचार करती हैं और उनकी सहायतासे भयंकर-से-भयंकर रोग सहज ही बिना किसी व्ययके दूर किये जा सकते हैं। सूर्यके तापसे क्षय, कैंसर, पोलियो आदि रोगोंके जीवाणु स्वतः मर जाते हैं। जिन कमरोंमें सूर्यकी किरणें पहुँचती हैं, वे कठोर शीतमें भी रात्रिको गर्म रहते हैं। उन्हींमें शयन करना स्वास्थ्यदायक एवं सुविधाजनक होता है।

भगवान् सूर्य और उनकी आराधनासे आरोग्यलाभ

(लेखक—श्रीनकुलप्रसादजी झा 'नलिन')

देवेभ्य आतपति यो देवानाम्पुरोहितः।
यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये॥
(शुक्लयजु० ३१ । २०)

'जो भगवान् सूर्य देवताओंके लिये प्रकाशित रहते जो देवताओंके पुरोधा—नेता हैं तथा जो देवताओंसे हुए हैं, ऐसे मङ्गलदायक भगवान् सूर्यको मेरा है।'

हिंदू-धर्मग्रन्थोंकी मान्यताके अनुसार देवताओंकी ३३,००,००,००० (तैंतीस करोड़) है। कहा है कि ये देवता संख्यामें पहले मात्र तैंतीस[1] थे। स्कन्दादि के अनुसार विभिन्न पुण्योंसे मनुष्योंको लाभान्वित देख देवता भी उनमें सम्मिलित हो गये। ये न, एक-एक करके उसमें सम्मिलित होते थे, उसके पुण्य-प्रभावसे प्रत्येक एक-एक कोटि- की संख्यामें परिणत होते चले गये और देवताओंकी तैंतीस करोड़ हो गयी[2]। इन्हींमेंसे भगवान् सूर्य- ग एक हैं।

भगवान् श्रीसूर्यदेव अत्यन्त अनादि[3] एवं प्रतापशाली हैं। अतः निगम-आगम-स्मृति-पुराण इतिहास- के अतिरिक्त इनका वर्णन लौकिक साहित्यमें भी होता है। इतना ही नहीं, भारतीय ग्रन्थोंके अतिरिक्त रोम, यूनान, मिश्र, जर्मन आदि देशोंके ग्रन्थोंमें भी इनकी चर्चा देखी जाती है। यह मान्यता कि 'मरीचिनन्दन प्रजापति कश्यपके पुत्र होनेके कारण ये बहुत बादके—अर्वाचीन देवता हैं' भ्रान्तिपूर्ण है। ये तो कश्यपसे भी अतिपूर्व ही थे। कश्यपके पुत्ररूपमें जन्मग्रहण करना चन्द्रमा या सप्तर्षि आदिके समान इनका दूसरा जन्म है।

नवग्रहों तथा पञ्चदेवोंमें यद्यपि ये प्रथम[4] पूज्य माने गये हैं, तथापि ब्रह्मेशानाच्युतस्वरूप होनेके कारण इन्हें कहीं ब्रह्म[5], कहीं सत्य, कहीं जगदात्मा[6] तो कहीं जगत्- कारण कहा गया है। ऋग्वेद (शा० १ । ११५ । १) तथा यजुर्वेद (७ । ४२)में इन्हें सम्पूर्ण विश्व- ब्रह्माण्डकी आत्मा कहा है। साथ ही 'देवीभागवत'में इन्हें आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त जीवमात्रकी भी आत्मा कहा है—

देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधसाम्।
सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः॥
(८ । १४)

श्रीमद्भागवतका—'एष एव हि लोकानां सूर्य आत्मादिकृद्धरिः'—सूर्य सम्पूर्ण लोकवासियोंकी आत्मा हैं—वचन भी इसका अनुमोदन करता है।

१. आठ वसु, ग्यारह रुद्र (इन्द्र), बारह आदित्य, एक राजर्षि तथा एक प्रजापति—ये तैंतीस देवता हैं।

२. अत्र देवास्त्रयस्त्रिंशत् पुरा कृत्वा प्रदक्षिणाम्। प्रत्यहं मार्गमासीनाः प्रत्येकं कोटितां मताः।
(स्क० पु० १ । २ । १ । ५ । ३३ आदि)

३. दुनियामें जिस देवताकी सबसे पहले पूजा हुई, वे सूर्यनारायण थे। (—'विज्ञानप्रगति' जुलाई, ७५)

४. पञ्चदेवोंमें दिनकी पूजामें प्रथम सूर्य और रातकी पूजामें प्रथम गणेश पूजे जाते हैं।
(—स्क० पु० १, चातुर्मास्यमा० ६ । ९)

५. (क) छा० उ० ३ । १९ । १, मू० उ० । (ख) म० पु० १९० । १, प० पु० १ । ३१ । ८ ।
(ग) त्वामिन्द्रमाहुस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः। त्वमग्निस्त्वं मनः सूक्ष्मं प्रभुस्त्वं ब्रह्म शाश्वतम्॥
(—महाभारत)

६. छा० उ० ५ । ५ । १ । ७. सूर्य आत्मास्य जगतस्तस्थुषश्चेति श्रुतिः। (स्क० पु०, का० ख० २ । ९)

८. ब्रह्मसंहिता १ । १, भविष्यो० पु०, आदित्यहृदय स्तोत्र।

ीय और आकाशके सभी ज्योतिष्पिण्डोंके प्रकाशक
।

अथर्ववेदमें पाँव, जानु, श्रोणि, कंधा, मस्तक, ा, हृदय आदिके रोगोंको उदीयमान सूर्यरश्मियोंके दूर करनेकी बात कही गयी है[1]। पुनः इसी वेदमें इए सूर्यकी रक्ताभकिरणोंसे[2] रोगियोंको चिरायु का वर्णन प्राप्त होता है[3]। अथर्ववेदमें ही सूर्यसे ्यरोगको दूर करनेकी बात आयी है[4]।

यद्यपि श्रीमद्भागवतमें सूर्यसे तेज—'तेजस्कामो- वसुम्', स्कन्दपुराणमें सूर्यसे सुख—'दिनेशं र्थी' तथा वाल्मीकीय रामायणमें सूर्यसे अरिविजयकी ा की गयी है तथापि अन्य पुराणोंने एक स्वरसे े आरोग्य-लाभ'का डिण्डिमघोष किया है—

ोग्यं भास्करादिच्छेद् धनमिच्छेद्धुताशनात्।
ाज्ञानमिच्छेच्च मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात्॥
(मत्स्यपु० ६७। ७१)

स तरह आजसे हजारों वर्ष पूर्वसे ही भारतीय मुदाय सूर्यकी कृपासे आरोग्यलाभ प्राप्त करता ा है। पाँच सहस्रसे भी अधिक वर्ष बीत गये, दुर्वासाके शापसे कुष्ठग्रस्त श्रीकृष्ण और जाम्बवती- साम्बको सूर्यनारायणकी आराधनाने निरामय सुन्दर बनाया था।

सुप्रसिद्ध भक्तकवि मयूरभट्ट, जो बाणके साले एवं ट्टके मातुल थे, सूर्यकी आराधना कर न केवल नीरोग, काञ्चनकाय हो गये, अपितु उन्होंने सूर्यकी स्तुतिमें रचित सौ श्लोकोंके समूह—'सूर्यशतकम्'-से अमरता भी प्राप्त कर ली। यह 'सूर्यशतकम्' आज संस्कृतसाहित्यकी एक अमूल्य निधि बना हुआ है।

इस तरह सूर्याराधनासे स्वास्थ्यलाभकी अनेक कथाएँ पुराणान्तरोंमें देखी जाती हैं। स्यात्, इसी कारण विश्वके अनेक देश 'सूर्यसे आरोग्यलाभ'पर प्रयोग चला रहे हैं, जिसका ज्वलन्तनिदर्शन प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति (Naturopathy) है। अमेरिकाके सुप्रसिद्ध चिकित्साशास्त्री मिस्टर जॉन डोनने तो सूर्यरश्मियोंसे यक्ष्मा (T. B.)-जैसे भयंकर रोगके कीटाणुओंके नष्ट होनेका दावा किया है।

'मार्तण्डमरीचियोंसे निरामयता' पर विदेशोंमें आज जो अनुसंधान[6] और प्रयोग चल रहे हैं, आस्तिक हिंदूका उनके प्रति कोई आकर्षण नहीं है; क्योंकि वह जानता है कि शास्त्रोंमें जो कुछ कहा गया है, वह ऋषि-महर्षियोंकी दीर्घकालीन गवेषणाका परिणाम है। शास्त्रोंका एक-एक वचन अकारण-करुणाकर, सर्व- मङ्गलकामी, दीनवत्सल, परमवैज्ञानिक ऋषि-मुनियोंके चिरकालीन अन्वेषण-मनन-चिन्तन एवं अनुभवके निकषपर कसकर ही अभिहित हुआ है। इसी आस्था- सम्बलके सहारे वह आज भी निर्द्वन्द्व, निश्चिन्त चलते चल रहा है। उसकी धारणा है कि—

पुराणे ब्राह्मणे चैव देवे च मन्त्रकर्मणि।
तीर्थे वृद्धस्य वचने विश्वासः फलदायकः॥
(स्क० पु० २, उत्क० ख० ६०। ६२)

---

१. अथर्ववेद स० (९। ८। १९, २१, २२)

२. सूर्य-रश्मिके सात रंगोंमें दूसरा रंग है नीला, जिसे अल्ट्रा-वायलेट भी कहते हैं। वैज्ञानिकोंके मतानुसार यह अत्यन्त स्वास्थ्य-वर्द्धक कहा गया है। ३. अथर्ववेदसंहिता (१। २२। १, २)

४. वही (६। ८३। १)

(क) जयार्थी नित्यमादित्यमुपतिष्ठति वीर्यवान्। नाम्ना पृथिव्यां विख्यातो राजन्मतबलीति यः॥
(युद्धका० २७। ४४)

(ख) युद्धकाण्डका ही 'आदित्यहृदय'स्तोत्र।

५. बाणभट्ट और मयूरभट्ट दोनों ही महाराज हर्षवर्द्धनके दरबारमें रहते थे।
(—बलदेव उपाध्यायका संस्कृत-साहित्यका इतिहास)

६. 'सूर्य-रश्मियोंसे आरोग्य-लाभ'पर डॉ० जेम्सकुक, (Jams Cook) ए० बी० गार्डेन, (A. B. Gorden) एच० जी० वेल्स प्रभृति अनेक पाश्चात्त्य मनीषी अनुसंधान कर रहे हैं।

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥
(वही ५ । २ । २२७ । २०)

आधुनिक मनोविज्ञानका यह कहना कि व्यक्तिकी भावना ही बहुधा उसके सुख-दुःखका कारण बनती है, भारतीय समाज इसी आस्थामूलक धारणासे मिलता-जुलता है और इसी धारणाके वशीभूत फलोन्मुखी अपेक्षा समय तथा साधनके अनुसार भगवान् सूर्यकी आराधनासे लाभान्वित हो जाती है। यद्यपि आधुनिक भौतिक विज्ञानने कुछ लोगोंकी आस्थाको डिगा दिया है, फिर भी कुछ लोग आज भी इसको परम सत्य, सरल तथा सुलभ मानकर दवाओंके चक्करमें न पड़कर सीधे उपासनापर उतर जाते हैं। पैसेवाले 'बाबू' या 'मैकाले मार्का-शिक्षा' (!)की किन्हीं उपाधियोंसे विभूषित तथा-कथित भद्रमहाशय या तत्प्रभावित व्यक्ति पैसेके बलपर स्वास्थ्य खरीदनेमें जब अपने-आपको अक्षम पाते हैं और शनैः-शनैः स्वास्थ्यके साथ सम्पत्ति (Health and Welth) भी खो बैठते हैं तब 'जैसे उड़ि जहाजके पंछी पुनि जहाजपर आवे'—घूम-फिरकर इन्हीं भगवान् सूर्यकी शरणमें आ जाते हैं और नीरोगताको प्राप्त करते हैं। पूर्वमें उनको न मानकर पश्चात् माननेसे उन्हें कोई क्षोभ या आक्रोश नहीं; क्योंकि उनकी तो उद्घोषणा है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः········॥ (—गीता ९।३०)

कोई पूर्वका लाख दुराचारी क्यों न हो, यदि अनन्यभावसे भगवान्‌की भक्ति करने लगे तो उसे साधु ही मानना चाहिये। भगवान् भक्तिपूर्वक पूजा करनेवालेका शरीर नीरोग कर देते हैं—

सूर्यो नीरोगतां दद्याद् भक्त्या यैः पूज्यते हि सः।

उसके शरीरको नीरोग तो करते ही हैं, दृढ़ भी बना देते हैं—

अरोगो दृढगात्रः स्याद् भास्करस्य प्रसादतः॥

यही नहीं, अपितु भगवान् भास्कर नीरोग बनानेके साथ-साथ जिसपर प्रसन्न होते हैं उसे निःसन्देह धन और यश भी प्रदान करते हैं—

शरीरारोग्यकृच्चैव धनवृद्धियशस्करः।
जायते नात्र संदेहो यस्य तुष्येद्दिवाकरः॥
(पद्मपु० १ । ८० । ५८)

'ज्योति तेरी जलती है'

(रचयिता—श्रीकन्हैयासिंहजी विसेन, एम० ए०, एल्‌ एल्‌ बी०)

रोग को मिटावे दुख विपदा घटावे तू ही,
तेरे ही प्रताप से धरित्री टिकी रहती है।
वन्ध्या को बालक और अंधन को आँख देत,
अष्ट सिद्धि नवो निद्धि संग लगी रहती है॥
तू ही है अनादि नित्य अविचल अविकारी देव,
तेरे ही प्रभाव से यह सृष्टि सब चलती है।
धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पुरुषार्थों का,
स्वामी एक तू ही सूर्य ! ज्योति तेरी जलती है॥

सूर्यचिकित्सा

(लेखक — [illegible] साहित्यव्याकरणशास्त्री)

[illegible] कथन है कि सूर्यप्रकाशसे रोगोत्पादक [illegible] नाश होता है। जिस प्रकार वायु-चिकित्साका [illegible] दर्शन है, उसी प्रकार अथवा इससे कहीं सूर्य-चिकित्साका विधान है। वायु-चिकित्सा [illegible] ही सफल होती है। यदि प्रकाश न हो [illegible] देवोंका [illegible] प्रवृत्ति न हो तो [illegible] नहीं रह सकते। उपनिषद्का वचन है [illegible] उदयन् यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन [illegible] प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते' (प्रश्न० उ० १।६) [illegible] उदय होते हैं तो सभी दिशाओंमें उनकी [illegible] प्राप्त रहता जाता है अर्थात् सूर्यप्रकाश ही [illegible] शुद्ध करता है। सूर्यकी किरणोंके बिना [illegible] प्राप्ति नहीं हो सकती है। वेदमें आयु, बल और [illegible] वर्णनके साथ सूर्यका विशेष सम्बन्ध है। [illegible] शीत-निवारणके लिये सूर्यकी ओर दीप्तकर [illegible] रश्मियोंका सेवन करके आनन्द लेना चाहिये [illegible] प्राकृतिक चिकित्साकी विधि गोस्वामीजी अपनी [illegible] भावनाओंमें प्रकट करते हैं; यथा—भानु पीठि [illegible] भागी (मानस)। प्रायः हमने देखा है कि [illegible] से लोग अन्धकारयुक्त स्थानों अर्थात् अन्धकारयुक्त [illegible]) नरकमें जीवननिर्वाह करते हैं। जहाँ [illegible] सूर्यकी किरणें नहीं पहुँच पातीं, वहाँ शीतकालमें [illegible] तो बना ही रहता है। साथ ही वहाँके प्राणी भयंकर [illegible] शिकार हो जाते हैं। उदाहरणार्थ—[illegible], गृध्रसी, स्नायुरोग, और पक्षाघात आदि। ऐसे [illegible] वैद्य, डाक्टर तथा हकीमोंकी शरणमें जाकर भी [illegible] शारीरिक कष्ट (रोग) निवारण नहीं कर [illegible]। सूर्यका प्रकाश दुर्गन्धको दूर करनेवाली वायुको शुद्ध कर देता है। तभी तो गोस्वामीजी लिखते हैं—'भानु कृसानु सर्व रस खाहीं' विशेष—'प्राणो वै वातः' सूर्यकी किरणें रोगरूपी राक्षसोंका विनाश करती हैं। 'सूर्यो हि नाष्ट्राणां रक्षसामपहन्ता'। सूर्यप्रकाशसे रोगोत्पादक कृमियोंका नाश होता है। यथा—

उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा। दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन् (अथर्व० ५।२३।६) सूर्य पूर्व दिशामें उदय होता है तथा पश्चिम दिशामें अस्त होता है एवं वह अपनी किरणोंद्वारा सभी दिखने तथा न दिखनेवाले कृमियोंका नाश करता है। इन कृमियोंका स्वरूपवर्णन वेदमें इस प्रकार आता है—**शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः। भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः॥** (अथर्व० २।३२।२,६) शरीरमें विद्यमान रहनेवाले विभिन्न प्रकारके कृमि भिन्न-भिन्न रोग उत्पन्न करते हैं, उनका हनन भगवान् सूर्यके प्रकाशसे ही होता है। अब सूर्यके प्रकाश, धूप तथा किरणोंका सेवन प्रत्येक ऋतुमें आवश्यक है, इसे हम वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे तथा स्वास्थ्य-लाभकी दृष्टिसे बतलाते हैं। भारतीय विद्वानोंने वसन्तऋतुको ऋतुराजकी संज्ञा दी है। इसमें चैत्र-वैशाख मास आते हैं। इस ऋतुमें प्रातः और सायंकाल घूमना हितकर बतलाया है। यथा—'वसन्ते भ्रमणं पथ्यम्' तथापि मध्याह्न-समयमें घूमना श्रेष्ठ नहीं है। प्रत्युत इससे ज्वर, माता, मोतीझला, खसरा आदि रोगोंका प्रादुर्भाव भी सम्भव है। ग्रीष्मऋतुमें भुवनभास्कर अत्यन्त तीक्ष्ण किरण फेंकते हैं, इससे कफ क्षीण होकर वायु बढ़ती है। इसलिये इस ऋतुमें नमकीन, अम्ल, कटु पदार्थका भोजन, व्यायाम और धूपका त्याग करना हितकर होता है। मधुर अम्ल, स्निग्ध एवं शीतल द्रव्य भोजन करे। ठण्डे जलसे स्नान एवं अङ्गोंका सिंचन कर शक्करयुक्त सत्तूका प्रयोग करे। मद्य (शराब) न पीये। बेलाकी माला धारण करनी चाहिये। सफेद

चन्दनको घिसकर लगाना चाहिये । इससे शिरोरक्त एवं दाह शान्त होते हैं । एक धर्मशास्त्रीय वचन भी है; यथा—

चन्दनस्य महत् पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
आपदं हरते नित्यं लक्ष्मीस्तिष्ठतु सर्वदा ॥

आपदाका ग्रन्थकारका भाव मस्तिष्कदाह तथा ऐहलौकिक एवं पारलौकिक विपत्तियोंके नाशसे है । वर्षाऋतुमें अग्निके मन्द होनेसे क्षुधाका ह्रास होता है 'वर्षास्वग्न्यबले क्षीणे कुप्यन्ति पवनादयः'—वर्षाऋतुमें जठराग्निका दुर्बल हो जाना सम्भव है, जिससे वात आदि रोग उत्पन्न होते हैं । वस्तुतः मल तथा अग्निका दूषित होना ही रोगोत्पत्तिका प्रमुख कारण है । 'आमाशयस्य कायाग्नेर्दौर्बल्यादपि पाचितः' आमाशयकी दुर्बलतामें मन्दाग्नि हो जाती है; इसलिये अग्नि प्रदीप्त करनेवाली औषधि और प्राकृतिक चिकित्सा करनी चाहिये । इस ऋतुमें धुले हुए शुद्ध वस्त्र पहनने चाहिये । ऋतुओंमें सबसे खराब वर्षाऋतु होती है । इसमें धूप-सेवन थोड़ा देरतक ही करना चाहिये । शरदृऋतुमें बम्बईमें सूर्यचिकित्साका [illegible] भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानोंने किया है । इस ऋतुमें दिन प्रफुल्लित रहता है, इसलिये धूप अच्छी लगती है । शक्कर, मधुर, तिक्त, [illegible] शमन करनेवाला अन्न एवं [illegible] उचित मात्रामें सेवन करना चाहिये । [illegible] और गेहूँका सेवन करना ठीक है । विरेचन भी लेना चाहिये । हित-स्नान और [illegible] सेवन करा देना चाहिये । इस ऋतुमें दिनमें सूर्यकी किरणोंसे तप्त और रात्रि-किरणोंद्वारा शीतल अगस्त्य नक्षत्र[illegible] होनेसे जल निर्मल और पवित्र हो जाता[illegible] जलको हंसोदक कहते हैं । यह स्नान, पा[illegible] अवगाहनमें अमृतके समान होता है । इस[illegible] ऋतुओंमें होनेवाले भयंकर रोगोंसे हम सूर्यकी[illegible] बच सकते हैं । तभी तो कहा है—'आ[illegible] भास्करादिच्छेत्' । भगवान् सूर्यकी किरणें नि[illegible] शुद्ध करनेवाली हैं—'एते वा उत्पवितारो यद्[illegible] रश्मयः' "The rays of sun are certai[illegible] purifying." सूर्य ही विनाशक राक्षसोंका नाश क[illegible] वाले हैं अर्थात् जो राक्षसरूप भयंकर रोग हैं, उ[illegible] विनाश हो सकता है । 'For the sun is t[illegible] speller of the evil spirits, and the sickness[illegible] सूर्यके प्रकाशसे रोगोत्पादक जन्तु मर जाते हैं, ऐसा[illegible] सामवेदमें निर्देश है—'येत्याहि निम्रुचीनां यज्ञ ह[illegible] परिव्रजम् । अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥' सूर्य[illegible] और प्रतिदिन राक्षसोंके वर्जनको असत्य जानते [illegible] अर्थात् सूर्य रोगरूपी राक्षसोंके विनाशक हैं । सूर्य दीर्घायुष्य देनेवाले परमात्मा हैं; यथा—'नु वै शुनाय[illegible] सन्तुनोद्राधीय आयुर्जीवसे । आदित्यासः सु महसः कृणोतन ॥' (सामवेद) सूर्यके प्रकाशद्वारा कीटाणु मर जाते हैं । इस विषयमें अथर्ववेदका प्रमाण प्रस्तुत है 'उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः । ये अन्तः क्रिमयो गवि ॥' (—अथर्व० २।३२।१) अर्थात् सूर्यकिरणोंसे छिपे हुए रोग-जन्तु भी नष्ट हो जाते हैं ।

सूर्यसे विनय

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना ।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुष्वप्न्यं सुव ॥
(ऋ० १०।३७।४)

हे सूर्यदेव! आप [illegible] अँधेरेको दूर करते और विश्वको प्रकाशित करते हैं, [illegible] हमारे [illegible] रोगों और [illegible] को नष्ट करें [illegible] ।

श्वेतकुष्ठ और सूर्योपासना

(लेखक—श्रीकान्तजी शास्त्री वैद्य)

श्रीपीताम्बरापीठ दतियाके संस्थापक परमपूज्य श्री-
जी महाराजका अनुभव है कि सूर्याष्टकका श्रद्धापूर्वक
पाठ करनेसे श्वेतकुष्ठके रोगी लाभान्वित होते हैं।
विरपुरनिवासी एक महात्माका अनुभव है कि
रका व्रत रखने और सूर्यनारायणको नित्य अर्घ्य देनेसे
कुष्ठ जाता रहता है। अर्घ्यके बाद कंडेकी आगपर
घृत और गुग्गुलका धूप देना चाहिये। जले हुए
लको उठाकर सफेद दागोंपर मलना चाहिये।

जिन लोगोंको लगातार विरुद्ध आहार करते रहना
ता है या जो पेचिसके रोगी हैं अथवा अम्लपित्तसे ग्रस्त
उनमें इसकी सम्भावना अधिक होती है, यह देखनेमें
आता है। विरुद्ध आहारकी सूची लम्बी है, पर मोटे तौरसे
यह समझ लेना चाहिये कि दूधके साथ खटाई और
केले इत्यादिका सेवन विरुद्ध आहारोंमें आता है।
अतः कारणोंपर ध्यान देकर थोड़ा-बहुत औषधोपचार
चलाते रहनेसे लाभकी शीघ्र सम्भावना है। लौह-
घटित योगको बाकुचीके हिमसे सेवन करानेसे भी लाभ
देखा गया है।

इसके रोगीको खटाई, मिर्च, मांस, अंडा, मदिरा,
डालडा, अरवी, उड़द, तली-भुनी वस्तुएँ, भारी चीजें
नहीं खानी चाहिये। स्टेनलेस स्टील और अल्यूमिनियमके
बर्तनोंका प्रयोग भी विशेषतः भोजन-पाक करनेमें अवश्य
बंद कर देना चाहिये। (सूर्याष्टक आगे प्रकाश्य है।)

सूर्यकिरणें कल्पवृक्षतुल्य हैं

(एक विशेषज्ञसे हुई भेंट-वार्तापर आधारित)

'शरीरं व्याधिमन्दिरम्'—के अनुसार इस मानव-
रीरमें रोग होना स्वाभाविक है। सम्भवतः इसे
देखकर ऋषियोंने लोककल्याणार्थ व्याधिचिकित्साके
ये उपवेदोंमें आयुर्वेदको भी स्थान दिया।
आयुर्वेदमें कई रोगोंके निवारणार्थ सूर्यकिरण-सेवन
और सूर्यार्चनका विधान है। मानव सूर्यकिरणोंद्वारा
आरोग्य प्राप्त कर सकता है; यह मानकर एक
ख्यात आयुर्वेदज्ञ और रसायनवेत्ता डॉक्टरसे सम्पर्क
स्थापित कर 'सूर्यकिरणोंद्वारा स्वास्थ्यलाभ'-विषयपर
विस्तारसे चर्चा की तो उन्होंने इसपर विस्तृत
प्रकाश डाला, जिसका संक्षिप्तरूप यहाँ प्रस्तुत है।

प्रश्न—डॉ० साहब ! आप इस क्षेत्रके प्रख्यात
चिकित्सक हैं और सूर्यकिरणोंके माध्यमसे चिकित्सा
करते हैं; कृपया यह बताइये कि सूर्यकिरण
चिकित्सा-पद्धति प्राचीन है या नवीन ! यह पूर्ववर्ती
देन है या पश्चिमकी ! वर्तमानरूपमें इसे लानेका
श्रेय किसे है !

उत्तर—देखिये ! इसमें कोई संदेह नहीं कि
आयुर्वेदमें जहाँ रोगनाशहेतु औषधियोंकी बात
कही गयी है, वहीं प्रत्येक रोगके रोगनिवारक
देवताओंकी उपासनाका भी निर्देश है। इसके लिये
उसमें यन्त्र, मन्त्र और स्तोत्र भी वर्णित हैं। शिव-
प्रणीत शाबरमन्त्रोंमें भी अनेक रोगनाशार्थ मन्त्र कहे गये
हैं। जहाँतक सूर्य-किरण-चिकित्साकी बात है, यह
निःसंदेह हमारे देशकी प्राचीन [illegible] है।
वेदोंमें भी इसपर प्रकाश डाला गया है।
'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'—अर्थात् सूर्य ही स्थावर-

जङ्गमकी आत्मा हैं। अथर्ववेदके एक सूक्तमें भी कहा है कि तेरा हृदयरोग और पाण्डु (पीलिया, पीलक) रोग सूर्य-किरणोंके साथ सम्बन्ध करनेसे चला जायगा। जहाँतक आयुर्वेदमें सूर्योपासनाकी बात है उसमें भी चर्म और कफ रोगोंके निवारणार्थ इसपर बल दिया गया है। यदि आप विचार करें तो पायेंगे कि सूर्यकिरणें इस पृथ्वीपर कामधेनुस्वरूपा और कल्पवृक्षतुल्य हैं। सूर्यकिरण-चिकित्सा-पद्धति प्राचीन और भारतीय है। पर इसके गुणोंको पश्चिमवालोंने भी अपनाया। वे विटामिन 'डी'के प्राप्त्यर्थ इसे ही एकमात्र साधन बताते हैं। यही नहीं, अमरीकाके बहुत-से चिकित्सकोंने इसके सफल प्रयोग भी किये हैं।

पर यह भारतका अभाग है कि इसने आविष्कार तो बहुत किये; परंतु इसकी बौद्धिक दासताने सभी प्रयोग दबा दिये। मौर्य-गुप्त राजाओंके समयसे यूनानी चिकित्सा आने लगी। अंग्रेजोंके साथ एलोपैथी आयी। आयुर्वेद और उसके प्रयोग दबते ही रहे। इस आधारपर चर्चित चिकित्साको वर्तमान स्वरूपमें सर पब्लिशन होने लाये। उन्होंने अपनी 'आसमानी रंग और सूर्य-प्रकाश' नामक पुस्तकमें आसमानी रंगों और सूर्य-किरणोंसे कई रोग समाप्त करनेका वर्णन किया है। इसके बाद डॉ० पेनस्कॉटने अपनी (Blue and red lights) 'नीला और लाल प्रकाश' तथा डॉ० एडविन बेबिटने 'प्रकाश और रंगोंके नियम'-नामक पुस्तकमें इस पद्धतिपर प्रकाश डाला है और डॉ० रोबर्ट बोहलेन्ड साइबद्वारा अनेक दुःसाध्य रोगोंपर इसका सफल प्रयोग हुआ है।

अपने देशमें भी स्वनामधन्य स्व० स्वा० सरस्वती-नन्दने मराठीमें अपनी पुस्तक 'वर्ण-जल-चिकित्सा'में इसकी चर्चा चलायी। कुछ वर्ष पूर्व दिवङ्गत श्रीयुत गोविन्द बापूजी ढेगूने इस दिशामें सर्वाधिक महत्त्व प्रयोग कर इसकी अधिक ज्योतिसे लाभान्वित किया।

प्रश्न—डॉ० साहब ! सूर्यकिरणोंके माध्य[म] सभी रोग ठीक हो सकते हैं या कुछ विशेष ?

उत्तर—इस पद्धतिके उपचारमें नीले रंगके बुखार, पुरानी पेचिश, अतिसार, संग्रहणी, कास-श्वास, शिरःशूल, शिरोरोग, गर्मी, प्रमेह, मू[त्र] विस्फोटक, श्लीपद इत्यादि; लाल रंगके प्रयोगसे [स] वात-व्याधि, पीले रंगसे समस्त उदररोग, [स] हृद्रोग आदि; हरे रंगसे समस्त त्वचारोग और किम[धिक] प्रायः सभी रोग नष्ट हो सकते हैं।

इस पद्धतिका मुख्य तात्पर्य उस पद्धतिसे है जि[समें] लक्षाधिक ओषधियोंका प्रयोग न कर ओषधि-सेवन [और] संयम सबमें भानु-रश्मिकी प्रधानता हो और जिसमें सू[र्य]किरणोंसे निर्मित जल, तैल, दिव्य शर्करा और गोलि[यों]का प्रयोग हो, धूपस्नानका प्रयोग हो।

प्रश्न—अभी आपने तैल, शर्करा, दिव्य जल और गोलियोंकी बात कही। कृपया उन्हें निर्मित करनेकी संक्षिप्त विधि बतायें !

उत्तर—जल-विधि-इस पद्धतिके अनुसार उपचार करनेके लिये रोगानुसार विभिन्न रंगोंकी बोतलें लेनी चाहिये, जो सर्वथा स्वच्छ, पारदर्शी और दाग या धब्बेसे रहित हों। बोतलके रंगका ही उसका ढक्कन या कार्क (डाट) हो। फिर कूप, तालाब, नदी, झरना या चापाकल (हैण्डपाइप)का सर्वथा स्वच्छ जल चार परत मोटे कपड़ेसे छान लें। तब उसे किसी बोतलमें इतना भरें कि केवल चार अङ्गुल ऊपर वह खाली रह जाय। फिर बोतलको ढक्कनसे भली प्रकार बंद कर उसे धूलसे मुक्त छत और स्वच्छ स्थानमें एक लकड़ीकी पटिया अथवा चिनाई या चौकीपर रखें। उस स्थानपर पूर्वाह्न दस बजेसे अपराह्न तीन बजेतक सूर्य किरणें अच्छी तरहसे आती हों

और छाया न पड़ सके। पाँच बजते ही तत्काल बोतल धूपसे हटाकर बोतलके रंगके ही पतंगी कागजमें लपेट कर आल्मारीमें रख दे । धूपमें रखी बोतलोंमें धूपसे उष्णता पाकर जब रिक्त भागमें वाष्पबिन्दु एकत्र हो जाय तो उस जलको निर्मित मान लेना चाहिये । इस जलको रोग और मात्राके अनुसार पी भी सकते हैं और इसकी पट्टीद्वारा या इससे धोकर बाह्य उपचार भी कर सकते हैं। किंतु उपर्युक्त निर्देशका पालन अवश्य हो। त्रुटि हानिप्रद हो सकती है। यदि भूलसे बोतल सूर्यास्ततक वहाँ रह जाय अर्थात् उसपर चन्द्रमा आदिकी रोशनी पड़ जाय तो जल तत्काल फेंक देना चाहिये और बोतलको धो देना चाहिये। वैसे जल, शर्करा, गोलियाँ या तैल सभी चैत्रसे ज्येष्ठ मासतक तैयार करें; क्योंकि तब यथेष्ट किरणें मिलती हैं । जब कई रंगकी बोतलें धूपमें रखी हों तो उन्हें सटाकर नहीं रखना चाहिये । एक बोतलमें केवल एक बार जलादि तैयारकर उसमें तीन दिन-तक नहीं रखे, वरन् दूसरी श्वेत वर्णकी बोतलमें उलट दे। यदि कई बोतलें आल्मारीमें रखी हों तो उनपर उन्हीं रंगोंका कागज लपेट दे। एककी छाया दूसरे-पर न पड़ सके । एक दिनका तैयार जल केवल तीन दिनोंतक प्रयोग करे, फिर दूसरा बना ले।

तैल—शिरोरोगमें काचकी नीली बोतलमें शुद्ध तिल, नारियल या बादामका तेल और त्वचा-रोगोंमें हरे रंगकी बोतलमें केवल तिलका तेल पूर्वोक्त रीतिसे भरकर कार्क या ढक्कनमें रूई लपेटकर भलीभाँति बंद कर दे। उसे भी लकड़ीपर ही ९० दिनोंतक रखे। प्रतिदिन रूई बदलता रहे। तैयार हो जानेपर रंग मिल सकते हैं, पर रंग नहीं।

दिव्य शर्करा—अभीष्ट रंगकी बोतलोंमें दूधकी चीनी या पिसी मिश्री भरकर पूर्वोक्त विधानसे धूपमें रखे। शर्करा उसी बोतलमें रहने दे। जिस समय धूप न हो और धूपित जल उपलब्ध न हो, उस समय एक बड़ी श्वेत बोतलमें आधा सेर जलमें तीन माशा शर्करा घोल दे तो वह जल भी पूर्वोक्त धूपित जलके समान हो जायगा। सूखी शर्करा सेवन न करे।

गोलियाँ—होमियोपैथीकी दूधसे बनी सादी गोलियाँ (Suger of Milk) आवश्यकतानुरूप कई बोतलोंमें पन्द्रह दिनतक रखकर तैयार कर ले। वर्षाके समय पानी या शर्कराके स्थानपर इसकी एक या दो गोलियाँ मुखमें रखकर पानी पी लें।

धूप-स्नान—इसके विषयमें प्रायः सभी जानते हैं। पर यदि रोगीको कमरेमें स्नान कराना हो तो कमरे-की खिड़कियोंमें रोगानुसार काच लगा दे तो दिनभर रोगी धूप सेवन कर सकता है।

प्रश्न—डॉ० साहब ! कृपया यह बताइये कि क्या यह पद्धति अन्य पद्धतियोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है ? यदि हाँ, तो इसे सर्वसाधारणमें मान्यता क्यों नहीं प्राप्त है ?

उत्तर—देखिये भाई ! आज चमत्कारका युग है। शिशुसे वृद्धपर्यन्त सभी चमत्कार चाहते हैं। उन्हें प्राकृतिक चिकित्सा स्वीकार नहीं है। वे सद्यः प्रभाव चाहते हैं, भले ही वह किसी अन्य आपत्तिको जन्म दे दे। इस पद्धतिमें ऐसी बात नहीं है। यह सर्वसुलभ है, अल्पव्ययी है और गुणकारी भी है। पर विज्ञानद्वारा आलसी और सुखेच्छु मानव इतनी सावधानी और प्रयत्नका कार्य क्यों करे ! नहीं तो यह पद्धति उचित प्रकारसे प्रयुक्त होनेपर अमोघ सिद्ध हो सकती है। अतएव श्रेष्ठ है।

प्रेषक—श्रीअश्विनीकुमारजी श्रीवास्तव 'अनन्त'

प्राकृतिक चिकित्सा और सूर्य-किरणें

(लेखक—महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीभजनानन्दजी सरस्वती)

सम्पूर्ण सौर-मण्डलके प्रकाशक भगवान् सूर्य भारतीय परम्परामें देवरूप माने गये हैं। वेदमें भी चिकित्सा और ज्ञानकी दृष्टिसे सूर्यका वर्णन भिन्न-भिन्न स्थानोंमें आता है। ईशावास्योपनिषद्‌में आत्मारूपसे इनकी वन्दना की गयी है।

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह। तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ १६ ॥

'हे जगत्‌के पोषण करनेवाले, एकाकी गमन करनेवाले, संसारका नियमन करनेवाले, प्रजापति-नन्दन सूर्य! आप अपनी किरणोंको समेट लें; क्योंकि जो आपका कल्याणतम रूप है, उसे मैं देख रहा हूँ। यह जो आदित्यमण्डलस्थ पुरुष है, वह मैं हूँ। अर्थात् आत्मज्योतिरूपसे हम एक हैं। इस प्रकार आत्मारूपसे भगवान् सूर्यकी वन्दना की गयी है। इसके अतिरिक्त मानव-जीवनमें श्रीसूर्य और किरणोंका क्या महत्त्व है—यह भी छिपा नहीं है।

सामान्य जन तो उदयमें प्रकाश और अस्तमें अन्धकारकी कल्पना करके शान्त हो जाते हैं; किंतु शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक दृष्टिसे प्रतिक्षण सूर्यका सम्बन्ध हमारे जीवनसे रहता है। सूर्यके बिना क्षणभर भी रहना असम्भव है।

यदि यह कहा जाय कि सभीके जीवनका आधार सूर्य ही हैं तो अनुचित न होगा; क्योंकि हमारी सारी शक्तियोंके स्रोत सूर्य ही हैं और उन्हींके प्रभावसे सबका जीवन सुखमय बीतता है।

संसारकी सारी वनस्पतियाँ उन सूर्यकिरणोंद्वारा ही पुष्ट होती हैं, जिनके सहारे हमलोग जीवन धारण करते हैं। पौधे तथा हमलोग सूर्यसे अपने जीवनकी शक्ति प्राप्त करते हैं। दूध पीते समय जो प्रोटीन होता है, वह सूर्यकी किरणोंसे ही; क्योंकि गौ और सब्जियोंको कार्बोहाइड्रेटमें परिणत किये बि[ना] दूध नहीं दे सकती हैं।

प्रत्यक्षरूपसे भी सूर्य-किरणें मानव-जीवनको प्र[भावित] करती हैं। उनके रंगोंका प्रभाव हमारे ऊपर होता है। रंगकी किरणोंका अधिक महत्त्व है, व[े] रंगोंका समूह, जो हमारे वातावरणको बनाता [है,] उनको वे रूप देती हैं। रंगके प्रति जो हमारी [प्रति]क्रियाएँ होती हैं, वे महत्त्वपूर्ण हैं; क्योंकि वे [हम] लोगोंके न केवल शरीरको प्रभावित करती हैं, अ[पितु] उनका मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी हमपर पड़ता है। [इस] बातका प्रत्येकने अनुभव किया होगा कि जब बादल [या] धूल वातावरणमें रहते हैं और उनके बीचसे सूर्यक[ी] किरणें आती हैं, तब कैसा अच्छा लगता है। कितना हमारी मनोदशा तथा जीवनकी स्थितिपर रंगका गहरा प्रभाव पड़ता है। हम हरे-भरे रंगको देखकर स्वयं भी हरे-भरे हो जाते हैं।

यह प्रयोगद्वारा देखा गया है कि नीले रंगका प्रभाव ठंडा होता है। लाल रंगसे उष्णता और तेज रंगसे घरमें तथा कारखानेमें काम करनेकी स्फूर्ति पैदा होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रंगका जो भावात्मक प्रभाव पड़ता है, उसीपर चिकित्सा करनेका एक सिद्धान्त बनाया गया है। मनकी स्वस्थताका प्रभाव शरीरपर प्रत्यक्षतः पड़ता है।

प्रत्यक्षरूपसे जिस कारणको हम प्राप्त करते हैं, वह हमारे लिये मूल्यवान् है, किंतु अदृश्य किरणें भी हमारे लिये अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। वर्णक्रमके अन्तमें जो लाल रंग रहता है, वहाँ तापक इन्फ्रा-रेड किरणें रहती हैं। ये ही किरणें हमारी पृथ्वीको गरम रखती हैं। ये बेधनेवाली किरणें हैं। जैसे-जैसे ताप बढ़ने लगता है, वैसे-वैसे

रयोकेमिकल क्रिया तेज होती जाती है। इसी कारण हम शीत ऋतुकी अपेक्षा ग्रीष्म ऋतुमें योग्यतापूर्ण कार्य करनेकी विशेष क्षमता प्राप्त करते हैं।

प्रभातकालीन सूर्यके सामने नंगे बदन रहना स्वास्थ्यके लिये अत्यधिक लाभदायक है। प्राकृतिक चिकित्सामें शरीरके आन्तरिक एवं बाह्य रोगोंमें रोगीको सूर्य-स्नान कराया जाता है। इस चिकित्सामें सूर्यकी अनेक महत्त्वपूर्ण क्रियाओंमें सूर्यस्नान अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है।

यह सूर्यस्नान दोपहर होनेसे पहले किया जाता है। इस प्रयोगमें स्नानकर्ताको अपने सिरके ऊपर ठंडे जलसे भीगा हुआ एक तौलिया अवश्य रखना चाहिये। साथ ही नंगे बदन होकर एक गिलास जल पी लेना भी आवश्यक है। फिर नंगे बदन सिरपर भींगे हुए तौलिये-सहित धूपमें चला जाय। गर्मीमें १५-२० मिनटतक एवं सर्दीमें ३०-३५ मिनटतक वहाँ रहना चाहिये। समयानुसार धूपमें रहकर पुनः तुरंत ठंडे जलसे स्नान करनेका विधान है। बादमें शरीरको पोंछकर कुछ देर विश्राम करके लगभग एक घंटे पश्चात् भोजन करे। इस स्नानसे शरीरके सभी चर्मरोग नष्ट हो जाते हैं। कुष्ठरोग तथा पाचन क्रियाके लिये एवं नेत्रज्योति और श्रवण-शक्ति आदि बड़े-बड़े रोगोंके लिये यह वरदान सिद्ध हुआ है। यहाँ सूर्यसे कुष्ठरोग विनष्ट होनेका एक ही प्रचलित उदाहरण देना पर्याप्त होगा। भारतीय संस्कृत भाषाके सुप्रसिद्ध गद्य-साहित्यकार बाणभट्टके साले मयूरभट्ट एक बार कुष्ठरोगसे पीड़ित हो गये। सूर्योपासनासे उनका यह रोग समूल विनष्ट हो गया। क्या आपने कभी विचार किया कि किसानलोग अधिकतर बीमार क्यों नहीं पड़ते? मुख्यतः कारण यही है कि ऊपरसे पड़ती धूपमें काम करनेवाले किसानका सूर्य-स्नान प्रतिदिन होता है। कभी धूप तो कभी वर्षा—ऐसी स्थितिमें सूर्य-स्नान स्वतः हो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सामें रोगीको सूर्यका पूरा-पूरा लाभ उठानेके लिये उषाकालमें प्रतिदिन उठना चाहिये। उषाकालकी सुखद वायु एवं प्रभातकालीन सूर्यकी रश्मियोंका सेवन करनेवाला व्यक्ति सदैव नीरोग रहता है।

इतना ही नहीं, सूर्यकी किरणोंद्वारा विटामिन डी० की उत्पत्ति होती है। वर्णक्रमके अन्तिम छोरके गुलाबी रंगपर अदृश्य अल्ट्रावायलेट किरणें रहती हैं। जब ये किरणें त्वचातक पहुँचती हैं, तब हम उन्हें शोषित करते हैं। वे त्वचाके नीचे एक प्रकारके तैलयुक्त पदार्थद्वारा शोषित की जाती हैं। उन किरणोंकी शक्तिसे त्वचाके बीच रहनेवाले पदार्थ विटामिन 'डी'में परिणत किये जाते हैं। यही एकमात्र विटामिन है, जिसको हम अपने आप तैयार करते हैं तथा जो हमारे लिये आवश्यक है। उसी विटामिनके द्वारा शरीर मुख्य खनिज तत्त्वोंको व्यवहारमें लाता है—विशेषकर कैल्शियम और फास्फोरसको। इनके द्वारा शरीरकी संरचना, हड्डियाँ और दाँत इत्यादिके निर्माण होते हैं। इन्हींके द्वारा शरीरकी क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं।

वर्षा-ऋतुका जल छोटे-छोटे गड्ढोंमें भरकर गंदा हो जाता है। वही जल एक दिन सूर्यकी किरणोंद्वारा वाष्प बनकर जब बादलोंके द्वारा पुनः बरसता है तो गङ्गाजलके सदृश निर्मल हो जाता है। इसे विज्ञानमें शक्ति-जल कहते हैं। यह बड़ी-बड़ी ओषधियोंके काम आता है।

ऊपरकी बातोंको ध्यानमें रखकर हम जितना अधिक समय सूर्यकी किरणमें खुले बदन व्यतीत करेंगे, उतना ही हमारे लिये लाभप्रद होगा। हम कितनी ही अधिकमात्रामें पशुसे उत्पादित 'डी' विटामिन प्राप्त करें, आगसे सूर्यके बदले उष्णता प्राप्त करें और रंगके लिये विद्युत्का उपयोग करें, किंतु प्रत्यक्षरूपसे सूर्यकी किरणोंमें स्नान करनेसे जो पूर्ण लाभ प्राप्त होता है, वह इन साधनोंसे किसी हालतमें प्राप्त नहीं हो सकता। सूर्यकी किरणोंसे हमें न केवल रोशनी, उष्णता और स्वास्थ्यप्रद विटामिन 'डी' प्राप्त होते हैं, अपितु उससे टॉनिक भी प्राप्त होता है, जो हमारे शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये क्रियाशील बनाता है।

ज्योतिष और सूर्य

(लेखक—स्वामी श्रीसीतारामजी ज्योतिषाचार्य, एम्० ए०)

ज्योतिष शास्त्रके अनुसार सम्पूर्ण विश्व ही राशि-नक्षत्र और ग्रहोंसे प्रभावित होता है। इसमें सूर्य एक महान् नक्षत्र और ग्रहोंके राजा कहे गये हैं; अतः सूर्यका ज्योतिष शास्त्रमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह शास्त्र आकाशमें ग्रहोंकी दृश्य स्थितिका निर्देशक है—उसके अनुसार सूर्य अन्य ग्रहोंकी भाँति किसी-न-किसी राशिमें दृष्टिगोचर होते हैं; अतएव ज्योतिषमें सूर्यको एक ग्रह माना गया है। पृथ्वीसे देखनेपर विभिन्न समयोंमें सूर्य राशि-चक्रके विभिन्न भागोंमें दृष्टिगोचर होते हैं। इसको हम सूर्यद्वारा विभिन्न राशियोंका भोग कहते हैं। एक राशिपर सूर्य एक मास रहते हैं। इस समयको सौर-मास कहा जाता है। अक्षांश और देशान्तर-भेदसे भिन्न-भिन्न स्थानोंका उदयकाल एवं दिनमान अलग-अलग होता है।

सूर्य आत्माके अधिष्ठाता हैं; अतः जातकका आत्मबल सूर्यसे देखा जाता है। उनके जगत्-पिता होनेके कारण जातकका पितृ-सुख भी जन्म-कुण्डलीमें सूर्यकी स्थितिसे देखते हैं। काल-पुरुषके शीर्ष-भागपर सूर्यका आधिपत्य माना गया है। सूर्य पित्तके अधिपति भी हैं। ये पुरुषग्रह, पूर्व दिशाके स्वामी, अग्नि-तत्त्व-वाले, क्षत्रिय वर्ण तथा ताम्र रंगवाले क्रूर ग्रह हैं। सिंहराशिके स्वामी हैं। मेष सूर्यकी उच्च और तुला नीच राशि है। मेषके दश अंशतक परमोच्च एवं तुलाके दश अंशतक परम नीच माने जाते हैं। सिंह-राशिके बीस अंशतक सूर्यका मूल त्रिकोण तथा उसके बाद तीस अंशतक स्वराशि होती है। चन्द्र, मङ्गल और गुरु सूर्यके मित्र, बुध सम तथा शुक्र-शनि शत्रु होते हैं।

विभिन्न भावगत सूर्यका फल

सूर्य यदि चारों केन्द्रों तथा दोनों त्रिकोणों एक भावके स्वामी होकर त्रिकोण, केन्द्र तथा लग्न स्थित होते हैं, तो वे लाभ देते हैं। द्वितीय, षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश भावके स्वामी सूर्य अकारक होते हैं तथा अपनी दशामें हानि करते इसके अतिरिक्त सिंह और मेष राशिके सूर्य ब तथा तुला राशिके सूर्य दुर्बल माने जाते हैं।

यदि लग्नमें सूर्य बैठे हों तो जातक कठोर, सिर रोगी, स्त्री और सहोदरसे कलह करनेवाला होता है, उ शरीरमें पित्त-वातजन्य पीड़ा और परदेशमें व्यापा धन-हानि होती है। सूर्य यदि मेष राशिके हैं, विद्या और धनदाता तथा सिंह राशिके हैं तो शरी सुखके साथ रतौंधी करते हैं। तुलाके सू शारीरिक कष्टके साथ जातकको राजपत्रित अधिकारी बनाते हैं।

द्वितीय भावमें सिंहके सूर्य लाभदायक तथा तुलाके सूर्य भयङ्कर रूपसे धन हानि करते हैं। अन्य राशियों-के सूर्य भी धन हानि एवं कुटुम्ब हानि करते हैं। तृतीय भावमें सूर्य जातकको पराक्रमी बनाते हैं। कुम्भ राशिके सूर्य भाग्यशाली भी बनाते हैं। चतुर्थ भावमें सूर्य सुखमें बाधा डालते हैं। तुलाके सूर्य बार-बार स्थानान्तर करवाते हैं। सिंहके सूर्य जमीन-जायदाद तथा मातृ-सुख देनेवाले होते हैं।

पञ्चम भावमें सूर्य उदररोग और संतान-कष्ट देते हैं, पर जातकमें सूझ-बूझ अच्छी होती है। षष्ठ भावमें सूर्य शत्रुपर विजय दिलवाते हैं। सप्तम भावमें सूर्य हों तो स्त्रीसे संताप, शरीरमें पीड़ा तथा दुष्टलोगोंद्वारा मनमें

है। इस योगवाला व्यक्ति सुखी, धनी तथा ऐश्वर्यवान् होता है।

७–राजभङ्गयोग—यदि सूर्य तुला-राशिमें दस अंशके अन्तर्गत हों तो राजभङ्ग योग बनता है। इस योग-वाला व्यक्ति दुःखी, उद्विग्न, मानसिक चिन्ताओंसे ग्रस्त तथा दरिद्री होता है। ऐसा व्यक्ति राजसुख नहीं भोगता।

८–अन्धयोग—सूर्य और चन्द्रमा—ये दोनों ग्रह बारहवें भावमें हों तो अन्धयोग बनता है। ऐसे योगमें उत्पन्न व्यक्ति अन्धा हो सकता है।

९–उन्मादयोग—यदि लग्नमें सूर्य तथा सप्तम भावमें मङ्गल हों तो उन्मादयोग बनता है। ऐसा व्यक्ति गप्पी तथा व्यर्थका वार्तालाप करनेवाला—बावूनी होता है।

१०–यदि पञ्चम भावमें कुम्भ-राशिके सूर्य हों तो वे जातकके बड़े भाईका नाश करते हैं।

११–तृतीय भावमें स्वगृही सूर्यके साथ यदि शुक्र स्थित हों तथा उसपर शनिकी दृष्टि पड़ती हो तो छोटे भाई तथा पिताकी हानि होती है।

१२–यदि सूर्य तथा चन्द्रमा नवम भावमें स्थित हों तो पिताकी मृत्यु जलमें होनेकी संभावना रहती है।

१३–जन्म वृष लग्नका हो तथा सूर्य निर्बल होकर राहु एवं शनिसे दृष्ट अथवा युक्त हों तो व्यक्तिका कई बार स्थानान्तरण होता है तथा राजकीय सेवामें कई उत्थान-पतन देखने पड़ते हैं।

१४–यदि पञ्चम भावमें तुला राशिके सूर्य हों तो जातक हड्डियोंके रोगसे पीड़ित रहता है तथा उसे जीवनमें कई बार चोट लगती है।

१५–यदि मिथुन लग्नमें अकेले केतु हों तथा सूर्य चतुर्थ, सप्तम या दशम भावमें हों तो व्यक्ति पराक्रमी एवं तेजस्वी होता है।

१६–द्वितीय भावमें कर्क राशिके सूर्य और चन्द्रमा मङ्गलसे दृष्ट हों तो दृष्टिनाशक योग बनता है।

१७–मिथुन लग्नका जन्म हो और सूर्य एकादश भावमें हों तो व्यक्ति उच्च महत्त्वाकांक्षी, श्रेष्ठतम लोगोंसे सम्पर्क रखनेवाला होता है।

१८–कर्क लग्नका जन्म हो और सूर्य दशम स्वगृही होकर मङ्गलके साथ स्थित हों तो जातकका राजयोग बड़ा प्रबल होता है। वह नृपतुल्य होता है।

१९–दशम भावमें मेष राशिके उच्च सूर्य जातकको राजाके समान प्रभावशाली बनाते हैं।

२०–यदि लग्नमें स्वगृही सूर्य हों तो व्यक्ति स्वाभिमानी, प्रशासनमें कुशल तथा राज्यमें उच्च पदका अधिकारी होता है।

२१–यदि तुला राशिके सूर्य लग्नमें हों तो व्यक्ति राजासे सम्मान पानेवाला अधिकारी होता है।

२२–वृश्चिक लग्नका जन्म हो, सूर्य छठे या दशम भावमें हों तो जातकका पिता विख्यात कीर्तिमान होता है।

२३–धनुलग्नका जन्म हो, सूर्य दशम भावमें बृहस्पतिके साथ हों तो व्यक्ति श्रेष्ठ प्रशासक होता है।

२४–यदि सप्तम भावमें स्वगृही सूर्य हों तो उस पुरुषकी स्त्री साहसी, लड़ाकू तथा दृढ़ विचारोंवाली होती है।

२५–यदि नीच (तुला) राशिके सूर्य नवम भावमें हों तो उस पुरुषकी पत्नी अल्पायु होती है।

२६–यदि तृतीय भावमें मेष राशिके सूर्य हों तो व्यक्ति निश्चय ही उच्च विचारोंवाला तथा किसी बड़े पदका अधिकारी होता है।

२७–यदि द्वितीय भावमें उच्च राशिके सूर्य हों तो जातकके मामा यशस्वी, धनी तथा कुलमें श्रेष्ठ होते हैं।

२८–यदि मेष लग्नका जन्म हो तथा षष्ठेशसे युक्त सूर्य छठे या आठवें भावमें हों तो जातक राज रोगवाला होता है।

२९—यदि मेष जन्म लग्न हो एवं सूर्य तथा शुक्र लग्न या सप्तम भावमें हों तो जातककी स्त्री वन्ध्या होती है।

३०—लग्नसे दशम भावमें रहनेवाले सूर्य पितासे धन दिलवाते हैं।

३१—यदि मेष लग्नमें सूर्य और चन्द्रमा एक साथ बैठे हों तो राजयोग बनाते हैं।

३२—यदि मेष लग्नमें सूर्य हों तथा एकादश भावमें शनि बैठे हों तो व्यक्तिके पैरोंमें चोट लगती है।

३३—यदि मेष लग्नमें शनि तथा छठे भावमें सूर्य हों तो जातक आजन्म रोगी बना रहता है।

३४—दशम भावके मेषलग्नमें स्थित सूर्य जातकको योगकी कलामें निपुण बनाते हैं।

३५—यदि जन्म-कुण्डलीमें सूर्य वृश्चिकके तथा शुक्र तुलाके हों तो उस व्यक्तिको ससुरालसे धन प्राप्त होता है।

३६—यदि चतुर्थ भावमें वृश्चिक राशि हो तथा उसमें सूर्य और शनि एक साथ बैठे हों तो जातकको वाहन-सुख प्राप्त होता है।

३७—यदि सूर्य लग्नमें स्वगृहीके हों तथा सप्तम भावमें मङ्गल हों तो जातकको उन्मादरोग होता है।

३८—वृश्चिक लग्नवाली कुण्डलीके तृतीय भावमें यदि सूर्य हों, लग्नमें स्थित शनिकी दृष्टि पड़ती हो तो जातकको हृदयरोग होता है।

३९—यदि लाभस्थानमें सूर्य नीच राशिके हों और उनके दोनों ओर कोई ग्रह न हो तो दारिद्र्ययोग बनता है।

४०—यदि पञ्चम भावमें उच्च राशिस्थ सूर्यके साथ बुध बैठे हों तो जातक धनवान् होता है।

४१—यदि धनु लग्न हो और उसमें सूर्य एवं चन्द्रमा साथ बैठे हों तो दारिद्र्ययोग बनता है।

४२—कुम्भ राशिके सूर्य लग्नमें हों तो व्यक्तिको दादका रोग होता है।

४३—यदि दशम भावमें कुम्भ लग्नके सूर्य हों तथा चतुर्थ भावमें मङ्गल हों तो जातककी मृत्यु सवारीसे गिरनेके कारण होती है।

ज्योतिषमें सूर्यका पारिभाषिक संक्षिप्त विवरण

सूर्य ग्रहराज हैं। सदा 'मार्गी (अनुक्रम—सीधी गतिसे चलनेवाले) हैं, ये कभी 'वक्री' नहीं होते। ये सिंह राशिके स्वामी हैं। इनका 'मूलत्रिकोण' भी सिंह राशि ही है। सिंह (चक्रके ५वें स्थान) में 'स्वगृही' कहे जाते हैं। इनकी उच्च राशि मेष और नीच तुला है। ये एक राशिपर १२ मास रहते हैं। सूर्य क्षत्रिय वर्ण, सत्त्वगुणी, लाल-कृष्णवर्णके एवं स्थिर स्वभावके गोल (चमत्कार) क्रूरग्रह हैं। ये राजविद्याके अधिष्ठाता, जगत्‌के पिता, आत्माके अधिकारी माने गये हैं। इनका रत्न माणिक्य और धातु ताँबा है।

सूर्य अन्य ग्रहोंकी भाँति अपने स्थानसे सातवेंमें स्थित ग्रहोंको पूर्णतः देखते हैं, किंतु तृतीय और दशममें स्थित ग्रहको एकपाद, पञ्चम एवं नवममें स्थितको द्विपाद, चतुर्थ-अष्टममें स्थित ग्रहको त्रिपाद-दृष्टिसे [illegible] देखते हैं। इनके पुत्र शनि सब ग्रहोंसे [illegible] बली माने गये हैं [illegible]। सूर्यके चन्द्र मङ्गल बृहस्पति मित्र, बुध सम [illegible]) शनि और राहु हैं। [illegible] परंतु सूर्य [illegible] मिश्रितसे फलदा[illegible] [illegible]ते हैं।

जन्माङ्गपर सूर्यका प्रभाव

(लेखक— ज्योतिषाचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

ज्योतिर्विज्ञानके फलित-विभागमें 'जातक' ग्रन्थोंका विशेष महत्त्व है । जातकोंका विशेष महत्त्व इसलिये है कि उनसे मानव अपने भविष्यका चिन्तन करता है । वह अपने सुखद भविष्यकी कल्पनासे प्रसन्न हो जाता है और दुःखद भविष्यकी बातको समझकर उपायमें लग जाता है । जातकको फलित ज्योतिषका यह जातक-अंश फल बतलाकर सावधान कर देता है । शिशु जब धरतीपर आता है, उस समय कौन लग्न किस अंशपर है, इसीको आधार मानकर जन्माङ्ग बनाया जाता है और लग्नका विचार-कर सूर्यादि ग्रहोंकी स्थिति स्पष्ट की जाती है । जन्माङ्ग-चक्रमें ग्रहोंको स्थापित करके फलका विचार किया जाता है । प्रस्तुत प्रकरणमें ग्रहाधिपति सूर्यदेवका जन्माङ्गके ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है ? इसपर संक्षिप्त विचार किया जा रहा है । यह तो सर्वविदित है कि सूर्य ग्रहोंके अधिपति हैं । ग्रहोंके राजा होनेके नाते सूर्य समस्त राशियोंपर अपना विशेष प्रभाव दिखलाते हैं; किंतु सिंहराशिपर सूर्यका विशेष प्रभाव पड़ता है ।

जन्माङ्गमें बारह भाव या स्थान होते हैं । तन, धन, सहज, सुख, पुत्र, शत्रु, जाया, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय और व्यय—ये बारह भाव हैं । इन बारह भावोंसे मानवके समस्त जीवन-प्रसङ्गोंका विचार होता है । तन-धन नाम केवल संकेतमात्र हैं । इतना ध्यानमें रहे कि केवल एक ही भावके आधारपर सम्पूर्ण विचार नहीं होते । इन सब बातोंका विचार करनेके लिये ग्रहोंके स्थान-बल, उनका दृष्टि-बल, आपसमें अन्य ग्रहोंकी मित्रता और शत्रुता, समता, एक दूसरेसे अन्यका सम्बन्ध देखकर ही फल-विचार होता है । सूर्य कई कारणोंसे अशुभ ग्रह माने गये हैं । सूर्य सर्वदा सभी स्थानों या भावोंमें अपना अशुभ फल ही नहीं देते, उत्तम फल भी देते हैं । संक्षेपमें बारह भावोंमें सूर्यका सामान्य प्रभाव निम्न होता है ।

लग्न—सूर्य यदि लग्नमें पड़े हों तो बालक आकारमें लम्बा, मर्यादा-स्वभाव, गर्म प्रकृतिका होता है और प्रायः वात, पित्त, कफसे पीड़ित रहता है । ऐसे बालकको अपनी बाल्यावस्थामें अनेक पीड़ाएँ भुगतनी पड़ती हैं तथा उसकी आँखोंमें भी कष्टकी आशङ्का बनी रहती है । स्वभावसे जातक वीर, क्षमाशील, कुशाग्र-बुद्धि, उदार, साहसी, आत्मसम्मानी होता है । वह क्रोध तो करता ही है, कभी-कभी क्रोधावेशमें सनकीकी भाँति आचरण करने लगता है । उसके सिरमें चोट लगनेकी भी सम्भावना रहती है । हाँ, ये अनिष्ट फल विशेषतया तब घटित होते हैं, जब सूर्यदेव किसी दुःखद ग्रहके साथ हों या शत्रु-ग्रहके साथ हों अथवा शत्रुके गृहमें हों; तब सभी अनिष्ट फल घटते हैं अन्यथा अनिष्ट फल विलीन भी हो जाते हैं । यदि सूर्यभगवान् मेष राशिगत होकर लग्नमें हों तो जातकको नेत्ररोग अवश्य होता है; किंतु धनकी कमी नहीं रहती । सूर्य यदि बलवान् ग्रहसे देखे जाते हों तो जातक विद्वान् भी होता है । यदि सूर्य तुला राशिगत हों तो वह बालक विशेष नेत्ररोगसे प्रभावित होता है ।

द्वितीय भाव—द्वितीय भावमें सूर्यके रहनेसे बालक अपने जीवनमें मित्र-विरोधी बनता है, उसे वाहनका सुख नहीं मिलता है । ऐसे जातकको राजाकी ओरसे दण्ड मिलता है । नेत्रकष्ट और शरीरमें विकार होता है शिक्षामें रुकावट होती है । जातक हठी और चिड़चिड़े स्वभावका होता है । पुत्र-सुख भी मिलता है । नेत्ररोग भी होता है ।

तृतीय भाव—तृतीय भावमें रहकर सूर्य अपना उत्तम प्रभाव दिखलाते हैं । जातक पराक्रमी, कुशाग्रबुद्धि

…गी होता है । धन-धान्य एवं नौकरोंसे युक्त … सम्मानित होता है । उसके सगे भाइयोंकी … कम होती है । सूर्य यदि पापग्रहोंसे युक्त हों तो … और अग्निसे भय तथा चर्मरोगकी सम्भावना होती है । यदि पापग्रहसे युक्त हों या पापग्रहसे दृष्ट हों … इकी मृत्यु होती है, कोई एक बहन विधवा भी हो … है । कभी-कभी भाई या बहनकी मृत्यु विष या … से होती है । हाँ, ऐसा जातक धनवान् होता … ग्रहोंके अन्य प्रभावसे अग्रजकी मृत्यु अल्प समयमें … ती है ।

चतुर्थ भाव—चतुर्थ भावमें सूर्यके रहनेपर जातक … क चिन्तायुक्त होता है । जातकका शरीर क्षीण … कृत अवयवका होता है । जातक आत्मीय जनोंसे … खता है, घृणा करता है और घमण्डी तथा … होता है । उसकी ख्याति भी बढ़ती है । … कई स्त्रियाँ होती हैं । यह सब होते हुए भी जातक धन-सुखसे रहित होता है । वह … सम्पत्तिसे वञ्चित होता है । यदि चतुर्थ … का स्वामी बली ग्रहोंसे युक्त हों या लग्न, … सप्तम या दशम किसी भी केन्द्रस्थानमें हों तो … को वाहनादि सुखकी प्राप्ति होती है । यदि … का स्वामी केन्द्रके अतिरिक्त त्रिकोणगत भाव अर्थात् … पञ्चम अथवा नवमगत हो तो भी जातकको … दि सुखकी प्राप्ति होती है ।

पञ्चम भाव—यदि सूर्य पञ्चम स्थानगत हों तो जातक … संतानोंवाला होता है । उसका शरीर मोटा होता … , वह शिव या शक्तिका पूजक होता है । जातक सक्रियाशील रहता है, किंतु उसका चित्त उद्भ्रान्त रहता है । ऐसा जातक सुख एवं सुतसे रहित भी होता है । वह वातरोगसे पीड़ित होता है । … गत हों, अर्थात् वृष, … … पञ्चम …

चर राशिगत सूर्य होनेसे अर्थात् मेष, कर्क, तुला, मकर राशिगत सूर्यके होनेसे जातककी संतानका नाश नहीं होता । ऐसे जातककी स्त्रीका कभी-कभी गर्भपात भी हो जाता है । पञ्चम स्थानका स्वामी यदि बलवान् ग्रहोंके साथ हों तो जातकको पुत्रका सुख मिलता है, यदि सूर्य पापग्रहोंके साथ हों या उनपर पापग्रहकी दृष्टि पड़ती हो तो उसको कन्याएँ अधिक होती हैं । पञ्चमस्थ सूर्यपर यदि शुभ ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जातक-को पुत्र-सुख मिलता है ।

षष्ठ भाव—षष्ठ भावगत सूर्य होनेसे जातकको अत्यन्त सुखकी प्राप्ति होती है । जातक बलवान्, शत्रुपर प्रभाव दिखलानेवाला, विद्वान्, गुणवान् और तेजस्वी होता है । वह राजपरिवारसे सम्मानित होता है और सुन्दर वाहनोंसे युक्त होता है । षष्ठ स्थानगत सूर्य यदि बलवान् ग्रहोंसे युक्त हों तो जातक नीरोग होता है । छठे स्थानका स्वामी यदि बलहीन होता है तो शत्रुका नाश होता है ।

सप्तम भाव—सप्तम स्थानमें सूर्यके रहनेसे जातकका शरीर दुबला तथा मझोला होता है । वह मनसे चञ्चल, पापकर्मलीन और भययुक्त होता है, स्त्रीविरोधी और पर-स्त्रीप्रेमी होता है । दूसरोंके घर भोजन करनेमें वह दक्ष होता है । एक स्त्रीसे अधिक सम्बन्ध होते हुए दूसरीसे भी सम्बन्ध बनाये रहता है । वह राज्य-सरकारके कोपसे कष्ट पाता है । पर सिंह राशिगत सूर्य यदि बली हों तो जातकको एक ही स्त्री होती है ।

अष्टम भाव—सूर्य यदि अष्टम भावगत हों तो जातक बुद्धि-विवेकहीन, शरीरका दुबला और अल्प संतान-वाला होता है । उसको नेत्ररोग भी होता है । … रहती है तथा शत्रु बहुत सताते … दर्दकी सम्भावना रहती है । यदि … हों तो उसे कृषिकर्ममें सफलता

मिलती है और यदि उच्चका हो अर्थात् मेष राशिगत हों तो जातक दीर्घजीवी होता है।

नवमभाव—सूर्य यदि नवम भावगत हों तो जातक मित्र और पुत्रसे सुखी होता है। वह मातृकुलका विरोधी और पिताका भी विरोधी होता है; किंतु देवोंकी पूजा करता है। जातक अच्छी सूझ-बूझका उदार व्यक्ति होता है; किंतु पैतृक सम्पत्तिका त्याग करता है। ऐसा जातक यशस्वी तथा मितव्ययी होता है। उसकी कृषि उत्तम होती है। जातकके भाई नहीं होते हैं। यदि भाई हों तो जातकसे उनका सम्बन्ध नहीं रहता। सूर्य यदि उच्च अर्थात् मेष राशिगत हों अथवा सिंह राशिगत हों तो उसका पिता दीर्घायु होता है। उत्तम ग्रहोंके सहयोगसे जातक देवताओं और गुरुजनोंका पूजक होता है। सूर्यके तुला राशिगत होनेपर जातक भाग्यहीन और अधार्मिक होता है तथा यदि पापराशिगत हों या शत्रुगृही हों तो पिताके लिये अनिष्टकर होते हैं। शुभग्रहोंसे दृष्ट सूर्य पिताको आनन्द देते हैं।

दशमभाव—दशम भावगत सूर्यके होनेसे जातक बुद्धिमान्, धन-उपार्जनमें चतुर, साहसी और संगीतप्रेमी होता है, वह साधुजनोंसे प्रेम करता है, राजसेवामें तत्पर एवं अतिसाहसी होता है। वह पुत्रवान् और वाहन-सुखसे सम्पन्न होता है। स्वस्थ और शूरवीर भी होता है। सूर्य यदि मेषराशिके हों या सिंहराशिके हों तो यशस्वी भी होता है। ऐसा जातक धार्मिक स्थानके निर्माणसे यश प्राप्त करता है। सूर्य यदि पाप ग्रहोंसे युक्त हों तो जातक आचरणभ्रष्ट हो जाता है।

एकादशभाव—सूर्य एकादश भावगत हों तो जातक यशस्वी, मनस्वी, नीरोग, ज्ञानी और संगीतविद्यामें निपुण एवं रूपवान् तथा धन-धान्यसे सम्पन्न होता है। वह [illegible] है। ऐसा जातक सेवकजनोंपर प्रीति करनेवाला होता है। यदि सूर्य मेष या सिंहराशिगत हों तो जातकको राजा आदिसे धनकी प्राप्ति होती है। ऐसे जातकको सद्भावसे भी धन मिलता है।

द्वादशभाव—द्वादश भावगत सूर्यके होनेसे जातक पिताविरोधी, अतिव्ययी, अस्थिरबुद्धि, पापाचरणमें लीन, धनकी हानि करनेवाला, मनका मलीन, नेत्ररोगी और दरिद्र भी होता है। ऐसे जातकसे लोकविरोधी कार्य हो जाते हैं। वह दरिद्रताके कारण भी कष्ट पा जाता है। यदि बारहवें स्थानके स्वामी कोई शुभ ग्रह हों तो वह जातक किसी देवताकी सिद्धि प्राप्त कर लेता है, पर सूर्यके साथ कोई दुष्ट ग्रह हो तो वह जातक सदा अनैतिक कामोंमें अपना धन व्यय करता है। यदि सूर्यके साथ षष्ठ स्थानके स्वामी बैठे हों तो उस जातकको कुष्ठ-रोगसे कष्ट होता है। इस प्रकार सूर्यके भावगत फलको जानना चाहिये।

जन्माङ्गमें विभिन्न राशिगत सूर्यका फल

तन, धन, सहज आदि विभिन्न भावोंमें सूर्यके रहनेका फल जाननेके बाद विभिन्न राशिगत सूर्यका संक्षिप्त फल निम्न प्रकारसे है—

मेष—मेषराशिगत सूर्यके होनेपर जातक साहसी, भ्रमणशील और चतुर तथा धनी परिवारका सदस्य, किंतु रक्त एवं पित्तके विकारोंसे पीड़ित होता है। सूर्य यदि अपनी उच्च राशि मेषमें परमोच्च अंशतक हों तो जातक परम धनी होता है। सूर्य मेषमें दश अंशतक परमोच्च माने जाते हैं। सूर्यके प्रभावसे जातक अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाला होता है।

वृष—वृषराशिगत सूर्यके होनेसे जातक उ[illegible] वस्त्र धारण करनेवाला एवं सुगन्धित पदार्थोंको धा[illegible] करनेवाला होता है। ऐसे जातकके पास चतुष्पदों[illegible] सुख अधिक रहता है। ऐसे जातकको स्त्रियोंसे शत्रु[illegible]

है। वह समयानुसार योग्य कार्य सम्पादित करता ऐसे जातकको जलसे भयकी सम्भावना रहती है।

मिथुन—मिथुन राशिगत सूर्यके प्रभावसे जातक शास्त्रका ज्ञाता होता है। विद्वान्, धनी एवं वंशमें प्रख्यात होता है। ऐसा जातक नीतिमान्, ी और शीलवान् होता है। जातक सूर्यके प्रभावसे भाषी, वक्ता एवं धन तथा विद्याके उपार्जनमें ी होता है।

कर्क—कर्कराशिगत सूर्यके कारण जातक क्रूर वाला, निर्दयी, दरिद्र, किंतु परोपकारी भी होता ऐसे जातकको पितासे विरोध रहता है।

सिंह—सिंह राशिगत सूर्य अपने राशिमें रहनेके म जातकको विशेष प्रभावित करते हैं। ऐसा जातक , कलाविद्, पराक्रमी, स्थिरबुद्धि और पराक्रमी है तथा कीर्ति प्राप्त करता है। वह प्राकृतिक शोंसे प्रेम करता है।

कन्या—कन्याराशिगत सूर्यके होनेसे जातक कला, काव्य एवं गणित आदि विद्याओंमें रुचि वाला होता है। ऐसा जातक संगीतविद्यासे भी प्रेम ा है और राजासे सम्मानित होता है। यह सब होते भी ऐसा जातक यदि पुरुष है तो उसकी मुखाकृति के समान और यदि स्त्री है तो पुरुषाकृतिकी ी है।

तुला—तुला राशिगत सूर्यके होनेपर जातक साहस- परिचय देता है, किंतु राजपरिवारसे सताया जाता ऐसा जातक विरोधी स्वभावका होता है और पापकर्ममें रहता है। कलहप्रिय होते हुए भी ऐसा जातक कारी होता है। वह धनहीन होनेपर भी मद्यपान ...में प्रवृत्त होता है।

वृश्चिक—वृश्चिक राशिगत होनेपर सूर्यका प्रभाव निम्न प्रकारसे होता है। ऐसा जातक कलहप्रिय होते हुए भी आदरका पात्र होता है। माता-पिताका विरोधी भी रहता है। कृपण स्वभावके कारण अपमानित भी होता है। अस्त्र-शस्त्रका चालक होना तथा साहसी होता है। वह क्रूरकर्मा भी होता है। ऐसे जातकको विष और शस्त्रसे भय रहता है। वह विष, शस्त्र आदिसे धनोपार्जन करनेवाला होता है।

धन—धन राशिगत सूर्यके कारण जातक सन्तोषी, बुद्धिमान्, धनवान्, तीक्ष्णस्वभाव, मित्रोंसे धन प्राप्त करनेवाला और मित्रोंका हित करनेवाला भी होता है। ऐसे जातकका सम्मान प्रायः लोग करते हैं। ऐसे जातकको शिल्पका भी ज्ञान होता है।

मकर—मकर राशिगत सूर्यके कारण जातक नीच कर्ममें निरत रहता है तथा अपमानित होता है। अपने वंश- वालोंसे विरोध करता है। वह अल्प धनके कारण भी दुःख पाता है। यह सब होते हुए ऐसा जातक कर्मशील होता है; भ्रमण करता है। यदा-कदा ऐसे जातकका भाग्य दूसरेके अधीन हो जाता है।

कुम्भ—कुम्भ राशिगत सूर्यके कारण जातक नीच कर्ममें निरत रहता है और मलिन वेश धारण करता है। जातकको अपने स्वभावसे सुख नहीं मिल पाता।

मीन—मीन राशिगत सूर्यके कारण जातक कृषि और व्यापारद्वारा धनका उपार्जन करता है। अपने स्वजनोंसे ही दुःख पाता है। धन और पुत्रका भी सुख उसे कम मिल पाता है। ऐसे जातकको जलसे उत्पन्न होनेवाली वस्तुओंसे प्रचुर धन मिल जाता है।

विशेष—सूर्यदेवसे जन्माङ्ग पर विचार करते समय सूर्यकी निम्न स्थितियोंको ध्यानमें रखना चाहिए।

सूर्य सिंह राशिके स्वामी होते हैं। वे मेष राशिमें दस अंशतक परम उच्च और तुला राशिमें दस अंशतक परम नीच माने जाते हैं। सूर्य सिंहके अंश अंशतक मूल त्रिकोणके माने जाते हैं,

मिलती है और यदि उच्चका हो अर्थात् मेष राशिगत हों तो जातक दीर्घजीवी होता है।

नवमभाव—सूर्य यदि नवम भावगत हों तो जातक मित्र और पुत्रसे सुखी होता है। वह मातृकुलका विरोधी और पिताका भी विरोधी होता है; किंतु देवोंकी पूजा करता है। जातक अच्छी सूझ-बूझका उदार व्यक्ति होता है; किंतु पैतृक सम्पत्तिका त्याग करता है। ऐसा जातक कष्टी तथा मितव्ययी होता है। उसकी कृषि उत्तम होती है। जातकके भाई नहीं होते हैं। यदि भाई हों तो जातकसे उनका सम्बन्ध नहीं रहता। सूर्य यदि उच्च अर्थात् मेष राशिगत हों अथवा सिंह राशिगत हों तो उसका पिता दीर्घायु होता है। उत्तम ग्रहोंके सहयोगसे जातक देवताओं और गुरुजनोंका पूजक होता है। सूर्यके तुला राशिगत होनेपर जातक भाग्यहीन और अधार्मिक होता है तथा यदि पापराशिगत हों या शत्रुगृही हों तो पिताके लिये अनिष्टकर होते हैं। शुभग्रहोंसे दृष्ट सूर्य पिताको आनन्द देते हैं।

दशमभाव—दशम भावगत सूर्यके होनेसे जातक बुद्धिमान्, धन-उपार्जनमें चतुर, साहसी और संगीतप्रेमी होता है, वह साधुजनोंसे प्रेम करता है, राजसेवामें तत्पर एवं अतिसाहसी होता है। वह पुत्रवान् और वाहन-सुखसे सम्पन्न होता है। स्वस्थ और शूरवीर भी होता है। सूर्य यदि मेषराशिके हों या सिंहराशिके हों तो यशस्वी भी होता है। ऐसा जातक धार्मिक स्थानके निर्माणसे यश प्राप्त करता है। सूर्य यदि पाप ग्रहोंसे युक्त हों तो जातक आचरणभ्रष्ट हो जाता है।

एकादशभाव—सूर्य एकादश भावगत हों तो जातक यशस्वी, मनस्वी, नीरोग, ज्ञानी और संगीतविद्यामें निपुण [illegible] तथा धन-धान्यसे सम्पन्न होता है। वह

प्रीति करनेवाला होता है। यदि सूर्य मेष या सिंहराशिगत हों तो जातकको राजा आदिसे धनकी प्राप्ति होती है। ऐसे जातकको सद्व्यापारसे भी धन मिलता है।

द्वादशभाव—द्वादश भावगत सूर्यके होनेसे जातक पिताविरोधी, अतिव्ययी, अस्थिरबुद्धि, पापाचरणमें संलग्न, धनकी हानि करनेवाला, मनका मलीन, नेत्ररोगी और दरिद्र भी होता है। ऐसे जातकसे लोकविरोधी कार्य हो जाते हैं। वह दरिद्रताके कारण भी कष्ट पा जाता है। यदि बारहवें स्थानके स्वामी कोई शुभ ग्रह हों तो वह जातक किसी देवताकी सिद्धि प्राप्त कर लेता है, पर सूर्यके साथ कोई दुष्ट ग्रह हो तो वह जातक सदा अनैतिक कामोंमें अपना धन व्यय करता है। यदि सूर्यके साथ षष्ठ स्थानके स्वामी बैठे हों तो उस जातकको कुष्ठ-रोगसे कष्ट होता है। इस प्रकार सूर्यके भावगत फलको जानना चाहिये।

जन्माङ्गमें विभिन्न राशिगत सूर्यका फल

तन, धन, सहज आदि विभिन्न भावोंमें सूर्यके रहनेका फल जाननेके बाद विभिन्न राशिगत सूर्यका संक्षिप्त फल निम्न प्रकारसे है—

मेष—मेषराशिगत सूर्यके होनेपर जातक साहसी, भ्रमणशील और चतुर तथा धनी परिवारका सदस्य, किंतु रक्त एवं पित्तके विकारोंसे पीड़ित होता है। सूर्य यदि अपनी उच्च राशि मेषमें परमोच्च अंशतक हों तो जातक परम धनी होता है। सूर्य मेषमें दश अंशतक परमोच्च माने जाते हैं। सूर्यके प्रभावसे जातक अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाला होता है।

वृष—वृषराशिगत सूर्यके होनेसे जातक उत्तम वस्त्र धारण करनेवाला एवं सुगन्धित पदार्थोंको धारण करनेवाला होता है। ऐसे जातकके पास चतुष्पदोंका [illegible] अधिक रहता है। ऐसे जातकको स्त्रियोंसे शत्रुता

वपुः पीड्यते वातपित्तेन नित्यं
स वै पर्यटन् ह्रासवृद्धिं प्रयाति ॥
(—चमत्कारचिन्तामणि १)

लग्नेऽर्केऽल्पकचः क्रियालसतनुः क्रोधी प्रचण्डोन्नतः
मानी लोचनरूक्षसुकर्कशतनुः शूरः क्षमी निर्घृणः।
(—जातकाभरणम्, सूर्यभावाध्याय १)

(२) धनभावमें स्थित सूर्य जातकको भाग्यशाली होनेकी सूचना देते हैं। धनभावमें स्थित सूर्यकी मैत्री धनेशसे हो तो जातक निश्चय ही धनवान् होगा। उस जातकको पशु-सुख भी उत्तम रहेगा। पुत्र-पौत्रादिके भी सुख उसे अनायास प्राप्त होते रहेंगे। कतिपय आचार्योंके अनुसार वह जातक वाहनहीन रहेगा—

धने यस्य भानुः स भाग्याधिकः स्या-
च्चतुष्पात्सुखं सद्व्यये स्वं च याति।
कुटुम्बे कलिर्जायया जायतेऽपि
क्रिया निष्फला याति लाभस्य हेतोः॥
(—चमत्कारचिन्तामणि २।२)

(३) सहजभावमें स्थित अर्क सभी प्रकारके सुखोंके दाता होते हैं—

प्रियंवदः स्याद्धनवाहनाढ्यः
सुकर्मचित्तोऽनुचरान्वितश्च।
मितानुजः स्यान्मनुजो बलीयान्
दिनाधिनाथे सहजेऽधिसंस्थे॥
(—जातकाभरणम्)

अन्य आचार्योंके अनुसार वह (जातक) अतीव शौर्यशाली एवं पराक्रमी होता है।

(४) मित्रभावमें स्थित दिनकर जातकको ... करनेवाले होते हैं। जातक स्थायी-रूपसे एक स्थानपर स्थिर नहीं रह सकता—

तुरीये दिनेशेऽतिलोभाधिकारी
जनः ... बन्धुतोऽपि।
प्रवासी विपक्षाहवे मानभङ्गं
कदाचिन्न शान्तं भवेत्तस्य चेतः॥
(—चमत्कारचिन्तामणि)

(५) सुतभावमें विद्यमान सूर्य मनुष्यको बुद्धिमान् एवं धनिक बनाते हैं। श्रीनारायण दैवज्ञके अनुसार जिसके पञ्चम भावमें सूर्य होते हैं, वह जातक हृदय-रोगसे मरता है—

सुतस्थानगे पूर्वजापत्यतापी
कुशाग्रा मतिर्भास्करे मन्त्रविद्या।
रतिर्वञ्चनो संचकोऽपि प्रमादी
मृतिः क्रोडरोगादिजा भावनीया॥
(—चमत्कारचिन्तामणि)

(६) जिसके रिपु (छठे) भावमें दिवाकर रहते हैं वह व्यक्ति रिपुनाशक होता है—प्रायः सभी आचार्योंकी ऐसी सम्मति है। षष्ठ भाव (रिपुभाव)में स्थित सूर्य उत्तम जीविकाप्रदायक भी होते हैं—

शश्वत्सौख्येनान्वितः शत्रुहन्ता
सत्त्वोपेतश्चारुयानो महौजाः।
पृथ्वीभर्तुः स्यादमात्यो हि मर्त्यः
शत्रुक्षेत्रे मित्रसंस्था यदि स्यात्॥
(—जातकाभरणम्)

(७) जिस जातकके जाया (सप्तम) भावमें सूर्य होते हैं वह व्यक्ति व्याधियोंसे संयुक्त, ... होता है। अनेक दैवज्ञोंके अनुसार सप्तमस्थ सूर्य ... मारक भी होते हैं—

... यदा द्यूनजातो ...
स्त्रियास्तापनं पिण्डरोगा न भिन्ना।
भवेत्तुष्टस्त्रीभिः ... विक्रयेऽपि
प्रतिस्पर्धया नैति निद्रां च रात्रौ॥
(—चमत्कारचिन्तामणि)

यदि किसी स्त्रीके कुण्डलीमें सूर्य सप्तमस्थ हों तो वह कुलटा एवं ... होती है।

(८) मृत्युभावमें स्थित सूर्य जातकको अनेक प्रकारके ... हैं। ... मृत्युभावमें स्थित सूर्य ... भी ... होते हैं। ... एवं दुःख ... ही होते हैं।

ये शेष अंशमें 'स्वगृही' माने जाते हैं। ये प्रत्यक्ष पुरुषके आत्मा माने गये हैं। यह सब होते हुए इन्हें पापग्रह ही कहा गया है। पापग्रह केवल फलादेशके लिये माना गया है। सूर्य पुरुषग्रह हैं। सूर्य पूर्व दिशाके स्वामी और पितृकारक भी माने गये हैं। फलादेशमें आत्मा, स्वभाव और आरोग्यता आदिके बोधक हैं। ये पितृकारक ग्रह माने गये हैं। सूर्यका प्रभाव राज्य, देवालय आदिपर विशेष पड़ता है। जातकके हृदय, स्नायु, मेरुदण्ड आदिपर भी इनका प्रभाव पड़ता है। सातवें स्थानपर सूर्यकी पूर्ण दृष्टि पड़ती है। इन बातोंपर ध्यान देकर ही सूर्यसे फल-विचार किया जाता है।

विभिन्न भावोंमें सूर्य-स्थितिके फल

(लेखक—पं० भीमसेनजी उपाध्याय, शास्त्री)

सूर्य सौर-मण्डलके प्रधान ग्रह हैं। इनकी दिव्य रश्मियाँ सभी जीव-जन्तुओंको प्रभावित करती हैं। सूर्य ऊर्जाके अक्षय कोश एवं सत्यके प्रतीक हैं—शक्तिकी अमरनिधि हैं। इनकी आकृति, प्रकृति और ऊर्जा-शक्ति सभी प्राणियोंपर अन्य ग्रहोंकी अपेक्षा अत्यधिक प्रभाव उत्पन्न करती है। इसीलिये फलित-ज्यौतिषमें सूर्यका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

फलित-ज्यौतिषमें द्वादश भावोंकी कल्पना की गयी है। ये द्वादश भाव ग्रहोंके गृह भी कहे जाते हैं। इन द्वादश स्थानोंमें राशियाँ स्थित रहती हैं। इन भावों और ग्रह-संयोगके द्वारा जातकके जन्मजात वातावरणोत्पन्न कर्म एवं कर्तव्यपथका विचार किया जाता है। ये स्थान भविष्यके निर्देशक हैं। प्रवेशका कार्यक्रम इन्हीं भावोंद्वारा सम्पादित किया जाता है—चाहे उसका स्वरूप कुछ भी हो। ये भाव क्रमसे निम्नलिखित हैं—

देहं द्रव्यपराक्रमौ सुखसुतौ शत्रुः कलत्रं मृति-
र्भाग्यं राज्यपदं क्रमेण गदितौ लाभव्ययौ लग्नतः।
भावा द्वादश तत्र सौख्यशरणं देहं मतं देहिनां
तस्मादेव शुभाशुभाख्यफलजः कार्यो बुधैर्निर्णयः॥
(—जातकालङ्कार १।५)

इसीको प्रकारान्तरसे लिखते हैं—

इन द्वादश भावोंमें सूर्यकी सत्ता विभिन्न परिस्थितियोंकी जन्मदात्री है। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि द्वादश भावोंमें सूर्यका विद्यमान होना भिन्न-भिन्न प्रकारसे लोगोंको प्रभावित कर सकता है। इन द्वादश भावोंका क्रमसे अध्ययन कर प्राचीन आचार्यगण विभिन्न परिणामोंतक पहुँचे हैं, जो अत्यधिक सीमातक सत्य उतरते हैं। उदाहरणार्थ द्वादश भावोंका फलकथन आवश्यक है।

(१) जिस जातकके तनुभावमें सूर्य स्थित हो, वह समुन्नतकाय, आलसी, क्रोधी, उग्र स्वभाववाला, पर्यटक, कामी, नेत्ररोगसे युक्त एवं रुक्षकाय होता है। यथा—

तनुस्थो रविस्तुङ्गयष्टिं विधत्ते
मनः संतपेद्दारदायादवर्गात्।

ग्रहणका रहस्य—विविध दृष्टि

(लेखक—पं० श्रीदेवदत्तजी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, विद्यानिधि)

जो वस्तु ब्रह्माण्डमें पायी जाती है, वह वस्तु पिण्डमें पायी जाती है। जैसे ब्रह्माण्डमें सूर्य और चन्द्रमा वैसे पिण्डमें भी हैं। जाबालोपनिषद्के चतुर्थ खण्डमें योगीके लिये शरीरस्थ चन्द्रग्रहणका स्वरूप इस प्रकार कहा गया है—

इडायाः कुण्डलीस्थानं यदा प्राणः समागतः।
सोमग्रहणमित्युक्तं तदा तत्त्वविदां वरः॥ (४६)

वहीं सूर्यग्रहणके विषयमें कहा गया है—

यदा पिङ्गलया प्राणः कुण्डलीस्थानमागतः।
तदा तदा भवेत् सूर्यग्रहणं मुनिपुंगव॥

सांकृतिके गुरु महायोगी दत्तात्रेयजी अपने शिष्य सांकृतिको अष्टाङ्गयोगका उपदेश करते हैं। उसी योगोपदेश-प्रसङ्गमें इडा, कुण्डली, पिङ्गला—इन नाडियोंका वर्णन है। कन्दके मध्यमें सुषुम्ना नाडी है। जिसके चारों ओर बहत्तर हजार नाडियाँ हैं। उनमेंसे चौदह नाडियाँ मुख्य हैं। पीठके बीचमें स्थित जो हड्डीरूप वीणादण्डके समान मेरुदण्ड है, उससे मस्तकपर्यन्त निकली हुई नाडीको सुषुम्ना कहते हैं। सुषुम्नाके बायें भागमें इडा नाडी है और दक्षिणमें पिङ्गला नाडी है। नाभिकन्दसे दो अङ्गुलि नीचे कुण्डली नाडी है। इडा नाडीसे जब प्राण कुण्डलीके स्थानमें पहुँचता है तब चन्द्रग्रहण होता है। जब पिङ्गलासे कुण्डलीके स्थानमें प्राण जाता है तब सूर्यग्रहण होता है। योगीलोग इसीको चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण कहते हैं।

पुराणोंमें ग्रहणका स्वरूप

श्रीमद्भागवतस्थ अष्टम स्कन्धके नवम अध्यायमें चौबीसवें श्लोकसे छब्बीसवेंतक ग्रहणके विषयमें कहा गया है—

देवलिङ्गप्रतिच्छन्नः स्वर्भानुर्देवसंसदि।
प्रविष्टः सोममपिबच्चन्द्रार्काभ्यां च सूचितः॥
चक्रेण क्षुरधारेण जहार पिबतः शिरः।
हरिस्तस्य कबन्धस्तु सुधयाप्लावितोऽपतत्॥
शिरस्त्वमरतां नीतमजो ग्रहमचीक्लृपत्।
यस्तु पर्वणि चन्द्रार्कावभिधावति वैरधीः॥

'भगवान् विष्णु जब मोहिनीका रूप बनाकर देवताओंको अमृत पिलाने लगे तब राहु देवताओंका रूप बनाकर उनकी पङ्क्तिमें बैठ गया। उस समय सूर्य और चन्द्रमाने राहुकी सूचना दे दी। सूचना देनेपर भगवान्‌ने सुदर्शनचक्रसे राहुके शिरको काट दिया; परंतु अमृतसे भरपूर धड़का नाम केतु और अमरत्वको प्राप्त हुए शिरका नाम राहु हो गया। भगवान्‌ने उसको ग्रह बना दिया। वह वैरके कारण पौर्णमासीमें चन्द्रमाकी ओर तथा अमावास्यामें सूर्यकी ओर दौड़ता है, यही पुराणोंमें ग्रहणका स्वरूप है।

ज्यौतिषशास्त्रकी दृष्टिसे ग्रहण

ग्रहणकालमें पृथिवीकी छाया चन्द्रमाको ढक लेती है। यदि सूर्यग्रहण हो तो चन्द्रमा सूर्यको ढक लेते हैं, जैसा कि 'सिद्धान्तशिरोमणि'के पर्वसम्भवाधिकारमें श्रीभास्कराचार्यजीने कहा है—'भूभा विधुं विधुरिनं ग्रहणे पिधत्ते' (श्लोक ९)। यही बात सूर्यसिद्धान्तके चन्द्रग्रहणाधिकारप्रकरणमें कही गयी है।

छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थो घनवद् भवेत्।
भूच्छायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्य भवेदसौ॥

अर्थात्—नीचे होनेवाला चन्द्रमा बादलकी भाँति सूर्यको ढक लेता है। पूर्वकी ओर चलता हुआ चन्द्रमा पृथिवीकी छायामें प्रविष्ट हो जाता है। इसलिये पृथिवीकी छाया चन्द्रमाको ढकनेवाली है। यह विशेषरूपसे ध्यातव्य है कि पृथिवीकी छायाको 'सूर्य-सिद्धान्त' चन्द्र-ग्रहणाधिकार (५) में 'तम' नामसे कहा है—'विक्षेप्य ऊर्ध्वं स्पर्शो तमो लिप्तास्तु पूर्ववत्'

(९) धर्मस्थानमें स्थित सूर्य जातकको कुशाग्रबुद्धि बनाते हैं, किंतु व्यक्ति दुराग्रही, कुतार्किक और नास्तिक भी हो सकता है। नवमस्थ सूर्य जातकके अन्तःपुरमें कलहके उद्वेगकर्ता भी होते हैं।

(१०) दशमभावमें स्थित सूर्य जातकको उच्च आश्रय प्रदान करते हैं। पारिवारिक असुविधा भी यदा-कदा प्राप्त हो सकती है, लेकिन जातक लक्ष्मीसे युक्त होता है। दशम भावस्थ सूर्य आभूषणादिक संग्रहण-कर्ता भी होते हैं।

(११) आय या एकादश स्थानमें विद्यमान सूर्य जातकको कलाप्रेमी एवं संगीतज्ञ बनाते हैं। ये सूर्य व्यक्तिको सभी प्रकारका सौख्य एवं श्री प्रदान करते हैं। अन्य आचार्यगणके अनुसार एकादश भावस्थ सूर्य पुत्रके लिये क्लेशकारक भी होते हैं।

गीतप्रीति चाटुकर्मप्रवृत्ति
चञ्चत्कीर्तिं वित्तपूर्त्ति नितान्तम्।
भूपाद् प्राप्तिं नित्यमेव प्रकुर्यात्
प्राप्तिस्थाने भानुमान् मानवानाम्॥
(—जातकाभरणम्)

जिस स्त्रीके एकादशभावमें सूर्य रहते हैं, वह सद्गुणयुक्ता होती है—

भूपप्रिया भवस्थेऽर्के सदा लाभगुणान्विता।
गुणज्ञा रूपशीलाढ्या धनपुत्रसमन्विता॥
(—स्त्रीजातकम्)

(१२) सभी दैवज्ञ एकमतसे उद्घोषके साथ कहते हैं—द्वादश भावस्थ सूर्य नेत्ररोगकारक होते हैं तथा जातक कामातुर भी होता है। कतिपय आचार्योंके कथनानुसार व्ययस्थ सूर्य धनदायक होते हैं, लेकिन यात्राकालमें असम्भावित क्षति भी हो सकती है; यथा—

रविर्द्वादशे नेत्रदोषं करोति
विपक्षाहवे जायतेऽसौ जयार्थी।
स्थितिर्लभ्यया हीयते देहदुःखं
पितृव्यापदो हानिरध्वप्रदेशे॥
(—चमत्कारचिन्तामणि)

इस प्रकारसे श्रीसूर्यदेव विभिन्न भावोंमें रहकर जातकके लिये विभिन्न स्थितियोंको समुत्पन्न करते हैं। निदान, ग्रहपति सूर्य सद्यःपरिणामदायक, सभी दैवज्ञोंके ध्येय, नमस्य एवं प्रणम्य हैं। गगनाङ्गनमें चमकते इन दिव्य पुरुषको हमारे शत-शत नमन हैं।

सूर्यादि ग्रहोंका प्रभाव

दैवज्ञों और वृद्धोंका अनुभव है कि ग्रह राज्य-पदपर बैठा देते हैं और प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्नकर सत्ताच्युत भी करा देते हैं। सच तो यह है कि ग्रहोंके प्रभावसे यह सारा चराचरात्मक संसार व्याप्त है। शास्त्रका वचन है—

ग्रहा राज्यं प्रयच्छन्ति ग्रहा राज्यं हरन्ति च। ग्रहैस्तु व्यापितं सर्वं जगदेतच्चराचरम्॥

इसी आधारपर यह शास्त्रोक्ति है कि ज्योतिश्चक्रमें सभी योगोंके शुभाशुभ फल कहे गये हैं—'ज्योतिश्चक्रे तु लोकस्य सर्वस्योक्तं शुभाशुभम्।'

पाश्चात्य विद्वान् एलेन लियोने अपनी पुस्तक एस्ट्रोलॉजी फार आल (Astrology for all) की प्रस्तावनामें लिखा है कि 'अवज्ञाकी दृष्टिको छोड़कर, परिश्रमसे यदि इस विज्ञानकी सत्यताको खोजा जाय तो हमारे पूर्वज ऋषियोंके उच्चकोटिके विचार और अनुभव सत्य प्रमाणित होंगे।'

छायावैगुण्यमात्रं तु शङ्के दुःखमुपस्थितम्।

सीताके दुःखकी उपस्थिति छायावैगुण्यमात्र अर्थात् ग्रहणकालमें चन्द्रमाके छायावैगुण्यकी भाँति है। इससे ग्रहणकालमें पृथिवीकी छायाका अनुमोदन हो जाता है।

काव्यकी दृष्टिसे ग्रहण—जिस कालिदासको ऐतिहासिक दो सहस्र वर्षसे अधिक पुराना मानते हैं, उन्होंने रघुवंश (१४।७)में पृथिवीकी छायाका चन्द्रमापर पड़ना स्पष्ट लिखा है—

> अवैमि चैनामनघेति किन्तु
> लोकापवादो बलवान् मतो मे।
> छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वा-
> दारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः॥

जब मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम चौदह वर्षका वनवास व्यतीत कर अयोध्या लौट आये तो सीताके विषयमें लोकापवाद सुनकर कहते हैं कि मैं समझता हूँ कि सीता निष्कलंक है, परन्तु लोकापवाद बलवान् है; क्योंकि यह तो चन्द्रमापर पृथिवीकी छाया है; परंतु प्रजा उसे चन्द्रमाका मल कहती है। यह ज्ञान कालिदासको भी था। वैज्ञानिकोंने कोई नयी खोज नहीं की है।

किस स्थानमें किस ग्रहणका महत्त्व अधिक है?—पुराणोंमें चन्द्रग्रहणका महत्त्व वाराणसीमें बताया है और सूर्यग्रहणका महत्त्व कुरुक्षेत्रमें। यही कारण है कि श्रीकृष्णके पिता वसुदेवजी सूर्यग्रहणमें कुरुक्षेत्र आये और उन्होंने वहाँ जाकर यज्ञ किया। यह श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके उत्तरार्धमें स्पष्ट लिखा है।

धर्मशास्त्रकी दृष्टिसे ग्रहण—धर्म-शास्त्र तथा पुराणोंका कथन है कि ग्रहणकालमें जप तथा दान एवं हवन करनेसे बहुत फल होता है। यह विषय श्रीभास्कराचार्यजीने उठाया और समर्थन किया है। धर्मसिन्धुमें आता है कि ग्रहण लगनेपर स्नान, ग्रहणके मध्यकालमें हवन तथा देवपूजन और श्राद्ध, ग्रहण जब समाप्त होनेवाला हो तब दान और समाप्त होनेपर पुनः स्नान करना चाहिये। यदि सूर्यग्रहण रविवारको हो और चन्द्रग्रहण सोमवारको हो तो उसे चूडामणि कहते हैं। उस ग्रहणमें स्नान, जप, दान, हवन करनेका और भी विशेष फल है।

तन्त्रशास्त्रकी दृष्टिसे ग्रहण—शारदातिलक, द्वितीय पटलके दीक्षा-प्रकरणकी पदार्थदर्श-व्याख्यामें रुद्रयामल-ग्रन्थको उद्धृत करके लिखा है—

> सत्तीर्थेऽर्कविधुग्रासे तन्तुदामनपर्वणोः।
> मन्त्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन् न शोधयेत्॥

अगस्तिसंहितामें भी कहा है—

> सूर्यग्रहणकालेन समोऽन्यो नास्ति कश्चन।
> तत्र यद् यत् कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत्॥
> सिद्धिर्भवति मन्त्रस्य विनाऽऽयासेन वेगतः।
> कर्तव्यं सर्वयत्नेन मन्त्रसिद्धिरभीप्सुभिः॥

तीर्थों और सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहणमें मन्त्र-दीक्षा लेनेके लिये कोई विचार न करे। सूर्यग्रहणके समान और कोई समय नहीं है। सूर्यग्रहणमें अनायास ही मन्त्रकी सिद्धि हो जाती है। इन श्लोकोंमें मन्त्र शब्द यन्त्रका भी उपलक्षक है। इसका सारांश यह है कि ग्रहणकाल-में मन्त्रोंको जपनेसे तथा मन्त्रोंको लिखनेसे विशेष सिद्धि होती है। इसके अतिरिक्त इस कालमें रुद्राक्ष-मालाके धारणमात्रसे भी पापोंका नाश हो जाता है। इसलिये जाबालोपनिषद्‌के चौथे मन्त्रमें स्पष्ट लिखा है कि—

> ग्रहणे विषुवे चैवमयने संक्रमेऽपि च।
> दर्शेषु पौर्णमासेषु पूर्णेषु दिवसेषु च॥
> रुद्राक्षधारणात् सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते।

गणपत्युपनिषद्‌में भी लिखा है कि सूर्यग्रहणमें महानदी अर्थात् गङ्गा, यमुना, सरस्वती आदि नदियोंमें या किसी प्रतिमाके पास मन्त्र जपनेसे वह सिद्ध हो जाता है।

अमरकोशमें 'तम' नाम राहुका है—'तमस्तु राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयो विधुन्तुदः'। पृथिवीकी छायाका अधिष्ठाता राहु है, यह विषय सिद्धान्तशिरोमणिके श्लोकसे भी पुष्ट हो जाता है। श्रीभास्कराचार्यजी स्पष्ट कहते हैं—

राहुः कुभामण्डलगः शशाङ्कं
शशाङ्कगश्छादयतीव बिम्बम्।
तमोमयः शम्भुवरप्रदानात्
सर्वागमानामविरुद्धमेतत्॥

'पृथिवीकी छायाका अधिष्ठाता राहु चन्द्रमाको ढक लेता है।' इसलिये 'सिद्धान्तशिरोमणि'के पर्वसम्भवाधिकार-(२) में 'अगु च तदोक्तवत्' इस पद्यांशसे 'अगु' अर्थात् राहुको भी ग्रहणके लिये स्पर्श करना लिखा है।

कूर्मपुराणके पूर्वार्ध ४१वें अध्यायमें स्पष्ट लिखा है कि पृथिवीकी छायासे राहुका अन्धकारमय मण्डल बनता है; जैसा कि कहा है—

उद्धृत्य पृथिवीच्छायां निर्मितो मण्डलाकृतिः।
स्वर्भानोस्तु बृहत् स्थानं तृतीयं यत्तमोमयम्॥

सूर्यग्रहणके अमावास्या एवं चन्द्रग्रहणके पौर्णमासीको होनेके कारण

सूर्यसिद्धान्त, चन्द्रग्रहणाधिकार छठे श्लोकके अनुसार पृथिवीकी छाया सूर्यसे ६ राशिके अन्तरपर भ्रमण करती है और पौर्णमासीको चन्द्रमाकी सूर्यसे ६ राशिके अन्तरपर भ्रमण करती है—

'भानोर्भार्धे महीच्छाया तत्तुल्येऽर्कसमेऽपि वा।'

इसलिये पृथिवीकी छाया चन्द्रमाको ढक लेती है; परंतु छः राशिका अन्तर होते हुए जिस पौर्णमासीको सूर्य तथा चन्द्रमा दोनोंके अंश, कला तथा विकला पृथिवीके समान होते हैं, उसी पौर्णमासीको चन्द्रग्रहण होता है।

अमावास्याका दूसरा नाम सूर्येन्दुसङ्गम भी है; अर्थात् अपनी-अपनी कक्षामें होते हुए भी सूर्य और चन्द्रमा अमावास्याको एक राशिमें होते हैं। ऐसा संग[म] अमावास्यामें होता है। 'अमावास्या' शब्दकी [व्युत्पत्तिसे] भी पता चलता है कि सूर्य और चन्द्रमा अम[ावास्याको] एक राशिमें होते हैं। 'अमया सह वसतः [चन्द्रार्कौ] अस्यामिति अमावास्या'—जिस तिथिको सू[र्य और] चन्द्रमा एक राशिमें रहते हैं, उस तिथिको अ[मावास्या] कहते हैं। परंतु जिस अमावास्याको सूर्य तथा च[न्द्रमाके] अंश, कला-विकला समान हों, उस अमावास्याको ह[ी सूर्य]ग्रहण होता है। इसी विषयको सूर्यसि[द्धान्तके] चन्द्रग्रहणाधिकार (९)में स्पष्ट कहा है—

तुल्यौ राश्यादिभिः स्याताममावास्यान्तकालिकौ
सूर्येन्दू पौर्णमास्यन्ते भार्धे भागादिकौ समौ[॥]

ग्रहणके समय चन्द्रमाका विभिन्न रंग तथा सूर्यका काला ही क्यों रहता है?

यह विषय सूर्यसिद्धान्तके छेद्यकाधिकार (२३[)में] स्पष्ट है—

अर्धादूने ताम्रं स्यात् कृष्णमर्धाधिकं भवेत्।
विमुञ्चतः कृष्णताम्रं कपिलं सकलग्रहे॥

यदि आधेसे कम चन्द्रमाका ग्रास हो तो ताँबे-जैस[ा], आधेसे अधिकके ग्रासमें काला, चतुर्थांशसे अधिक[के] ग्रासमें कृष्णताम्र और सम्पूर्णके ग्रासमें चन्द्रमाका [रंग] कपिल होता है। पृथिवीकी छाया काली है तथ[ा] चन्द्रमा पीले रंगके हैं। इसलिये दो वर्णोंक[े] मेल होनेसे ग्रासकी कमी तथा अधिकताके कारण चन्द्रमाके विभिन्न रंग हो जाते हैं। चन्द्रमा तो जलगोलक हैं। इसलिये अमावास्यामें चन्द्रमाका दृश्य बिम्ब सदा ही काले रंगका होता है। ग्रहणकालमें सूर्यका आच्छादक चन्द्रमा होता है, इसलिये ग्रहणकालमें सूर्यका रंग सदा काला ही रहता है चाहे कितने ही भागका ग्रास हो। आदिकाव्य वाल्मीकिरामायण (सुन्दरकाण्ड, सर्ग २९, श्लोक ४८)में त्रिजटाकी राक्षसियोंके प्रति उक्ति है—

सूर्यचन्द्र-ग्रहण-विमर्श

ग्रहण आकाशीय अद्भुत चमत्कृतिका अनोखा दृश्य उससे अभूतपूर्व, अद्भुत ज्योतिष्क-ज्ञान और उपग्रहोंकी गतिविधि एवं स्वरूपका परिस्फुट परिचय हुआ है। ग्रहोंकी दुनियाकी यह घटना भारतीय वेदोंको अत्यन्त प्राचीनकालसे अभिज्ञात रही है और धार्मिक तथा वैज्ञानिक विवेचन धार्मिक ग्रन्थों और वेद-ग्रन्थोंमें होता चला आया है। महर्षि अत्रि मुनि ज्ञानके उपज्ञ (प्रथम ज्ञाता) आचार्य थे। वैदिक प्रकाशकालसे ग्रहणके ऊपर अध्ययन, मनन स्थापन होते चले आये हैं। गणितके बलपर का पूर्ण पर्यवेक्षण प्रायः पर्यवसित हो चुका है, में वैज्ञानिकोंका योगदान भी सर्वथा स्तुत्य है।

ऋग्वेदके एक मन्त्रमें यह चामत्कारिक वर्णन ता है कि 'हे सूर्य ! असुर राहुने आपपर आक्रमण अन्धकारसे जो आपको विद्ध कर दिया—ढक ा, उससे मनुष्य आपके (सूर्यके) रूप-(मण्डल-) समग्रतासे देख नहीं पाये और (अतएव) अपने-ने कार्यक्षेत्रोंमें हतप्रभ-(ठप-)से हो गये। तब र्षि अत्रिने अपने अर्जित सामर्थ्यसे अनेक मन्त्रोंद्वारा अथवा चौथे मन्त्र या यन्त्रसे) मायांश (छाया)का नोदन (दूरीकरण) कर सूर्यका समुद्धार किया।'—

> यत् त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः।
> अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः॥
> स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया
> अवो दिवो वर्तमाना अवाहन्।
> गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन
> तुरीयेण ब्रह्मणाऽविन्ददत्रिः॥
> (—ऋ० ५। ४०। ५-६)

अगले एक मन्त्रमें यह आता है कि 'इन्द्रने अत्रिकी सहायतासे ही राहुकी मायासे सूर्यकी रक्षा की थी।' इसी प्रकार ग्रहणके निरसनमें समर्थ महर्षि अत्रिके तपःसन्धानसे समुद्भूत अलौकिक प्रभावोंका वर्णन वेदके अनेक मन्त्रोंमें प्राप्त होता है।* किंतु महर्षि अत्रि किस अद्भुत सामर्थ्यसे इस अलौकिक कार्यमें दक्ष माने गये, इस विषयमें दो मत हैं—प्रथम परम्परा-प्राप्त यह मत कि वे इस कार्यमें तपस्याके प्रभावसे समर्थ हुए और दूसरा यह कि वे कोई नया यन्त्र बनाकर उसकी सहायतासे ग्रहणसे उन्मुक्त हुए सूर्यको दिखलानेमें समर्थ हुए।† यही कारण है कि महर्षि अत्रि ही भारतीयोंमें ग्रहणके प्रथम आचार्य (उपज्ञ) माने गये। सुतरां इससे स्पष्ट है कि अत्यन्त प्राचीनकालमें भारतीय सूर्यग्रहणके विषयमें पूर्णतः अभिज्ञ थे।

मध्ययुगीन ज्योतिर्विज्ञानके उच्चतम आचार्य भास्कराचार्य प्रभृतिने सूर्यग्रहणका समीचीन विवेचन प्रस्तुत किया है तथा उसके अनुसन्धानकी विशिष्ट प्रणाली भी प्रदर्शित की है। किंतु इस आकाशीय चमत्कृतिके लिये प्रयासका पर्यवसान उन्होंने भी वेद-पुराण जाननेवालोंके माध्यमसे ग्रहणकालमें जप, दान, हवन, श्राद्धादिके बहुफलक होनेकी फलश्रुतिमें करते हुए भारतकी अन्तरात्मा—धर्मको ही पुरस्कृत किया है—

> 'बहुफलं जपदानहुतादिकं
> श्रुतिपुराणविदः प्रवदन्ति हि।'

आधुनिक पाश्चात्त्य [illegible]-([illegible] विज्ञानियों-)ने भी अद्भुत श्रमकर विषय-वस्तुको बहुत कुछ स्पष्ट कर दिया है। किंतु उनका [illegible] तीन प्रयोजनोंमेंसे तीसरा प्रयोजन—सूर्य-चन्द्रके बिम्बोंका भौतिक एवं रासायनिक अन्वेषण-[illegible] ही

*—द्रष्टव्य—५। ४०। ७—९ तकके मन्त्र।

†—पहला मत सायणप्रभृति वेद-भाष्यकारोंके संकेतानुसार परम्पराप्राप्त है और दूसरा मत वेदमर्मज्ञ पं० मधुसूदनजी ओझाका है, जिसे उन्होंने अपने 'अत्रिख्याति' नामक ग्रन्थमें प्रतिष्ठित किया है।

'सूर्यग्रहणे महानद्यां प्रतिमासंनिधौ वा जप्त्वा स सिद्धमन्त्रो भवति' (गणपत्युपनिषद्, मन्त्र ८)

इसलिये सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहणमें दान तथा हवन एवं मन्त्रोंका जप तथा यन्त्रोंको लिखना चाहिये।

ग्रहणकालमें कुशाका महत्त्व–ग्रहणकालमें विधानतः जल आदिमें कुश डालना चाहिये। कुशा डालनेसे ग्रहणकालमें जो अशुद्ध परमाणु होते हैं, उनका कुशा डाली हुई वस्तुपर कोई प्रभाव नहीं होता, यह डाक्टरोंका अनुभव है और धर्मशास्त्रादिसम्मत भी है। इसलिये निर्णयसिन्धुमें मन्वर्थमुक्तावलीके वचनको उद्धृत करके कुशाके महत्त्वको बताया है—'वारितक्रारनालादि-तिलदर्भैर्न दुष्यति'–ग्रहणकालमें जल, छाछ (लस्सी) तथा आरनाल आदिमें कुशा डालनेसे वे दूषित नहीं होते। इसीलिये कुशाके आसनपर बैठकर योगसाधन तथा भजनका विधान है। यह श्रीमद्भगवद्गीताके छठे अध्यायके ११वें श्लोकसे भी स्पष्ट है। कुशाके आसनपर बैठनेसे अशुद्ध परमाणुओंका सम्पर्क सर्वथा नहीं होता। अतएव मन पूरा संयत रहता है और बुद्धि इतनी स्वच्छता-से काम करती है कि तनिक भी प्रमाद नहीं होने पाता। कुशाका महत्त्व महाभाष्यके तीसरे आह्निकके 'वृद्धिरादैच् (१।१।१)–इस सूत्रके व्याख्यानमें बताया है–'प्रमाणभूतो आचार्यो दर्भपवित्रपाणिः सूत्राणि प्रणयति स्म' इत्यादि अर्थात् प्रामाणिक आचार्यने कुशाकी पवित्री हाथमें डालकर पवित्र स्थानमें पूर्वाभिमुख बैठकर सूत्र बनाये हैं; इसलिये किसी सूत्रका एक वर्ण भी अनर्थक नहीं हो सकता—'वृद्धिरादैच्' इतना बड़ा सूत्र कैसे अनर्थक हो सकता है! प्रतिदिन होनेवाले तर्पण, हवन तथा श्राद्धकर्ममें कुशाका महत्वपूर्ण स्थान है। श्राद्ध और कुशकण्डिकामें उसकी प्रधानता है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि पृथिवीकी छाया पड़नेसे ग्रहण होता है, यह उनका कथन कुछ अंशतक ठीक है। वस्तुतः पृथिवीकी छाया पड़नेसे चन्द्रग्रहण होता है और चन्द्रमाद्वारा सूर्यके ढके जानेसे सूर्यग्रहण होता है, जो हमने शास्त्रके प्रमाणोंसे ही सिद्ध कर दिया है। वैज्ञानिकोंके सिद्धान्त अपने ढंगके हैं। पहले वैज्ञानिक आकाशको नहीं मानते थे, अब 'ईथर' नामसे उसे मानने लगे हैं। भारतीय ग्रन्थोंने तो श्रुति, स्मृति, पुराण, दर्शन, ज्यौतिष आदिमें आकाशको माना है। न्यायशास्त्रमें तो बड़े दृढ़ प्रमाण देकर आकाशको सिद्ध किया गया है। आकाश अन्यतम पञ्चमहाभूत है।

कुछ वैज्ञानिक आत्मामें भी भार मानते थे; किंतु अब मानना छोड़ दिया है। दिव्यदृष्टि महर्षियोंने सब बातें योगबलसे प्रत्यक्ष करके लिखी हैं। इसलिये ग्रहणका स्वरूप भी हमने भारतीय शास्त्रोंके आधारपर दिया है।

ग्रहणमें स्नानादिके नियम

चन्द्र-सूर्य दोनों राहुसे ग्रस्त हुए अस्त हो जायँ तो पुनः उनका दर्शन करके स्नान और भोजन करना चाहिये। भोजन अपने घरका करे। ग्रस्तास्तमें दिन-रात—दोनोंमें भोजन निषिद्ध है। चन्द्रमा राहुग्रस्त उदित होते हों तो प्रथम दिन भोजन न करे। चन्द्रमाके प्रातःकाल ग्रस्तास्त हो जानेपर प्रथम रात्रि तथा अगले दिनका भोजन निषिद्ध है; किंतु स्नान-हवन आदि मोक्ष-समयसे किया जा सकता है। ग्रहणके एक प्रहर पहले बालक, वृद्ध और रोगी भी भोजन न करें। वेध या ग्रहण-कालमें पक्वान्न भी नहीं खाना चाहिये। ग्रहणमें सभी वर्णोंको सूतक लगता है—'सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने।' नरकट, दूध-दही, मट्ठा, घीका पका अन्न और मणिमें रखा जल तिल या कुश डालनेपर अपवित्र नहीं होते। गङ्गाजल अपवित्र नहीं होता। जैमिनि पुत्रवान्को रविवार और संक्रान्तिके सिवा ग्रहणमें भी उपवास वर्जित करते हैं। हाँ, सबके लिये जप आदिका विधान और शयन आदिका निषेध अवश्य है—

सूर्येन्दुग्रहणं यावत् तावत् कुर्याज्जपादिकम्। न स्वपेन्न च भुञ्जीत स्नात्वा भुञ्जीत मुक्तयोः॥ (नि॰ सु॰)

सर्वग्रास सूर्यग्रहणका दृश्य

टिप्पणी—सूर्यका क्रान्तिवृत्त प्रत्येक तीस अंशोंकी बारह राशियोंमें (३०×१२=) ३६० अंशोंका माना गया है। मोटे तौरपर पूर्णिमाका चन्द्र-मण्डल आधे अंशका होता है।

है। वे धार्मिक महत्त्वको तथा लोगोंमें कौतूहलजनक उसके चमत्कारको उतनी उच्च मान्यता नहीं देते हैं। यहाँ हम संक्षेपमें सूर्यचन्द्र-ग्रहणोंका सामान्य परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

आकाशीय तेजस्वी ज्योतिष्कपिण्डोंके सामने जब कोई अप्रकाशित अपारदर्शक पदार्थ आ जाता है तब उस तेजस्वी ज्योतिष्कपिण्डका प्रकाश उस अपारदर्शक पदार्थ-भागके कारण छिप जाता है और दूसरे पारवालोंके लिये छाया बन जाती है। यही छाया 'उपराग' या 'ग्रहण'का रूप ग्रहण कर लेती है।

चन्द्रमा पृथ्वीके उपग्रह और अपारदर्शक हैं जो स्वतः प्रकाशक न होनेके कारण अप्रकाशित पिण्ड हैं। अण्डेके आकारवाले अपने भ्रमण-पथ (अक्ष) पर घूमते हुए वे (सूर्यकी परिक्रमा करती हुई) पृथ्वीकी परिक्रमा करते हैं।* वे कभी पृथ्वीके पास और कभी इससे दूर रहते हैं। उनका कम-से-कम अन्तर १,२१,००० मील और अधिक-से-अधिक २,५३,००० मील होता है। अपने भ्रमण-पथपर चलते हुए चन्द्रमा अमावास्याको सूर्य और पृथ्वीके बीचमें आ जाते हैं और कभी-कभी (जब तीनों बिल्कुल सीधमें होते हैं तब) सूर्यके प्रकाशको ढक लेते हैं—हमारे लिये उसे मेघकी भाँति रोक देते हैं, जिससे सूर्योपराग अर्थात् सूर्यग्रहण हो जाता है।† जब वे पृथ्वीके पास हों और राहु या केतु बिन्दु‡पर हों, तब उनकी परछाईं पृथ्वीपर पड़ती है। पास होनेके कारण उनका बिम्ब बड़ा होता है, जिससे हमारे लिये सूर्य पूर्णतः ढक जाते हैं और तब हम पूर्ण सूर्यग्रहण कहते हैं। उस समय चन्द्रमाका अप्रकाशित भाग हमारी ओर होता है और उसकी घनी और हल्की परछाईं पृथ्वीपर पड़ती है। सूर्य पृथ्वीके जितने भागपर घनी छाया (प्रच्छाया) रहनेसे दिखलायी नहीं देते, उतने भागपर सूर्यका सर्वग्रास (खग्रास) सूर्यग्रहण होता है और जिस भागपर कम परछाईं (उपच्छाया) पड़ती है, उसपर सूर्यका खण्डग्रास होता है। निष्कर्ष यह कि सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी—तीनों जब एक सीधमें नहीं होते अर्थात् चन्द्र, ठीक राहु या केतु बिन्दुपर न होकर कुछ ऊँचे या नीचे होते हैं तब सूर्यका खण्ड-ग्रहण होता है। और, जब चन्द्रमा दूर होते हैं तब उनकी परछाईं पृथ्वीपर नहीं पड़ती तथा वे छोटे दिखलायी पड़ते हैं—उनके बिम्बके छोटे होनेसे सूर्यका मध्यभाग ही ढकता है, जिससे चारों ओर कङ्कणाकार सूर्य-प्रकाश दिखलायी पड़ता है। इस प्रकारके ग्रहणको कङ्कणाकार या वलयाकार सूर्यग्रहण कहते हैं। पूर्ण सूर्यग्रहणको 'खग्रास' और अपूर्णको 'खण्डग्रास' भी कहा जाता है। निदान, सूर्यग्रहण मुख्यतः तीन प्रकारके होते हैं—(१) सर्वग्रास या खग्रास—जो सम्पूर्ण सूर्य-बिम्बको ढकनेवाला होता है, (२) कङ्कणाकार या वलयाकार जो सूर्य-

---

* चन्द्रमाको अपने कक्षकी एक परिक्रमा २७ दिन ७ घंटे ४३ मिनट और १२ सेकण्डमें होती रहती है।

† सिद्धान्तशिरोमणि (के गो० ग्र० वा० १)में भास्कराचार्यने इस स्थितिका निरूपण निम्नाङ्कित श्लोकमें किया है—

पश्चाद् भागाज्जलदवदधः संस्थितोऽभ्येत्य चन्द्रो भानोर्बिम्बं स्फुरदसितया छादयत्यात्ममूर्त्या।
पश्चात् स्पर्शो हरिदिशि ततो मुक्तिरस्यात एव क्वापि च्छन्नः क्वचिदपिहितो नैव कक्षान्तरत्वात्॥

‡ ज्योतिषीको किसी असुरके शरीरमें दिलचस्पी (स्पृहा) नहीं है। उसके लिये तो राहु और केतुका दूसरा ही अर्थ है। जिस मार्गपर पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा करती है या यों कहिये कि सूर्य पृथ्वीकी परिक्रमा करता है वह क्रान्तिवृत्त एवं चन्द्रमाका पृथ्वीके चारों ओरका मार्ग-वृत्त (अक्ष) —ये दोनों जिन बिन्दुओंपर एक-दूसरेको काटते हैं, उनमेंसे एकका नाम 'राहु' और दूसरेका 'केतु' है (—ग्रहनक्षत्र) [‡ आकाशमें उत्तरकी ओर बढ़ते हुए चन्द्रमाकी कक्षा जब सूर्यको काटती है तब उस सम्पात बिन्दुको राहु और दक्षिणकी ओर नीचे उतरते हुए चन्द्रमाकी कक्षा जब सूर्यको काटती है, तब उस सम्पात बिन्दुको केतु कहते हैं।]

परिक्रमा करती है, अतः पृथ्वी भी एक ग्रह है। दोनोंके भ्रमण-क्रम कुछ ऐसे हैं कि पूर्णिमाको पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमाके बीच हो जाती है। उसकी छाया शङ्कुवत् होती है। जब यह छाया चन्द्रमापर पड़ जाती है अथवा यों कहिये कि चन्द्रमा अपनी गतिके कारण पृथ्वीके छाया-शङ्कुमें प्रविष्ट हो जाते हैं, तब कभी सम्पूर्ण चन्द्रमण्डल ढक जाता है और कभी उसका कुछ अंश ही ढकता है। सम्पूर्ण चन्द्रके ढकनेकी अवस्थामें सर्वग्रास चन्द्रग्रहण और अंशतः ढकनेपर खण्ड चन्द्रग्रहण होता है; परंतु यहाँ प्रश्न उठता है कि प्रत्येक पूर्णिमाको उपर्युक्त ग्रह-स्थितिके नियत रहनेपर प्रत्येक पूर्णिमाको ग्रहण क्यों नहीं लगता? इसका समाधान यह है कि पृथ्वी और चन्द्रमाके मार्ग एक सतहमें नहीं हैं। वे एक दूसरेके साथ पाँच अंशका कोण बनाते हैं, जिससे ग्रहणका अवसर प्रतिपूर्णिमाको नहीं होता है। (एक सतहमें दोनोंके भ्रमण-पथ होते तो अवश्य ही प्रति पूर्णिमा और अमावास्याको चन्द्र-सूर्य-ग्रहण होते।) बात यह है कि चन्द्रमाकी कक्षा पृथ्वीकी कक्षासे ५८ अंशके कोणपर झुकी हुई है और यह भी है कि चन्द्रमाकी पातरेखा चल है। पात-रेखाकी परिक्रमाका समय प्रायः १८ वर्ष ११ दिन है। इस अवधिके बाद ग्रहणोंके क्रमकी पुनरावृत्ति होती है। इस समयको 'चन्द्रकक्ष' कहा जाता है।

भारतके प्रसिद्ध ज्योतिषी स्व० श्रीबापूदेवजी शास्त्रीने भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रको लिखे अपने एक पत्रमें लिखा था कि 'सूर्यके अस्त हो जानेपर रात्रिमें जो अन्धकार लगता है, वही पृथ्वीकी छाया है। पृथ्वी गोलाकार और सूर्यसे बहुत छोटी है, इसलिये उसकी छाया सूच्याकार काले ठोस शङ्कुके आकारकी होती है। यह अन्धकारमें चन्द्रमाके भ्रमण-मार्गको लाँघकर बहुत दूरतक सदा सूर्यसे छः राशिके अन्तरपर रहती है। पूर्णिमाके अन्तमें चन्द्रमा भी सूर्यसे छः राशिके अन्तरपर रहते हैं। इसलिये पृथ्वीकी परिक्रमा करते हुए चन्द्रमा जिस पूर्णिमाको पृथ्वीकी छायामें आ जाते हैं अर्थात् पृथ्वीकी छाया चन्द्रमाके बिम्बपर पड़ती है, उसी पूर्णिमाको चन्द्रग्रहण होता है और जो छाया चन्द्रमापर दिखायी पड़ती है, वही ग्रास कहलाती है। पौराणिक श्रुति प्रसिद्ध है कि 'राहु नामक एक दैत्य चन्द्रग्रहण-कालमें पृथ्वीकी छायामें प्रवेशकर चन्द्रमाको और प्रजा (जनता) को पीड़ा पहुँचाता है। इसलिये लोकमें राहुकृतग्रहण कहलाता है और उस कालमें स्नान, दान, जप, होम करनेसे राहुकृत पीड़ा दूर होती है तथा पुण्य लाभ होता है।'

'चन्द्रग्रहणका सम्भव भूच्छायाके कारण प्रति पूर्णिमाके अन्तमें होता है और उस समयमें केतु और सूर्य साथ रहते हैं; परतु केतु और सूर्यका योग यदि नियत संख्याके अर्थात् पाँच राशि, सोलह अंशसे लेकर छः राशि चौदह अंशके अथवा ग्यारह राशि सोलह अंशसे लेकर बारह राशि चौदह अंशके भीतर होता है, तभी ग्रहण लगता है और यदि योग नियत संख्याके बाहर पड़ जाता है, तो ग्रहण नहीं होता।'

यह प्रकारान्तरसे कहा जा चुका है कि पृथ्वीके मध्य-बिन्दुके क्रान्तिवृत्तकी सतहमें होनेसे पृथ्वी वर्णित पूर्णिमामें सूर्यका प्रकाश चन्द्रमापर नहीं पड़ने देती, जिससे उसकी छायाके कारण चन्द्रमाका तेज कम हो जाता है। ऐसी स्थिति राहु और केतु-बिन्दुपर या उनके समीप—कुछ ऊपर या नीचे—चन्द्रमाके होनेपर ही आती है। यह भी कहा जा चुका है कि चन्द्रमाके राहुकेतु बिन्दुपर होनेपर ही पूर्ण चन्द्रग्रहण होता है और उनके समीप होनेपर खण्ड चन्द्रग्रहण होता है अर्थात् चन्द्रमाके कुछ भागका प्रकाश कम हो जाता है, जिससे वे निस्तेज प्रतीत होने लगते हैं, पर बिल्कुल काले नहीं होते। हाँ, वे जब गहरी छाया (प्रच्छाया) में आ जाते हैं, तब काले होने लगते हैं। फिर भी वे

बिम्बके बीचका भाग ढकता है तथा (३) खण्ड-ग्रहण—जो सूर्य-बिम्बके अंशको ही ढकता है । इनकी निम्नाङ्कित परिस्थितियाँ होती हैं—

(१) खग्रास सूर्य-ग्रहण तब होता है जब (क) अमावास्या* हो, (ख) चन्द्रमा, ठीक राहु या केतु बिन्दुपर और (ग) पृथ्वी-समीप बिन्दुपर हो । इस प्रकारकी स्थितिमें चन्द्रमाकी गहरी छाया जितने स्थानोंपर पड़ती है, उतने स्थानोंपर खग्रास ग्रहण दृग्गोचर होता है और जितने स्थानोंपर हल्की परछाईं पड़ती है, उतने स्थानोंपर खण्डग्रास ग्रहण होता है और जहाँ वे दोनों परछाइयाँ नहीं होतीं वहाँ ग्रहण ही नहीं दीखता है । इसलिये ग्रहण लिखते समय ग्रहणके स्थानों एवं प्रकारको भी सूचित करना पञ्चाङ्गकी प्रक्रिया है ।

(२) **कङ्कणाकार** अथवा वलयाकार सूर्य-ग्रहण तब होता है जब—(क) अमावास्या होती है, (ख) चन्द्रमा ठीक राहु या केतु बिन्दुपर होते हैं, किंतु (ग) चन्द्रमा पृथ्वीसे दूरबिन्दुपर होते हैं ।

(३) **खण्डित ग्रहण** तब होता है जब—(क) अमावास्या होती है, (ख) चन्द्रमा ठीक राहु या केतु-बिन्दुपर न होकर उनमेंसे किसी एकके समीप होते हैं ।

चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण पूर्णिमाको होता है—जबकि सूर्य और चन्द्रमाके बीच पृथ्वी होती है और तीनों—सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा—बिल्कुल सीधमें, एक सरल रेखामें होते हैं । पृथ्वी जब सूर्य और चन्द्रमाके बीच आ जाती है और चन्द्रमा पृथ्वीकी छायामें होकर गुजरते हैं तब चन्द्रग्रहण होता है—पृथ्वीकी वह छाया चन्द्रमण्डलको ढक देती है, जिससे चन्द्रमामें काला मण्डल दिखलायी पड़ता है । वही चन्द्रग्रहण कहा जाता है । सूर्य और चन्द्रमाके बीचसे गुजरनेवाली पृथ्वीकी बायीं ओर आधे भागपर रहनेवाले मनुष्योंको चन्द्रग्रहण दिखलायी पड़ता है ।

सूर्यबिम्बके बहुत बड़े होने तथा पृथ्वीके छोटे होनेके कारण पृथ्वीकी परछाईं हमारी परछाईंकी भाँति न होकर काले ठोस शङ्कुके समान—सूच्याकार होती है और चन्द्र-कक्षाको पारकर बहुत दूरतक निकल जाती है ।† आकाशमें फैली हुई पृथ्वीकी यह छाया लगभग ८, ५७,००० मील लम्बी होती है । इसकी लम्बाई पृथ्वी और सूर्यके बीचकी दूरीपर निर्भर होती है, अतः यह छाया घटती-बढ़ती रहती है । इसीलिये यह परछाईं कभी ८,७१,००० मील और कभी केवल ८,४२,००० मील लम्बी होती है । शङ्कु-सदृश इस प्रच्छायाके साथ ही शङ्कुके ही आकारवाली उपच्छाया भी रहती है । चन्द्रमा अपने भ्रमण-पथपर चलते हुए जब पृथ्वीकी उपच्छायामें पहुँचते हैं तब विशेष परिवर्तन होता नहीं दिखलायी पड़ता, पर ज्यों ही वे प्रच्छायाके समीप आ जाते हैं, त्यों ही उनपर ग्रहण प्रतीत होने लगता है और जब उनका सम्पूर्ण मण्डल प्रच्छायाके भीतर आ जाता है तब पूर्ण चन्द्रग्रहण अथवा पूर्णग्रास चन्द्रग्रहण कहा जाता है । इसे हम ज्योतिषके दृष्टिकोणसे और स्पष्टतासे समझें ।

'रात्रिमें दिखलायी देनेवाला अन्धकार पृथ्वीकी छाया है । यह छाया जब चन्द्रमापर पड़ जाती है तब चन्द्रमापर ग्रहण लगा कहा जाता है । चन्द्रमा पृथ्वीके उपग्रह हैं । अतः वे पृथ्वीकी परिक्रमा करते हैं । पृथ्वी यतः सूर्यकी

*—द्रष्टव्य—कमलाकरका निम्नाङ्कित श्लोक—

अथात्र भायावशेन तुल्यौ यत्कालिकौ सूर्यविधू स्फुटौ स्तः । अमान्तसंज्ञोऽस्ति स एव विशेषकंप्रहार्थे प्रथमं प्रसाध्यः ॥

—सि० तत्त्व वि०, सूर्य-ग्रहणा०

†-भानोर्बिम्बपृथुत्वादणुत्वात्पृथिव्याः प्रभा हि सूच्यग्रा । दीर्घतया शशिकक्षामतीत्य दूरं बहिः ।

—भ०

और सन् १८९८ ई०में सूर्यके खग्रास ग्रहण लगे थे।

ग्रहणसे ज्ञानार्जन— बहुत होता है। भारतके प्रसिद्ध प्राचीन ज्योतिषियों और धर्मशास्त्रियोंने ग्रहणके लोकपक्षीय धर्म्य विचार भी प्रस्तुत किये हैं। आचार्य आर्यभट्ट और ब्रह्मगुप्तने लिखा है कि सूर्य और चन्द्रमाकी गतिकी अवगति ग्रहणसे ही हुई। हम गणितसे कह सकते हैं कि स्थान-विशेषमें कितनी अवधिमें कितने ग्रहण लग सकते हैं। उदाहरणार्थ— बम्बईमें वर्षभरमें प्रायः चार सूर्यग्रहण एवं दो चन्द्रग्रहण हो सकते हैं। किंतु लगभग दो सौ वर्षोंके कालान्तरपर कुल मिलाकर सात ग्रहणोंका होना सम्भाव्य है, जिनमें चार सूर्यग्रहण और तीन चन्द्र-ग्रहण अथवा पाँच सूर्यग्रहण तथा दो चन्द्रग्रहण हो सकते हैं। साधारणतः प्रतिवर्ष दो ग्रहणोंका होना अनिवार्य है। हाँ, इतना नियत है कि जिस वर्ष दो ही ग्रहण होते हैं, उस वर्ष दोनों ही सूर्यग्रहण ही होते हैं। गणितद्वारा आगामी हजारों वर्षोंके ग्रहणोंकी संख्या उनकी तिथि और ग्रहणकी अवधि ठीक-ठीक निकाली जा सकती है।

ग्रहण केवल सूर्य और चन्द्रमामें ही नहीं लगते, प्रत्युत अन्य ग्रहों, उपग्रहोंमें भी होते हैं, जिसके लिये विशेषकृत्य निर्धारित नहीं है। निदान, ग्रहों, उपग्रहोंकी गतिशीलताकी विशेष स्थितिमें एकसे अन्यके प्रकाशका आवरण हो जाना या छायासे उसका ढक जाना नितान्त सम्भव है, जो सूर्य-चन्द्रसे सम्बद्ध होनेपर ही 'ग्रहण' कहा जाता है।* पृथ्वीपर ग्रहणके प्रभाव होनेसे धार्मिक कृत्य—स्नान, दान, जपादिका विधान है।

ग्रहणके धार्मिक कृत्य—सूर्यग्रहणके बारह घंटे और चन्द्रग्रहणके नौ घंटे पहलेसे विधवा, यति, वैष्णव और विरक्तोंको भोजन नहीं करना चाहिये। बाल, वृद्ध, रोगी और पुत्रवान् गृहस्थके† लिये नियम अनिवार्य नहीं है। ग्रहण-कालमें शयन और शौचादि क्रिया भी निषिद्ध है। देवमूर्तिका स्पर्श भी नहीं करना चाहिये। सूर्यग्रहणमें पुष्कर और कुरुक्षेत्रके तथा चन्द्रग्रहणमें काशीके स्नान,‡ जप, दानादिका बहुत महत्त्व है। ग्रहणमें विहित श्राद्ध कच्चे अन्न या स्वर्णसे ही करनेका विधान है। श्राद्ध अवश्य ही करना

* किंतु सूर्य बुधका अन्तर्योग ग्रहण नहीं, 'अधिक्रमण' कहा जाता है। यह ग्रहण जैसा ही होता है जिसे सूर्य-'भेदयोग' भी कहते हैं। बुध जब सूर्य और पृथ्वीकी सीधमेंसे गुजरते हैं तो सूर्यबिम्बपर छोटे-से कलङ्कके समान काला बिन्दु दिखलायी पड़ता है। ज्योतिषी इसे ग्रहण-जैसा कोई महत्त्व नहीं देते हैं, पर आकाशीय यह घटना दर्शनीय होती है। सूर्य-कलङ्कसे इसकी भिन्नता, इसकी पूर्णतः गोलाई और शीघ्रगामितासे समझी जाती है। बुध सूर्यसे प्रायः साढ़े तीन करोड़ मीलपर रहते हैं।

निकटतम भूतमें ऐसा योग ६ नवम्बर १९६० को तथा शनिवार ९ मई १९७० ई० को हुआ था और भारत, चीन, रूस—एशिया, अफ्रीका, योरप, दक्षिणी अमेरिका, कुछ भागोंको छोड़कर उत्तरी अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, जापान, ग्रीनलैंड फिलीपाइन आदि संसारके प्रायः सभी देशोंमें देखा गया था। ऐसा ही योग निकटतम भूतकाल १० नवम्बर १९७३ में हुआ था। पुनः १२ नवम्बर १९८६ ई० को होगा। ज्योतिषके संहिताग्रन्थोंमें ऐसे योगको अनिष्ट-कारी बताया गया है और सत्तापरिवर्तनमें नेतृपरिवर्तन सम्भाव्य होता है। (बुध-सूर्यका अतिपात भी होता है—जब बुध पृथ्वीके बीचमें सूर्य होते हैं।)

† आदित्येऽहनि संक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। पारणं चोपवासं च न कुर्यात् पुत्रवान् गृही॥

पुत्रवान् गृहीके लिये रविवार, संक्रान्तिमें भी पारण तथा उपवास वर्जित है।

‡ स्नानके लिये गरम जलकी अपेक्षा शीतजल, दूसरेके जलसे अपना जल, भूमिसे निकाले हुएकी अपेक्षा भूमिमें स्थित जल, तालाबका और उससे झरनेका, उससे गङ्गाका और गङ्गासे समुद्रका जल अधिक पुण्यप्रद होता है।

पूर्णतः अदृश्य न होकर कुछ लालिमा लिये हुए ताँबेके रंगके दृष्टिगोचर होते हैं; क्योंकि सूर्यकी रक्तिम किरणें पृथ्वीके वायुमण्डलद्वारा नीलांशशोषित होनेपर परिवर्तित होकर चन्द्रमातक पहुँच जाती हैं। इसी कारण हम पूर्ण चन्द्रग्रहणके समय भी चन्द्रमण्डलको देख सकते हैं।

ग्रहण-कालकी अवधि—चन्द्रमा और पृथ्वीकी दूरीके ऊपर निर्भर होती है। कभी पृथ्वीकी छाया उस स्थानपर चन्द्रमाके व्याससे तिगुनीसे भी अधिक हो जाती है, जहाँ चन्द्रमा उसे पार करते हैं। छायाकी चौड़ाई इस स्थानपर जितनी अधिक होती है, उतनी ही अधिक अवधितक चन्द्रग्रहण रहता है। पूर्ण चन्द्र-ग्रहणकी अवधि प्रायः दो घंटोंतक और ग्रहणका सम्पूर्ण समय चार घंटोंतकका हो सकता है। चन्द्र-मण्डलकी ग्रस्तताके अनुसार खण्ड-चन्द्रग्रहण अथवा पूर्ण चन्द्रग्रहण (खग्रास चन्द्रग्रहण) कहा-सुना जाता है। इसी प्रकार 'चन्द्रोपराग' भी शास्त्रीय चर्चामें व्यवहृत होता है।

खगोल-शास्त्रियोंने गणितसे निश्चित किया है कि १८ वर्ष १८ दिनोंकी अवधिमें ४१ सूर्यग्रहण और २९ चन्द्र-ग्रहण होते हैं। एक वर्षमें ५ सूर्यग्रहण तथा दो चन्द्र-ग्रहणतक होते हैं। किंतु एक वर्षमें दो सूर्यग्रहण तो होने ही चाहिये। हाँ, यदि किसी वर्ष दो ही ग्रहण हुए तो दोनों ही सूर्यग्रहण होंगे। यद्यपि वर्षभरमें ७ ग्रहणतक सम्भाव्य हैं, तथापि चारसे अधिक ग्रहण बहुत कम देखनेमें आते हैं। प्रत्येक ग्रहण १८ वर्ष ११ दिन बीत जानेपर पुनः होता है। किंतु वह अपने पहलेके स्थानमें ही हो—यह निश्चित नहीं है; क्योंकि सम्पात-बिन्दु चल है।

साधारणतया सूर्य-ग्रहणकी अपेक्षा चन्द्रग्रहण अधिक देखे जाते हैं, पर सच तो यह है कि चन्द्र-ग्रहणसे कहीं अधिक सूर्यग्रहण होते हैं। तीन चन्द्र-ग्रहणपर चार सूर्यग्रहणका अनुपात आता है। चन्द्र-ग्रहणोंके अधिक देखे जानेका कारण यह होता है कि वे पृथ्वीके आधेसे अधिक भागमें दिखलायी पड़ते हैं, जब कि सूर्यग्रहण पृथ्वीके बहुत थोड़े भागमें—प्रायः सौ मीलसे कम चौड़े और दो हजारसे तीन हजार मील लम्बे भूभागमें—दिखलायी पड़ते हैं। बम्बईमें खग्रास सूर्यग्रहण हो तो सूरतमें खण्ड सूर्यग्रहण दिखायी देगा और अहमदाबादमें दिखायी ही नहीं पड़ेगा।

खग्रास चन्द्रग्रहण चार घंटोंतक दिखायी पड़ता है, जिनमें दो घंटोंतक चन्द्रमण्डल बहुत ही काला नजर आता है। खग्रास सूर्यग्रहण दो घंटोंतक रहता है, परंतु पूरा सूर्यमण्डल ८–१० मिनटोंतक ही घिरा रहता है और साधारणतः दो-ही-तीन मिनटतक गाढ़ा रहता है। उस समय रात्रि-जैसा दृश्य हो जाता है।

सूर्यका खग्रास ग्रहण दिव्य होता है। सूर्यके पूरी तरह ढकनेके पहले पृथ्वीका रंग बदल जाता है और यत्किञ्चित् भयका भी संचार होता है। चन्द्रमण्डल तेजीसे सूर्यबिम्बको ढक लेता है, जिससे अँधेरा छा जाता है। पशु-पक्षी भी विशेष परिस्थितिका अनुभवकर अपनी रक्षाका उपाय करने लगते हैं। परंतु आकाशकी भव्यता और उपयोगिता बढ़ जाती है। सूर्यके पार्श्व प्रान्तमें मनोरम दृश्य देखनेको मिलता है। उसके चारों ओर मोतीके समान स्वच्छ 'मुकुटावरण' दृग्गोचर होता है, जिसके तेजसे आँखोंमें चकाचौंध होने लगती है। उसके नीचेसे सूर्यकी लाल ज्वाला (प्रोन्नत ज्वाला) निकलती देख पड़ती है। उस समय उसके हल्के प्रकाशसे मनुष्योंके मुँह लाल वर्णके-से जान पड़ते हैं। किंतु यह दृश्य दो-चार मिनटतक ही दिखलायी पड़ता है, फिर अदृश्य हो जाता है। इस मनोज्ञ दिव्य दृश्यको देखनेके लिये दैवज्ञ ज्योतिषी और भौगोलिक दूर-दूरसे ज्ञान-पिपासा शान्त करनेकी प्रक्रियामें यन्त्रोंसे सज्ज होकर प्रयोगार्थ वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ पूर्ण सूर्यग्रहण (खग्रास सूर्यग्रहण) होता है। भारतवर्षमें सन् १८७१ ई०

*

है। प्रश्न होता है—यह कौन-सा देव है ? उत्तर है—प्राण (१।११।४)। प्राणका अर्थ यहाँ ब्रह्म हुआ। वेदमें 'आकाश' केवल पञ्च महाभूत—(क्षिति, जल, तेज, वायु तथा आकाश) वाला ही एक महाभूत नहीं है। वह वेदान्तसूत्रके अनुसार (१।१।२२) ब्रह्मका (भी) वाचक है। अस्तु।

हमारे शास्त्रोंमें १२ आदित्योंका वर्णन है। आज विज्ञानने मान लिया है कि १२ सूर्योंका तो पता चला है, किन्तु बाकी कितने हैं, यह नहीं कहा जा सकता। यह भी सिद्ध है कि इन १२ आदित्योंमें जो हमसे सबसे निकट है, वे ये ही सूर्य हैं, जिन्हें हम देखते हैं। पर सभी आदित्योंमें ये सबसे छोटे हैं। जिन भगवान् सूर्यकी अनन्त महिमा है, वे स्यात् हमारी दृष्टिकी परिधिके बाहर हैं। आज विज्ञान भी कहता है कि ग्रहोंमें सूर्य सबसे बड़े और प्रकाशमान होते हुए भी वास्तवमें सबसे छोटे और धुँधले हैं। यही नहीं, ये अपने निकटतम तारेसे कम-से-कम ३,००,००० गुना अधिक दूर हैं। सत्रहवीं सदीमें जॉन केपलरने यह हिसाब लगाया था। अति प्रकाशवान 'एरोस' (सूरः) पृथ्वीसे १ करोड़ ४० लाख मील दूर है। पृथ्वीसे सूर्यकी दूरीका जो हिसाब प्राचीन भारतीय ग्रन्थोंसे लगता है, वे भी अब निर्धारित हो रहे हैं। पृथ्वीसे ९,२९,००,००० मील दूरीका अनुमान तो लग चुका है। इतने विशाल सूर्य कैसे बन गये, यह विज्ञान केवल अनुमान कर सका है। इनका व्यास लगभग ८,६४,००० मील है। अणु-परमाणुके इन महान् पुञ्जको निकटसे देखनेसे वास्तवमें वे एकदम साफ प्रकाशवान् तश्तरीसे नहीं, बल्कि प्रज्वलित देदीप्यमान चावलके कणोंके समूह-से दीखते हैं। इनका अध्ययन अत्यन्त रोचक है।

इन्हीं सूर्यमें सृष्टिका पोषण होता है—यह हमारा शास्त्र कहता है। विज्ञान कहता है कि इनमें निहित ६६ तत्त्वोंका पता लग चुका है, जो पृथ्वीके लिये पोषक तथा जीवनदाता हैं; पर और कितने अनगिनत तत्त्व हैं तथा किस शक्तिने इनको एक ग्रहमें रख दिया है, इसका अनुमान भी नहीं लग पाता। यह विज्ञानका मत है कि जिन सूर्यसे हम प्रकाश पा रहे हैं, उनकी न्यूनतम केन्द्रीय उष्णता ६,००० डिग्रीकी अवश्य है। प्रतिक्षण ये सूर्य संसारको ३३७९×१० मान शक्ति दे रहे हैं। इनकी यह शक्ति प्रकाश तथा उष्णताके रूपमें प्राप्त हो रही है। यदि इस शक्तिका वजनमें कथन किया जाय तो सूर्यसे प्रतिक्षण प्रति सेकेण्ड चालीस लाख ४०,००,००० टन शक्ति झर रही है, जो हमारे ऊपर गिर रही है। इतनी शक्तिका क्षय होनेपर भी उनका शक्ति-कोष खाली नहीं हो रहा है और कैसे उतनी शक्ति बराबर बनती जा रही है—इसका उत्तर विज्ञानके पास नहीं है। विज्ञानके लिये यह 'अद्भुत रहस्य' है।

सूर्यका उपयोग

सूर्यका नाम द्वादशात्मा भी है; विवस्वान् तथा भगः भी है। 'सूर्यः सरति' अर्थात् आकाशमें सूर्य खिसक रहा है, अतः आकाशके प्रलयका कारण होगा—यह भारतीय मान्यता है। आज विज्ञान भी कहता है कि १२ सूर्य धीरे-धीरे पृथ्वीके निकट आ रहे हैं और अधिक निकट आ गये तो प्रलय हो जायगी। आज विज्ञान सूर्यकी शक्तिका संकलन करके कोयला, पानी, ईंधन और बिजली—इन सबका काम उससे लेना चाहता है। बड़े बड़े यन्त्र इसलिये बनाये गये हैं कि सूर्यकी किरणोंमें प्राप्त शक्तिका संचय कर उससे काम लें। अमेरिकाकी 'टाइम' पत्रिकाके अनुसार इस समय ४०,००० अमेरिकन घरोंमें सूर्य-शक्तिसे यन्त्रद्वारा प्रकाश प्राप्त करने, भोजन बनाने तथा मकानको गर्म रखनेका कार्य हो रहा है। इजराइलमें जितने मकान हैं, उनके पाँचवें अंशमें यानी २,२०,००० मकानोंमें सूर्य-शक्ति ही काम दे रही है। जापानके

चाहिये, अन्यथा नास्तिकतावश [illegible] वैसा [illegible] जीव दुर्गतिमें पड़ना पड़ता है।*

जन्म-नक्षत्र अथवा अनिष्टकर देनेवाले नक्षत्रमें ग्रहण लगनेपर उसके दोषकी शान्तिके हेतु सूर्यग्रहणमें सोनेका और चन्द्रग्रहणमें चाँदीका बिम्ब तथा घोड़ा, गौ, भूमि, तिल एवं [illegible] यथाशक्ति दान देनेका महत्त्व शास्त्रोंमें प्रतिपादित है। भगवन्नाम-संकीर्तन और जप आदि तो सभीको करना ही चाहिये।

'सूर्येन्दुग्रहणं यावत्तावत्कुर्याज्जपादिकम्'

वैदिक सूर्य तथा विज्ञान

(लेखक—श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

गायत्रीके 'सवितुर्वरेण्यम्' मन्त्रके ऋषिसे लेकर आजतक—अब भारतीय वैज्ञानिक मेघनाद शाहा, विदेशी वैज्ञानिक एडिंगटन, जीन्स, फाउलर, एडवर्ड आर्थर, मिल्ने या रसेलने भगवान् सूर्यके सम्बन्धमें बहुत छानबीन तथा खोज कर डाली है—वैदिक कालमें सूर्यकी रचना, गति तथा महत्ताके विषयमें जो सिद्धान्त प्रतिपादित कर दिये गये थे, उनमें न तो कोई मौलिक अन्तर पड़ा है और न कोई ऐसी बात कही गयी है जो यह सिद्ध कर सके कि भारतीय सूर्यके वैज्ञानिक रूपसे अपरिचित थे तथा उन्हें केवल एक दैविक शक्ति मानकर उनके विषयमें छानबीन करना अपराध या पाप समझते थे। भारतीय सभ्यताकी प्राचीन कालीन सबसे बड़ी विशिष्टता है—विचार-स्वातन्त्र्य तथा विचार-औदार्य। प्रत्येक महापुरुष तथा मनीषीको पूरी स्वच्छन्दता थी कि वह जगत्के गूढ़तम सत्यकी खोज अपने ढंगसे करे और उसे प्राप्त करनेका स्वतन्त्र प्रयास करे। उदाहरणके लिये कपिल तथा कणादको लें। कपिल बुद्धसे बहुत पहले तथा उपनिषदोंमेंसे कुछकी रचनाके पूर्वके ऋषि हैं; इसमें संदेह नहीं है। श्वेताश्वतरोपनिषद्के 'ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे'(५।२)से ही यह प्रकट है। पर कपिल वैदिक धारणाके विपरीत असंख्य आत्मा या पुरुष मानते थे। प्रकृति सब आत्माओंसे सम्बन्ध निबाहनेके लिये कार्यरत है। इसी प्रकार खेतोंमें गिरे अन्नको खाकर जीवननिर्वाह करनेवाले तपस्वी कणादके वैशेषिक दर्शनमें ईश्वरका उल्लेख नहीं है। इसलिये कुछ लोग उन्हें नास्तिक भी कहते हैं, जो उचित नहीं है। पुनर्जन्म और कर्मफलको माननेवाला व्यक्ति नास्तिक कैसे हो सकता है? अतः कणादकी रचनाको छः आस्तिक-दर्शनोंमें माना गया है।

तात्पर्य यह है कि हिंदू या आर्य-धर्म सदासे वैज्ञानिक खोज तथा निरन्तर अनुसन्धानमें लगा रहा। किंतु वेदमें वर्णित प्रत्येक विषयकी जानकारी प्राप्त करनेके लिये बहुत समझ-बूझकी आवश्यकता पड़ती है। वैदिक प्रसङ्गोंमें शब्दके अर्थका उसके सामान्यतः प्रचलित अर्थसे निश्चय नहीं करना चाहिये, न किया जा सकता है। बादरायण व्यासने वेदान्तसूत्र (१ । २ । १०) में स्पष्ट लिख दिया है कि वैदिक शब्दोंका अर्थ संदर्भके अनुसार करना समुचित है—'प्रकरणाच्च'। सम्बद्ध प्रसङ्गका अन्वितार्थ ही स्पष्टीकरण कर सकता है; क्योंकि प्रसङ्गको जाननेपर ही वाक्योंका अन्वय ठीक-ठीक बैठता और तात्पर्य ज्ञात होता है—वाक्यान्वयात् (७१ । ४ । १९)। उदाहरणके लिये छान्दोग्य उपनिषद्में 'प्राण' शब्दको

* सर्वस्वेनापि कर्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने। अकुर्वाणस्तु नास्तिक्यात्पङ्के गौरिव सीदति॥
(—महाभा० अ० ८० ३९)

सूर्य, सौरमण्डल, ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्मकी मीमांसा

(लेखक—श्रीगोरखनाथसिंहजी, एम्० ए०, अंग्रेजी-दर्शन)

एक अंग्रेजी कहावतके अनुसार (Man does not live on bread alone) 'मनुष्य केवल रोटीसे ही जिंदा नहीं रहता है' उसे अपनी जिज्ञासाकी शान्तिके लिये कुछ और चाहिये। इसमें उसका सम्पूर्ण परिवेश—जीव, ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्म सभी आते हैं। पुनश्च जीव और ब्रह्माण्डकी प्रकृतिमें पर्याप्त समानताएँ हैं। इस उद्देश्यसे भी यह मीमांसा समीचीन है। इसी तथ्यको हावर्ड विश्वविद्यालयके प्रसिद्ध प्रोफेसर एवं ज्योतिषी हार्लो शेपली (Harlow Shapley) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'तारे और मनुष्य—बढ़ते हुए ब्रह्माण्डमें मानवीय प्रतिक्रिया' (Stars and Human—Response to an expanding universe) के तीसरे अध्यायमें निम्न प्रकारसे व्यक्त किया है—'मनुष्यके शरीरमें जितने तत्त्व हैं, वे सब-के-सब पृथ्वीकी ठोस पपड़ीमें या उसके ऊपर मौजूद हैं। यदि सबका नहीं तो उनमेंसे अधिकांशके अस्तित्वका तारोंके उत्तप्त वातावरणोंमें भी परिचय मिला है। जन्तुओंके शरीरोंमें किसी प्रकारके भी ऐसे परमाणु नहीं मिले हैं, जिनकी उपस्थिति अजीव-परिवेशमें सुपरिचित न हो। स्पष्ट है कि मनुष्य भी तारोंके साधारण द्रव्यसे ही बना है और उसे इस बातका गर्व होना चाहिये।

इस बातमें जन्तु और पौधे तारोंसे बढ़कर हैं। अणुओं तथा आणविक संगठनोंकी जटिलतामें जीवित प्राणी, अजीव-जगत्के पारमाणविक संयोजनोंसे बहुत आगे बढ़ गये हैं। कटरपिलरकी रचना कार्बनिक-रसायन-सम्बन्धी रचनाकी तुलनामें सूर्यके प्रज्वलित वातावरण तथा अन्तरङ्गकी रासायनिक संरचना बहुत ही सरल पायी गयी है। यही कारण है कि हम कीटडिम्भ (Insect Larvae)की अपेक्षा तारोंको अधिक समझ सके हैं। तारोंकी प्रक्रियाएँ गुरुत्वाकर्षण, गैसों तथा विकिरणके नियमोंके अनुसार होती हैं। अतः उनपर दबाव, घनत्व एवं तापमानका प्रभाव पड़ता है; किंतु प्राणियोंके शरीर गैसों, द्रवों तथा पदार्थोंके निराशाजनक मिश्रण हैं—निराशाजनक अर्थमें कि उनके लिये हम कोई परिपूर्ण गणितीय तथा भौतिक-रासायनिक सूत्र प्राप्त करनेमें सफल नहीं हो सके हैं। जीवरसायन विज्ञानी (Bio-chemis) को जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, उनको देखते हुए ताराभौतिकज्ञ (Astro physicist) का काम बहुत ही सरल है।'

यह आकाश तारों, ग्रहों, उपग्रहों, उल्काओं तथा धूमकेतुओंसे परिपूर्ण है। तारे स्वयं प्रकाशमान होते हैं। सूर्य* भी विभिन्न गैसोंसे युक्त एक प्रकारका तारा है। इसमें पृथ्वी-जैसे कई लाख गोले समा सकते हैं। इसकी दूरी पृथ्वीसे लगभग १५ करोड़ किलोमीटर है। यह पृथ्वीके निकटका सबसे बड़ा तारा है; इसलिये इतना विशाल दिखायी पड़ता है।

आकाशमें उन पिण्डोंको सौरमण्डल कहा जाता है, जिनका सम्बन्ध सूर्यसे है। ये सूर्यके चारों ओर परिक्रमा करते हैं। इन्हें ग्रह कहा जाता है। इनमेंसे पृथ्वी भी एक ग्रह है। इसके अतिरिक्त आठ अन्य ग्रह भी हैं। ये सब अपनी-अपनी कक्षामें सूर्यके चारों ओर चक्कर लगाते हैं। सूर्यके चारों ओर चक्कर लगानेके साथ ये ग्रह पृथ्वीकी भाँति अपनी धुरीपर भी चक्कर लगाते हैं। सूर्य भी अपनी धुरीपर घूमता है। इस सौरमण्डलमें ३० उपग्रह भी हैं। उपग्रह हमारी धरती-जैसे ग्रहोंके चारों ओर घूमते हैं। इसके अतिरिक्त १५०० क्षुद्रग्रह भी [illegible]-

* वैज्ञानिक भौतिक ज्योति पिण्डका ही विवेचन करते हैं। उनको ग्रंथों समझाने [illegible] माना है। हमने उसे उसी रूपमें रहने दिया है। (आधिदैविकरूपके पूज्य होनेमें आदरणीय [illegible] है।) [-४०]

परिवारमें हैं। उल्लेखनीय है कि मनुष्यद्वारा निर्मित उपग्रह भी अनेक हैं। इस प्रकारका उपग्रह सर्वप्रथम १९५७ ई०में बना। ये उपग्रह कुछ घण्टोंमें ही पृथ्वीका एक चक्कर लगा लेते हैं।

चन्द्रमा पृथ्वीका उपग्रह है। यह २९ दिनोंमें पृथ्वीका एक चक्कर लगाता है। यह पृथ्वीसे ४ लाख किलोमीटर दूर है। मनुष्य चन्द्रमापर १९६९ ई०में सबसे पहली बार उतरा। फलतः अनेक भ्रान्तियोंका निवारण हुआ। सूर्यके पासका ग्रह बुध है। इसके बाद क्रमसे शुक्र, पृथ्वी, मङ्गल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून तथा प्लूटो हैं। ये अपनी कक्षाओंमें होकर सूर्यके चतुर्दिक् चक्कर लगाते हैं।

जिस प्रकार पृथ्वी अपनी कीलीपर २४ घंटेमें एक बार परिक्रमा करती है और उसके फलस्वरूप प्रातः, दोपहर, सायं, रात और दिन होते हैं, उसी प्रकार पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा एक वर्ष (३६५ दिन)में करती है। इसीसे जाड़ा, गरमी और बरसात होती है।

सूर्यसे हमें उष्मा और प्रकाश दोनों प्राप्त होते हैं। यही उष्मा ऊर्जा (Energy)का स्रोत है। ऊर्जाका उपयोग भापके इंजिनोंके चलानेमें भी होता है। यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि सूर्यसे मिलनेवाली ऊर्जासे ही लकड़ी, कोयला और पेट्रोल आदि बनते हैं। सूर्यकी उष्मा ही समुद्रके जलको भाप बनाकर वर्षाके रूपमें पहाड़ोंपर पहुँचाती है। यही भाप पहाड़ोंपर बर्फके रूपमें मिलती है। कालान्तरमें यही बर्फ पिघलकर नदियोंमें बहती है, जिससे हमें विद्युत् बनानेके लिये 'ऊर्जा' मिलती है। हवा, आँधी एवं तूफान भी सूर्यकी उष्मासे ऊर्जा पाकर चलते हैं। इसके अतिरिक्त जिन स्रोतोंसे भी हमें ऊर्जा मिलती है, वे सब सूर्यसे ही ऊर्जा प्राप्त करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस पृथ्वीपर ऊर्जाका असली स्रोत यह सूर्य है, जिसके अभावमें इस पृथ्वीपर किसी जीवकी कल्पना करना असम्भव है। इसी बातको डाक्टर निहालकरण सेठी भी अपनी पुस्तक 'ताराभौतिकी'में इस प्रकार दुहराते हैं—'सूर्यसे तो हमें गर्मी भी बहुत मिलती है। हमारे दिन-रात, हमारी ऋतुएँ, हमारे पेड़-पौधे तथा कृषि—वस्तुतः हमारा समस्त जीवन सूर्यकी उष्मापर ही आधारित है।'

सूर्यकी बनावट—सूर्यके सर्वग्रहणको देखकर वैज्ञानिकोंको उसके अंदरकी बनावटके बारेमें पर्याप्त पता चल गया है। अतः वे उसे छः भागोंमें विभाजित करते हैं। यथा (१) प्रकाश-मण्डल, (२) सूर्य-कलङ्क, (३) सूर्यकी जटाएँ, (४) पल्टाऊ तह, (५) सूर्यमुकुट, (६) हाइड्रोजन अथवा कैल्शियम गैसें।

(१) प्रकाश-मण्डल—सूर्यका वह भाग है, जो हमको रोज दिखायी पड़ता है तथा जिसे हम प्रकाश-मण्डल कहते हैं। यह बहुत गर्म है।

(२) सूर्य-कलङ्क—चन्द्रमाकी भाँति सूर्यपर भी काले धब्बे हैं। ये कभी छोटे, कभी बड़े, कभी कम और कभी बहुत-से दिखायी देते हैं। इन्हें 'सूर्य-कलङ्क' कहा जाता है। सूर्य-कलङ्क सदा एक ही जगहपर नहीं रहते हैं, क्योंकि धरतीके समान सूर्य भी अपनी धुरीपर नाचता है। यह अपनी धुरीपर चौबीससे बत्तीस दिनोंमें एक चक्कर पूरा कर लेता है।

(३) सूर्यकी जटाएँ—जब सम्पूर्ण ग्रहण लगता है तो सूर्यके काले गोलेके चारों ओर जलती गैसोंकी लम्बी-लम्बी ज्वालाएँ निकलती हुई दिखायी पड़ती हैं। ये जटाएँ लाखों मील लम्बी होती हैं। ये प्रकाश-मण्डलसे भी अधिक गरम हैं तथा इसकी तह करीब १,००० मील मोटी है।

(४) पल्टाऊ तह—प्रकाश-मण्डलके ऊपर जाने कुछ कम गर्म गैसोंकी तहको 'पल्टाऊ तह' कहते हैं।

ग्रहोंकी सूर्य-परिक्रमा

(Theory of Reletivity) पर आधारित हैं। इन सिद्धान्तोंमें दो प्रमुख हैं—(१) विकासवादी सिद्धान्त तथा (२) संतुलित ब्रह्माण्डका सिद्धान्त। प्रथमके अनुसार ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति शक्तिके एक विशाल गोलेके विराट् विस्फोटके फलस्वरूप हुई और उस विस्फोटसे उत्पन्न मन्दाकिनियाँ अब भी घूम रही हैं। गणितज्ञोंने यहाँतक हिसाब लगाया है कि यह विस्फोट ५० खरबसे ८० खरब साल पहलेके बीचमें हुआ। इस मतके वैज्ञानिकोंका कथन है कि वर्तमान स्थिति बार-बार घटित होनेवाली प्रक्रियाकी ही एक मंजिल है। कोई एक समय ऐसा आयेगा, जब यह प्रक्रिया उलट जायगी, इस विश्वका प्रलय हो जायगा और ब्रह्माण्ड सिकुड़कर फिर एक विशाल गोला बन जायगा। तत्पश्चात् पुनः विस्फोट होगा—सृष्टिकी शुरुआत होगी।

संतुलित ब्रह्माण्डके सिद्धान्तके अनुसार—इस ब्रह्माण्डकी न तो कोई शुरुआत है और न कोई अन्त। इसमें द्रव्यका विभाजन सदासे रहा है और आगे भी सदा रहेगा। जैसे-जैसे मन्दाकिनियाँ छितराती जाती हैं, वैसे-वैसे नयी मन्दाकिनियोंके निर्माणके लिये आवश्यक द्रव्य इस गतिसे पैदा होता जाता है कि वर्तमान मन्दाकिनियोंकी कमी पूरी हो सके। लेकिन वर्तमान मन्दाकिनियाँ कहाँ जायँगी? चूँकि ये ज्यादा-से-ज्यादा तेजीके साथ एक दूसरेसे अलग हटती जा रही हैं और इससे इनकी गति और भी बढ़ती जा रही है, इसलिये अन्तमें जाकर इनकी रफ्तार प्रकाशकी गतिके बराबर हो जायगी। वर्तमान सिद्धान्तोंके अनुसार पदार्थ या द्रव्य इतनी द्रुतगति नहीं प्राप्त कर सकता है। तो क्या ये मन्दाकिनियाँ गायब हो जायँगी? इसका निश्चित उत्तर अभी विज्ञानके पास नहीं है।

ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्मकी मीमांसा—अन्तिम प्रश्न है [illegible] मीमांसाका। इस सम्बन्धमें भी [illegible] इस पुस्तकके प्रथम अध्यायमें विशद् विवेचन किया है। उनका प्रश्न है—'यह [illegible] है?' इसके उत्तरमें उनका कहना है [illegible] रचनाके सम्बन्धमें विचार और अनुसंधानमें व्यस्त वैज्ञानिक और वे थोड़ेसे दार्शनिक जिनके अध्ययनमें ब्रह्माण्डविज्ञान (Cosmology) भी समाविष्ट है, शीघ्र ही इस परिणामपर पहुँचते हैं कि यह भौतिक जगत् जिन मूलभूत सत्ताओं (Entities)-के संयोगसे बना है या जिनके द्वारा हमें उसका ज्ञान प्राप्त होता है और जिनकी सहायतासे हम उसका पर्याप्त स्पष्टतासे वर्णन कर सकते हैं, उनकी संख्या चार है। हम इन्हें आसानीसे पहचान सकते हैं; इनका नामकरण कर सकते हैं और किसी हदतक इन्हें एक-दूसरेसे पृथक् भी कर सकते हैं। सम्भव है कि निकट भविष्यमें यह संख्या चारसे अधिक हो जाय। अतः सुगमताके लिये हम भौतिक विज्ञानके जड़जगत्को और शायद समस्त जीवजगत्को भी इन्हीं चार सत्ताओंके ढाँचेमें निविष्ट करनेके लोभका संवरण नहीं कर सकते। ये चार सत्ताएँ निम्न हैं—(१) आकाश (Space) (२) काल (Time) (३) द्रव्य (Matter) और (४) ऊर्जा (Energy)। इनके अतिरिक्त अनेक उपसत्ताओंसे भी हम परिचित हैं; यथा गति, वर्ण, पाचन-क्रिया (Metabolism), एण्ट्रापी (Antropy), सृष्टि आदि।

किन्तु प्रश्न यह उठता है कि यद्यपि अभीतक इन सत्ताओंका अभिन्न सर्वमान्य नहीं हुआ है और न ये एक दूसरेसे पृथक् ही की जा सकती हैं, तो क्या इनसे अधिक महत्त्वपूर्ण सत्ताएँ हैं या नहीं? विशेषतः क्या इन चारके अतिरिक्त भौतिक जगत्का एक ऐसा भी गुण और है जो इस ब्रह्माण्डके अस्तित्व तथा [illegible] लिये अनिवार्यतः आवश्यक हो? इस प्रश्नको दूसरे रूपमें भी पूछा जा सकता है—यदि [illegible] ये चारों मूल सत्ताएँ [illegible] जायँ, [illegible] पूर्ण [illegible] और पूर्णतया प्राप्त हो जायँ एवं [illegible] इनमें स्पष्ट [illegible]

इसके तत्त्वोंमें वे सभी तत्त्व हैं, जो पृथ्वीपर पाये जाते हैं। परंतु अभीतक [illegible] ये पदार्थ अपनी [illegible] हालतमें वहाँ नहीं रह सकते। इसमें हीलियम नामक एक गैस भी पायी जाती है।

(५) सूर्य-मुकुट—सूर्यके गोलेके बाहर सूर्यका मुकुट है। इसका आकार सदा एक-सा नहीं रहता है। यह सूर्यके प्रकाश-मण्डलसे बीसन-तीस लाख मील ऊपरतक फैला है। यह गैसकी एक बहुत ही पतली झीनी तह है। सूर्यकी जटाएँ सूर्य-मुकुटके बाहर फैली हैं।

(६) हाइड्रोजन गैस—सूर्यमें हाइड्रोजन गैस धब्बोंके ऊपर बादलोंके पास चक्कर काटती हुई जान पड़ती है। इसके अतिरिक्त सूर्यपर कैल्शियमके बादल भी हैं। ये बड़े ही सुन्दर जान पड़ते हैं।

पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी—पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी ९,२८,७०,००० मील है। यह दूरी इतनी है कि सूर्यके प्रकाशको; जो १,८६,००० मील प्रति सेकंडके वेगसे चलता है, पृथ्वीतक पहुँचनेमें लगभग ८ मि० १८ से० का समय लग जाता है।

सूर्यका व्यास—इसका व्यास ८,६४,००० मील है। यह संख्या पृथ्वीके व्यासमें १०० गुनीसे भी अधिक है।

सूर्यका भ्रमण—सूर्य पृथ्वीकी तरह अपने अक्षपर घूम रहे हैं। ये चार सप्ताहमें एक चक्कर लगाते हैं। वैज्ञानिकोंके अनुसार सूर्यकी रचना 'ठोस' नहीं है; बल्कि 'गैसीय' है। यह अनेक प्रकारकी गैसोंसे निर्मित है, जो इसकी अनन्त उष्मा और ऊर्जाके कारण हैं और ये ही इस पृथ्वीके समस्त ऊर्जाके स्रोत हैं।

ब्रह्माण्डकी परिभाषा तथा उसका स्वरूप—आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, ज्ञात तथा अन्य अनेक अज्ञात पिण्ड जिसमें स्थित हैं; उसे ब्रह्माण्ड (Universe) कहते हैं। यह शब्द 'विश्व' तथा जगत्‌का पर्याय है। प्रारम्भमें आकाशगङ्गा (Galaxy) शब्द 'मिल्की-वे' (Milky way) का पर्याय था। इसका अर्थ है 'दूधिया मार्ग'। इसे 'आकाशगङ्गा' अथवा 'मन्दाकिनी' कहते हैं। इसमें असंख्य तारे हैं। हमारा सूर्य भी उन्हींमेंसे एक तारा है। जितने तारे आँखोंसे अथवा दूरबीनसे दिखायी पड़ते वे सब आकाशगङ्गाके ही सदस्य हैं। यही हमारा विश्व है। इसका विस्तार बहुत बड़ा किंतु परिमित है।

आकाशमें कुछ ऐसी वस्तुएँ भी हैं, जो तारोंके समान बिन्दुसदृश नहीं हैं; किंतु बादलके टुकड़ोंके समान दिखायी देती हैं। इन्हें 'नीहारिका' (Nebula) कहते हैं। इनमेंसे कुछ आकाशगङ्गाके सदस्य हैं तथा उसीके अन्तर्गत आती हैं। परंतु करोड़ों नीहारिकाएँ हमारी आकाशगङ्गासे (हमारे विश्वसे) बिल्कुल बाहर और बहुत ही अधिक दूरीपर स्थित हैं। इन्हें 'अगाङ्ग नीहारिकाएँ' (Extra-Galetic Nebulae) कहा जाता है।

ये 'अगाङ्ग नीहारिकाएँ' हमारी आकाशगङ्गाकी तरह असंख्य तारोंके समूह हैं। इन अगाङ्ग नीहारिकाओंके समूह भी हमारे विश्वकी तरह दूसरे विश्व हैं। इस प्रकारसे इस ब्रह्माण्डमें कई करोड़ विश्व हैं। अतः 'विश्व' शब्द अपने प्राचीन अर्थमें न तो हमारी 'आकाशगङ्गा'के लिये उपयुक्त है और न 'अगाङ्ग नीहारिकाओं'के लिये ही। इन्हें अब 'उपविश्व' (Sub-Universes) अथवा द्वीपविश्व (Islands universes) कहने लगे हैं; तथापि 'विश्व' शब्द अब भी इनके लिये प्रचलित है और इसीके द्वारा इन करोड़ों द्वीपविश्वोंके अखिल समुदायको भी व्यक्त किया जाता है, जो सर्वथा भ्रामक है। अतः इसके स्थानपर 'ब्रह्माण्ड' शब्दका प्रयोग करना ज्यादा समीचीन होगा। ब्रह्माण्ड अनन्त है।

ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके सिद्धान्त—ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके सिद्धान्त उच्चतरगणित—विशेषकर अल्बर्ट आइन्स्टीन (Albert Einstein) के सापेक्षतावादके सिद्धान्त

पुराणोंमें सूर्यसम्बन्धी कथा

(लेखक— श्रीतारिणीशजी झा)

पुराणोंमें सूर्यकी कथाएँ अनन्त हैं। इसका कारण यह है कि सूर्य प्रत्यक्ष देवता और जगच्चक्षु हैं। इनके बिना संसारकी स्थितिकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। इसलिये हिंदुओंकी पञ्चदेवोपासनामें प्रथम स्थान इन्हींको प्राप्त है। वैदिक कर्मकलापके प्रारम्भमें पञ्चदेवताकी पूजा आवश्यक मानी गयी है, जिसमें पञ्चदेवताके आवाहनके लिये—'सूर्यादिपञ्चदेवता इहागच्छन्त इह तिष्ठन्त'—पढ़ा जाता है। इससे भगवान् भुवन-भास्कर-की प्रमुखता स्वय सिद्ध है।

ऐसे प्रत्यक्ष देवकी कथा न केवल पुराणोंमें अपितु ...स्वेदब्राह्मणादि शास्त्रोंमें भूरिशः वर्णित है। किंतु यहाँ ... पुराणोक्त सूर्य-कथापर ही थोड़ा प्रकाश डालना ...। मार्कण्डेयपुराणके अनुसार विस्पष्टा, परमा विद्या, ...निर्भा, शाम्भवी, स्फुटा, कैवल्या, ज्ञान, आविर्भू, ...म्य, संवित्, बोध, अवगति इत्यादि सूर्यकी मूर्तियाँ हैं। ...भुवः स्वः'—ये तीन व्याहृतियाँ ही सूर्यका स्वरूप ...ॐसे सूर्यका सूक्ष्मरूप आविर्भूत हुआ। पश्चात् —'महः, जनः, तपः, सत्यम्' आदि भेदसे यथाक्रम और स्थूलतर सप्तमूर्तिका आविर्भाव हुआ। इन आविर्भाव और तिरोभाव हुआ करते हैं। ॐ ही सूक्ष्म रूप है। उस परम रूपका कोई आकार-नहीं है। वही साक्षात् परब्रह्म है। इस प्रकार ...पुराण सूर्यको अव्याकृत ब्रह्मका मूर्तरूप निरूपित ...आगे उनकी उत्पत्ति-विवरण भी प्रस्तुत करता यह है—

...तिने देवताओंको, दितिने दैत्योंको और दनुने ...जन्म दिया। दिति और अदितिके पुत्र ...जगत्में व्याप्त हो गये। अनन्तर दिति और ...के पुत्रोंने मिलकर देवताओंके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। इस युद्धमें देवता पराजित हुए। ... अदितिदेवी संतानकी मङ्गलकामनासे भगवान् सूर्यकी आराधनामें लग गयीं। भगवान्‌ने उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर कहा—'मैं आपके गर्भसे सहस्रांशमें जन्म लेकर शत्रुओंको विनष्ट करूँगा।' अनन्तर अदितिके तपस्यासे निवृत्त होनेपर सूर्यकी 'सौषुम्न' नामक किरण उनके उदरमें प्रविष्ट हो गयी। देवजननी अदिति भी समाहित होकर कृच्छ्र-चान्द्रायणव्रत आदिका अनुष्ठान करने लगीं। किंतु उनके पति कश्यपजीको उनके द्वारा अनुष्ठान करना पसंद नहीं आया। इसलिये एक दिन उन्होंने अदितिसे कहा—'तुम प्रतिदिन उपवास आदि करके क्या इस गर्भाण्डको मार डालोगी?' इसपर अदितिने कहा—'मैं इसे मारूँगी नहीं। यह स्वयं शत्रुओंकी मृत्युका कारण बनेगा।'

अदितिने यह बात कहकर उसी समय गर्भाण्डको त्याग दिया। गर्भाण्ड तेजसे जलने लगा। कश्यपने उदीयमान भास्करके समान प्रभाविशिष्ट उस गर्भको देखकर प्रणाम किया। पश्चात् सूर्यने पद्मपलाशप्रतिभ कलेवरमें उस गर्भाण्डसे प्रकट होकर अपने तेजसे दिशा-मुखको परिव्याप्त कर दिया। उसी समय आकाशवाणी हुई—'हे मुने! इस अण्डको 'मारित' अर्थात् मार डालनेकी बात तुमने कही है, इसलिये इसका नाम 'मार्तण्ड' होगा। यह पुत्र जगत्‌में सूर्यका कर्म और यज्ञभागहारी असुरोंका विनाश करेगा।'

अनन्तर प्रजापति विश्वकर्मा सूर्यके पास गये और अपनी संज्ञा नामकी कन्याको उनके हाथमें सौंप दिया। संज्ञाके गर्भसे तीन संतानें उत्पन्न हुईं—यमुना नामकी एक कन्या और वैवस्वत मनु तथा यम नामक दो पुत्र। किंतु संज्ञाको सूर्यका तेज असह्य लगता था ...

हो तो क्या आप आकाश, काल, द्रव्य और ऊर्जाके द्वारा इस जगत्के समान ही दूसरे जगत्का निर्माण कर सकते हैं ? या आपको किसी पाँचवीं सत्ता, मूलगुण या क्रियाकी आवश्यकता पड़ जायगी ?

शायद ऐसा सम्भव हो सकता है कि हम इस पाँचवीं सत्तापर अधिक जोर दे रहे हैं; किन्तु आगे चलकर इस रहस्यमय पाँचवीं सत्ताका अनेक बार जिक्र करना पड़ेगा। उसका अस्तित्व है, इसमें शङ्का करना कठिन है। तब क्या यह कोई प्रधान सत्ता है ?—शायद आकाश और द्रव्यसे भी अधिक आधारभूत है; सम्भवतः उसमें ये दोनों ही समाविष्ट हैं। क्या यह उपर्युक्त चारों सत्ताओंसे सर्वथा भिन्न है ? क्या उसके बिना काम नहीं चल सकता है ? क्या वह ऐसी सत्ता है, जिसके ही कारण तारों, पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओंसे भरे हुए तथा प्राकृतिक नियमोंसे नियमित इस जगत्का कार्य यथाक्रम चल रहा है ? क्या इसकी अनुपस्थितिमें इस संसारकी समस्त क्रियाएँ अव्यवस्थित हो जायँगी ?

सम्भवतः इस सम्बन्धमें कुछ पाठकोंका ध्यान 'ईश्वर'के नाम और उसके द्वारा व्यक्त धारणाकी ओर अवश्य किया जाय। सम्भवतः इस संसारमें कुछ ऐसे प्रच्छन्न लक्षण अवश्य विद्यमान हैं, जिनको प्रेरणा देनेवाली कोई स्वतन्त्र विश्वशक्ति है, जिसे हम नि[illegible] निरूपण, संचालन, सर्वशक्तिमान्की इच्छा अथवा कह सकते हैं। किन्तु यदि इस संचालन चेतनाका अस्तित्व हो भी तो उसे विश्वव्यापी चाहिये। (इसे हम ब्रह्म अथवा ईश्वरकी संज्ञा दे[illegible] हैं, जिस ब्रह्मकी इच्छासे ही सृष्टिप्रक्रिया चलती है[illegible]

ब्रह्माण्डके सम्बन्धमें निम्न तीन प्रश्न हो सकते[illegible]

१. इसका स्वरूप क्या है ? २. इसकी [illegible] कैसे घटित होती है ? ३. इसका अस्तित्व क्यों है[illegible]

पहले प्रश्नका प्राथमिक तथा स्थूल उत्तर[illegible] दे सकते हैं और इस साहसिक किन्तु आंशिक उ[illegible] हम जड़ द्रव्य गुरुत्वाकर्षण, काल, प्रोटोन[illegible] आदिके सम्बन्धमें कुछ अस्फुट बातें कह सकते[illegible] दूसरेके उत्तरमें हम प्राकृतिक नियमोंका, उष्मा[illegible] हो जानेका तथा नीहारिकाओंके निरन्तर दूर[illegible] पलायनका उल्लेख कर सकते हैं। किन्तु इस[illegible] अस्तित्व क्यों है ? इस प्रश्नके उत्तरमें शायद [illegible] यही कहना पड़े कि 'ईश्वर ही जाने'। यह ईश्वर [illegible] कारणोंके कारणके रूपमें निरूपित किया जा सकता[illegible] और वास्तवमें वही इसका असली कारण भी है। [illegible] वही ब्रह्म है।

विज्ञान-दर्शन—समन्वय

उपरतम वैज्ञानिक दर्शन-चिन्तनका निष्कर्ष है कि विश्व-ब्रह्माण्डकी संचालिका कोई 'विशिष्ट शक्ति' है। [illegible] मनीषाने अचिन्त्य सद्रूपी ब्रह्मकी सैद्धान्तिक प्रतिष्ठा कर निश्चयात्मकरूपसे कह दिया है कि वही यह विशिष्ट शक्ति है— 'एतद्वै तत्।' वस्तुतः उसी ब्रह्मका—उस ब्रह्मकी इच्छाशक्तिका—विलास यह विश्व है, जो अनन्त ब्रह्माण्डोंमें व्याप्त हुआ है। वह ब्रह्म यद्यपि सर्वत्र परिव्याप्त है, फिर भी गूढ़ होनेसे सूक्ष्मदर्शियोंके द्वारा ही और उनकी आप सूक्ष्म बुद्धिसे ही [illegible] समझा जा सकता है। (क० उ० ३। १२), उसी दर्शन-दिशामें अग्रसर वैज्ञानिककी चिन्तना किसी विशिष्ट श[illegible] स्पर्श कर रही है। प्राच्यदर्शन और पाश्चात्य विज्ञानकी यह समन्वय-दिशा अद्भुत और स्पृहणीय है। ××××× [illegible] परब्रह्मसे सृष्टिके सब जीव और निर्जीव व्यक्त पदार्थ जिस क्रमसे उत्पन्न होते हैं, उसके ठीक विपरीत क्रमसे [illegible] अव्यक्त (सूक्ष्म) प्रकृतिमें और प्रकृतिका मूल ब्रह्ममें हो जाता है। सृष्टि और संहारका यह क्रम शाश्वत है। [illegible] अव्याकृत आदि प्रतीक सूर्यको सूर्योपनिषद्ने इसी रूपमें दर्शाते हुए दिशा-निर्देश किया है—

सूर्याद्भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु। सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च ॥

काशीके द्वादश आदित्योंकी पौराणिक कथाएँ

(लेखक—श्रीराधेश्यामजी खेमका, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

सर्वतीर्थमयी विश्वनाथपुरी काशी त्रैलोक्यमङ्गल भगवान् विश्वनाथ एवं कलि-कल्मषहारिणी भगवती भागीरथीके अतिरिक्त अगणित देवताओंकी आवासभूमि है। यहाँ कोटि-कोटि शिवलिङ्ग चतुष्षष्टियोगिनियाँ, षट्पञ्चाशत् विनायक, नव दुर्गा, नव गौरी, अष्ट भैरव, विशालाक्षीदेवी-प्रभृति सैकड़ों देव-देवियाँ काशी-वासीजनोंके योग-क्षेम, संरक्षण, दुरित एवं दुर्गतिका निरसन करते हुए विराजमान हैं। इनमें द्वादश आदित्योंका स्थान और माहात्म्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। उनका चरित्र-श्रवण महान् अभ्युदयका हेतु एवं दुरित और दुर्गतिका विनाशक है। यहाँ साधकोंके अभ्युदयके लिये द्वादश आदित्योंका संक्षिप्त माहात्म्य-चित्रण कथाओंमें प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) लोलार्ककी कथा—किसी समय भगवान् शिवको काशीका वृत्तान्त जाननेकी इच्छा हुई। उन्होंने सूर्यसे कहा—सप्ताश्व! तुम शीघ्र वाराणसी नगरीमें जाओ। धर्ममूर्ति दिवोदास वहाँका राजा है। उसके धर्मविरुद्ध आचरणसे जैसे वह नगरी उजड़ जाय, वैसा उपाय शीघ्र करो; किंतु राजाका अपमान न करना।

भगवान् शिवका आदेश पानेके अनन्तर सूर्यने अपना स्वरूप बदल लिया और काशीकी ओर प्रस्थान किया। उन्होंने काशी पहुँचकर राजाकी धर्मपरीक्षाके लिये विविध रूप धारण किये एवं अतिथि, भिक्षु आदि बनकर उन्होंने राजासे दुर्लभ-से-दुर्लभ वस्तुएँ माँगी, किंतु राजाके कर्तव्यमें त्रुटि या राजाकी धर्म-विमुखताकी झलक उन्हें नहीं मिली।

उन्होंने शिवजीकी आज्ञाकी पूर्ति न कर सकनेके कारण शिवजीकी झिड़कीके भयसे मन्दराचल लौट जानेका विचार त्याग कर काशीमें ही रहनेका निश्चय किया। काशीका दर्शन करनेके लिये उनका मन लोल (सतृष्ण) था, अतः उनका नाम 'लोलार्क' हुआ। वे गङ्गा-असि-सङ्गमके निकट भदवनी (भदैनी) में विराजमान हैं। वे काशीनिवासी लोगोंका सदा योग-क्षेम वहन करते रहते हैं। वाराणसीमें निवास करनेपर जो लोलार्कका भजन, पूजन आदि नहीं करते हैं, वे क्षुधा-पिपासा, दरिद्रता, दद्रु (दाद) फोड़े-फुंसी आदि विविध व्याधियोंसे ग्रस्त रहते हैं।

काशीमें गङ्गा-असि-सङ्गम तथा उसके निकटवर्ती लोलार्क आदि तीर्थोंका माहात्म्य स्कन्दपुराण आदिमें वर्णित है—

> सर्वेषां काशितीर्थानां लोलार्कः प्रथमं शिरः।
> लोलार्ककरनिष्टप्ता असिधारविखण्डिताः।
> काश्यां दक्षिणदिग्भागे न विशेयुर्महामलाः॥
> (—स्कन्दपु० काशीखण्ड, ४६। ५१, ६७)

(२) उत्तरार्ककी कथा—बलिष्ठ दैत्योंद्वारा देवता बार-बार युद्धमें परास्त हो जाते थे। देवताओंने दैत्योंके आतंकसे सदाके लिये छुटकारा पानेके निमित्त भगवान् सूर्यकी स्तुति की। स्तुतिसे सम्मुख उपस्थित प्रसन्नमुख भगवान् सूर्यसे देवताओंने प्रार्थना की कि बलिष्ठ दैत्य कोई-न-कोई बहाना बनाकर हमारे ऊपर आक्रमण कर देते हैं और हमें परास्त कर हमारे सब अधिकार छीन लेते हैं। निरन्तरकी यह महाव्याधि सदाके लिये जैसे समाप्त हो जाय, वैसा समाधान उत्तर आप हमें देनेकी कृपा करें।

भगवान् सूर्यने विचारकर अपनेसे उत्पन्न एक शिला उन्हें दी और कहा कि यह तुम्हारा समाधान उत्तर है। इसे लेकर तुम काशीमें जाओ और विश्वकर्मा-द्वारा इस शिलाकी शास्त्रोक्त विधिसे मेरी मूर्ति बनवाओ। मूर्ति बनाकर उसका पूजन करनेसे इसे तत्कालमेव जो प्रकार-

…हल्लेमें कुण्डके तटपर है। साम्बादित्यका माहात्म्य …बड़ा चमत्कारी है।

साम्बादित्यस्तदारभ्य सर्वव्याधिहरो रविः।
…दाति सर्वभक्तेभ्योऽनामयाः सर्वसम्पदः॥
(—स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४८। ४७)

(४) द्रौपदादित्यकी कथा—प्राचीन कालमें जगत्-…णकारी भगवान् पञ्चवक्त्र शिवजी ही पाँच …वोंके रूपमें प्रादुर्भूत हुए एवं जगज्जननी उमा …के रूपमें यज्ञकुण्डसे उद्भूत हुईं। भगवान् नारायण उनके सहायतार्थ श्रीकृष्णके रूपमें अवतीर्ण हुए।

महाबलशाली पाण्डव किसी समय अपने चचेरे भाई दुर्योधनकी दुष्टतासे बड़ी विपत्तिमें पड़ गये। उन्हें राज्य त्यागकर वनोंकी धूलि फाँकनी पड़ी। अपने पतियोंके इस दारुण क्लेशसे दुःखी द्रौपदीने भगवान् सूर्यकी मनोयोगसे आराधना की। द्रौपदीकी …स आराधनासे सूर्यने उसे कलछुल तथा ढक्कनके …थ एक बटलोई दी और कहा कि जबतक तुम …जन नहीं करोगी, तबतक जितने भी भोजनार्थी आयेंगे सब-के-सब इस बटलोईके अन्नसे तृप्त हो जायँगे। …सरस व्यञ्जनोंका निधान है एवं इच्छानुसारी व्यञ्जनोंकी …डार है। तुम्हारे भोजन कर चुकनेके बाद यह …ली हो जायगी।

इस प्रकारका वरदान काशीमें सूर्यसे द्रौपदीको प्राप्त …। दूसरा वरदान द्रौपदीको सूर्यने यह दिया कि …नाथजीके दक्षिण भागमें तुम्हारे सम्मुख स्थित मेरी …का जो लोग पूजा करेंगे उन्हें क्षुधा-पीड़ा कभी …होगी। द्रौपदादित्यजी विश्वनाथजीके समीप अक्षय-…नीचे स्थित हैं। द्रौपदादित्यके सम्बन्धमें …स्कन्दपुराणमें बहुत माहात्म्य है। उसीका यह एक …श्लोक है—

…दित्यकथामेतां द्रौपद्याराधनाश्रयाम् ।
…ष्यति नरो भक्त्या तस्यैनः क्षयमेष्यति ॥
(—स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४९। …)

(५) मयूखादित्य-कथा—प्राचीन कालमें पञ्चगङ्गाके निकट 'गभस्तीश्वर' शिवलिङ्ग एवं भक्तमङ्गलकारिणी मङ्गला गौरीकी स्थापना कर उनकी आराधना करते हुए सूर्यने हजारों वर्षतक कठोर तपस्या की। सूर्य स्वरूपतः त्रैलोक्यको तप्त करनेमें समर्थ हैं। तीव्रतम तपस्यासे वे और भी अत्यन्त प्रदीप्त हो उठे। त्रैलोक्यको जलानेमें समर्थ सूर्य-किरणोंसे आकाश और पृथ्वीका अन्तराल भभक उठा। वैमानिकोंने तीव्रतम सूर्य-तेजमें पतिंगा बननेके भयसे आकाशमें गमनागमन त्याग दिया। सूर्य-के ऊपर, नीचे, तिरछे—सब ओर किरणें ही दिखायी देती थीं। उनके प्रखरतम तेजसे सारा संसार काँप उठा। सूर्य इस जगत्की आत्मा हैं, ऐसा भगवती श्रुतिका उद्घोष है। वे ही यदि इसे जला डालनेको प्रस्तुत हो गये तो कौन इसकी रक्षा कर सकता है! सूर्य जगदात्मा हैं, जगच्चक्षु हैं। रात्रिमें मृतप्राय जगत्को वे ही नित्य प्रातःकालमें प्रबुद्ध करते हैं। वे जगत्के सकल व्यापारोंके संचालक हैं। वे ही यदि सर्वविनाशक बन गये तो किसकी शरण ली जाय! इस प्रकार जगत्को व्याकुल देखकर जगत्के परित्राता भगवान् शिव वर देनेके लिये सूर्यके निकट गये। सूर्य भगवान् अत्यन्त निश्चल एवं समाधिमें इस प्रकार निमग्न थे कि उन्हें अपनी आत्माकी भी सुधि नहीं थी। उनकी ऐसी स्थिति देखकर भगवान् शिवको उनकी तपस्याके प्रति महान् आश्चर्य हुआ। तपस्यासे प्रसन्न होकर उन्होंने सूर्यको पुकारा पर वे कठोर … थे। तब भगवान्ने अपने अमृतमय हाथोंसे [illegible] … दिव्य स्पर्शसे सूर्यने धीरे-धीरे आँखें खोलीं और अपने इष्टदेवको … उनकी स्तुति की।

भगवान् शिवने प्रसन्न होकर कहा—सूर्य! … … … [illegible] …

दाक्षिणात्य प्राचीन मूर्तियाँ

ये गये। इसके बाद सब देवता ब्रह्माजीके साथ
केसरीके पास गये और उन्हें प्रसन्न किया तथा
हनुमान्को आशीर्वाद और अपने-अपने शस्त्रास्त्रोंसे
अवध्य कर दिया। उस समय सूर्यदेवने भी उन्हें
अपने तेजका शतांश देते हुए शिक्षा देकर अद्वितीय
विद्वान् बना देनेका आश्वासन दिया; यथा—

तेजसोऽस्य मदीयस्य ददामि शतिकां कलाम्॥
यदा च शास्त्राण्यध्येतुं शक्तिरस्य भविष्यति।
तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति।
(—वा० रा० ७।३६।१३-१४)

इन पंक्तियोंमें सूर्य भगवान्ने हनुमान्जीको
... जो आश्वासन दिया, वह विचारणीय
। उन्हें अपने तेजका शतांश ही देना था तो
देवताओंकी भाँति अपने शस्त्रास्त्रोंसे अवध्यताका
... या कोई दूसरी वस्तु; जैसे श्रीमद्भागवतके
... चतुर्थस्कन्धके समय महाराज पृथुको जब सब
... अपने-अपने कुछ-न-कुछ उत्तम वस्तु देने लगे,
... सूर्यदेवने उन्हें रश्मिमय बाण दिये—'सूर्यो रश्मि-
मयानिषून्' (—४।१५।१८)। हनुमान्जीको
... ही कुछ दिया जा सकता था, पर उन्हें विद्या
... आश्वासन। इससे ध्वनित होता है कि वे
... ज्ञानके लिये ही गये थे। उनकी ऊँची
... अवलोकनाभिमुख होनेके निमित्त हुई थी।

... ज्ञानका फल है। सूर्यदेव ज्ञानस्वरूप हैं।
... इनकी फलकी प्राप्तिके लिये बाल हनुमान्
... ओर उड़े। उनके भावकी शुद्धताका प्रमाण
... है कि सूर्यदेवने उन्हें निर्दोष ही नहीं बरन्
... भी समझा और जलाया नहीं। यथा—

... लदोषज्ञ इति मत्वा दिवाकरः।
... कार्यमस्मायत्तमित्येवं न ददाह सः॥
(—वा० रा० ७।३५।३०)

'यह बालक दोषको जानता ही नहीं
और आगे इससे बड़ा कार्य होगा, यह विचारकर
दिवाकरने इन्हें जलाया नहीं।'

हनुमान्जीकी भूख शुभेच्छाका प्रतीक है, जो ज्ञानकी
प्रथम भूमिका है। अतः उन्हें सूर्यदेवकी अनुकूलता प्राप्त
हुई। सम्पाती भी सूर्यदेवके समीप उड़कर चले गये थे, पर
शुभेच्छापूर्वक नहीं, अभिमानपूर्वक। उन्होंने स्वयं
स्वीकारा है—'मैं अभिमानी रबि निअरावा'(—रा० च० मा०
४।२७।२)। परिणाम प्रतिकूल हुआ। उनके पंख
जल गये—'जरे पंख अति तेज अपारा' (—रा० च० मा०
४।२७।२)। हनुमान्जी ज्ञानके भूखे थे, सम्पातीकी
भाँति मानके भूखे नहीं थे। उनकी तीव्र भूख
सद्गुणकी थी। सद्गुणके उत्कर्षसे ज्ञान होता है—
'सत्त्वात्संजायते ज्ञानम्' (—गीता १४।१७)।
इसीलिये ज्ञानस्वरूप सूर्यदेवने उन्हें विद्या देनेका
आश्वासन दिया।

देवराज इन्द्रका वाहन ऐरावत गज वस्तु—
वाहनादिके लोभका और राहु प्रमादका प्रतीक है, जो
क्रमशः रजोगुणी और तमोगुणी है। लोभ और प्रमाद
ज्ञानके बाधक हैं। प्रमादी शरीर-सुखको जीवनका बड़ा
फल समझता है और ज्ञानकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न नहीं
करता। वह विद्याको उदरपूर्तिका साधन समझता
है; यथा—

मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं॥
(—रा० च० मा० ७।९९।४)

लोभी दृष्ट-अदृष्ट सुखको जीवनका बड़ा फल समझ-
कर उसके लिये प्रयत्न करता है, ज्ञानके लिये नहीं।
अतः लोभ भी ज्ञानका शत्रु है और प्रकारान्तरसे
प्रमादकी सहायता करता है। इसीलिये राहुकी सहायतामें
ऐरावत आता है। ज्ञानेच्छुको प्रमाद और लोभको
दबाना चाहिये। हनुमान्जी राहु और ऐरावतको डराकर
दूर कर देते हैं। वे वायु, गरुड़ और मनसे भी माप

कौतुक बिलोकि लोकपाल हरि हर बिधि,
लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खभार सो ॥
(—ह० बा० ४)

हनुमान्‌जीने सूर्यभगवान्‌से सम्पूर्ण विद्याएँ शीघ्र ही पढ़ लीं। एक भी शास्त्र उनके अध्ययनसे अछूता नहीं रहा; यथा—

ससूत्रवृत्त्यर्थपदं महार्थं
ससंग्रहं सिद्ध्यति वै कपीन्द्रः।
न ह्यस्य कश्चित् सदृशोऽस्ति शास्त्रे
वैशारदे छन्दगतौ तथैव ॥
सर्वासु विद्यासु तपोविधाने
प्रस्पर्धतेऽयं हि गुरुं सुराणाम्।
(—वा० रा० ७ । ३६ । ४५-४६)

अर्थात्—'वानरेन्द्रने (तत्कालीन) सूत्र, वृत्ति, वार्तिक और संग्रह*-सहित 'महाभाष्य' ग्रहण कर उनमें सिद्धि प्राप्त की। इनके समान शास्त्र-विशारद और कोई नहीं है। ये समस्त विद्या, छन्द, तपोविधान—सबमें बृहस्पतिके समान हैं।'

गोस्वामी तुलसीदासने भी हनुमान्‌जीको 'ज्ञानिनामग्रगण्यम्' और 'सकलगुणनिधानम्' माना है और उनकी गुणनिर्देशात्मक स्तुति करते हुए कहा है—

जयति वेदान्तविद विविध-विद्या-विशद
वेद-वेदांगविद ब्रह्मवादी।
ज्ञान-विज्ञान-वैराग्य-भाजन विभो
विमल गुण गनति शुक नारदादी ॥
(—वि० प० २६)

भगवान् श्रीरामसे हनुमान्‌जीकी जब पहले-पहल बातचीत हुई, तब श्रीभगवान् बड़े प्रभावित हुए और उनकी विद्वत्ता एवं वाग्मिताकी प्रशंसा करते हुए लक्ष्मणजीसे बोले—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ॥
(—वा० रा० ४ । ३ । २८-२९)

अर्थात्—'जिसे ऋग्वेदकी शिक्षा न मिली हो, जिसने यजुर्वेदका अभ्यास नहीं किया हो तथा जो सामवेदका विद्वान् न हो, वह ऐसा सुन्दर नहीं बोल सकता। निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरणका अनेक बार अध्ययन किया है; क्योंकि बहुत-सी बातें बोलनेपर भी इनके मुखसे कोई अशुद्धि नहीं निकली।'

श्रीसीताशोधके लिये लङ्काकी यात्रा करते समय सुरसाद्वारा ली गयी बड़ी परीक्षामें हनुमान्‌जीकी बुद्धिमत्ता प्रमाणित हुई और लङ्कामें उन्होंने पग-पगपर बुद्धिमानीका ऐसा परिचय दिया कि रावणके समीपस्थ सचिव, पत्नी-पुत्र-भ्राता—सब उनके पक्षका समर्थन करने लगे। इससे उनकी विद्या-बुद्धिकी विलक्षणताकी झलक मिलती है और साथ ही आचार्य सूर्यकी शिक्षाकी सफलतापर भी प्रकाश पड़ता है। हनुमान्‌जीकी बौद्धिक सफलताका कारण आचार्यका प्रसाद था।

अध्ययनके उपरान्त यथाशक्ति गुरुदक्षिणाकी भी विधि है। हनुमान्‌जीने अपने आचार्यसे गुरुदक्षिणाके लिये इच्छा व्यक्त करनेका निवेदन किया। निष्काम सूर्यदेवने शिष्य-संतोषार्थ अपने अंशोद्भूत सुग्रीवकी सुरक्षाकी कामना की। हनुमान्‌जीने गुरुजीकी इच्छा पूरी करनेकी प्रतिज्ञा की और सुग्रीवके पास पहुँचे—

सूर्याज्ञया तदंशस्य सुग्रीवस्यान्तिकं ययौ।
मातुराज्ञामनुमान्य रुद्रांशः कपिसत्तमः ॥
(—शतरुद्रसं० १ । २० । १२)

वे सुग्रीवके साथ छायाकी भाँति रहकर उनकी सुरक्षा और सेवामें तत्पर रहे। श्रीभगवान्‌के

*—संग्रह एक लाख श्लोकोंका महान् व्याकरणका ग्रन्थ था जो अब -

कर देनेवाली गतिसे सूर्यदेवकी ओर आकाशमें उड़े थे। वे यदि राहु और ऐरावतको सचमुच पकड़ना चाहते तो वे दोनों बचकर भाग नहीं सकते थे। इससे मालूम होता है कि हनुमान्जी उन्हें बड़ा फल समझकर पकड़नेकी मुद्रामें उनकी ओर दौड़कर उन्हें भयभीत कर भगाना ही चाहते थे।

राहुके लिये ज्ञानस्वरूप सूर्य भक्षणीय हैं और हनुमान्जीके लिये सुरक्षणीय। अतः उन्होंने उन्हें सुरक्षाकी दृष्टिसे मुखमें रख लिया; क्योंकि पुस्तकीय ज्ञानसे अधिक सुरक्षित मुखस्थ ज्ञान होता है और महत्त्वपूर्ण वस्तुको मुखमें सुरक्षित रखनेका उनका स्वभाव भी है। श्रीसीताजीको पहचानमें देनेके लिये भगवान् श्रीरामद्वारा उन्हें जो मुद्रिका मिली थी, उसे वे मुखमें ही रखकर लङ्का गये थे; यथा—

प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं। जलधि लाँघि गए अचरज नाहीं॥
(—हनुमानचा० १९)

सर्वान्तर्यामी सूर्यदेव हनुमान्जीकी भावनासे संतुष्ट ही हुए, रुष्ट नहीं। विविध विघ्नोंकी विजयके बाद ज्ञान-प्राप्तिकी साधना करनेवालोंके समक्ष देवता बाधक बनकर आते हैं। रामचरितमानसके ज्ञान-दीपक-प्रसङ्गसे इस तथ्यकी पुष्टि होती है; यथा—

जौं तेहि बिघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी॥
(—रा० च० मा० ७। ११८। ५)

देवराजकी भूमिका ऐसी ही है, पर अदम्य ज्ञानेच्छाके समक्ष उनके कठिन कुलिशके मद-रद टूट गये और ज्ञान-सूर्यने हनुमान्जीसे संतुष्ट होकर ज्ञान देनेका आश्वासन दिया। देवावतार रामायणका यह प्रसङ्ग वैदिक ऋचाओंकी भाँति ही आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक अभिप्रायोंसे युक्त है।

कुछ समयके पश्चात् अध्ययन-अध्यापन प्रारम्भ हुआ। उनकी अध्ययनशैली अद्भुत है। आदिकविने उस ओर संकेत करते हुए कहा है—

असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहीष्यन्
सूर्योन्मुखः प्रष्टुमनाः कपीन्द्रः।
उद्यद्गिरेरस्तगिरिं जगाम
ग्रन्थं महद्धारयनप्रमेयः॥
(—वा० रा० ७। ३६।

'अप्रमेय वानरेन्द्र ये हनुमान् व्याकरण सी[खनेके] लिये सूर्यके सम्मुख हो प्रश्न करते हुए, महाग्रन्थ[को धारण] करते हुए उदयाचलसे अस्ताचलतक चले जाते [थे।'] गोस्वामी तुलसीदासने भी इस अध्ययन-अध्या[पनकी] अद्भुतताका वर्णन किया है—

भानुसों पढ़न हनुमान गये भानु मन-
अनुमानि सिसुकेलि कियो फेरफार सो।
पाछिले पगनि गम गगन मगन-मन
क्रमको न भ्रम, कपि बालक-बिहार सो॥
(—ह० बा० [illegible])

आशय यह है कि सूर्यभगवान्के पास हनुमा[न्जी] पढ़ने गये, सूर्यदेवने बाल-क्रीड़ा समझकर टालमटोल [की] कि मैं स्थिर नहीं रह सकता और बिना आमने-साम[ने] के पढ़ना-पढ़ाना असम्भव है। वे हनुमान्जी[की] ज्ञानेच्छाकी पुनः परीक्षा ले रहे थे। हनुमान्जीकी ज्ञा[न]की प्रबल भूखने कठिनाइयोंकी तनिक भी पर[वाह] नहीं की। उन्होंने सूर्यदेवकी ओर मुख करके पी[छेकी] ओर पैरोंसे प्रसन्नमन आकाशमें बालकोंके खेल-सदृ[श] गमन किया और उससे पाठ्यक्रममें किसी प्रकारका भ्र[म] नहीं हुआ।

सूर्यदेव दो हजार, दो सौ, दो योजन प्रति [illegible] निमिषार्धकी चालसे चलते हुए वेद-वेदाङ्गों एवं सम्पूर्ण [illegible] विद्याओंके रहस्य जल्दी-जल्दी समझाते चले जाते थे और [illegible] हनुमान्जी सब कुछ धारण करते जाते थे। ऐसा [illegible] अद्भुत और आश्चर्यमय अध्ययन-अध्यापन इन्द्रादि लोकपालों [illegible] तथा त्रिदेवादिने कभी देखा नहीं था। इस दृश्यको [illegible] देखकर वे चकित रह गये और उनकी आँखें चौंधिया [illegible] गयीं—

कौतुक बिलोकि लोकपाल हरि हर विधि,
लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खभार सो ॥
(—ह० बा० ४)

हनुमान्‌जीने सूर्यभगवान्‌से सम्पूर्ण विद्याएँ शीघ्र ही पढ़ लीं। एक भी शास्त्र उनके अध्ययनसे अछूता नहीं रहा; यथा—

ससूत्रवृत्त्यर्थपदं महार्थं
ससंग्रहं सिद्ध्यति वै कपीन्द्रः।
न ह्यस्य कश्चित् सदृशोऽस्ति शास्त्रे
वैशारदे छन्दगतौ तथैव ॥
सर्वासु विद्यासु तपोविधाने
प्रस्पर्धतेऽयं हि गुरुं सुराणाम्।
(—वा० रा० ७। ३६। ४५-४६)

अर्थात्—'वानरेन्द्रने (तत्कालीन) सूत्र, वृत्ति, वार्तिक संग्रह*-सहित 'महाभाष्य' ग्रहण कर उनमें सिद्धि की। इनके समान शास्त्र-विशारद और कोई है। ये समस्त विद्या, छन्द, तपोविधान—सबमें गुरुके समान हैं।'

गोस्वामी तुलसीदासने भी हनुमान्‌जीको 'ज्ञानिनाम-ग्रगण्यम्' और 'सकलगुणनिधानम्' माना है और उनकी गुणनिर्देशात्मक स्तुति करते हुए कहा है—

कवि बेदान्तबिद बिबिध-बिद्या-बिसद
बेद-बेदांगबिद ब्रह्मवादी।
ज्ञान-बिज्ञान-बैराग्य-भाजन बिभो
बिमल गुन गनति सुक नारदादी ॥
(—वि० प० २६)

भगवान् श्रीरामसे हनुमान्‌जीकी जब पहले-पहल भेंट हुई, तब श्रीभगवान् बड़े प्रभावित हुए और उनकी विद्वत्ता एवं वाग्मिताकी प्रशंसा करते हुए लक्ष्मणजीसे बोले—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा [illegible]
बहु व्याहरतानेन न [illegible]
(—वा० रा० ४। ३। २८-२९)

अर्थात्—'जिसे ऋग्वेदकी शिक्षा न मिली हो, जिसने यजुर्वेदका अभ्यास नहीं किया हो तथा जो सामवेदका विद्वान् न हो, वह ऐसा सुन्दर नहीं बोल सकता। निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरणका अनेक बार अध्ययन किया है; क्योंकि बहुत-सी बातें बोलनेपर भी इनके मुखसे कोई अशुद्धि नहीं निकली।'

श्रीसीताशोधके लिये लङ्काकी यात्रा करते समय सुरसाद्वारा ली गयी बड़ी परीक्षामें हनुमान्‌जीकी बुद्धिमत्ता प्रमाणित हुई और लङ्कामें उन्होंने पग-पगपर बुद्धिमानीका ऐसा परिचय दिया कि रावणके समीपस्थ सचिव, पत्नी-पुत्र-भ्राता—सब उनके पक्षका समर्थन करने लगे। इससे उनकी विद्या-बुद्धिकी विलक्षणताकी झलक मिलती है और साथ ही आचार्य सूर्यकी शिक्षाकी सफलतापर भी प्रकाश पड़ता है। हनुमान्‌जीकी बौद्धिक सफलताका कारण आचार्यका प्रसाद था।

अध्ययनके उपरान्त यथाशक्ति गुरुदक्षिणाकी भी विधि है। हनुमान्‌जीने अपने आचार्यसे गुरुदक्षिणाके लिये इच्छा व्यक्त करनेका निवेदन किया। निष्काम सूर्यदेवने शिष्य-संतोषार्थ अपने अंशोद्भूत सुग्रीवकी सुरक्षाकी कामना की। हनुमान्‌जीने गुरुजीकी इच्छा पूरी करनेकी प्रतिज्ञा की और सुग्रीवके पास पहुँचे—

सूर्याज्ञया तदंशस्य सुग्रीवस्यान्तिकं ययौ।
मातुराज्ञामनुप्राप्य रुद्रांशः कपिसत्तमः ॥
(—शतरुद्रसं० २। २०। १२)

वे सुग्रीवके साथ छायाकी भाँति रहकर उनकी सुरक्षा और सेवामें तत्पर रहे। श्रीभगवान्‌के

*-संग्रह एक लाख श्लोकोंका महान् व्याकरणका ग्रन्थ था जो अब उपलब्ध नहीं है।

कर देनेवाली गतिसे सूर्यदेवकी ओर आकाशमें उड़े थे। वे यदि राहु और ऐरावतको सचमुच पकड़ना चाहते तो वे दोनों बचकर भाग नहीं सकते थे। इससे मालूम होता है कि हनुमान्‌जी उन्हें बड़ा फल समझकर पकड़नेकी मुद्रामें उनकी ओर दौड़कर उन्हें भयभीत कर भगाना ही चाहते थे।

राहुके लिये ज्ञानस्वरूप सूर्य भक्षणीय हैं और हनुमान्‌जीके लिये सुरक्षणीय। अतः उन्होंने उन्हें सुरक्षाकी दृष्टिसे मुखमें रख लिया; क्योंकि पुस्तकीय ज्ञानसे अधिक सुरक्षित मुखस्थ ज्ञान होता है और महत्त्वपूर्ण वस्तुको मुखमें सुरक्षित रखनेका उनका स्वभाव भी है। श्रीसीताजीको पहचानमें देनेके लिये भगवान् श्रीरामद्वारा उन्हें जो मुद्रिका मिली थी, उसे वे मुखमें ही रखकर लङ्का गये थे; यथा—

प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं। जलधि लाँघि गए अचरज नाहीं॥
(—हनुमानचा० १९)

सर्वान्तर्यामी सूर्यदेव हनुमान्‌जीकी भावनासे संतुष्ट ही हुए, रुष्ट नहीं। विविध विघ्नोंकी विजयके बाद ज्ञान-प्राप्तिकी साधना करनेवालोंके समक्ष देवता बाधक बनकर आते हैं। रामचरितमानसके ज्ञान-दीपक-प्रसङ्गसे इस तथ्यकी पुष्टि होती है; यथा—

जौं तेहि बिघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी॥
(—रा० च० मा० ७। ११८। ५)

देवराजकी भूमिका ऐसी ही है, पर अदम्य ज्ञानेच्छाके समक्ष उनके कठिन कुलिशके मद-रद टूट गये और ज्ञान-सूर्यने हनुमान्‌जीसे संतुष्ट होकर ज्ञान देनेका आश्वासन दिया। देवावतार रामायणका यह प्रसङ्ग वैदिक ऋचाओंकी भाँति ही आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक अभिप्रायोंसे युक्त है।

कुछ समयके पश्चात् अध्ययन-अध्यापन प्रारम्भ हुआ। उनकी अध्ययनशैली अद्भुत है। आदिकविने उस ओर संकेत करते हुए कहा है—

असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहीष्यन्
सूर्योन्मुखः प्रष्टुमनाः कपीन्द्रः।
उद्यद्गिरेरस्तगिरिं जगाम
ग्रन्थं महद्धारयनप्रमेयः॥
(—वा० रा० ७। ३६।

'अप्रमेय वानरेन्द्र ये हनुमान् व्याकरण सी[illegible] लिये सूर्यके सम्मुख हो प्रश्न करते हुए, महाग्रन्थक[illegible] करते हुए उदयाचलसे अस्ताचलतक चले जाते[illegible] गोस्वामी तुलसीदासने भी इस अध्ययन-अध्या[illegible] अद्भुतताका वर्णन किया है—

भानुसों पढ़न हनुमान गये भानु मन-
अनुमानि सिसुकेलि कियो फेरफार सो।
पाछिले पगनि गम गगन मगन-मन
क्रमको न भ्रम, कपि बालक-बिहार सो॥
(—ह० बा०

आशय यह है कि सूर्यभगवान्‌के पास हनुमा[illegible] पढ़ने गये, सूर्यदेवने बाल-क्रीड़ा समझकर टालमटोल [illegible] कि मैं स्थिर नहीं रह सकता और बिना आमने-सा[illegible] के पढ़ना-पढ़ाना असम्भव है। वे हनुमान्‌[illegible] ज्ञानेच्छाकी पुनः परीक्षा ले रहे थे। हनुमान्‌जीकी ज्ञा[illegible] की प्रबल भूखने कठिनाइयोंकी तनिक भी पर[illegible] नहीं की। उन्होंने सूर्यदेवकी ओर मुख करके पीठ[illegible] ओर पैरोंसे प्रसन्नमन आकाशमें बालकोंके खेल-कूद[illegible] गमन किया और उससे पाठ्यक्रममें किसी प्रकारका भ्र[illegible] नहीं हुआ।

सूर्यदेव दो हजार, दो सौ, दो योजन प्रति निमिषार्द्धकी चालसे चलते हुए वेद-वेदाङ्गों एवं सम्पूर्ण विद्याओंके रहस्य जल्दी-जल्दी समझाते चले जाते थे और हनुमान्‌जी सब कुछ धारण करते जाते थे। ऐसा अद्भुत और आश्चर्यमय अध्ययन-अध्यापन इन्द्रादि लोकपाल तथा त्रिदेवादिने कभी देखा नहीं था। इस दृश्यको देखकर वे चकित रह गये और उनकी आँखें चौंधिया गयीं—

कौतुक बिलोकि लोकपाल हरि हर बिधि,
लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खभार सो ॥
(—ह० बा० ४)

हनुमान्‌जीने सूर्यभगवान्‌से सम्पूर्ण विद्याएँ शीघ्र ही पढ़ ली। एक भी शास्त्र उनके अध्ययनसे अछूता नहीं रहा; यथा—

ससूत्रवृत्त्यर्थपदं महार्थं
ससंग्रहं सिद्ध्यति वै कपीन्द्रः।
न ह्यस्य कश्चित् सदृशोऽस्ति शास्त्रे
वैशारदे छन्दगती तथैव ॥
सर्वासु विद्यासु तपोविधाने
प्रस्पर्धतेऽयं हि गुरुं सुराणाम्।
(—वा० रा० ७ । ३६ । ४५-४६)

अर्थात्—'वानरेन्द्रने (तत्कालीन) सूत्र, वृत्ति, वार्तिक संग्रह*-सहित 'महाभाष्य' ग्रहण कर उनमें सिद्धि की। इनके समान शास्त्र-विशारद और कोई है। ये समस्त विद्या, छन्द, तपोविधान—सबमें तिके समान हैं।'

गोस्वामी तुलसीदासने भी हनुमान्‌जीको 'ज्ञानिनाम-ग्रम्' और 'सकलगुणनिधानम्' माना है और नकी गुणनिर्देशात्मक स्तुति करते हुए कहा है—

जयति वेदान्तविद विविध-विद्या-विशद
वेद-वेदांगविद ब्रह्मवादी।
न-विज्ञान-वैराग्य-भाजन विभो
विमल गुण गनति शुक नारदादी ॥
(—वि० प० २६)

भगवान् श्रीरामसे हनुमान्‌जीकी जब पहले-पहल भेंट हुई, तब श्रीभगवान् बड़े प्रभावित हुए और विद्वता एवं वाग्मिताकी प्रशंसा करते हुए भैसे बोले—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ॥
(—वा० रा० ४ । ३ । २८-२९)

अर्थात्—'जिसे ऋग्वेदकी शिक्षा न मिली हो, जिसने यजुर्वेदका अभ्यास नहीं किया हो तथा जो सामवेदका विद्वान् न हो, वह ऐसा सुन्दर नहीं बोल सकता। निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरणका अनेक बार अध्ययन किया है; क्योंकि बहुत-सी बातें बोलनेपर भी इनके मुखसे कोई अशुद्धि नहीं निकली।'

श्रीसीताशोधके लिये लङ्काकी यात्रा करते समय सुरसाद्वारा ली गयी बड़ी परीक्षामें हनुमान्‌जीकी बुद्धिमत्ता प्रमाणित हुई और लङ्कामें उन्होंने पग-पगपर बुद्धिमानीका ऐसा परिचय दिया कि रावणके समीपस्थ सचिव, पत्नी-पुत्र-भ्राता—सब उनके पक्षका समर्थन करने लगे। इससे उनकी विद्या-बुद्धिकी विलक्षणताकी झलक मिलती है और साथ ही आचार्य सूर्यकी शिक्षाकी सफलतापर भी प्रकाश पड़ता है। हनुमान्‌जीकी बौद्धिक सफलताका कारण आचार्यका प्रसाद था।

अध्ययनके उपरान्त यथाशक्ति गुरुदक्षिणाकी भी विधि है। हनुमान्‌जीने अपने आचार्यसे गुरुदक्षिणाके लिये इच्छा व्यक्त करनेका निवेदन किया। निष्काम सूर्यदेवने शिष्य-संतोषार्थ अपने अशोद्भूत सुग्रीवकी सुरक्षाकी कामना की। हनुमान्‌जीने गुरुजीकी इच्छा पूरी करनेकी प्रतिज्ञा की और सुग्रीवके पास पहुँचे—

सूर्याज्ञया तदंशस्य सुग्रीवस्यान्तिकं ययौ।
मातुराज्ञामनुप्राप्य रुद्रांशः कपिसत्तमः ॥
(—शतरुद्रसं० ३ । २० । १२)

वे सुग्रीवके साथ छायाकी भाँति रहकर उनकी सुरक्षा और सेवामें तत्पर रहे। श्रीभगवान्‌के

*-संग्रह एक लाख श्लोकोंका महान् व्याकरणका ग्रन्थ था जो अब उपलब्ध नहीं है।

राज्याभिषेकके बाद जब सब वानर अपने-अपने स्थानको भेजे जाने लगे, तब हनुमान्‌जीने सुग्रीवसे प्रार्थना की कि श्रीभगवान्‌की सेवामें केवल दस दिन और रहकर पुनः आपके पास पहुँच जाऊँगा। सुग्रीवने उन्हें सदाके लिये श्रीभगवान्‌की सेवामें ही रह जानेका आदेश दे दिया।

सुग्रीव अब निर्भय और सुरक्षित थे। सुग्रीवका उपकार कर हनुमान्‌जीने अपने गुरु भगवान् सूर्यकी दक्षिणा पूरी की। अध्येता हनुमान्‌के अध्यापक आचार्य सूर्यदेव हमारे अध्ययनको तेजस्वी बनायें—'तेजस्वि नावधीतमस्तु'।

साम्बपर भगवान् भास्करकी कृपा

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र साम्ब महारानी जाम्बवतीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। बाल्यकालमें इन्होंने बलदेवजीसे अस्त्रविद्या सीखी थी। बलदेवजीके समान ही ये बलवान् थे। महाभारतमें इनका विस्तृत वर्णन मिलता है।* ये द्वारकापुरीके सप्त अतिरथी वीरोंमें एक थे, जो युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भी श्रीकृष्णके साथ हस्तिनापुरमें आये थे। इन्होंने वीरवर अर्जुनसे धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की थी। इन्होंने शल्यके सेनापतित्वमें क्षेमवृद्धिको युद्धमें पराजित किया था और वेगवान् नामक दैत्यका भी वध किया था।

भविष्यपुराणमें उल्लेख है कि साम्ब बलिष्ठ होनेके साथ ही अत्यन्त रूपवान् थे। अपनी सुन्दरताके अभिमानमें वे किसीको कुछ नहीं समझते थे। यही अभिमान आगे इनके पतनका कारण बना। अभिमान किसीको भी गिरा देता है।

हुआ यह कि एक बार वसन्त ऋतुमें रुद्रावतार दुर्वासा मुनि तीनों लोकोंमें विचरते हुए द्वारकापुरीमें आये। उन्हें तपसे क्षीणकाय देखकर साम्बने उनका परिहास किया। इसपर दुर्वासा मुनिने क्रोधमें आकर अपने अपमानके बदलेमें साम्बको शाप दिया कि 'तुम अति शीघ्र कोढ़ी हो जाओ।' उपहास बुरा होता है। वही हुआ। साम्ब शप्त होनेपर संतप्त हो उठे।

साम्बने अति व्याकुल हो कुष्ठ-निवारणार्थ अनेक प्रकारके उपचार किये; परंतु किसी भी उपचारसे उनका कुष्ठ नहीं मिटा। अन्तमें वे अपने पूज्य पिता आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके पास गये और उनसे विनीत प्रार्थना की कि 'महाराज! मैं कुष्ठरोगसे अत्यन्त पीड़ित हो रहा हूँ। मेरा शरीर गलता जा रहा है; स्वर दबा जा रहा है, पीड़ासे प्राण निकले जा रहे हैं, अब क्षणभर भी जीवित रहनेकी क्षमता नहीं है। आपकी आज्ञा पाकर अब मैं प्राण त्याग करना चाहता हूँ। आप इस असह्य दुःखकी निवृत्तिके लिये मुझे प्राण त्यागनेकी अनुमति दें।'

महायोगेश्वर श्रीकृष्ण क्षणभर विचारकर बोले—'पुत्र! धैर्य धारण करो। धैर्य त्यागनेसे रोग अधिक सताता है। मैं उपाय बताता हूँ, सुनो। तुम श्रद्धापूर्वक श्रीसूर्यनारायणकी आराधना करो। पुरुष यदि विशिष्ट देवताकी आराधना विशिष्ट ढंगसे करे, तो अवश्य ही विशिष्ट फलकी प्राप्ति होती है। देवाराधन निष्फल नहीं होता।'

साम्बके सन्देह करनेपर श्रीकृष्ण पुनः बोले—'... और अनुमानसे हजारों देवताओंका होना सिद्ध होता है।

* आदिपर्व १८५। १०; सभा० ३४-३५। १६, ५७, ३४। १६; वन० १६। १ १६-१७ ... १३-१४; विराट० ७२। २२; अश्व० ६६। ३; मौसल० १। १६-२७। २२। २५। ३। ... स्वर्ग० ५। १६-१८

करता है, उसकी वह इच्छा ठीक नहीं है, अतः धनके उपार्जनकी इच्छा नहीं करना ही उचित है। कीचड़ लगाकर पुनः उसके धोनेसे कीचड़ नहीं लगाना ही ठीक है, श्रेयस्कर है—

धर्मार्थस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता।
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्॥
(—महाभा० वनपर्व २। ४९)

शौनकजीने वन-यात्रामें युधिष्ठिरको आवश्यकताओंकी ...के लिये एक विचित्र त्यागीका मार्ग अपनानेके ... बताया था। फिर भी किसी सत्पुरुषके लिये ...ने अतिथियोंका स्वागत-सत्कार करना परम कर्तव्य है, तो ऐसी स्थितिमें स्वागत कैसे किया जा सकेगा? युधिष्ठिरके इस प्रश्नपर शौनकजीने कहा—

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥
(—महाभा० वनपर्व २। ५४)

'हे युधिष्ठिर! अतिथियोंके स्वागतार्थ आसनके लिये ...ण, बैठनेके लिये स्थान, जल और चौथी मधुर ...णी—इन चार वस्तुओंका अभाव सत्पुरुषोंके घरमें ...ी नहीं रहता।' इनके द्वारा अतिथि-सेवाका धर्म निभ सकता है।

महाराज युधिष्ठिर अपने पुरोहित धौम्यकी सेवामें ...पस्थित हुए और उनकी सलाहसे सूर्यभगवान्की ...पासनामें जुट गये। पुरोहितने भगवान् सूर्यके अष्टोत्तर-...नाम-स्तोत्र (एक सौ आठ नामोंका जप) का अनुष्ठान ...या और उपासनाकी विधि समझायी। महाराज ...धिष्ठिर सूर्योपासनाके कठिन नियमोंका पालन करते ...र सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा, अर्क, सविता, रवि ...यादि एक सौ आठ नामोंका जप करने लगे। महाराज ...धिष्ठिरने सूर्यदेवकी प्रार्थना करते हुए कहा—

...वं भानो जगतश्चक्षुस्त्वमात्मा सर्वदेहिनाम्।
...वं योनिः सर्वभूतानां त्वमाचारः क्रियावताम्॥
...वं गतिः सर्वसांख्यानां योगिनां त्वं परायणम्।
...नावृतार्गलं द्वारं त्वं गतिस्त्वं मुमुक्षताम्॥
त्वया संधार्यते लोकस्त्वया लोकः ...
त्वया पवित्रीक्रियते निर्व्याजं पाल्यते ...
(—महा०, वन० ३। ३६-...)

'हे सूर्यदेव! आप अखिल जगत्के नेत्र तथा ... प्राणियोंकी आत्मा हैं। आप ही सब जीवोंके उत्... स्थान हैं और सब जीवोंके कर्मानुष्ठानमें ... हुए जीवोंके सदाचार हैं। हे सूर्यदेव! आप ही सम... सांख्ययोगियोंके प्राप्तव्य स्थान हैं। आप ही मो... खुले द्वार हैं और आप ही मुमुक्षुओंकी गति हैं। ... सूर्यदेव! आप ही सारे संसारको धारण करते हैं ... सारा संसार आपसे ही प्रकाश पाता है। आप ... इसे पवित्र करते हैं और आप ही इस संसारका बिन... किसी स्वार्थके पालन करते हैं।'

इस प्रकार विस्तारसे महाराज युधिष्ठिरने भगवान् सूर्यकी प्रार्थना की। भगवान् सूर्य युधिष्ठिरकी इस आराधनासे प्रसन्न होकर सामने प्रकट हो गये और उनके मनोगत भावको समझकर बोले—

यत्तेऽभिलषितं किञ्चित्तत्त्वं सर्वमवाप्स्यसि।
अहमन्नं प्रदास्यामि सप्त पञ्च च ते समाः॥
(—महा० वन० ३। ७१)

'धर्मराज! तुम्हारा जो भी अभीष्ट है, वह तुमको मिलेगा। मैं बारह वर्षोंतक तुमको अन्न देता रहूँगा।'

भगवान् सूर्यने इतना कहकर महाराज युधिष्ठिरको वह अपना 'अक्षयपात्र' प्रदान किया, जिसमें बना भोज्य पदार्थ 'अक्षय' बन जाता था। भगवान् सूर्यका वह अक्षयपात्र सचमुच एक विचित्र 'बटलोई' थी। उसकी विशेषता यह थी कि उसमें बना भोज्य पदार्थ तबतक अक्षय बना रहता था, जबतक पाँचाली भोजन नहीं कर लेती थी। पुनः जब वह पात्र धो-धोकर पवित्र कर लिया जाता था और पुनः उसमें भोज्य पदार्थ बना...

दूसरा वर माँगा—'भगवन् ! यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है, तो मुझे यह वर दीजिये कि मेरे शरीरका यह कलंक निवृत्त हो जाय।' कुष्ठ जीवनका सबसे बड़ा पाप-फल समझा जाता है।

सूर्यनारायणके 'एवमस्तु' कहते ही साम्बका रूप दिव्य और स्वर उत्तम हो गया। इसके अतिरिक्त सूर्यने और भी वर दिये; जैसे कि—'यह नगर तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होगा। हम तुमको स्वप्नमें दर्शन देते रहेंगे; अब तुम इस चन्द्रभागा नदीके तटपर मन्दिर बनवाकर उसमें हमारी प्रतिमा स्थापित करो।'

साम्बने श्रीसूर्यके आदेशानुसार चन्द्रभागा नदीके तटपर मित्रवनमें एक विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें विधिपूर्वक सूर्यनारायणकी मूर्ति स्थापित करायी।

इसके बाद मौसल-युद्धमें साम्बने वीर[गति] प्राप्त की। मृत्युके पश्चात् भगवान् भास्करकी कृपा[से] विश्वदेवोंमें प्रविष्ट हो गये।

[साम्बकी कथा और भक्ति-पद्धतिसे हजारों-लाखों लोगोंने लाभ उठाया है और सूर्याराधनासे स्वा[स्थ्य] और सुख प्राप्त किया है। साम्बपुराण (उपपुराण[में] साम्बकी कथा, उपासना और उससे सम्बद्ध ज्ञान[की] बातें विस्तारसे वर्णित हैं। अन्य पुराणोंमें भी साम्ब[की] कथा और उपासनाकी चर्चा है।]

भगवान् सूर्यका अक्षयपात्र

(लेखक—आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्० ए०)

महाराज युधिष्ठिर सत्यवादी, सदाचारी और धर्मके अवतार थे। महान्-से-महान् संकट पड़नेपर भी उन्होंने कभी धर्मका त्याग नहीं किया। ऐसा सब कुछ होते हुए भी राजा होनेके नाते दैवात् वे द्यूतक्रीडामें सम्मिलित हो गये। जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दूरस्थ देशमें अपने शत्रुओंके विनाश करनेमें लगे हुए थे, उस समय महाराज युधिष्ठिरको जूएमें अपना राज्य, धन-धान्य एवं समस्त सम्पदा गँवानी पड़ी। अन्तमें उन्हें बारह वर्षोंका वनवास भी जूएमें हार-स्वरूप मिला। महाराज युधिष्ठिर अपने पाँचों भाइयोंके साथ वनवासके कठिन दुःखको झेलने चल पड़े। साथमें महासती द्रौपदी भी थीं। महाराज युधिष्ठिरके साथ उनके अनुयायी ब्राह्मणोंका वह दल भी चल पड़ा, जो अपने धर्मात्मा राजाके बिना अपना जीवन व्यर्थ मानता था। उन ब्राह्मणोंको समझाते हुए महाराज युधिष्ठिरने कहा—'ब्राह्मणो ! जूएमें मेरा सर्वस्व हरण हो गया है। हम फल-मूल तथा अन्नके आहारपर रहने-का निश्चय कर संतप्त-हृदयसे वनमें जा रहे हैं। वन[में] इस यात्रामें महान् कष्ट होगा; अतः आप सब मेरा सा[थ] छोड़कर अपने-अपने स्थानको लौट जायँ।' ब्राह्मणोंने दृढ़ता के साथ कहा—'महाराज ! आप हमारे भरण-पोषणकी चिन्ता न करें। अपने लिये हम स्वयं ही अन्न आदिकी व्यवस्था कर लेंगे। हम सभी ब्राह्मण आपका अभीष्ट-चिन्तन करेंगे और मार्गमें सुन्दर-सुन्दर कथा-प्रसङ्गसे आपके मनको प्रसन्न रक्खेंगे, साथ ही आपके साथ प्रसन्नतापूर्वक वन-विचरणका आनन्द भी उठायेंगे।' (महाभा० वनपर्व २। १०-११)

महाराज युधिष्ठिर उन ब्राह्मणोंके इस निश्चय और अपनी स्थितिको जानकर चिन्तित हो गये। उनको चिन्तित देखकर परमार्थ-चिन्तनमें तत्पर और अध्यात्म-विषयके महान् विद्वान् शौनकजीने महाराज युधिष्ठिरसे सांख्ययोग एवं कर्मयोगपर विचार-विमर्श किया और धनकी अनुपयोगिता सिद्ध करते हुए बोले—'जो मानव धर्म करनेके लिये धनके उपार्जनकी कामना

उनसे प्रार्थना की—'भगवन्! आप जिस दिव्यमणिसे तीनों लोकोंको सदा प्रकाशित करते रहते हैं, वह स्यमन्तकमणि मुझे देनेकी कृपा कीजिये*।

तब भगवान् सूर्यनारायणने कृपा करके वह तेजस्वी- [मणि] राजा सत्राजित्को दे दी। वे उसे कण्ठमें [धार]ण कर द्वारकापुरीमें गये। 'ये सूर्य जा रहे हैं'— ऐसा कहते हुए अनेक मनुष्य उन नरेशके पीछे दौड़ पड़े। इस प्रकार नगरवासियोंको विस्मित करते हुए सत्राजित् अपने रनिवासमें चले गये।

यह मणि वृष्णि और अन्धककुलवाले जिस व्यक्तिके घरमें रहती थी, उसके यहाँ उस मणिके प्रभावसे सुवर्णकी वर्षा होती रहती थी। उस देशमें मेघ समय-पर वर्षा करते थे तथा वहाँ व्याधिका किंचिन्मात्र भय नहीं होता था। वह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना दिया करती थी†।

जब भगवान् भी संसारी लोगोंके साथ क्रीड़ा करनेके लिये अवतार धारण करते हैं तो सर्वसाधारण अल्पज्ञ [व्य]क्ति उन नटनागरको अपने समान ही कर्मबन्धनमें [बँ]धा हुआ समझते हैं। वे उनके कार्योंपर शङ्का करते [हैं], लाञ्छन लगानेवाली समालोचना भी कर बैठते [हैं]। जब भगवान्को नरनाट्य करना होता है तो वे [अप]नी भगवत्ताका प्रदर्शन नहीं करते।

लोभका ऐसा घृणित प्रभाव है कि ... भाई-भाईमें विरोध उत्पन्न हो जाता है, अप[ने पराये] हो जाते हैं तथा मित्र शत्रु बन जाते हैं। [इसी] भावको प्रदर्शित करनेके लिये भगवान् श्याम[सुन्दरने] स्यमन्तकमणिके हरणकी लीला दिखायी थी। स्यमन्तकमणिके हरण एवं ग्रहणकी लीलाका प्रसङ्ग विस्तृतरूपसे श्रीमद्भागवतके दशम स्[कन्धके] ५६-५७ अध्यायोंमें आया है।

ऐसी प्रसिद्धि है कि भाद्रमासके कृष्णपक्षकी च[तुर्थी] तिथिमें उदित चन्द्रमाका दर्शन होनेसे मनुष्यमा[त्रको] कलङ्क लगनेकी सम्भावना होती है। चन्द्र-द[र्शन] हो जानेपर कलङ्कका निवारण हो जाय, इसके लि[ये] श्रीमद्भागवतके इन दो (५६-५७) अध्यायोंक[ा] कथाप्रसङ्ग पढ़ना एवं सुनना अत्यन्त लाभप्रद है।

इस स्यमन्तकोपाख्यानकी फलश्रुतिका वर्णन करते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं—'सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णके पराक्रमोंसे परिपूर्ण यह पवित्र आख्यान समस्त पापों, अपराधों और कलङ्कोंका मार्जन करनेवाला तथा परम मङ्गलमय है। जो इसे पढ़ता, सुनता अथवा स्मरण करता है, वह सब प्रकारकी अपकीर्ति और पापोंसे छूटकर परम शान्तिका अनुभव करता है।‡

* तदेतन्मणिरत्नं मे भगवन् दातुमर्हसि॥ (—हरिवंशपु० ३८। २१)

† चार धानकी एक गुञ्जा या एक रत्ती होती है। पाँच रत्तीका एक पण (आधे मासेसे कुछ अधिक), आठ [पणक]ा एक धरण, आठ धरणका एक पल (जो ढाई छटाँकके लगभग होता है), सौ पल (सोलह सेरके लगभग-)की एक [तुला] होती है, बीस तुलाका एक भार होता है अर्थात् आजके मापसे आठ मनका एक भार होता है।

‡ यस्त्वेतद् भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलं च।
आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद् वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिम्॥ (—श्रीमद्भा० १०। ५७। ४२)

कलियुगमें भी सूर्यनारायणकी कृपा

(लेखक—श्रीअवधकिशोरदासजी श्रीवैष्णव 'प्रेमनिधि')

आप विश्वास करें, इस कलियुगमें भी देवगण कृपा करते हैं तथा समय पड़नेपर वे साक्षी भी देते हैं। 'भक्तमाल'में वर्णित प्रसिद्ध श्रीजगन्नाथधामके पास श्रीसाक्षीगोपालजीके मन्दिरके विषयमें तो सभी जानते ही हैं, परंतु कच्छकी यह एक नवीन घटना भी श्रद्धा बढ़ानेवाली वस्तु है।

कच्छके राजाओंमें राव देशलकी श्रद्धा तथा भगवद्-भक्ति लोकविश्रुत है संवत् १८०५में वैशाख शुक्ला १, शुक्रवारसे 'भुज'में 'शिवरामण्डप'के उत्सव-प्रसङ्गमें आपने सवा लाख संतोंकी लगातार दस दिनोंतक सेवा की थी। निम्नलिखित घटना उसीसे सम्बद्ध है, जो सत्यको प्रोत्साहित तथा श्रद्धाभावनाको दृढ़ करती है। संक्षेपमें घटना इस प्रकार है—

एक दिन कच्छकी राजधानी 'भुज'में एक अद्भुत वाद (फरियाद) आया। एक साहूकारने एक पटेलपर दावा दायर कर दिया। वह दस्तावेज लिखकर देनेवाला किसान गरीब था—उसने उसमें लिखा था कि—'कोरी (स्थानीय रजतमुद्रा) रावजी (तत्कालीन राजा) के आपकी एक हजार रोकड़ी मैंने तुम्हारे पाससे ब्याजपर ली है। समयपर ये कोरियाँ मैं आपको ब्याजके साथ भर दूँगा। दस्तावेजके नीचे साक्षियोंके नाम हैं। सबसे नीचे 'साख श्रीसूरजकी' लिखा है।'

आज उसी दस्तावेजने राजदरबारके सामने एक विकट समस्या खड़ी कर दी है। किसान कहता है—एक हजार कोरियाँ ब्याजसहित साहूकारको भर दी हैं।

साहूकार कहता है—'बात असत्य है। हमको एक कोरी भी नहीं मिली है। यह झूठ बोलता है। मेरे पास पटेलकी सहीवाला दस्तावेज मौजूद है।'

इधर दस्तावेज कहता है—'किसानको एक हजार कोरियाँ भरनेको हैं।' किसानने कोरी चुकती कर दी, इस बातका कोई साक्षी नहीं है—कागजपर ऐसा कोई चिह्न भी नहीं है। अदालतने साक्षी, कानूनके आधारपर पूरी छानबीनकर सभी प्रमाण पटेलके विरुद्ध प्राप्त किये। कोई भी बात किसान[illegible] नहीं है। प्रमाणसे सिद्ध होता है—'किसान [illegible] और पटेलके विरुद्ध फैसला भी सुना दिया जाना [illegible]

'भुज'की राजगद्दीपर उस समय राव दे[illegible] बाबा विराजमान थे। प्रखर मध्याह्नका समय [illegible] सूर्य मानो अग्निकी ज्वाला बरसा रहे थे। वे भुजके पर[illegible] प्रचण्ड उत्तप्त तापसे तपाकर अपनी सम्पूर्ण गरमी [illegible] नगरीपर फेंक रहे थे। ऐसी गरमीमें कच्छके राव[illegible] आँखें अभी जरा-सी ही मिली थीं कि बाहरसे क[illegible] क्रन्दन सुनायी पड़ा—

'महाराज! मेरी रक्षा करो—रक्षा करो, मैं [illegible] मनुष्य बिना अपराधके मारा जा रहा हूँ।'

किसानकी करुण चीख सुनकर रावजीकी आँ[illegible] खुल गयीं। कच्छका मालिक नंगे पाँव धड़धड़ बाहर आया। राजधर्मका यही तकाजा है।

'कौन है भाई!' महाराजकी शान्त, मीठी वाणीने वातावरणमें मधुरता भर दी।

'चिरंजीव हों रावजी!' किसानका कण्ठ [illegible] भर गया। वह धैर्य धारण कर बोला—'मैं एक हजार कोरीके लिये आँसू नहीं बहाता हूँ। मेरे [illegible] कलङ्क आता है, वह मुझसे [illegible] नहीं [illegible] क्षमा करें! मुझे कृपा कर उचित न्याय [illegible] गरीबनिवाज!'

पटेलने अपनी सारी राम-कहानी [illegible] दरबारकी [illegible] निवेदन की। महाराजने [illegible] बजाकर मुनीमजीको [illegible] एक अक्षरको ध्यानपूर्वक पढ़ा। किसानकी [illegible]